COLLECTION OF HINDU LAW TEXTS No. 25(1)

Śri VAIDYANÂTHA DIXITA'S

SMRTIMUKTA PHALAM

PART I

YARNÂS'RAMADHARMA KÂNDA



EDITED BY

J. R. GHARPURE, B. A., LL. B., Honours-in-Law Principal, Law College Poona, Advocate, High Court, Fellow of the University of Bombay.

BOMBAY.

First Edition

(All rights Reserved.)

Printed at the Aryabushan Press, 936/3 Bhamburda Peth,
Poona City, by A. V. Patvardhan and
Published by V. J. Gharpure, at the Office of
the Collection of Hindu Law Texts,
Angrewadi Girguam, Back Road, Bombay 4.

धर्मशास्त्रग्रन्थमाला [ग्रन्थाङ्कः २५ (१)

श्री

वैद्यनाथ दीक्षितीय

रमृतिमुक्ताफलम्

(प्रथमः खंडः)

वर्णाश्रमधर्मकाण्डम्

जगन्नाथ रघुनाथ घारपुरे

→+○⊙○+*→*

बी. ए., एल्एल्. बी., ऑनर्स इन् लॉ.

पुण्यपत्तनस्थव्यवहारधर्मशालायां मुख्याध्यापकः

मुंबई विश्वविद्यालयसदस्यः

इत्यनेन संपादितः।

प्रथमावृत्तिः

शकाब्दाः १८५८ क्रिस्ताब्दाः १९३७.

(सर्वेऽधिकाराः स्वायत्तीकृताः)

पुण्यपत्तने ' आर्यभूषण ' मुद्रणालये ' अनंत विनायक पटवर्धन ' इत्यनेन मुद्रितः, मोहमप्यां ' विश्वनाथ जगन्नाथ घारपुरे,' इत्यनेन प्रकाशितश्च ।

श्री वैयनाथ दीक्षितीय स्मृतिमुक्ताफलस्थ वर्णाश्रमधर्मकाण्डस्य

विषयानुक्रमणिका

| विषयाणि | | ष्ट्रहम् | विषयाणि | पृ ष्ठम् |
|------------------------------|---------|-------------|-----------------------------------------------|-----------------|
| मंगलाचरणम् | ••• | 3 | सृष्टिप्रकारः | १६ |
| धर्मप्रमाणानि | ••• | " | वर्णधर्माः | १७ |
| श्रुतिस्मृतिप्रामाण्यम् | ••• | २ | यजनम् | *** ,, |
| धर्मनिरूपणम् | ••• | ,, | यज्ञमहिमा | १८ |
| धर्ममूलानि | | ,, | श्रौतस्मार्तयज्ञाः | 39 |
| शिष्टाः, तेषां लक्षणम् | | ર | यजनप्रशंसा, अयजनि | न्दा २० |
| स्ववर्णाश्रमधर्मानुष्ठानफलम् | ••• | | यज्ञे दाक्षणा-भोजनादि | २०,२१,२२ |
| आचारप्रशंसा | • • • | " ¥ | आधानकर्तृणाम् | २३ |
| सद्।चारलक्षणम् | ••• | 4 | षितुर्वेधुर्ये | ,, |
| स्मृतिप्रशंसा | ••• | હ્ | अग्रजानुजयोः | ,, |
| थुतिस्मृत्यादीनां चलावलान | क्रिवणम | ٠ | परिवेत्तृणाम् | ,, |
| श्रुतिद्वैधे, स्मृतिद्वैधे | | | विधुराचारः, विधुराग्निः | २५ |
| स्मृतिकर्तारः | ••• | " ~ | मृतपत्नीकस्य | २६ |
| धर्मदेशाः | ••• | 3 | अग्न्युत्पत्तिप्रकारः | २७ |
| ^^ > | ••• | | याजनम् | " |
| ानाषञ्चद्शाः ,, अपवादाः | • • • | " १० | तत्राधिकृताः | |
| युगधर्माः | ••• | 88 | वेदाध्ययनम् | २९ |
| कलिसामर्थ्यम् | ••• | 92 | सार्थवेदोऽध्येतव्यः | " |
| युगसामर्थ्यवर्णनप्रयोजनम् | ••• | 33 | अध्यापनम् | ₹0 |
| कर्भपरिभाषा | ••• | \$ 8 | गुरुशिष्ययोः विद्यादाने पात्रापात्राणि | 38 |
| | ••• | ₹5 | ावधादान पात्रापात्राण अपात्रे अर्थकरणाद्वा | |
| मुरूपगौण ज्ञालयोः | ••• | " | | ··· ,, |
| कर्मकर्तृप्रतिह्नपकानाम् | • • • | " | उपाकरणम् | ३२ |
| दिवारात्रौ-कर्तव्यानाम् | ••• | " | उपाकर्मकालः | ,, |
| दिङ्कियमाभावे | • • • | १५ | उत्सर्जनम्, तत्कालश्च | ३३ |
| स्वशासोक-परशासोकयोः | • • • | " | तेषां ज्येष्ठे | ,, |
| आसनानि | ••• | " | उपवीतधारणम् | ३४ |
| प्रातिनिधिमु रूययोः | ••• | १६ | अनध्यायाः | ३५ |
| वासोवेष्टने | | 22 | नित्याः, नैमित्तिकाः | ३४ |

| विषयाणि | | पृष्ठम् | विषयाणि | | ष्ट्रष्ट |
|------------------------------|-------|----------------|------------------------------------------|-------|------------|
| आकामिकाः | ••• | ३४ | आपद्वृत्तयः | ••• | ६० |
| तत्र अर्थवादाः | ••• | ३५ | अविहितवृत्तयः | ••• | ६१ |
| युगाद्यः | • • • | ३७ | पातनीयाः | ••• | ६२ |
| अनध्यायापवादाः | • • • | 36 | आपत्तौ जीवनानि | ••• | ६३ |
| नैत्यकादौ नानध्यायः | ••• | ३९ | प्राण्युपघातदोषापनुत्तये | | ६३ |
| दानम् | • • • | 80 | क्षत्रियधर्माः | | ६४ |
| तत्रेविध्यम् | • • • | ४१ | . नृपस्य व्रतानि | | ६५ |
| गोदानम्, तत्फलम् | | ४२ | वैक्यधर्माः | ••• | ६६ |
| विद्यादानम् | | ४३ | शूद्रधर्माः | | ६६।६७ |
| भीतानामभयदानम् | ••• | ,, | जूदापराधे | • • • | ६८ |
| महीवस्त्रप्रतिमादानानि | | ,, | शूद्राणां वृत्तयः | • • • | ६९ |
| दश्दानानि | | 84 | ब्राह्मणानां श्रेष्ठचम् | • • • | " |
| विविधदानमन्त्राः | | ४६ | जातिविवेकः | | 90 |
| दानस्य देशकालौ | ••• | ४७ | अनुलोम-प्रतिलोमाः | | |
| प्रतिश्चत्य अपदानम् | | 85 | तज्जाः | ••• | ›› ও |
| पात्रापात्रविचारः | ••• | 86 | | ••• | - 1 |
| षट् अबाह्मणाः | • • • | 88 | कुण्डगोलकाद्यः सावर्ण्यपाप्तौ कारणानि | *** | " ওব |
| पात्रे एव दानम् | ••• | 40 | | ••• | |
| पात्रनिरूपणम् | • • • | 48 | संस्काराः | ••• | ७३ |
| देवलकाः वार्धुषिकाः | • • • | " | तेषां भेदाः | ••• | " |
| पाषंडिनः | • • • | " | गर्भादानम् | ••• | હ |
| पुरुषाधमाः | ••• | ५२ | तत्कालः | • • • | " |
| सप्तविधं धनम् | ••• | ,, | ऋतुयौगपये | ••• | ७५ |
| अदेयानि, देयानि, च | ••• | 43 | ज्येष्ठपुत्रस्य | ••• | ७६ |
| प्रतिग्रहः | ••• | ,, | ऋतौ गमनमवश्यम् | ••• | 9 0 |
| प्रतियाह्याणि | | ५२,,५५ | गर्भोत्पत्यनुक्ठकारुः | *** | " |
| तत्र प्रतिषेधाः पर्युदासाश्च | ••• | 48 | पुंसवनम् | • • • | ७८ |
| कुट्ंबार्थ गाह्याणि | | ५६ | तत्कालः | • • • | " |
| केभ्यः प्रतिग्राह्मम् | | 40 | सीमंतोन्नयनम् | ••• | " |
| कदा | | " | अक्रुतसीमंतायाः प्रसवे | | ৩९ |
| असत्प्रतियहः | | " 42 | जातकर्म | | ۷٥ |
| तत्प्रकाराः | ••• | | नामकरणम् | ••• | ८१ |
| प्रतिग्रहविधिः | • • • | " | नामधेयानि | | ८२ |
| ब्राह्मणस्य वृत्यंतराणि | ••• | " ५९ | कर्णवेधः | ••• | ** |
| • | | • • | | | |

| अन्नप्राश्नम् , "चूडाकरणम् ८२ तत्काळः ८४ मान्यतानिमित्तानि , "अक्षरन्यासः , "तत्काळः ८५ मान्यतानिमित्तानि , "मान्यतानिमित्तानि , "अक्षरन्यासः , "तत्काळः ८६ गुरोः पादोपसंग्रहणम् १० गुरुवत्युच्या गुरुपत्न्याय्वयः १० गुरुवत्यामिग्रायाः १० गुरुवत्यामिग्रायाः १० गुरुवत्यामिग्रायाः १० गुरुवत्यामिग्रम् १० गुरुवत्याम्ययानुक्पतः गुरुवत्याम्ययानुक्पतः गुरुवत्याम्ययानुक्पतः गुरुवत्याम्ययानुक्पतः गुरुवत्याम्ययानुक्पतः १० गुरुवन्ययाय्वयः १० गुरुवन्ययाय्वयः १० गुरुवन्ययाय्वयः १० गुरुवन्ययाय्वयः १० गुरुवन्ययः १० गुरुवन्य | विषयाणि | | पृष्ठम् | विषयाणि | पृष्ठम् |
|---------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------------|------------------|-------|-------------|------------------------------------|------------------|
| चूडाकरणम् ८२ तत्कातः १२ तत्कातः १४ मान्यतानिमित्तानि १५ मान्यतानिमित्तानि १५ मान्यतानिमित्तानि १६ मान्यतानिमित्तानि १६ मान्यतानिमित्तानि १६ मान्यतानिमित्तानि १६ मान्यतानिमित्तानि १६ मान्यतानिमित्तानि १६ मान्यतानिममानि १६ मान्यतानमम् १६ मान्यतानमम् १६ मान्यतानमम् १६ मान्यतानिममानि १६ मान्यतानिममान्य १६ मान्यतानिमम् १६ मान् | निष्क्रमणम् | | ८२ | ितुर्गरीयस्त्वम् | १०५ |
| च्डाकरणम् ८२ तत्कात्ठः ८४ मान्यतानिमित्तानि | अन्नप्राज्ञनम् | ••• | " | पितरौ सर्वथा न त्याज्यावुपेक्षणीयौ | वा १०६ |
| संस्काराणां फलस्य , अभिवादनम् , अभ्वावितम् | चूडाकरणम् | ••• | | एतद्पवादाः | 22 |
| अक्षरत्यासः , , , , , , , , , , , , , , , , , | तत्कालः | ••• | <8 | मान्यतानिमित्तानि | " |
| तत्कालः ८६ पुरोः पादोपसंग्रहणम् १० उपनीतधर्माः , , , , , , , , , , , , , , , , , | संस्काराणां फलम् | ••• | " | मार्गप्रदानाहीः | १•७ |
| उपनीतधर्माः , , , , , , , , , , , , , , , , , | अक्षरन्यासः | ••• | " | अभिवादनम् | 27 |
| उपनयनम् त्रुक्तिविहेते ११ पुरुक्तिविहेते ११ पुरुक्तिविहेते ११ पुरुक्तिविहेते ११ पुरुक्तिविहेते ११ पुरुक्तिव्यूज्या गुरुप्तत्त्याद्यः ११ पुरुक्तिव्यूज्या गुरुप्तत्त्याद्यः ११ प्रुक्तिव्यूज्या गुरुप्तत्त्याद्यः ११ प्रत्यिवादनम् ११ विद्याप्त्रियोगि नम्नमावः ११ विद्याप्त्रियोगि ११ विद्याप्त्रियोगि ११ विद्याप्त्रियोगि ११ विद्याप्तिमम् ११ विद्याप्तिमम् ११ विद्याप्तिमम् ११ विद्याप्त्रियोगि ११ विद्याप्तिमम् ११ व्याप्तमम् ११ व्याप्तमम | तत्कालः | ••• | ८६ | गुरोः पादोपसंग्रहणम् | १०८ |
| काम्योपनयनम् ८७ उपनयनकालः ८८ उपनयनकालः ८८ उपस्य बतानि ८९ गौणकालः ५० यज्ञोपवितम् ५१ गणकालः ५० यज्ञोपवितम् ५१ गणकालः ५० यज्ञोपवितम् ५१ उपवीत—निवीत—प्राचीनावीतानि ५२ वाससोऽसंभवे अनुकल्पः ६३ दंहधारणम् ५१ अजिनानि ५१ वासांसि ५१ पालाश्कर्म ५१ पालाश्कर्म ५५ पालाश्कर्म ५५ भक्ष्या ५६,९७ संध्योपक्रमः ५८ कालातिकमप्रायश्चित्तम् ५६,९७ संध्योपक्रमः ५८ कालातिकमप्रायश्चित्तम् ५९ माह्मणभोजनसंख्या ५६० माह्मणभोजनसंख्या ५०० मूकोन्मत्तादीनाम् ५०० मूकोन्मत्तादीनाम् ५०० मूकोन्मत्तादीनाम् ५०० मूकोन्मतादीनाम् ५०० मूकोन्माः ५०० मुकोन्मतादीनाम् ५०० मुकोनाम् ५०० मुकोन्मतादीनाम् ५०० मुकोनाम् ५०० मुकोनाम् ५०० मुकोनाम् ५०० मुकोनाम् ५०० मुक्तयान्याद्याद्याद्याद्याद्याद्याद्याद्याद्याद | उपनीतधर्माः | ••• | " | | १०९ |
| उपनयनकालः ८८ यु, वित्यूज्या गुरुपत्न्याद्यः ११ प्रत्यस्य बतानि ८९ गौणकालः ५० यज्ञोपवित्य ५१ प्रत्यभिवादनम् ११ विद्याधिगमोपायाः ११ विद्याधिगमेपायाः ११ विद्य | उपनयनम् | ••• | " | - | ११० |
| उपनयनकालः | काम्योपनयनम् | | / (9 | गुरुसंनिहिते | 888 |
| व्यपस्य व्रतानि ८९ गौणकालः ५० गौणकालः | | ••• | | | ११५ |
| गौणकालः | | ••• | | प्रत्यभिवादनम् | ११२ |
| यज्ञोपवीतम् ५१ गुरुसमीपे नम्रभावः ११ गुरुसमीपे नम्रभावः ११ भश्यभोज्यानि ११ स्थ्यभोज्यानि ११ स्थ्यभोज्यानि ११ विद्याप्रियमोपायाः ११ विद्याप्रियमोपायाः ११ विद्याप्रियमोपायाः ११ विद्याप्रियमोपायाः ११ विद्याप्रियमोपायाः ११ तम्रला ५४ तम्रला १४ तम्रला १५ मेसला १५ मेसला १६,८७ मंस्काराः ११ मेसला ९६,८७ मंस्काराः ११ तम्रलातिकमप्रायश्चित्तम् ९८ तम्रलयोः ११ सम्रलयोः | · · | | | | ११३ |
| उपवीत-निवीत-प्राचीनावीतानि | | | | . • | ११४ |
| वाससोऽसंभवे अनुकल्पः ५३ सांथेवेदांऽध्येतव्यः ११ विद्याघिगमोपायाः ११ तत्र विशेषाः , विद्यतानि विद्या , विद्यतानि , विद | | गानि | | भक्ष्यभोज्यानि | 29 |
| दंडधारणम् अध्यापनम् श्रु तत्र विशेषाः श्रु तत्र विशेषाः श्रु तत्र विशेषाः श्रु तेद्वतानि श्रु तेद्वतानि श्रु तेद्वतानि श्रु त्रु तत्र वर्गः श्रु त्र त्र त्र वर्गः श्रु त्र त्र त्र वर्गः श्रु त्र | | | | | ११५ |
| आजिनानि " अध्यापनम् " " वासांसि " | | | | विद्याधिगमोपायाः | ११६ |
| वासांसि ९४ तत्र विशेषाः , , , , , , , , , , , , , , , , , | - | ••• | | अध्यापनम् | • |
| पालाशकर्म ९५ वेदव्रतानि ११ मेखला पुनरुपनयनम् ११ मेखला ९६,९७ पुनः संस्काराः ११ संध्योपक्रमः ९८ तत्र वर्ज्याः | | ••• | | तत्र विशेषाः | |
| मेसला , पुनरुपनयनम् , गुनरुपनयनम् कर्मायश्चित्तम् , गुनरुपनयनम् विधिः , गोदानविधिः , गोदानविधिः , गुरुपनयनम् , गोदानविधिः , गुरुपन्थनम् स्थानम् , गुनरुपनम् | • | ••• | | | ११७ |
| मिक्षाचर्या ९६,९७ पुनः संस्काराः ११ संध्योपक्रमः ९८ तत्र वर्ज्याः ,, कालातिक्रमप्रायश्चित्तम् ९९ ब्रह्मचर्यकालावधिः ,, ब्रह्मचर्यकालावधिः ,, अध्येतृसामर्थ्यानुरूपतः ,, यमलयोः ११ समलयोः १०० स्नातकानाम् ११ स्नातकविधिः ,, तथां भेदाः ,, जढबिधराधीनाम् १०१ स्नातकविधिः १५ स्नातकविधिः १५ औरसादयः ,, नेष्ठिकधर्माः ,, भेत्रजाः, नियोगः १०२ नेष्ठिकव्रतानि १२ ज्येष्ठपुत्रस्य दानस्वीकारौ १०३ अवकीणी १२ गुर्वादिनिरूपणम् १०४ तत्प्रायश्चित्तानि ,, | _ | ••• | | - | |
| संध्योपक्रमः ९८ तत्र वर्ज्याः १, कालातिक्रमप्रायश्चित्तम् ९८ ब्रह्मचर्यकालाविषः १, ब्रह्मचर्यकालाविषः १, अध्येतृसामर्थ्यानुरूपतः १, यमल्योः १, यमल्योः १०० स्नातकानाम् ११ मूकोन्मत्तादीनाम् १०१ स्नातकविषिः १५ स्नातकविषिः १५ स्नातकविषिः १५ स्नातकविषिः १५ अौरसादयः १०२ नेष्ठिकधर्माः १०२ नेष्ठिकधर्माः १०२ चर्षेष्ठपुत्रस्य दानस्वीकारौ १०३ अवकीणी १२२ गुर्वादिनिरूपणम् १०३ तत्प्रायश्चित्तानि १२२ गुर्वादिनिरूपणम् १०३ तत्प्रायश्चित्तानि १२२ गुर्वादिनिरूपणम् १०४ तत्प्रायश्चित्तानि १२० गुर्वादिनिरूपणम् १०४ तत्प्रायश्चित्तानि १२० गुर्वादिनिरूपणम् १०४ तत्प्रायश्चित्तानि १०० गुर्वादिनिरूपणम् १०४ तत्प्रायश्चित्तानि १०० गुर्वादिनिरूपणम् १०० गुर्वादिनिरूपणम्यादिनिरूपणम् १०० गुर्वादिनिरूपणम् १०० गुर्वादिनिरूपणम्यादिनिरूप | _ | ••• | | , , | ११८ |
| कालातिक्रमप्रायश्चित्तम् ९९ ब्रह्मचर्यकालावधिः ,, अध्येतृसामर्थ्यानुरूपतः ,, अध्येतृसामर्थ्यानुरूपतः ,, ज्यनयनकर्तारः ,, गोदानविधिः ११ पमलयोः १०० स्नातकानाम् ११ मूकोन्मत्तादीनाम् ,, तेषां भेदाः ,, जडबिधराधीनाम् १०१ स्नातकविधिः १५ अौरसादयः ,, नेष्ठिकधर्माः ,, भेत्रजाः, नियोगः १०२ नेष्ठिकव्रतानि १२ ज्येष्ठपुत्रस्य दानस्वीकारौ १०३ अवकीणी १२ गुर्वादिनिरूपणम् १०४ तत्प्रायश्चित्तानि ,, | | | | _ | |
| बाह्मणभोजनसंख्या , अध्येतृसामर्थ्यानुरूपतः , गोदानविधिः ११ यमत्रयोः १०० स्नातकानाम् ११ मूकोन्मत्तादीनाम् १०१ स्नातकविधिः १५ जेषां भेदाः , तेषां भेदाः , जडबिधराधीनाम् १०१ स्नातकविधिः १५ औरसादयः , नेष्ठिकधर्माः , भेत्रजाः; नियोगः १०२ नेष्ठिकवतानि १२ ज्येष्ठपुत्रस्य दानस्वीकारौ १०३ अवकीणी १२ गुर्वादिनिरूपणम् १०४ तत्प्रायश्चित्तानि , , | | • • • | | | |
| उपनयनकर्तारः , गोदानविधिः ११ यमलयोः १०० स्नातकानाम् ११ मूकोन्मत्तादीनाम् , तेषां भेदाः ,, जडबिधराधीनाम् १०१ स्नातकविधिः १५ औरसाद्यः , नैष्ठिकधर्माः ,, क्षेत्रजाः; नियोगः १०२ नैष्ठिकव्रतानि १२ ज्येष्ठपुत्रस्य दानस्वीकारौ १०३ अवकीणी १२ गुर्वादिनिह्नपणम् १०४ तत्प्रायश्चित्तानि ,, | | ••• | | | |
| यमलयोः १०० स्नातकानाम् ११ मूकोन्मत्तादीनाम् १०१ स्नातकविधिः १५ औरसादयः , नेष्ठिकधर्माः , भेत्रजाः; नियोगः १०२ नेष्ठिकवतानि १२ ज्येष्ठपुत्रस्य दानस्वीकारौ १०३ अवकीणी १२ गुर्वोदिनिह्नपणम् १०४ तत्प्रायश्चित्तानि , , | | | | | ११९ |
| मूकोन्मत्तादीनाम् , तेषां भेदाः , , , , , , , , , , , , , , , , , | | | | | ११९ |
| जडबधिराधीनाम् १०१ स्नातकविधिः १५९ अौरसादयः , नैष्ठिकधर्माः , , , , , , , , , , , , , , , , , | | ••• | - | | _ |
| औरसादयः ,, नैष्ठिकधर्माः ,, भेत्रजाः; नियोगः १०२ नैष्ठिकव्रतानि १२ ज्येष्ठपुत्रस्य दानस्वीकारौ १०३ अवकीणी १२ गुर्वीदिनिरूपणम् १०४ तत्त्रायश्चित्तानि ,, | | | | | ,,, 840 |
| क्षेत्रजाः; नियोगः १०२ नैष्ठिकवतानि १२ ज्येष्ठपुत्रस्य दानस्वीकारौ १०३ अवकीणी १२ गुर्वोदिनिह्नपणम् १०४ तत्प्रायश्चित्तानि ,, | | ••• | | | - |
| ज्येष्ठपुत्रस्य दानस्वीकारौ १०३ अवकीणी १२ गुर्वादिनिरूपणम् १०४ तत्त्रायश्चित्तानि ,, | | | | | " १ २१ |
| गुर्वादिनिरूपणम् १०४ तत्प्रायश्चित्तानि ,, | - | | - | | १ २२ |
| | | | | | |
| - TILLI (LET 3 V T) | माता सदैव पज्या | ••• | १०५ | | " |

| विषयाणि | | वृष्ठस् | विषयाणि | | विविध |
|--------------------------------------------------|-------|------------------|-------------------------------------------|-------|--------------|
| स्नातकधर्माः | ••• | १२३ | कन्यादूषणे | • • • | १३९ |
| विवाहः | | १२३ | अनाख्याय दुष्टकन्यादाने | ••• | " |
| कन्यालक्षणानि | | " | वृथादूषणे | ••• | १४० |
| कन्यादोषाः | | १२४ | कन्यादातारः | ••• | " |
| सापिण्ड्यम् | | १२४ | विवाहभेदाः | ••• | " |
| वधूवरयोर्वयःप्रमाणम् | | १२५ | ,, प्रकाराः रुक्षणानि | ••• | 888 |
| पुत्रिकाकरणम् | | १२६ | " फलानि च | ••• | " |
| नुगन्भाभरणम् ःः सगोत्रत्वसप्रवरत्वादि | ••• | | धर्म्यविवाहाः अधरम्यीश्च | ••• | १४२ |
| सगोत्रविवाहे | ••• | <i>"</i> १२्७ | शुल्कदानम् | ••• | १४३ |
| सापंडाविवाहे | ••• | १२८ | ,, ग्रहणम् | • • • | " |
| | , • • | | तद्दोषः | ••• | ,, |
| मातुःसपत्न्याः | ••• | ? ? | कन्याविऋये | | 388 |
| द्यामुष्यायणके प्राप्तासम्बद्धाः | ••• | " १३० | विवाहे होमः कर्तव्यैव | | 284 |
| मातुलकन्यापरिणयः देशजातिकुलधर्माणां प्रामाण्य | · · · | १३१ | शोभनद्वयसन्निपाते | | " |
| | 4 | | एकमातृप्रसूतानाम् | | " |
| विवाहे वर्जनीयानि | ••• | १३२ | यमलयोः | | |
| ,, कुलानि | ••• | १३३ | ,, ज्यैष्ठचानिह्नपणम् | | ,, १४६ |
| असवर्णाविवाहे | ••• | 27 | िहंहस्थे गुरौ | | १४७ |
| भूद्राविवाहे | ••• | " | जन्मनक्षत्रे | ••• | |
| वरलक्षणम् | ••• | १३३ | c 11 2 | ••• | " |
| वरपरीक्षा | • • • | १३४ | त्रिज्येष्ठ्ये ज्येष्ठानां ज्येष्ठमासे | • • • | " |
| षंडभेदाः । तेषां रुश्नणानि च | | " | | • • • |)) 5 () / |
| त्याज्यवराः | | १३५ | ऋद्भिपरीक्षा | ••• | १४८ |
| क्रन्यादानकालाः | ••• | " | " आपस्तंबेनोक्ता | • • • | " |
| गौरी–रोहिण्यादिकन्याभेदाः | ••• | " | " आश्वरायनोक्ता | ••• | " |
| तेषां विवाहे | ••• | | कन्यादानकालानियमकमः | ••• | १४९ |
| रजोदर्शनादुपरि | ••• | ,, १३६ | पुनर्विवाहः | ••• | " |
| बालिशाविवाहे | | | औपासनारंभकालः | ••• | " |
| दात्रभावे कन्यया वरणम् | | " | स्थालीपाकोपक्रमः | ••• | १५० |
| विवाहमध्ये रजोद्दर्शने | | ,, १३७ | अन्वारंभणेष्टिः | • • • | " |
| आसप्तमपदान्न विवाहः | ••• | १३८ | अधिवेदनम् | ••• | १५१ |
| तत्पूर्वं विवाहविघ्ने-भंगे वा | ••• | १३८ | अधिवेदनार्हा | ••• | ,, |
| शुल्कम् | *** | | द्वितीयाविवाहकालः | | १५२ |
| छल्म्य तत्र विशेष: | *** | " | अर्कविवाहः | ••• | |
| (17 (9) (9) | • • • | " | जकाववाहः | | 22 |

| विषयाणि | | | पृष्ठम् | विषयाणि | | | पृष्ठम् |
|------------------------|--------------|-----|----------|-----------------------|-----------------|----------------|-----------|
| उन्मत्तादी नां | विवाहनिराकरा | गम् | १५३ | हंसः | ••• | ••• | १८४ |
| पतितादीनां ध | वर्मनिरूपणम् | | " | ,, धर्माः | ••• | ••• | " |
| दारसंग्रहस्य प | क्र म | ••• | ૧૫૪ | परमहंसः | ••• | ••• | १८५ |
| स्त्रीरक्षणक्रमः | ••• | ••• | १५५ | ,, धर्माः | ••• | ••• | " |
| ग्रहाश्रमसा फ र | -यम् | ••• | " | यत्यान्हिकधा | र्माः | ••• | १८७ |
| दम्पत्योर्मिथ | आचरणम् | ••• | १५६ | एकरात्रमेव व | ासः | ••• | १९० |
| प्रोषितभर्तुः ह | | ••• | ,, | दिगम्बरलक्षण | | १ ^९ | ३,१९४ |
| पतिवताधर्मः | ••• | ••• | ૧પંહ | ज्ञानस्य मोक्षा | हेतुत्वम् | ••• | १९५ |
| स्त्रीपातनीयानि | Ì | ••• | १५८ | दन्तधावनम् | ••• | ••• | १९६ |
| गर्भिणीधर्माः | | ••• | १५९ | स्नानादि | ••• | ••• | १९७ |
| गर्भावस्था | ••• | , | १६० | विष्णुपूजाकम | : | | १९८ |
| विधवाधर्माः | ••• | | १६१ | भिक्षाचर्या | | ••• | 399 |
| अनुगमनम् | ••• | ••• | १६२ | माधुकरश्रेष्ठच | म् | ••• | २०० |
| देशांतरगते प्रेत | ो पत्यौ | ••• | १६२ | माधुकरभेदाः | ••• | ••• | " |
| गूढव्यभिचारि | णींप्रति | ••• | १६३ | माधूकरम् | ••• | ••• | 2) |
| गृहस्थधर्मच | र्या | | १६४ | प्राक्प्रणीतम् | ••• | ••• | ,, |
| गृहस्थाश्रमप्रशं | ांसा | ••• | १६६ १६७ | अयाचितम् | ••• | ••• | " |
| वानप्रस्थधम | f: | ••• | १६९ १७० | तात्कालिकम् | | • • • | " |
| यतिधर्माः | ••• | | १७१ | उपपन्नम् | ••• | ••• | " |
| यतिभेदाः | | ••• | १७२ | केभ्यो भिक्षा | पाह्या | | २०१ |
| आतुरसंन्यासः | ••• | ••• | १७३ | सार्ववर्णिकभिष्ठ | शानिषेधः | ••• | " |
| " विधिः | ••• | | १७४ | भिक्षापात्राणि | ••• | ••• | २०२ |
| संन्यासफलम् | ••• | | १७५, १७६ | भिक्षापात्रभोज | ाननिषेधः | ••• | " |
| जीवच्छ्रा द्धम् | ••• | ••• | १७७ | आहारशुद्धिः | ••• | | २०३ |
| तत्र विधिः | ••• | ••• | १७८,१८१ | भिक्षाप्रशंसा | | ••• | २०४ |
| आतुरसंन्यासव | हमः | ••• | १८२ | चातुर्मास्याविधि | ो ः | ••• | २०५ |
| संन्यासभेदाः | ••• | ••• | १८३ | प्राणायामविधि | | ••• | २०६ |
| चत्वारः | ••• | ••• | ,, | यतेर्निषिद्धानि | ••• | ••• | २०७ |
| कुटीचकः | ••• | ••• | " | आरूढपतितार्द | | ••• | २०८ |
| बहूद्कः | ••• | ••• | १८४ | संन्यासदीक्षाप | ल्म | ••• | " |
| ,, धर्माः | *** | ••• | " | मोक्षाचारफलम | ī | ••• | " |

एतत्पुस्तकसंशोधने यानि पुस्तकानि यैश्व सुमनस्कतया प्रेषितानि तेषां नामानि संज्ञाश्च यथा

क-भारतमंत्रिसंग्रहात् आंग्लदेशतः प्रेषितानि ग्रन्थलिप्यां लिखितानि---ख-मद्रपुरसंग्रहात्प्राप्तानि ग्रंथलिप्याम्.

क्ष- { सप्तपुरस्थ श्रीदृशविडमहाशयसंग्रहात् रावबहादुर भिकाजी व्यंकटेश द्रवीड { इत्येतै: प्राप्तम् ।

ग-मुद्रितानि--

परमुपकृतं नो यैरिमानि प्रेषितानि--

जगन्नाथ रघुनाथ घारपुरे

अथ स्मृतिमुक्ताफलम्

श्रीगणेशाय नमः । हरि ओम् ।

अंके विहारिणमनुक्षणमिद्रजायास्तं केवळं कळभमद्भुतमाश्रयामः॥
नित्यं ए एष बहुभिर्निजसेवकानां प्रत्यूहपुंजकवळेः परितोषमिति॥१॥
पारावती विधिमुखाविळसौघपंकेमीयविहीनजनमानसराजहंसी ॥
पोगीश्वरैरिपि विमृग्यनिजस्वरूपा वागीश्वरी दिशतु मे वचसां समृद्धिम्॥२॥
श्रीरामचंद्रचरणद्वयपद्मकोशान्मां यातु मे चपळमानसचंचरीकः॥
मुक्तेवंशीकरणचूर्णमहो यदीयं गात्रेषु बिश्रति रजोऽपि रजोविहीनाः॥३॥
भवकोदंढदळनं भववंघिमोचनं।द्शकण्ठिरपुं वंदे दशस्यंदननंदनम्॥४॥
शर्रणं तमुपैमि साधुसेव्यं सद्यं कञ्चन देवताविशेषम्।
अवणेषु निधीयतां किमन्यः स्मृतिमुक्तापर्छमेकमेव सद्भिः॥६॥
अवणेषु निधीयतां किमन्यः स्मृतिमुक्तापर्छनेवम् सद्भिः॥६॥
वैद्यनाथाध्वरी नाम दासो वाधूळवंशजः। स्मृतिमुक्तापर्छं नाम कुरुते सारसंग्रहम्॥७॥
क नु विशकळितं तु धर्मशास्त्रं क च पुनराकळने मम प्रवृत्तिः॥
भर्ष्णमित्रुषस्तथाऽपि संतः सत्तिमदं मम साहसं सहंताम्॥८॥

धर्मप्रमाणनिरूपणम् । तत्रादौ धर्मप्रमाणानि निरूप्यंते । तत्र मनुः (२१६)
"वेदोऽसिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तिद्दाम्। आचारश्चेव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च"॥ इति ।
जातावेकवचनं । धर्ममूलं धर्मस्य प्रमाणं । न केवलं विध्यात्मक एव वेदो धर्मप्रमाणं किं तुं
मंत्रार्थवादात्मकोऽपीत्युक्तमसिल इति । अथ यत्र प्रत्यक्षो वेदो नोपलभ्यते तत्र कथमित्यत २०
उक्तं 'स्मृतिशीले च तिद्दाम्' इति । तिद्द्दां वेदार्थविदां स्मृतिः धर्मशाश्चेतिहासपुराणानिः शिलं
च धर्ममूलं सिद्धः संभावनीयताहेतुरात्मगुणसंपच्छीलं । तदुक्तं महाभारते (शां. प. १२४।६८)
" तर्त्तर्कर्म तथा कुर्याचेन श्लाघ्येत संसदि । शीलं समासेनैतत्ते कथितं कुरुनंदन "॥ इति ।
अत्रोदाहरणं युधिष्ठिरस्य यक्षरूपधारिधर्मात् स्वसोदरानादरेण नकुलस्य जीवितवरणम् । तिद्ददामाचारश्चेव धर्ममूलम् । धर्माधिकारनिमित्तशौचाचमनादिलक्षणिकयाविशेष आचारः । साधूनां २५
परमधार्मिकाणामात्मनस्तुष्टिः मनसो रुचिः । सा च धर्ममूलं । प्रमाणांतरागोचरच्वेन धर्म प्रति
संशायितेष्वर्थेषु यो धर्मत्वेन मनसे रोचते स धर्म इत्यर्थः ।

यद्यप्रत्यक्षो वेदो धर्मस्य मूलभूतोऽस्मदादिभिनीपलभ्यते तथापि मन्वाद्य उपलब्ध-वंत इत्यनुमीयते । यथाहापस्तंबः "तेषामृत्सन्नाः पाठाः प्रयोगादनुमीयंते " इति । तथा च प्रत्यक्षो वेदस्तेषां धर्मप्रमाणम् । अन्येषां वेदाः स्मृत्यादिकं च प्रमाणमित्यर्थः । ३० याज्ञवल्कय्थ (आचारे श्लो. ७)

"श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः। सम्यक्संकल्पजः कामो धर्ममूलमिदं स्मृतम्"॥इति। सम्यक्संकल्पजः कामः शास्त्राविरुद्धं यथा स्वर्गकामेन मया ज्योतिष्टोमयागः कर्त्तव्य इत्यादिः। व्यासः

" धर्ममूलं वेदमाहुर्ग्रथराशिमकृत्रिम् । तिद्द्दां स्मृतिशीले च साध्वाचारं मनः प्रियम् " ॥ इति । ३५ हारीतः

⁹ क्स-सि । २ क्स-वा । ३ क्स-मदीयं। ४ कग-पाठः। ५ क, ग-बोद्धे । ६ तत्तु इतिभार-तीयपाठः । ७ क्स-कीर्ति

"वेदाः प्रमाणं स्मृतयः प्रमाणं धर्मार्थयुक्तं वचनं प्रमाणम् । यस्य प्रमाणं न भवेत् प्रमाणं कस्तस्य कुर्याद्वचनं प्रमाणम् "॥ इति । आपस्तंवः (११२-३) "धर्मज्ञसमयः प्रमाणं वेदाश्चेति"। गौतमः (१११) "वेदो धर्ममूळं। तिद्दां च स्मृतिशीळे" इति । तेन नित्यिनशेषवेदमूळकत्वाद्वपनयनादिरेव धर्मः । न ५ शाक्यादिकल्पितागममूळकचेत्यवंदनकेशोल्ळुंच्छनादिरिति ।

इति धर्मप्रमाणनिरूपणम् ।

अथ स्मृतेः प्रामाण्यम् । तत्र शंखः "वेद्मूलाः स्मृतयः " इति । मरीचिः

''इवोंधा वैदिकाः शब्दाः प्रकीर्णस्वाच्च येऽसिलाः। तत्रैत एव दृष्टार्थाः स्मृतितंत्रे प्रतिष्ठिताः''॥इति। मनुः (अ. २)—

१० " श्रुतिं पश्यंति मुनयः स्मरंति च तथा स्मृतिम् । तस्मात्ममाणमुभयं प्रमाणैः प्रामितं भुवि ॥ " "योऽवमन्येत ते मूळे हेतुशास्त्राश्रयाद्विजः । स साधुभिर्वहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिंदकः"॥११॥इति। हारोतः—

" न यस्य वेदा न च धर्मशास्त्रं न वृद्धवावयं हि भवेत्प्रमाणम् ॥

"सोऽधर्मऋहिष्टहतो दुरात्मा नात्माऽपि तस्येह भवेत्वमाणम् "॥ इति । देवछः— १५ "मन्वाद्यः प्रयोक्तारो धर्मशास्त्रस्य कीर्तिताः । तत्व्ययुक्तप्रयोक्तारो गृह्यकारास्तुँ मंत्रतः "॥इति । अंगिराः—

" प्रमाणानि प्रमाणज्ञेः परिपाल्यानि यत्नतः । सीद्ंति हि प्रमाणानि प्रमाणैरव्यवस्थितैः"॥ इति। इति स्मृतिषामाण्यम्

अथ धर्मानिह्नपणम्

" वाक्कर्मजन्योऽभ्युदयनिःश्रेयसहेतुरपूर्वाख्य आत्मगुणो धर्मः " इति **हरदत्तः** । अत्र मनुः (२।१)

" विद्क्षिः सेवितः सिद्धिर्नित्यमद्देषरागिभिः । हृदयेनाभ्यनुज्ञातो यस्तं धर्मं ब्येवस्यत" ॥ इति । विद्क्षिद्धिर्वद्रार्थविद्धिरदेषरागिभिः सिद्धिर्भमें नित्यं सेवितः धर्मत्वेन नित्यमनुष्ठितः न शोक-मोहादिना कादाचित्कनिमित्तेन । किंच हृदयेनाभ्यनुज्ञातः । इदमेव श्रेय इति स्वारस्ययुक्तेन २५ हृदयेन स्वीकृतः। एवंभूतो योऽर्थस्तं धर्मं व्यवस्यत हे महर्षयो निश्चिनुतेत्यर्थः । स एव (१।१०८) "आचारः परमो धर्मः शुत्युक्तः स्मार्त एव च । तस्माद्सिंमश्चये युक्ते नित्यं स्यादात्मवान्द्विजः"॥ इति । त्रये श्रोतस्मार्ताचोरिष्वत्यर्थः । याज्ञवल्क्यः (१।६)

"देशे काल उपायेन द्रव्यं श्रद्धासमन्तितं । पात्रे प्रदीयते यत्तत्सकलं धर्मलक्षणम् "॥ देशः कुरुक्षेत्रादि । काल उपरागादिः । उपायः शास्त्रोक्तिकर्त्तव्यताकलापः। द्रव्यं गवादि । ३० श्रद्धा आस्तिक्यवृद्धिः । तदन्त्रितं यथा भवति तथा पात्रे प्रदीयते यत्तद्धर्मस्योत्पाद्कम् । किमेतावदेव धर्मस्योत्पादकम् । नेत्याह स्तक्लिमिति । अन्यद्पि यागादि । तत्सकलं धर्मस्य कार्रकम् । विश्वामित्रः—

" यमार्याः कियमाणं हि शंसंत्यागमवेदिनः । स धर्माः; यं विगर्हति तमधर्मे प्रचक्षते " ॥ इति । व्यासः—

३५ "सत्यं दमस्तपः शोचं संतोषो ह्रीः क्षमाऽऽर्जवम्। ज्ञानं शमो द्या ध्यानमेष धर्मः सनातनः"॥ इति ।

१ ख-विकल्पित । २ क्ष-तूमे । ३ क्ष-दुष्ट । ४ क्ष-समंततः, क्षा-स्तु तन्त्रतः । ५ ' निबो-धन ' इति पाटः । ६ क-परतो, खाग-प्रथमो । ७ 'सद्युको' इति मुद्रितमानवे । ८ क्ष-चारात्तामि । ९ क्ष-एतद्व । १० ख-कारणं ।

बृहस्पतिः— दौनं यज्ञः सतां पूजा वेद्धारणमार्जवम् । एष धर्मः परो ज्ञेयः फलवान्प्रेत्य चेह च ॥ "भोगेष्वसक्तिः सततं तथैवात्मावलोकनम्। श्रेयः परं मनुष्याणां प्राह पंचिशिखो मुनिः"॥ इति । परं धर्ममाह **याज्ञवक्ल्यः (** १।८)-

"इज्याचारदमाहिंसादानस्वाध्यायकर्मणाम् । अयं तु परमो धर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम् " ॥ इति ५ योगेन चित्तवृत्तिनिरोधेन । आपस्तंबः (१।२०।६-७) "न धर्माधर्मों चरत आवं स्व इति । न देवगंधर्वा न पितर इत्याचक्षतेऽयं धर्मोऽयं धर्म इति । यत्त्वार्याः कीयमाणं प्रशंसंति स धर्मो यद्गर्हते सोऽधर्मः"इति। आविमिति छांदसं रूपम्। आवामित्यर्थः। यदि हि धर्माधर्मौ विग्रहवतावावां स्व इति बुवाणौ चरेताम् यदि वा देवादयः प्रकृष्टज्ञाना बूयुरिमौ धर्माधर्माविति तदोपलि धैः स्यातः तदभावाच्छिष्टा यं प्रशंसंति स धर्मः। यद्वर्हते सोऽधर्म इत्यर्थः। इति धर्मनिह्मपणम् ॥ १०

হিাপ্রস্তঞ্জणमाह बौधायनः (१।१।५) " शिष्टाः खलु विगतमत्सरा निरहंकाराः कंभीधानयाँ अलोलपाः । दंभदर्पलोभमोहकोधिववर्जिताः " इति । स एव--" धर्मशास्त्ररथारूढा वेदसद्भधरा द्विजाः । कीडार्थमपि यं ब्रुयुः स धर्मः परमः स्मृतः॥" इति । याज्ञवल्क्यः (१।९)---

"चत्वारो वेद्धर्मज्ञाः पर्षत् त्रैविद्यमेव वा । सा बूते यं स धर्मः स्यादेको वाऽध्यात्मवित्तमः"॥इति। ९५ तिस्रो विद्या अधीयत इति जैविद्यास्तेषां समूहः त्रैविद्यमित्यर्थः । पराज्ञरः (८।१५)---"चत्वारो वा त्रयो वाऽपि यं ब्रूयुर्वेदपारगाः । स धर्म इति विज्ञेयो नेतरैस्तु सहस्रशः" ॥ इति । आपस्तंबः (१।२०।८-९)—" सर्वजनपदेष्वेकांतसमाहितमार्याणां वृत्तं सम्यक् विनीतानां वृद्धानामात्मवतामलोलुपानामदांभिकानां वृत्तसादृश्यं भजेतैवमुभौ लोकावभिजयति "। इति । विनयशमादिगुणोपेतानामार्याणां सर्वजनपदेषु यदेकांतेनान्यभिचारेण समाहितमनुष्ठितं वृत्त-२० मनुष्ठानं, न मातुलसुतापरिणयनवत्कतिपयविषयं, तद्वत्तसादृश्यं भजेत; एवं कुर्वन्नुभौ लोकाव-भिजयतीत्यर्थः।

सर्ववर्णानां स्वस्वधर्मानुष्टाने फलनिह्नपणम् । स एव (२।१।२।२-३)--

"सर्ववर्णानां स्वधर्मानुष्ठाने परमपरिमितं सुसम् । ततः परिवृत्तौ कर्मफलशेषेण जाति रूपं वर्ण बलं मेथां प्रज्ञां द्वयाणि धर्मानुष्ठानमिति प्रतिपद्यते। तच्चकवदुभयोलींकयोः सुख एव वर्त्तते" ३५ इति । अस्यार्थः -- सर्वेषां वर्णानां वर्णाश्रमप्रयुक्तधर्मानुष्ठाने परमपरिमितमुत्कुष्टमक्षय्यं सुखं स्वर्गीख्यं भवतिः; न केवलमेताविकतिर्हिं, ततः परिवृत्तौ पुनर्जनमिन कर्मफलशेषेणाभुक्तां-शेनाभिजात्यादीनि प्रतिपद्यते; तस्माच्चक्रवदुभयोर्छोकयोरिह चामुर्धिमश्च सुस एव वर्त्तते न जातुचिददुः स इति । तैतिरीयकोपनिषदि श्रूयते "धर्म इति धर्मेण सर्वमिदं परिगृहीतं धर्मात्राति दुश्चरं तस्माद्धर्मे रमंते " इति । धर्म इति धर्मी नाम नित्यनैमित्तिकादि श्रौतं स्मार्त ३० च कर्मः तेन धर्मेण सर्वमाध्यात्मिकादिभेदभिन्नमिदं जगत्परिगृहीतं स्थितम् तस्माद्धर्मात्परं नास्ति वैदिकैर्मुमुक्षुभिः श्रेयोर्थिभिश्च धर्म एव कर्तव्यः, तस्माद्धर्मे रमंत इत्यर्थः तन्नेव पुनः श्रुयते—" धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा । होके धर्मिष्ठं प्रजा उपसपीति । धर्मेण पापमपनुद्ति। धर्मे सर्वे प्रतिष्ठितम्। तस्माद्धर्मे परमं वदंतीति "। अयमर्थः। धर्मः पूर्वोक्तः, विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा प्रतितिष्ठत्यनेनेति प्रतिष्ठाः, श्रौतस्मार्तकर्मभिः समस्तजगद्धियत ३५ इत्यर्थः । लोके धर्मिष्ठमतिशयेन धर्मानुष्ठातारं प्रजा धर्मावाप्त्यर्थमधर्मापाकरणार्थं वोपसपैति ।

१ समक्ष-ज्ञान । २ कग-लब्ध, । ३ क्ष-धाना । ४ नारायणोपानिषादे । ५ स-र्मोप- ।

धमेंण विहिताकरणप्रतिषिद्धसेवननिमित्तं पापमपनुद्गति । धमें सर्वे प्रतिष्ठितमितरथा बाधितं स्यात तस्माद्धमं परमं वदंतीति धमेविद इति । चंद्रिकायाम्

" वर्णत्वमेकमाश्रित्य यो धर्मः संप्रवर्त्तते । वर्णधर्मः स उक्तस्तु यथोपनयनं किल ॥

" तथैवाश्रममाश्रित्य अधिकारः प्रवर्त्तते । स एवाश्रमधर्मः स्याद्भिक्षादंडादिको यथा ॥

, " वर्णत्वमाश्रमत्वं च योऽधिकृत्य प्रवर्त्तते । स वर्णाश्रमधर्मस्तु यथा मौंजी तु मेखला"॥इति मनुः (४।२३८-२४३)—

''धर्म शनैः संचिनुयाद्दल्मीकमिव पुत्तिकाः । परलोकसहायार्थं सर्वभूतान्यपीडयन् ॥ ''नामुत्र हि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः । न पुत्रदारा न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलः॥

''एकः प्रजायते तंतुरेक एव प्रमीयते । एकोऽनुभुंके सुकृतमेक एव च डुष्कृतम् ॥

''मृतं शरीरमुत्सुज्य काष्टलोष्टसमं क्षितौ । विमुखा बांधवा यांति धर्मस्तमनुगच्छति ॥ ''तस्मान्द्वर्मं साहायार्थे नित्यं संचिनुयाच्छनैः। धर्मेण हि सहायेन तमस्तरति दुस्तरम् ॥

"धर्मप्रधानं पुरुषं तपसा वीतकल्मषम् । परलोकं नयत्याशु भास्वंतं स्वे शरीरिणम् ॥ "श्रुतिस्मृत्युदितं कुर्वन्निबद्धः स्वेषु कर्मसु । धर्ममूलं निषेवेत सदाचारमतंद्रितः"॥इति॥

धर्मस्य मूर्लं धर्ममूलम् । धर्मस्याचाराधीनत्वम् । **आचारप्रसंज्ञा** । स एव (१।११०)— १५ " एवमाचरतो दृष्ट्वा धर्मस्य मुनयो गतिम् । सर्वस्य तपसो मूलमाचारं जगृद्धः परम् " ॥

"आचाराद्विच्युतो विप्रो न वेदफलमञ्चते । आचारेण तु संयुक्तः संपूर्णफलभाग्भवेत् "॥ (४।१५६-१५८).

" आचाराञ्चभते ह्यायुराचारादीप्सिताः प्रजाः । आचाराद्धनमक्षय्यमाचारो हंत्यलक्षणम् ॥ " दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निंदितः । दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च ॥ २.३ " सर्वलक्षणहीनोऽपि यः सदाचारवान्नरः । श्रद्धानोऽनसूयश्च शतं वर्षाणि जीवति "॥ विसिष्ठः (६।३)—–

" आचारहीनं न पुनंति वेदा यद्यप्यधीताः सह षद्धिरंगैः॥

' छंदांस्येनं मृत्युकाले त्यजाति नीडं शकुंता इव जातपक्षाः ॥

" कपार्ठस्थं यया तोयं श्वहतौ च यथा पयः । दुष्टं स्यात्स्थानदोषेण वृत्तहीने तथा श्रुतम्॥
" ब्राह्मणस्य तु देहोऽयं नोपभोगाय कल्पते । इह क्केशाय महते प्रेत्यानंतंसुखाय च "॥
पराशरः (६।३)

" चतुर्णामपि वर्णानामाचारो धर्मपालकः । आचारश्रष्टदेहानां भवेद्धर्मः पराङ्मुखः " ॥ " शिष्टानामभिमतो द्यादाक्षिण्याद्यन्वितो वृत्तिविशेष आचारः" इति माधवीये । बृहस्पतिः—

" शौर्यवीर्यार्थरहितस्तपोज्ञानविवर्जितः । आचारहीनः पुत्रस्तु मूत्रोच्चारसमः स्मृतः " ॥ ३० शौर्यादिरहितः क्षत्रियपुत्रः अर्थरहितो वैश्यपुत्रः तपोज्ञानाचाररहितो ब्राह्मणपुत्र इति विवेकः ॥ भगवान्—

''वर्णानामाश्रमाणां च या मर्यादा मया कृता । तां ये समनुवर्तते प्रसादस्तेषु संभवेत् "॥ आश्वमिधिके—

''श्रुतिः स्मृतिर्ममेवाज्ञा यस्तामुल्लंच्य वर्तते । आज्ञाल्लेदी मम द्रोही मद्भक्तोऽपिन वैष्णवः''॥इति'' ३५ स्मृत्यंतरे—

" यथेक्षुहेतोः सिळलं निषेचितं तृणानि वहीरिप च प्रसिंचित ।

कत्वग-सूयते, । २ खकग-त्यच्युतो । ३ कजक्ष-समुदाचार-द्विजः । ४ क्ष-कूपावस्थे ।
 ५ कखग-नंद । ६ क-वेदा ।

एवं नरो धर्मपथेन वर्त्तयन्यश्रश्च कामांश्च वसूनि सोऽश्चते " ॥ नारदः—
"धिग्जन्माचाररहितं जन्म धिङ्मानवर्जितम् । शूद्रेऽपि दृश्यते वृत्तं ब्राह्मणे न तु दृश्यते ॥
'शूद्रोऽपि ब्राह्मणो श्रेयो ब्राह्मणः शूद्र एव सः । हिर्मिक्तिपैरो वाऽपि हिरिध्यानरतोऽपि वा ॥
"श्रष्टो यः स्वाश्रमाचारात्पतितः सोऽभिधीयते ॥

"वेदो वा हरिभक्तिर्वा भिक्तिर्वाऽपि महेश्वरे । स्वाँचारात्पितितं मूढं न पुनाति द्विजोत्तमम् ॥ "पुण्यक्षेत्राभिगमनं पुण्यतीर्थनिषेत्रणम् । यज्ञो वा विविधो ब्रह्मंस्त्यकाचारं न रक्षति ॥ "आचारात्प्राप्यते स्वर्ग आचारात्प्राप्यते मुखम् । आचारात्प्राप्यते मोक्ष आचारात्किं न सिध्यति"॥ महाभारते आनुशासनिके—

"आचाराह्रैभते चायुराचाराष्ठभते श्रियम् । आचाराष्ठभते कीर्तिं पुरुषः प्रेत्य चेह च ॥ "ये नास्तिका निष्कियाश्च गुरुशास्त्राँतिठंषिनः । अधर्मेज्ञा दुराचारास्ते भवंति गतायुषः"॥इति । १० पारिजाते—

" सदाचारेण देवत्वमृषित्वं च तथैव च । प्राप्नुवंति कुयोनित्वं मनुष्यास्तद्विपर्यये ''॥
सदाचारलक्षणम् विष्णुपुराणे (तृतीयांशे अ. ११ श्लो. २-३)----

" सदाचारवतां पुंसां जितौ लोकावुभावपि।

" साधवः क्षीणदोषास्तु सच्छब्दः साधुवाचकः । तेषामाचरणं यत्तु सदाचारः स उच्यते "॥ १५ संस्कारमंजर्याम्

"यस्मिन्देशे य आचारः पारंपर्यक्रमागतः । श्रुतिस्मृत्यविरोधेन सदाचारः स उच्यते" ॥ मनः—

" धर्मव्यतिक्रमो दृष्टो महतां साहसं तथा । तदन्वीक्ष्य प्रयुंजानः संसीद्दयवरोऽबलः ॥

"तेजोमयानि पूर्वेषां शरीराणींदियाणि च। दोषैस्ते नोपिलिप्यंते पद्मपत्रमिवांभसा "॥२० कतकभरद्दां जावन्योन्यं व्यत्यस्य भार्ये जग्मतुः । विसष्टश्चांडालीमक्षमालीं प्रजापितश्च स्वां द्वितरिमत्यादि धर्मव्यितिकमो दृष्टः । जामद्गन्येन रामेण पितृवचनादिवचारेण मातुः शिर-श्छिकमित्यादि साहसं दृष्टम्। तदन्वीक्ष्य प्रयुंजानः। तिदिति "नपुंसकमनपुंसकेनेकवच्चास्यान्यतर-स्याम्" (११२१६९) इत्येकशेष एकवद्भावश्च । तं व्यतिकमं तच्च साहसमन्वीक्ष्य दृष्ट्वा स्वयमपि तथा प्रयुंजानोऽवर इदानींतनः अबलः दुर्बलः संसीदिति प्रत्यवैति । तेषामिति किं दोषः । नेत्याह २५ तेजोमयानीति । तथथैषीकातूलमग्नौ प्रोतं प्रदूयत एवं ह्यस्य सर्वे पाप्मानः प्रदूयत इति श्चतः । अत्रापस्तंबः—(२।१३।७-९) " दृष्टो धर्मव्यतिकमः साहसं च पूर्वेषाम् । तेषां तेजोविशेषेण प्रत्यवायो न विवते तदन्वीक्ष्य प्रयुंजानः सीदत्यवरः " इति । गौतमः (१।२-४) "दृष्टो धर्मव्यतिकमः साहसं च महताम् । न तु दृष्टार्थे । अवरदौर्बल्यात् " इति । न तु दृष्टार्थे धर्मव्यतिकमः साहसं च महताम् । न तु दृष्टार्थे । वाधायनः—

" अनुष्ठितं तु यद्देवैर्भुनिभिर्यदनुष्ठितम् । नानुष्ठेयं मनुष्यैस्तदुक्तं कर्म समाचरेत् " ॥ याज्ञवल्क्यः (आ. १५६)—

" कर्मणा मनसा वाचा यत्नाद्धर्मे समाचरेत् । अस्वर्ग्ये लोकविद्धिष्टं धर्ममप्याचरेन्न तु " ॥ धर्मे विहितमपि लोकविद्धिष्टं यस्मादस्वर्ग्यमित्यर्थः ।

इति धर्मनिरूपणम् ॥ सदाचारनिरूपणम् ॥

अथ स्मृतिप्रशंसा । मनुः (१।१०३)--

- भ वर्मशास्त्रमवीयानो बाह्मणः संशितव्रतः । मनोवारदेहजैनित्यं कर्मदोषैर्न लिप्यते ॥
- · अर्ह: स्याद्भव्यक्वयानामहेश्च पृथिवीमिमा म्। ग्रहणा द्वर्मशास्त्रस्य ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ॥
- '' विदुषा बाह्मणेनेदमध्येतव्यं प्रयत्नतः। शिष्येभ्यश्च प्रवक्तव्यं सम्यङ् नान्येन केनचित्॥
- ५ ' इदं स्वस्त्ययनं श्रेष्टमिदं बुद्धिविवर्धनमः । इदं गरास्यं सततमिदं नैश्रेयसं परमः ॥
 - े भर्मशास्त्रमधीयानो ब्राह्मणः क्षत्रियोऽथ विर्।पुनाति हि पितृन्सर्वान्सप्तसप्तावरांस्तथा ॥
 - " अमार्गेण प्रवृत्तानां व्याकुलेंद्रियचेतसाम् । निर्माकं धर्मशास्त्रं व्याधीनामिव भेषजम् ॥
 - " श्रुतिस्मृती चश्चर्षा दे द्विजानां न्यायवर्त्मान्ति। प्रार्गमुज्झांति तन्द्वीना प्रयतंति पथश्च्युताः " ॥ हारीतः—
- १० ''यथा हि वेदाध्ययनं धर्मशास्त्रमिदं तथा। अध्येतव्यं ब्राह्मणेन नियतं स्वर्गमिच्छता"॥ शंखिलिखितौ—
 - '' रागदेषाग्निद्ग्धानामज्ञानविषपायिनाम् । चिकित्सा धर्मशास्त्राणि व्याधीनामिव भेषजम् "॥
 स्मृतिरत्नावल्याम्
 - " स्पृतिं विना न हि ज्ञानं धर्मस्य भवति कवित्। न जातु ज्ञायते रूपमालोकेन विना यथा" ॥
- १५ याज्ञवल्क्यः (आ. ३)---
 - "पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्रांगमिश्रिताः। वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दशः ॥ विद्यानां स्थानानि चतुर्दश धर्मस्य स्थानानि हेतवः। एतानि त्रैवणिकैरध्येतन्यानि तदंतर्गत-त्वाद्धर्मशास्त्रमध्येतन्यम्। शूदं प्रकृत्य यमः-"तस्माद्स्याधिकारोऽस्ति न वेदेषु न तु स्मृतौ" इति। मनुरिष (२।१६)—
- २० निषेकादिश्मशानांतो मंत्रैर्यस्योदितो विधिः। तस्यशास्त्रेऽधिकारोऽस्मिन् ज्ञेयो नान्यस्य कस्यचित्॥ मानवस्य धर्मशास्त्रस्य श्रेष्ठचं दर्शयत्यंगिराः--
 - " यत्पूर्व मनुना प्रोक्तं धर्मशास्त्रमनुत्तमम् । न हि तत्समितक्रम्य वचनं हितमात्मकम् ॥ " वेदादुपनिबद्धत्वात्प्राधान्यं तु मनोः स्पृतम् ।मन्वर्थविपरीता तु या स्पृतिः सा न शस्यते"॥ श्रुतिरिप —" यद्वे किंच मनुरवद्त्तद्भेषजम् " इति । व्यासहारीतौ—
- २५ " अवेक्षेत च शास्त्राणि मन्वादीनि दिजोत्तमः। वैदिकान्नियमान्वेदान् वेदांगानि च सर्वशः॥
 - ''धर्मशास्त्रं सदा पाठ्यं ब्राह्मणैः शुद्धमानसैः । वेरवत्पठितव्यं च श्रोतव्यं च दिवानिशम् ॥
 - '' स्मृतिहीनाय विप्राय श्रुतिहीने तथैव च । दानं भोजनमन्यच्च दत्तं कुछविनाञ्चनम् ॥
 - " तस्मात्सर्वप्रयत्नेन धर्मशास्त्रं पठेत् द्विजः ॥
- "श्रुतिस्मृती च विष्राणां चक्षुषी दे विनिर्मिते । काणस्तत्रैकया हीनो द्वाभ्यामंधः प्रकीर्तितः"॥ ३० विष्णुः (९८।६२)—
 - "पुराणं मानवो धर्मः सांगो वेदिचिकित्सितम् । आज्ञासिद्धानि चत्वारि न हंतव्यानि हेतुभिः"॥ वसिष्ठः—–
 - "अप्रामाण्यं च वेदानामार्षाणां चैर्वं कुरसनम् । अव्यवस्था च सर्वत्र एतन्नाशनमात्मनः"॥ व्यासः—
- 3 ५ " तेन स्मार्तमनुष्टानमंतरेण न वैदिकम् । प्रवर्त्तने द्विजातीनां कर्मशुद्धिमभीप्सताम् " ॥ प्रचेताः—

"अमीमांसा बहिःशास्त्रा ये चान्ये वेदवर्जिताः । यत्ते ब्र्युर्न तत्कुर्योद्देदाद्धमों विधीयते"॥इति। चतुर्विशतिमते—

"अर्हचार्वाकवाक्यानि बौद्धादिपिठतानि च । विप्रलंभकवाक्यानि तानि सर्वाणि वर्जयेत्" ॥ इति । इति स्मृतिप्रशंसा

अथ श्रुतिस्मृत्यादीनां बलाबलिनिह्मणम् । मनुः (२।१४)
"श्रुतिद्दैघं तु यत्र स्यात्तत्र धर्मावुभौ स्मृतौ । उभाविप हि तौ धर्मौ सम्यगुक्तौ मनीिषिभिः" ॥
अत्रोदाहरणमाह स एव (२।५)—

" उदितेऽनुदिते चैव समयाविष्टिते तथा । सर्वथा वर्त्तते यज्ञ इतीयं वैदिकी श्रुतिः" ॥ समयाविष्टिते उदितानुदित इत्यर्थः । अयं च यथाकल्पसूत्रं व्यवस्थितविकल्पः । तथा च सुमंतः—

" धँमीशास्त्रगतिर्भिन्ना सर्वकर्मसु भारत । उदितेऽनुदिते चैव होमभेदौ यथा भवेत् ॥ " तस्मिन्कुलकमायातमाचारं त्वाचरेद् बुधः । सै गरीयान्महाबाहो सर्वशास्त्रोदितादिपि"॥ इति । मनुः (४।१७८)—

"येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः। तेन यायात्सतां मार्गस्तेन गच्छन्न रिष्यिति"॥इति। स्मृत्यादिद्वैधेऽपि विकल्प एव द्रष्टव्यः। तथा च गौतमः (१।५)—" तुल्यवलविरोधे १५० विकल्पः " इति । तुल्यवलयोः श्रुत्योः स्मृत्योश्च विरोधे विकल्प इत्यर्थः। लौगाक्षिः "श्रुतिस्मृतिविरोधे तु श्रुतिरेव गरीयसी। अविरोधे सँदा कार्य स्मार्त्तं वैदिकवत्तदा "॥

विरोधाधिकरणन्यायोऽत्रानुमाहको द्रष्टव्यः । तथाहि— अध्वरे महावेद्यां सदोनामकस्य मंडपस्य मध्ये काचिदुदुंबरशासा स्तंबत्वेन निसाता भवति तामुह्हिय वस्रवेष्टनं स्मर्यते— "औदुंबरी सर्वा वेष्टियतव्या" इति । तत्र संशय एषा स्मृतिः प्रमाणं न वेति। तत्र "अष्टका कर्तव्या" २० इत्यादिस्मृतेर्मूळवेदानुमापकत्वेन यथा प्रामाण्यम् तथैव सर्ववेष्टनस्मृतिः प्रमाणमिति पूर्वपक्षः । "औदुंबरीं स्पृष्ट्वोद्वायेत्" इति प्रत्यक्षश्रुतौ स्पर्शो विधीयते । न चासौ सर्ववेष्टने सत्युपपद्यते । तथा च सर्ववेष्टनस्मृतिमूळभूतवेदानुमानस्य प्रत्यक्षश्रुतिविक्षद्धस्य कालात्ययापिद्ष्टत्वेन निर्मूला सर्ववेष्टनस्मृतिरप्रमाणमिति सिद्धांत इति । संग्रहे

''श्रुतिस्मृतिपुराणेषु विरुद्धेषु परस्परम्। पूर्वे पूर्वे बलीयः स्यादिति न्यायविदो विदुः ''॥ इति । २५ चतुर्विशतिमते—

"स्मृतेर्वेद्विरोधेन परित्यागो यथा भवेत् । तथैव लौिककं वाक्यं श्रुतिबाधात्परित्यजेत् "॥ इति। व्यासः---

"धर्म यो बाधते धर्मः स न धर्मः कदाचन । अविरोधी तु यो धर्मः स धर्मः सद्धिरुच्यते ॥
"तस्माद्विरोधे धर्मस्य निश्चित्य गुरुठाघवम् । तयोर्भूयस्तनं विद्वान्कुर्याद्धमीविनिर्णयः "॥ इति । ३०
एवं स्मृत्याचारयोर्विरोधे स्मृतिर्बठीयसी । "श्रुतिस्मृतिविहितो धर्मस्तद्ठाभे शिष्टाचारः प्रमाणम् " इति विस्वष्टस्मरणात् (१।४–५)। सदाचारद्वैविध्ये तु यस्मिन्देशे यस्मिन्काले यस्मिन्पुरुषे रागद्देषरहितस्य शिष्टत्वातिशयबुद्धिः तादृशस्याचारो मुख्यत्वेन माह्यः । एत-देवाभिप्रेत्य गुरोः शिष्ट्यानुशासने तैत्तिरीर्याः समामनंति—

१ कत्वग-बोद्धानि । २ कत्वग-यत्र । ३ स-सा । ४ थ-यदा । ५ खक्ष-स्वस्य । ६ शीक्षोपनिषदि ।

"अथ यदि ते कर्मविचिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सा वा स्यात् । ये तत्र ब्राह्मणाः संमर्शिनः। युक्ता आयुक्ताः । अल्भा धर्मकामाः स्युः। यथा ते तत्र वर्तेरन्। तथा तत्र वर्तेथाः" इति॥
संमर्शिनः युक्तिकुशलाः । युक्ताः शास्त्रतत्परा आयुक्ताः तद्र्थानुष्ठानिरताः । अल्भाः
कोषादिवर्जिताः। धर्मकामाः जीवन्मुक्तवत्कर्भण्यौदासीन्यमकुर्वाणाः उक्तरीत्या कस्यचिच्छिष्टा५ चारविशेषस्य मुख्यत्वे सत्यपरो गोणो भविष्यति न तु सर्वथैवानाचारः । एवं च सत्येकामेव
तैत्तिरीयशासामधीत्य बोधायनापस्तंबादिमः भेदेन परस्परविरुद्धमनुष्ठानमाचरतामुभयविधानां
पुरुषाणां स्वस्वपुरुषपारंपर्यक्रमागत एवाचारो मुख्यः । कदाचित्तद्संभवे मतांतरेणाप्यनुष्ठानमेव श्रेयो न तु सर्वथा तछोपो युक्तः । इति श्रुत्यादीनां वलाबलम् ।
अथ स्मृतिकर्तृनिरूपणम् । पराशरः (१।२०)—

- "कल्पे कल्पे क्षयोत्पत्त्या ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । श्रुतिस्प्वतिसमान्वारिनर्णेतारश्च सर्वदा " ॥ अयसिता उत्पत्तिः अयोत्पत्तिः । तयोपलिक्षिता भवंति कल्पे कल्पे महाकल्पे अवांतरकल्पे च । ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा महाकल्पावसाने श्लीयंते महाकल्पादावुत्पयंते । एवमवांतरकल्पानामवसाने प्रारंभे च स्मृत्याद्गिनां निर्णेतारो मन्वाद्यः अयोत्पत्तिभ्यामुपलक्ष्यंते । चकारेणानुक्तो धर्मः समुच्चीयते । सर्वदेत्यनेन मृष्टिसंहारप्रवाहस्यानादित्वमनंतत्वं च दर्शितम् । स एव (१।२१)
- ५५ "न कश्चिद्देदकर्ता च वेदं श्रुत्वा चतुर्मुखः। तथैव धर्मान् स्मरित मनुः कल्पांतरे तथा"॥ कल्पांतरे धर्मान् स्मरित इति पद्त्रयं पूर्वार्घेऽपि संबध्यते। महाकल्पे चतुर्मुखः परमेश्वरेण दत्तं वेदं श्रुत्त्वा तत्र विप्रकीर्णान्वर्णाश्रमादिधर्मान्स्मृतिग्रंथरूपेण उपनिबन्नाति तथैव स्वायंभुवो मनुः प्रत्यवांतरकल्पं वेदोक्तवर्मान्ग्रशाति । मनुग्रहणेनात्रिविष्णवाद्य उपलक्ष्यंते । मन्वादीनाह याज्ञवल्क्यः (आ. ४-५)—
- २० " मन्वित्रविष्णुहारीतयाज्ञवल्क्योशनोंऽगिराः । यमापस्तंबसंवर्ताः कात्यायनबृहस्पती ॥ " पराशरव्यासशंखिरिखिता दक्षगौतमौ । शातातपो वसिष्ठश्च धर्मशास्त्रप्रयोजकाः " ॥ उशनःशब्दांतस्य दृंदेकवद्भावः । स्मृतिरत्ने—
 - " मनुर्वृहस्पतिर्दक्षो गातमोऽथ यमोऽगिराः । योगीश्वरः प्रचेताश्च शातातपपराशरौ ॥
 - " संवर्चोद्दानसो दांखिलिखितावित्ररेव च । विष्णवापस्तंबहारीता धर्मशास्त्रप्रवर्तकाः ॥
- २५ ' एते ह्यष्टादश प्रोक्ता मुनयो नियतवताः "॥ अंगिराः—
 - " जाबालिर्नाचिकतश्च स्कंदो लोकाक्षिकाश्यपौ । व्यासः सनत्कुमारश्च शंतनुर्जनकस्तथा ॥ " व्याघः कात्यायनश्चेव जातुकर्णिः कपिंजलः । बोधायनश्च काणादो विश्वामित्रस्तथैव च ॥ "पंजीनसिर्गोभिलश्चेत्युपस्मृतिविधायकाः"॥ शंखः—"मनुयमदक्षविष्णवंगिरोवृहस्पत्युशनापस्तंब-गौतमसंवर्तावेयहारीतकात्यायनशंखलिखितपराशरव्यासशातातपप्रचेतोयाज्ञवल्क्याद्यः" इति ।
- " वसिष्टो नारदश्चेव सुमंतुश्च पितामहः । बश्चः कार्ष्णाजिनिः सत्यवतो गार्ग्यश्च देवलः॥
 - '' जमदग्निर्भरद्वाजः पुलस्त्यः पुलहः कृतः । आत्रेयश्छागलेयश्च मरीचिर्मत्स्य एव च॥ '' पारस्करो ऋष्यशृंगो वैजावापस्तथैव च । इत्येते स्मृतिकर्त्तार एकविंशतिरीरिताः''॥ खंथाहे—
 - भारत्करा कञ्चशृगा वजावापस्तथव च । इत्यत स्मृतिकत्तार एकविंशतिरीरिताः"॥ खंब्रहे-"अष्टाशीतिसहस्राणि मुनयो गृहमेधिनः । पुनरावर्तिनो बीजभूता धर्मप्रवर्त्तकाः॥
- ३५ " एतैर्यानि प्रणीतानि धर्मशास्त्राणि वै पुरा । तान्येतानि प्रमाणिन न हैन्तन्यानि हेतुभिः॥

१ कखगक्ष-लक्षण । २ कखग-सद्ग्चार । ३ कखग-थ्रत्या । ४ कखग-विहन्यानि ।

"यस्तानि हेतुभिर्हन्यात्सोंऽघे तमसि मज्जित"। अग्निवेश्यः "बोधायनमापस्तंबं सत्या-षाढं द्राह्यायणमागस्त्यं शाकल्यमाश्वलायनं शांभवीयं कात्यायनामिति नवानि पूर्वसूत्राणि। वैसानसं शौनकीयं भारद्वाजमाग्निवेश्यं जैमिनीयं माधुर्यं माध्यंदिनं कौंडिन्यं कौषीतकमिति नवान्यपरसूत्राण्यष्टादशसंख्याकाः शारीराः संस्काराः " इति । इति स्मृतिकर्तृनिक्रपणम् ॥

अथ धर्मदेशाः । याज्ञवल्क्यः (१।२) "यस्मिन्देशे मृगः कृष्णः तस्मिन्धर्मान्नि- ५ बोधत "। कृष्णसारो मृगो यस्मिन्देशे स्वच्छंदं विहरित तस्मिन्देशे धर्मा अनुष्ठेया इत्यर्थः । तथा संवर्तः—

" स्वभावाद्यत्र विचरेत्कृष्णसारः सदा मृगः। धर्भदेशः स विज्ञेयो द्विजानां कर्मसाधनम् "॥ स्मृतिचंद्रिकायां

" क्वष्णसारैर्यवैर्देभैश्चातुर्वर्ण्याश्रमैस्तथा । समृद्धो धर्मदेशः स्यादाश्रयेरन्विपश्चितः " ॥ ५० मनुः (२।१७–१८)—

" सरस्वतीदृषद्दत्योर्देवनद्योर्यदंतरम् । तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते ॥

" यस्मिन्देशे य आचारः पारंपर्यक्रमागतः।वर्णानां सांतराहानां स सदाचार उच्यते "॥ सांतराहानां वर्णसंकरजसहितानां। स सदाचारः तस्य धर्मे प्रति प्रामाण्यमित्यर्थः। स एव (२।१९–२२)––

" कु ६क्षेत्रं च मत्स्याश्च पांचालाः शूरसेनयः । एव ब्रह्मर्षिद्शो वै ब्रह्मावर्ताद्नंतरः "॥ अनंतरः किंचिन्न्यूनः ।

"एतद्देशप्रसूतस्य सकाशाद्यजनमनः । स्वं स्वं चिरत्रं शिक्षंते पृथिव्यां सर्वमानवाः "॥ अग्रजनमनः ब्राह्मणस्य । शिक्षंतेऽवगच्छंति ।

" हिमवद्विंध्ययोर्भध्यं यत्प्राग्विनशनाद्षि । प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्तितः"॥ २० विनशनं सरस्वत्या अंतर्धानदेशः ।

" आ समुद्रात्तु वै पूर्वादा समुद्रात्तु पश्चिमात् । तयोरेवांतरं गिर्योरार्यावर्त्तं विदुर्बुधाः ॥

" क्रुष्णसारस्तु चरति मृगो यत्र स्वभावतः। स ज्ञेयो याज्ञिको देशो म्लेच्छदेशस्त्वतः परम्"॥ अतःपरं एभ्यो ब्रह्मावर्तादिभ्योऽन्यः । म्लेच्छा यज्ञानधिकृताः ।

" एतान्द्विजातयो देशान्संश्रयेरन्त्रयत्नतः । शूद्रस्तु यस्मिन्कस्मिश्चिन्निवसेद्वृत्तिकर्शितः "॥ २५ हारीतः (१।१६)—

" हुष्णसारो मृगो यत्र स्वभावेन प्रवर्त्तते । तस्मिन्देशे वसन्धर्मैः सिष्यंति द्विजपुंगवाः " ॥ व्यासः

"ब्रह्मावर्त्तः परो देशो ऋषिदेशस्त्वनंतरः । मध्यदेशस्ततो न्यून आर्यावर्तस्त्वनंतरः ॥ "चातुर्वर्ण्यव्यवस्थानं यस्मिन्देशे न विद्यते । तं म्लेच्छदेशं जानीयादार्यावर्त्तमतः परम्"॥ ३० न म्लेच्छदेशे श्राद्धं कुर्यान्न गच्छेन्म्लेच्छविषयभिति ॥ आदिपुराणे—

" अधर्मदेशमध्ये तु कृत्वा कतुशतान्यपि । न गच्छति द्विजश्रेष्ठ स्वर्गमार्गे महानपि" ॥ स्वंदिकारां—

"आर्यावर्त्तमतिक्रम्य विना तीर्थिकियां द्विजः । आज्ञां चैव तथा पित्रोरैंद्वेन विशुध्यित "॥ आपस्तंबः (१।१५।२२) " प्रभूतैधोदकग्रामे यत्रात्माधीनं प्रयमणं तत्र वासो धर्म्यो ३५ ब्राह्मणस्य "। प्रभूतानि एधांसि उदकं च यस्मिन् तिस्मन्ग्रामे ब्राह्मणस्य वासो धर्म्यः । तत्रापि

१ क-स्मृति २-[स्मृ. मृ. फ.]

न सर्वत्र । किं तिर्हे यत्रात्माधीनं प्रयमणं प्रायत्यं मूत्रपुरीषप्रक्षालनादीनि यत्रात्माधीनानि तत्र । यत्र तु कृषेष्त्रैत्रोदकं तत्र बहुकृषेष्वपि न वस्तव्यम् । यदाह **बोधायनः**

"उद्पानोद्के ग्रामे धार्मिको वृषलीपतिः। उषित्वा द्वाद्शसमाः शूद्रसाधर्म्यमुच्छति"॥ यथा वृषलीपतिः शूद्रसाधर्म्यमुच्छति तथा धार्मिकोऽपि एवंविधे ग्रामे वसन्शूद्रसाधर्म्य ५ प्राप्नोतीत्यर्थः। संग्रहे—

"कूपस्नानं तु यो विष्रः कुर्याद्वादशवार्षिकम् । स तेनैव शरीरेण शूद्रत्वं यात्यसंशयः" ॥ इति । मैनुः (४।६०-६१)

"नाधार्मिके वसेद्वामे न व्याधिबहुले भृशम् । नैव प्रपचेताध्वानं न चिरं पर्वते वसेत् ॥

" न शूद्रराज्ये निवसेन्नाधार्मिकजनावृत्ते । न पाषंडजनाँकीर्णे नोपसृष्टेंऽत्यजैर्नरैः " ॥

उपसृष्टे गृहीते उपदृते वा । व्यासः—

"पापदेशाश्च ये केचित् पापैरध्युषिता जनैः । गत्वा देशानपुण्यांस्तु क्वत्स्नं पापं समश्चते "॥ चंद्रिकायां—

" सौराष्ट्रं सिंधुसौनीरमावंत्यं दक्षिणापथम् । गत्वैतान्कामतो देशान्किलंगांश्च पतेद्विजः ॥

" अंगवंगकलिंगांधान्पार्वतीयान् सर्षांस्तथा । सिंधुसौवीरसौराष्ट्रान्पारदानांध्रमालवान् ॥

"निवासाय द्विजो नित्यमनापदि विवर्जयेत् । एतानप्यापदि गृही संश्रयेद्वृत्तिकर्शितः"॥ वोधायनः (१।१।२९–३१)

" आवंतयों ऽंगा मगधा सौराष्ट्रा दक्षिणापथाः । उपावृत्तिंसधुसौवीरा एते संकीर्णयोनयः॥

" सिंधुसौवीरसौराष्ट्रांस्तथा प्रत्यंतवासिनः । अंगवंगकिलंगांश्च गत्वा संस्कारमहिति ॥"

प्रत्यन्तवासिनः चंडालप्रदेशाः " आरट्टान्कारस्करान्पुण्ड्रान् सौवीरान् वंगकलिंगान् प्राग्यूनानि २• च गत्वा पुनस्तोमेन यजेत् सर्वपृष्टचा वा (२०)"। अथाप्युदाहरंति (३१)

"पद्भ्यां स कुरुते पापं यः कलिंगान् प्रपद्यते। ऋषयो निष्कृतिं तस्य प्राहुर्वैश्वानरं हविः"॥ इति । इति धर्मदेशनिरूपणम् । अथ निषिद्धदेशापवादाः । दयासः——

" ते देशास्ते जनपदास्ते शैठास्ते तथाश्रमाः । पुण्यत्रिपथगा येषां मध्ये याति सरिद्दरा ॥

"प्रभासे पुष्करे काइयां निमेषेऽमरकंटके । गंगायां सरयूतीरे निवसेद्धार्मिको जनः ॥

२५ " अंतर्वेदिमेध्यदेशो ब्रह्मावर्त्त च याज्ञियम् । मिश्रकं सरयूतीरं पुष्करं नैमिषं तथा ॥

" देशानेतात्रिवासाय संश्रयेरन् द्विजातयः " ॥ धर्मशास्त्रसारे —

" चांद्रायणानि क्रुच्छाणि महासांतपनानि च । प्रायश्चित्तानि दीयंते यत्र गंगा न विद्यते ॥ " कावेरी तुंगभद्रा च क्रुष्णां वेणी च गांतमी । भागीरथी च विख्याताः पंचगंगाः प्रकीर्तिताः"॥ पितामहः—

" शृद्रराज्येऽपि निवसेयि मध्ये तु जान्हवी । सोऽपि पुण्यतमो देशो नार्येरपि समाश्रितः "॥ गौतमः (९१६५) "प्रभूतेयोद्दक्यवसकुशमाल्योपनिष्कः णमार्यजनभूयिष्ठमनलससमृद्धं धार्मिका- धिष्ठितं निकेतमावसितुं यतेत"। एथाः काष्टादीनि । 'इध्ममेधः समित् 'इत्यमरकोशे (२।४।१३)। साहचर्यनियमेन नपुंसकिलंगत्वमेयोचितमेथःशब्दस्य । तथाहि पांडच्यकुलोद्ये " स्थापिते सदिस जातवेदिस प्राप्तियेषसमभीरतेजिसि " इति । अत्र तु आर्षोऽयमेधःशब्द अकारांतः । एधाः भ काष्टादीनि । पाकायर्थमुद्दकं स्नानपानयोग्यम् । यवस । स्तृणानि गवावर्थम् । अत्रापि समाधानं तु पूर्ववत्।कुशा दर्भा इष्ट्यायर्थम्। माल्यानि पुष्पाणि देवतार्च नार्थम्। उपनिष्कमणं बाह्यसंचारार्थमव-

१ कख-पाटः । २ इदंतु क-गो न पठतः । ३ ख-गणा । ४ ख-सो प-पद्मि । ५ क-प्रानू-नानि । ६ खगक्ष-णा ।

काशः । एधादीनि प्रभूतानि यत्र । आर्यास्त्रैवणिंकाः, तैर्जनैर्भूयिष्ठं व्याप्तम् । अलसाः कृत्येषु निरुद्यमाः । तद्विपरीता अनलसास्तैः समृद्धम् । धार्मिकैरधिष्ठातृभिरधिष्ठतमेवंभूतं निकेतनं स्थान-मावसितुं यतेत । एवंभूते स्थाने यत्नैरपि निवसेदित्यर्थः । इति निषिद्धदेशापवादाः । अथ युगधर्माः । मनुः (१।६७,६९)

"देवे राज्यहनी वर्ष प्रविभागस्तयोः पुनः । अहस्तत्रोदगयनं रात्रिः स्याद्दक्षिणायनम् ॥ "चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तत्कृतं युगस् । तस्य तावच्छती संध्या संध्यांशश्च तथाविधः" ॥ वर्षाणां देववर्षाणाम् । संध्या युगारंभकालः । संध्यांशः युगावसानकालः । "इतरेषु ससंध्येषु ससंध्यांशेषु च त्रिषु । एकापायेन वर्त्तते सहस्राणि शतानि च" (१।७०)॥

इतरेषु त्रेताद्वापारकलियुगेषु । एकापायेन एकलोपेन । पराशरः—

" क्वतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चेति चतुर्युगम् । दिव्यैर्वर्षसहस्रौस्तु तद्वादशमिरुच्यते " ॥ १० मनुः (१।८२)—

"अरोगाः सर्विसिद्धार्थाश्चतुर्वर्षशतायुषः । कृते त्रेतादिषु त्वेषां वैयो न्हसित पादशः" ॥ यत्पुनः इतिहासपुराणेषु बहुवर्षसहस्रजीवित्त्वमुक्तं तत्तेषां श्रद्धातपसा साधितमिति वेदितव्यम् । तथा च महाभारते कृतयुगपुरुषानिधकृत्योच्यते

"यावद्यावदभूच्छ्रद्धा देहं धारियतुं नृणाम् । तावत्तावद्जीवंस्ते नासीद्यमक्कतं भयम्॥" इति । १५ स एव (१।८४–८६)—

"वेदोक्तमायुर्मत्यीनामाशिषश्चेव कर्मणाम् । भवंत्यनुयुगं लोके प्रभावाश्च श्रीरिणाम् " (८४) ॥ आयुश्चतुर्वर्षशतादि । आशिषः फलानि । प्रभावः शापानुग्रहादिशाक्तः । अनुयुगं युगानुरूप्येण पूर्णानि । हीनानि हीनतराणि हीनतमानीत्यर्थः ।

" अन्ये कृतयुगे धर्मास्रेतायां द्वापरे परे । अन्ये कितयुगे नृणां युगन्हासानुह्नपतः (८५) ॥ 🌯

"तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते । द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेव कलौ युगे " (८६) ॥ परं प्रधानमित्यर्थः । युगस्वभावकृतेतरधर्मानादर एवकाराभ्यां सूचितः । पराज्ञारः (१।२३)— "कृते तु मानवा धर्मास्रेतायां गौतमाः स्मृताः । द्वापरे शंखलिखितौ कलौ पाराज्ञाराः स्मृताः"॥

"अभिगम्य कृते दानं त्रेतास्वाहूय दीयते । द्वापरे याचमानाय सेवया दीयते कछौं "॥ युगस्वभावेनैवमेव दीयत इत्यर्थः । स एवाह (१।२९,२५)—

" अभिगम्योत्तमं दानमाहूयैव तु मध्यमम् । अधमं याचमानाय सेवादानं तु निष्फलम् ॥

"त्यजेहेशं कृतयुगे त्रेतायां ग्राममुत्सुजेत् । द्वापरे कुलमेकं तु कर्तारं तु कलौ युगै"॥ पतितो यस्मिन्देशे निवसेत्तं देशं वर्जयेत् । कुलत्यागो नाम पतितस्य कुले विवाहभोजनाय-प्रवृत्तिः । कर्मत्यागः संभाषणादिवर्जनम् ।

" कृते संभाषणादेव त्रेतायां स्पर्शनेन च। द्वापरे त्वन्नमादाय कलौ पतित कर्मणा (२६)॥ ३० " कृते तत्क्षणैतः शापस्रेतायां दशभिर्दिनैः। द्वापरे त्वेकमासेन कलौ संवत्सरेण तु (२७)॥ "कृते त्वस्थिगताः प्राणास्रेतायां मांसमाश्रिताः। द्वापरे रुधिरं चैव कलौ त्वन्नादिषु स्थिताः" (३२)॥

इति युगधर्मनिरूपणम्,

कलिसामर्थ्य प्रपश्चयति स एव (अ. १ श्लो. ३०-३१)

" जिंतो धर्मो हाधर्मेण सत्यं चैवान्तेन च । जिताश्चौरैस्तु राजानः स्त्रीभिश्च पुरुषाः कलौ ॥ 🗦 ५ 🔧

१ **क**-आयुः। २ **क्ष**-कर्तृ। ३ क्ष-क्षणिकः। ४ क्ष-कृतो।

```
" सीदंति चाग्रिहोत्राणि गुरुपूजा प्रणञ्यति । कुमार्यश्च प्रसूयंते तस्मिन्कलियुगे सदा " ॥
     अधर्मस्य जयो नाम पादत्रयोपेतत्वम् । एकेन पादेन वर्त्तमानत्वे धर्मस्य पराजयः ॥
     तथा माधवीये पराहारे ( ए. ८२. पं १-५ )
     " इते चतुष्पात्सकलो व्यांजोपाधिविवर्जितः । वृषः प्रतिष्ठितो धर्मो मनुष्येष्वभवत्पुरा ॥
  ५ " धर्मः पाद्विहीनस्तु त्रिभिरंशैः प्रतिष्ठितः । त्रेतायां द्वापरेऽर्धेन व्यामिश्रो धर्म इष्यते ॥
     "त्रिपादहीनस्तिष्ये तु सत्तामात्रेण तिष्ठति"। विष्णुपुराणे मैत्रेयं प्रति पराशरः (६।१)—
     " सर्वे ब्रह्म विद्रष्यंति संप्राप्ते तु कलौ युगे । नानुतिष्ठंति मैत्रेय शिश्वोद्रपरायणाः ॥
     " यदा यदा सतां हानिर्वेदमार्गानुसारिणाम् । तदा तदा कलेर्वृद्धिरनुमेया विचक्षणैः ॥
     " मुखं दग्धं परान्नेन हस्तौ दग्धाँ प्रतिग्रहात् । मनो दग्धं परस्त्रीभिर्बेह्मशापः कुँतः कलौ ॥
 " वर्णाश्रमाचारवती प्रवृत्तिर्न कलौ नृणां । नै सामयज्ञक्रम्धर्मविनिष्पादनहेतुकी ॥
     " विवाहा न कलौ धर्म्या न शिष्यगुरुसंस्थितिः। न दांपत्यक्रमो नैव वन्हिदेवार्चनक्रमः॥
     " सर्वमेव कलौ शास्त्रं यस्य यद्रोचते द्विज । देवताश्च कलौ सर्वाः सर्वः सर्वस्य चाश्रमः ॥
     " धर्मो यथाभिरुचितैरनुष्टानैरनुष्टितः । वित्तेन भविता पूंसां स्वल्पेनाढच्यमदः कलौ ॥
     " परित्यजंति भर्तारं वित्तहीनं तथा स्त्रियः । भर्ता भविष्यति कलौ वित्तवानेव योषिताम् ॥
 👣 ''अर्थाश्चात्मोपभोगार्था भविष्यंति कलौ युगे । स्त्रियः कलौ भविष्यंति स्वैरिण्यो ललितस्पृहाः ॥
     " अस्नानभोजिनो नाग्निदेवतातिथिपूजकाः । करिष्यंति कलौ प्राप्ते न च पिंडोद्कक्रियाः ॥
     " दुर्मिक्षभयपीडाभिरतीवोपद्वता जनाः। गोधूमान्नयवान्नाट्यं देशं यास्यंति दुःखिताः ॥
     " वेदमार्गे प्रलीने तु पाषंडाङ्ये ततो जने । अधर्मवृत्त्या लोकानामल्पमायुर्भविष्यति ॥
     " स्वश्रूरवशुरभूयिष्ठा गुरवश्च चृणां कलौ । स्यालाद्याहार्यभार्याश्च सुहदो मुनिसत्तम ॥
२० "कस्य माता पिता कस्य सदा कर्भात्मकः पुमान । इति चोदाहरिष्यंति इवशुरादिगता नराः ॥
     " निःस्वाध्यायवषट्कारे स्वधास्वाहाविवर्जिते । तदा प्रविरलो धर्मः कचिल्लोकेऽपि वत्स्यति ॥
     "तत्राल्पेनेव यत्नेन पुण्यस्कंधमनुत्तमम् । करोति तं कृतयुगे क्रियते तपसा हि यः "॥ इति ।
     कूर्मपुराणे ( पूर्वार्ध अ. ३० )
     "राजानः शूद्रभूयिष्टा बाह्मणान्घातयंति च । भ्रृणहत्यावीरहत्या प्रजायेते प्रजासु वै ॥ ७ ॥
२५ ''विनिंदंति महादेवं ब्रह्माणं पुरुषोत्तमम् । आम्नायं धर्मशास्त्राणि पुराणानि कलौ युगे ॥ ९ ॥
    " शुक्रदंता धृताक्षांश्च मुंडाः काषायवासमः । ज्ञूदा धर्म चरिष्यंति युगांते समुपस्थिते ॥१३॥
    ''ताड्यंति द्विजेंद्रांश्च शूदा राजोपसेविनः । सेवावसरमालोक्य द्वारि तिष्टंति वै द्विजाः॥१७,२०॥
    ''वाहनस्थान समावृत्य शूद्रान शूद्रापसविनः। सेवंते बाह्मणास्तत्र स्तुवंति स्तुतिाभिः कलौ॥२१॥
    "अध्यापयंति वे वेदान् शूद्राणां शुद्रसवकाः।पठंति वैदिकान् शब्दान् नास्तिका घोरमाश्रिताः॥२२॥
"तपोयज्ञफलानां च विकेतारो द्विजोत्तमाः। यतयश्च भविष्यंति शतशोऽथ सहस्रशः॥ २३॥
    " नाशयंति ह्यधीतानि नाधिगच्छंति चानघ । गायंति ठौकिकैर्गानेर्दैवतानि नराधिप ॥ २४॥
    "वामाः पार्गुपताचारास्तथा वै पांचरात्रिकाः।भविष्यंति कलौ तस्मिन्ब्राह्मणाः क्षत्रियास्तथा॥२५॥
    "कुर्वति चावताराणि ब्राह्मणानां कुलेषु वे । द्धीचिशापनिर्दग्धाः पुरा दक्षाध्वरे द्विजाः ॥२७॥
```

" निंदंति च महादेवं तमसाविष्टचेतसः। ये चान्ये शापनिर्दग्धा गौतमस्य महात्मनः॥ २८॥ ३५ " सर्वे तेऽवतरिष्यंति ब्राह्मणाद्यासु योनिषु । विनिंदंति हृषीकेशं ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनः "॥३०॥

१ क-निर्व्याजीपाधिवर्जितः । २ क-रुतः । ३ क्ष-ससाम । ४ क्ष-जिता ।

२५

युगसामर्थ्यवर्णनस्य प्रयोजनमाह पाराहारः (१।३३)

"युगे युगे च ये धर्मास्तत्र तत्र च ये द्विजाः । तेषां निंदा न कर्तव्या युगरूपा हि ते द्विजाः"॥ युगरूपा युगानुरूपाः कालपरतंत्रा इति यावत् । अत्र माधवीये-नन्वेवं कलौ पापिनां अनिर्धेत्वा-त्कृत्स्नं धर्माधर्मव्यवस्थापकं शास्त्रं विष्नुवेत । अतः कथमनिदेति । तत्रोच्यते-नानामुनिभि-स्तत्तसुगसामर्थ्यस्य उचितप्रायश्चित्तस्य प्रपंचितत्वात्तदुभयं पर्यालोच्य निंदानिंद्योर्व्यवस्था ५ कल्पनीया । यः पुरुषो युगे सामर्थ्यमनुसृत्य विहितानुष्ठानं प्रतिषिद्धवर्जनं प्रमादतः कृत-पापस्य प्रायश्चित्तं यः कर्तुं शक्तोऽपि न कुर्योत्तद्विषयाणि ' भ्रुणहत्या पितृस्तस्य सा कन्या वृषली स्पृता' इत्यादीनि निंदावचनानि। अशक्तविषयं तेषां निंदा न कर्त्तव्येतिवचनम्। तस्मान्न कोऽपि धर्मशास्त्रस्य विप्नव इति । तदाह पराशरः (१।३४)--

" युगे युगे तु सामर्थ्य शेषं मुनिविभाषितं । पराशरेण चाप्युक्तं प्रायश्चित्तं विधीयते"॥ इति । १० रोषं विशिष्टम् । तत्तव्युगसामर्थ्यं मन्वादिमुनिभिविंरोषेण भाषितं परारारेणाप्युक्तं प्रायश्चित्तं च तैर्विधीयते । अतः शक्ताशक्तविषये निंदानिंदे इत्यर्थः । ट्यासः---

" यत्कृते दशभिर्वर्षेस्रेतायां हायनेन तत् । द्वापारे तच्च मासेन ह्यहोरात्रेण तत्कलौ ॥ " ध्यायन्कृते यजन्यज्ञैश्वेतायां द्वापरेऽर्चयन् । यदाप्रोति तदाप्रोति कलौ संकीर्त्य केशवम् ॥ " अनेकदोषयुक्तस्य कलेरेष महान्गुणः । विशेषाद्वाह्मणो रुद्रमीशानं शरणं वजेत् "॥ शिवसर्वस्वे

" यावन्न कीर्त्तयेद्रामं कलिकल्मषसंभवम्। तावतिष्ठति देहेऽस्मिन्भयं चात्र प्रवर्तते"॥ च्यवनस्मृतौ-

" श्रुतिस्मृतिपुराणेषु रामनाम समीरितम् । तन्नामकीर्तनं भूयस्तापत्रयविनाशनम् " ॥ बृहस्पतिः " कृते यदद्वधर्मः स्यान्नेतायां तु ऋतुत्रयात् । द्वापरे तु त्रिपक्षेण कठावन्हा च तद्भवेत् ॥ "न च वृत्तं न शुद्धार्थो न शुद्धिर्मनसः कलौ। यतोऽतः सत्यमेवैकं नराणामुपकारकम् "॥ अथ कल्लियुगनिषद्धिधर्माः। पराज्ञरः--

" ऊढाया: पुनरुद्वाहो ज्येष्ठांशं गोवधं तथा । कठौ पंच न कुर्वीत भ्रातृजायां कमंडलुम् " ॥ स्मृत्यर्थसारे-

" देवरेण सुतोत्पत्तिर्वानप्रस्थाश्रमग्रहः । दत्ताक्षतायाः कन्यायाः पुनर्दानं परस्य च ॥

" समुद्रयात्रास्वीकारः कमंडलुविधारणम् । महाप्रस्थानगमनं गोपशुश्च सुराग्रहः ॥

" अग्निहोत्रहवण्याश्च लेहोलीढापरिग्रहः । असवर्णासु कन्यासु विवाहश्च द्विजातिषु ॥

" वृत्तस्वाध्यायसापेक्षमघसंकोचनं तथाँ । अस्थिसंचयनादूर्ध्वमंगस्पर्शनमेव च ॥

" प्रायश्चित्तविधानं च विप्राणां मरणांतिकम् । संसर्गदोषः पापेषु मधुपर्के पशोर्वधः ॥

" दत्तौरसेतरेषां तु पुत्रत्त्वेन परिग्रहः । शामित्रं चैव विप्राणां सोमविकयणं तथा ॥ " दीर्घकालं ब्रह्मचर्य नरमेधाश्वमेधकौ । कलौ युगे त्विमान्धर्मान्वर्ज्यानाहुर्मनीषिणः " ॥ इति ।

धर्मशास्त्रस्रधानिधौ

" गोत्रान्मातृसपिंडात् विवाहो गोवधस्तथा । विधवायां प्रजोत्पत्तिर्देवरस्य नियोजनम् ॥

" आततायिद्विजाय्याणां धर्मयुद्धेन हिंसनम् । द्विजस्याब्धौ तु निर्याणं शोधितस्यापि संग्रहः ॥ " सत्रदीक्षा च सर्वेषां कमंडलुविधारणम् । महाप्रस्थानगमनं गोसंज्ञाप्तश्च गोसवे ॥

भ्र-मनुष्यत्वात् । २ कखग-प्रस्थपरि । ३ ख-ळीली ळोह्या । ४ कग-कली ।

- " सौत्रामण्यामपि सुराग्रहणस्य च संग्रहः । संसर्गदोषः स्तेनाधैर्महापातकनिष्कृतिः ॥
- " वरातिथिपितृभ्यश्च पञ्जूपाकरणिकया । सवर्णानां तथा दुष्टैः संसर्गः शोधितैरिप ॥
- " अयोनौ संग्रहे वृत्ते परित्यागो गुरुस्त्रियाः । जूदेषु दासगोपालकुलमित्रार्धसीरिणाम् ॥
- " भोज्याञ्चता गृहस्थस्य तीर्थसेवा च दूरतः । शिष्यस्य गुरुदारेषु गुरुवद्वृत्तिरीरिता॥
- "आपद्वृत्तिर्द्विजामचाणामश्वस्तिनिकता तथा। ब्राह्मणानां प्रवासित्वं मुखाग्निधमनिकया॥
- " वळात्कारादिदुष्टस्त्रीसंग्रहो विधिचोदितः । यतेस्तु सर्ववर्णेषु भिक्षाचर्या विधानतः ॥
- " नवोदके दशाहं च दक्षिणा गुरुचोदिता । ब्राह्मणादिषु शूदस्य पचनादिकियाऽपि च॥
- " भृग्वग्निपतनैश्चैव वृद्धादिभरणं तथा॥
- " गोतृप्तिशिष्टे पयसि शिष्टेराचमनिकया । पितापुत्रविरोधेषु साक्षिणां दंडकल्पनम् ॥
- प्यत्र सायं गृहस्थत्वं सूरिभिस्तत्त्वतत्परैः । एतानि लोकगुप्त्यर्थं कलेरादौ महात्मिभिः ॥
 - " निवर्तितानि कर्माणि व्यवस्थापूर्वकं बुधैः । समयश्चापि साधूनां प्रमाणं वेदवद्भवेत् " ॥

कळौ देवरेण पुत्रोत्पादनं प्रतिषेधत्यापस्तंबः (२।२७।२-६) "सगोत्रस्थानीयां न परेभ्यः समाचक्षीत । सगोत्रायेव तु समाचक्षीत । कुळायेव हि स्त्री प्रदीयत इत्युपदिशंति । तदिंद्रिय-

दौर्बल्यं विप्रतिपन्नमविशिष्टं हि परत्वं पाणेस्तब्धातिक्रमे खळु पुनरुभयोर्नरकः" इति । अनपत्यो

- ५५ भर्ता तित्पत्रादिर्जा सगोत्रस्थानीयां भार्यो स्नुषां वा न परेभ्योऽसगोत्रेभ्यः समाचक्षीत । अस्या-मपत्त्यमुत्पायमिति स्वगोत्राय देवराय सिपंडेभ्यो वा समाचक्षीत । कुलायेव हि स्त्री प्रदीयत इति । तद्य विप्रतिपन्नं विप्रतिषिद्धं भर्तुवर्यतिक्रमे इंद्रियपारंतव्यादितप्रसंगः स्यादिति देवरादि-
 - पाणेरपि गृहीतात्पाणेरन्यत्त्वाविशेषादित्यर्थः ॥

अथ कर्मपरिभाषा

- २॰ ''मुख्यकाले यदावइयं कर्म कर्त्तुं न शक्यते। गौणकालेऽपि कर्त्तव्यं गौणोऽप्यत्रेष्ट्शो भवेत्''॥ इति। स्मृतिरत्नावल्याम्—
 - " स्वकालाइत्तरो गौणः कालः पूर्वस्य कर्मणः। यद्वाऽऽगामिक्रियामुख्यकालस्याप्यंतरालवत्॥
 - " गोणकालत्वमिच्छति कचित्राक्तनकर्मणि । गोणेष्वेतेषु कालेषु कर्म चोदितमाचरन्॥
 - " प्रायश्चित्तप्रकरणे प्रोक्तां निर्वृत्तिमाचरेत् । प्रायश्चित्तमकृत्वा न गौणकाले समाचरेत् ॥
- अप " दिवादितानि कर्माणि प्रमादाद्कृतानि वे । यामिन्याः प्रहरो यावत्तावत्त्कर्माणि कारयेत् ॥
 - " मुख्यकाले हि मुख्यं चेत्साधनं नैव लभ्यते । तत्कालद्रव्ययोः कस्यै मुख्यस्वं गौणताऽपि वा ॥ "मुख्यं कालं समाश्रित्य गौणमप्यस्तु साधनम् । न मुख्यद्रव्यलोभेन गौणकालप्रतीक्षणम्"॥ इति ।
 - स्कान्दे---
 - "आत्मा पुत्रः पुरोधाश्च भ्राता पत्नी पिता सखा । इज्यायां धर्मकार्ये च जायंते प्रतिरूपकाः ॥
- ३° " एभि: कृतं महादेवि स्वयमेव कृतं भवेत् "॥ इति । संब्रहे--
 - "रात्रों प्रहरपर्यंतं दिवाकृत्यानि कारयेत् । ब्रह्मयज्ञं च सौरं च वर्जयित्वा विशेषतः"॥ इति । कात्यायनः—
 - " यत्रोपदिश्यते कर्म कर्त्तुरंगं न तूच्यते । दक्षिणस्तत्र विज्ञेयः कर्मणां पारगः करः "॥ इति । मनुः
- 34 "कुत्सिते⁸ वामहस्तः स्याद्क्षिणः स्याद्कुत्सिते । यज्ञोपवीतिना कार्यं सर्वं कर्म प्रदक्षिणम् ॥ " आसीन ऊर्ध्वः प्रव्हो वा नियमो यत्र नेदृशः । तदासीनेन कर्त्तव्यं न प्रव्हेन न तिष्ठता "॥

१ कखग-तस्य। २ कखग-नो।

34

```
कात्यायनः
```

"यत्र दिङ्गियमो न स्याज्जपहोमादिकर्मसु! तिस्रस्तत्र दिशः प्रोक्ता ऐंदी सौमी तदंतरा"॥इति। स्मृतिचंद्रिकायाम्—

"मनः प्रसादात्सत्योक्त्या तपसा स्नानकर्मणा। आचम्य चात्मनः शुद्धिं कृत्वा कर्म समाचरेत् ॥ "संकल्पः कर्मणामादौ वैदिकानां विधीयते । इंदं कर्म करिष्यामीत्युच्चार्य त्वाचरेत्ततः"॥इति । ५ आश्वलायनः—

"प्रधानस्य कियायां तु सांगं तिक्वयते पुनः । तदंगाकरणे कुर्यात्प्रायश्चितं न कर्म तत्॥

" प्रवृत्तमन्यथा कुर्याद्यदि मोहात्कथंचन । यतंस्तद्न्यथाभूतं तत एव समापयेत् ॥

"समाप्तं यदि जानीयान्मयैतद्यथाकृतम् । तावदेव पृथक्कुर्यानिवृँतिं सर्वकर्मणाम्"॥**शातातपः**–

" बह्बल्पं वा स्वगृह्योक्तं यस्य कर्म प्रचोदितम् । तस्य तावति शास्त्रार्थे कृते सर्वे कृतं भवेत् ॥ १०

" श्रीतेषु सर्वशास्त्रोकं सर्वस्यैव यथोचितम् । स्मार्त्तं साधारणं तेषु गार्ह्येष्वपि च कर्मसु ॥

"सर्वेशास्रोपसंहारादुक्तः श्रोतो यथाविधिः । सर्वेस्मृत्युपसंहारात्स्मार्त्तोऽप्युक्तस्तथा विधिः"॥इति । स्मृत्यर्थसारे

" प्राचीदिशामनुकौ स्यादुदीचीशानदिक् तथा । तिष्ठत्वप्रव्हतानुक्तावासीनत्वं च कर्मसु ॥

" प्रभुः प्रथमकल्पस्य योऽनुकल्पेन वत्तंते । स नाप्रोति फठं तस्य परत्रेति श्रुतिस्मृती " ॥

" न सांपरायिकं तस्य दुर्मतेविंद्यते फलमिति " पाठांतरम् ।

" सामयाचारिका धर्मा जातिभेदकुठोद्भवाः । ग्रामाचाराः परिग्राह्या ये च विध्यविरोधिनः ॥

" युगधर्माः परिग्राह्याः सर्वत्रैव यथोचितम् "। इति । कात्यायनः-

" यन्नाम्नातं स्वशाखायां पारक्यं न विरोधि च । विद्वद्भिस्तद्नुष्ठेयमग्रिहोत्रादि कर्मवित् ॥

"आत्मतंत्रे तु यन्नोक्तं तत्कुर्यात्पारतंत्रिकम् " इति ॥ पारक्यं परकीयम् । स्वसूत्रोक्तं कर्म २० परित्यज्य पारक्यं कर्म कुर्वतो दोषमाह दक्षः---

" स्वकं कर्म परित्यज्य यदन्यत्कु हैते दिजः । अज्ञानाद्थवा ज्ञानात्त्यक्तेन पतितो भवेत् " ॥ स्वसूत्रालाभे वृद्धमनुः—

" स्वेसूत्रेऽविद्यमाने तु परसूत्रेण वर्तते । बोधायनमतं कृत्वा स्वसूत्रफलभाग्भवेत् ॥

"विधिदृष्टं तु यत्कर्म करोत्यविधिना तु यः। फलं न किंचिद्यामोति क्केशमात्रं तु तस्य तत्"॥ इति । २५ स्मृत्यंतरे—

"अकाले यत्कृतं कर्म कालं प्राप्य पुनः किया। कालातीतं तु यत्कुर्यादकृतं तद्दिनिर्दिशेत्"॥ इति। **आश्वलायनः**

" श्रौतं वा यत्र पौराणं स्मार्त्तं वापि विनिर्णये । गीर्द्वहा तत्र न चलेन्न्यायाद्वा स्वानुमानतः ॥

" यत्र गीरदृढा तत्र कुर्याच्चैवानुमानतः॥

"यत्र ययवथा प्रोक्तं तत्र कुर्यात्तथा च तत् । नान्यथा स्वानुमानेन कुर्यात्प्राज्ञोऽपि मानवः"॥ इति। भारद्वाजः—

" आसनं स्वस्तिकं प्रोक्तं जपादीनि प्रकुर्वतः । कुरो शय्यासनं वापि वीरासनमथापि वा ॥

" जानूर्वोरंतरे सम्यक् कृत्वा पादतले उमे । ऋजुकायः समासीनः स्वस्तिकं तत्प्रचक्षते ॥

" एकं पादमधैकस्मिन्विन्यस्योरौ तु संस्थितः । इतरिमंस्तथा चोरं वीरासनमुदीरितम् ॥

" उर्वोरुपरि विप्रेंद्र कृत्वा पातद्छे उभे । अंगुष्ठौ चानुबन्नीयाद्धस्ताभ्यां व्युत्क्रमेण तु ॥ " पद्मासनं वदेदेतत्सर्वेषामपि पूजितम् " ॥

१ क-उद्द्युर्मं। २ क-यदेतत्। ३ खग-गुनः। ४ ड-न्नावृत्तिः। ५ ड-क्रियते ।

स्मृत्यर्थसारे--" उपात्ते तु प्रतिनिधौ मुख्यार्थो यदि रुभ्यते। तत्र मुख्यमनादृत्य गौणेनैव समापयेत् ॥

" मुख्याभावे यदा गौणमुपात्तं सिद्दनस्यति । तत्र मुख्योपमं गौणं ग्राह्यं गौणोपमं न तु॥

" यस्मिन्कस्मिन्नुपात्ते तु मुख्ये प्रचेरिते सित । अन्यत् द्रव्यं विजानीयं सजातीयमथापि वा ॥

५ " उपादाय प्रयुंजानो द्रव्यं कृत्स्नमवाप्नुयात् " ॥ भरद्राजः—

" अज्ञाता यदि वा मंत्राः स्वस्वमृश्चेषु चोदिताः । उपवीतप्रमुख्यानां तेषां वै धारणे द्विजाः ॥ "केवलं प्रणवो वापि व्याहृतित्रितयं तु वा । स्यातां विप्रादिवर्णेषु द्वावेतौ सर्वशाखिनाम्" ॥इति । शांडिल्यः—

" प्रदक्षणे प्रणामे च पूजायां हवने जपे । न कण्ठावृतवस्त्रः स्याहर्शने गुरुदेवयोः " ॥

वोधायनः (२।६।५८–५९)—

" कर्तव्यमुत्तरं वासः पंचस्वेतेषु कर्मसु । स्वाध्यायोत्सर्गदानेषु भोजनाचमयोस्तथा ॥

"हवनं भोजनं दानमुपहारः प्रतिग्रहः। बहिर्जानु न कार्याणि तद्ददाचमनं स्मृतम्"॥इति। अन्यैच्च—

"स्नानमाचमनं होमं भोजनं देवतार्चनम्। प्रौढपादो न कुर्वीत स्वाध्यायं पितृतर्पणम् ॥ "आसनारूढपादस्तु जान्बोर्वा जंवयोस्तथा।कृतावसिक्थको यस्तु प्रौढपादः स उच्यते"॥ वस्त्रादिना कृतपादवंधः कृतावसक्थिकः।

"होमः प्रतिवहो दानं भोजनाचमने जपः । बहिर्जानु न कार्याणि सांगुष्ठानि सदा चरेत् "॥ "तद्वदाचमनं स्प्रतिमिति"॥ इति परिभाषा॥

अथ सृष्टिप्रकारः । तत्र मनुः (१७)---

२० " योऽसावर्तीदियमाद्यः स्क्ष्मोऽन्यकः सनातनः । सर्वभूतमयोऽचिंत्यः स एव स्वयमुद्धभौ " ॥ अव्यक्तः अविदितस्वभावः । सनातनः अनादिनिधनः । योऽसौ केवेलं योगशास्त्रप्रसिद्धः । स एव परमः पुमान्सर्वभृतमयः प्रपंचस्वरूपः । स्वयं न कस्यचिन्नियोगेन नापि कर्मवशेन । उद्वभौ व्यक्तीवभव ।

''सोऽभिध्याय शरीगत्स्वात्सिमृश्चर्वविधाः प्रजाः। अप एव ससर्जादौ तासु वीर्यमवासुजत्"(१।८)॥

६५ अवासृजदुष्तवान् । अंशेनानुप्राविशदित्यर्थः ।

''आपो नारा इति श्रोक्ता आपो वै नम्सूनवः।ता यद्स्यायनं पूर्व तेन नारायणः स्मृतः"(११९०)॥ नरस्य पुरुषस्य सूनवः भगवता मृष्टा इत्यर्थः। वै शब्दो हेतौ । ता आपः अस्य नरस्य पूर्व प्रथममयनमनुष्रवेशस्थानमासीवत्तेन नारायणः स्मृतः।

" तदंडमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम् । तस्मिन्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वभूतैपितामहः" (१।९)॥ ३० तज्जलानुप्रविष्टं भगवद्दीर्यं हेमं हेममयं अत एव ब्रह्मा हिरण्यगर्भाख्यः तस्मिन्नंडे स्वयं भगवान्ब्रह्म-रूपधारी जज्ञे ।

"यत्तत्कारणभव्यक्तं नित्यं सद्सदात्मकम् । तद्विसृष्टः स पुरुषो ठोके ब्रह्मेति कीर्त्यते"(१।११)॥ कारणशब्देन नारायण उच्यते । सद्सदात्मकं सत्कारणं प्रकृत्यादिकं असत्कार्यं प्रपंच उभ-यात्मा दहो यस्य तस्य तत्त्रथोक्तम् । तद्विसृष्टस्तेन कारणाख्येन भगवता सृष्टः । पुरुषशब्द्दोऽयं

34 राजपुरुषशब्दवद्धिकारिवचनः । भगवन्नियोगकर इत्यर्थः ।

९ कखग-परिगते । २ ट-पा ठ । ३ कग-एवं । ४ ट-लोक ।

"तिस्मिन्नंडे स भगवानुषित्वा परिवत्सरम् । स्वयमेवात्मनो ध्यानात्तदंडमकरोद्विधा" (१।१२) ॥ भगवान्भगवन्मयो ब्रह्मा ।

"ताभ्यां स शक्लाभ्यां तु दिवं भूमिं च निर्ममे । मध्ये व्योमिद्शश्चाष्टावपां स्थानं च शाश्वतम्"॥ दिवं स्वर्गादिलोकपंचकम् । भूमिं सपातालां मध्ये व्योम अंतरिक्षलोकं अष्टो दिशश्च शाश्वतं यावत्प्रलयावस्थानं अपां स्थानं समुद्रं च निर्ममे । सर्वभूतानि सिम्क्षतो हिरण्यगर्भस्योपादानं शरीरांश इति श्लोकत्रयेणाह मनुः (१।१४–१६)

ान तिसृक्षता हिरण्यगमस्यापादान शराराश इति श्लाकत्रयणाह मनुः (४१४८-४५) " उद्भवहीत्मनश्चैत्र मनः सद्सदात्मकत् । मनसञ्चाप्यहंकारमभिमंतारमीश्वरम् ॥

"महांतमेव चात्मानं सर्वाणि त्रिगुणानि च । विषयाणां गृहीतॄाणि शनैः पंचेन्द्रियाणि च ॥ "तेषामवयवानसूक्ष्मान् षण्णामप्यमितोजसा । संनिवेश्यात्ममात्रासु सर्वभूतानि निर्ममे" ॥

मनः महत्तत्वं सद्सद्दात्मकं प्रकृतिविक्कत्यात्मकं मनसे। महत्वाद्नंतरमिभमंतारमिस्ताप्रत्यय- १० रूपमीश्वरम्। सर्वकर्मप्रवर्तकमहंकारं च उद्भवहं उद्भृतवान्। महांतमात्मानं स्थूलमतःकरणं मन इति यावत्। स्वरूपेण विषयरूपेणेद्रियरूपेण च त्रिगुणीभूयावस्थानात्रिगुणानीति तन्मात्राणि शब्दान्युच्यंते। तथा विषयाणां गृहीतृणि पंच ज्ञानेद्रियाणि चकारात्कभेद्रियाणि शनैः कमादु-द्ववहं। तेषां महदहंकारं मनस्तन्प्रात्रज्ञानकर्मेद्रियाणि षण्णामितितौजसामुपयुज्यमानेष्वय्यवयवेषु दीपवदक्षयवीर्याणामवयवानामंशेनात्ममात्रासु स्वजीवांशेषु संनिवेश्य आकलय्य सर्वभूतानि १५ दवमनुष्यादीनि निर्भमे। एतदुक्तं भवति। आत्मीयानां महदहंकारमनस्तन्त्रात्रज्ञानकर्मेद्रियाणाः मंशाः सर्वभृतोपादानभिति।

"सर्वेषां तु सनामानि कर्माणि च पृथक् गृथक् । वेदराब्देभ्य एवादौ पृथक्संस्थाश्च निर्ममे (२१)॥
"कर्मणां तु विवेकाय धर्माधर्मौ व्यवेचयत् । द्वंद्वैरयोजयच्चेमाः सुखदुःखादिभिः प्रजाः (२६)॥
"काकानां तु विवृध्यर्थं मुखबाहूरुपादतः । बाह्मणं क्षत्रियं वैद्यं ग्लूदं च निरवर्त्तयत् (३१)॥ ६०
"सर्वस्यास्य तु सर्गस्य गुप्त्यर्थं स महायुतिः। मुखबाहूरुपज्जानां पृथक्कमीण्यकल्पयत्'॥इति(८७)॥
स्वालोपनिषदि श्रूयते—" तस्मात्तमः संजायते तमसो भूतादि भूतादेराकाशमाकाशाद्वायुवीयोरमिरमेरापः। अद्भ्यः पृथिवी । तईं समभवत्तत्संत्रसरमात्रमुषित्वा द्विधाकरोद्धस्ताद्ध्मिमुपरिष्टादाकाशं मध्ये पुरुषः " इति । तैन्तिरीयश्चितिरिप " ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् । बाहू
राजन्यः कृतः । ऊरू तदस्य यद्दैश्यः पभ्याः श्रूदो अजायतं इति च । तथा महोपनिषदि ६५
"एको ह वै नारायण आसीत् । सोऽन्यं कामं मनसाऽध्यायत् । तस्य ध्यानस्थस्य ललाटात्स्वेदोत्प्रससार ता आपोऽभवन् । तासु वीर्यमवामुजतन्दिरण्मयमण्डमभवत् । तिस्मिन् ब्रह्मा चतुर्मुखोऽजायतं " इति । नारायणोपनिषदि च " अथ पुरुषो ह वै नारायणोऽकामयत । प्रजाः मुजेयेति । नारायणाद्वह्माऽजायतं " इति । हारीतः (११९-१३)

[&]quot; नारायणः परो देवो जगत्मृष्ट्वा जलोपिर । सुष्वाप भोगिपर्यकशयने तु श्रिया सह॥ " तस्य सुप्तस्य नाभौ तु महत्पग्रमभ्तिकल । पद्ममध्येऽभवद्भक्षा वेद्देवदांगभूषणः॥ " स चोक्तस्तेन देवेन जगत्मृष्टौ पुनः पुनः । सोऽपि सृष्ट्वा जगत्सर्व सदेवासुरमानुषम्॥ " यज्ञसिध्वर्थमनषान्वाह्मणान्मुसतोऽसृजत् । अष्टृजत्क्षात्रियान् बाव्होर्वैद्यानप्यूरुदेशतः॥ " सूद्रांश्च पाद्योः सृष्ट्वा तेषां चेवानुपूर्वशः। यथा प्रोवाच भनवान्ब्रह्मयोनिः पितामहः"॥ इति ।

१ कग-नंशाकलन ख-नामशेनात्म । २ कग-समानानि । ३ कट-पाठः । ४ क-कर्म ।

प्रोवाच धर्मीनिति शेषः । सृष्टौ परस्परविरुद्धानां श्रुतीनां स्मृतीनां च कल्पमेदेन व्यवस्था द्रष्टव्या । इति सृष्टिः ॥

अथ वर्णधर्माः । तत्र देवलः

"बाह्मण्यां ब्राह्मणाज्ञातः संस्कृतो ब्राह्मणो भवेत्।एवं क्षत्रियविद्रशृद्धा ज्ञेयाः स्वेभ्यः स्वयोनिजाः"॥ ५ इति । ज्ञातातयः

"तपो दमो दया दानं सत्यं धर्म श्रुतं घृणा। विद्या विज्ञानमास्तिक्यमेतद्वाह्मणलक्षणम् "॥ याज्ञवल्क्यः (आचारे ९०)—

" सवर्णेभ्यः सवर्णासु जायंते हि सजातयः । अनिवेशेषु विवाहेषु पुत्राः संतानवर्धनाः "॥ हारीतः (१।१५,१७–१८)—" ब्राह्मण्यां ब्राह्मणेनैव उत्पन्नो ब्राह्मणः स्पृतः ।

" षट्कर्माणि वे निजान्याहुर्बाह्मणस्य महात्मनः । तैरेव सततं यस्तु वर्तयन्सुखमेधते ॥
 " अध्यापनं चाध्ययनं यजनं याजनं तथा । दानं प्रतिग्रहश्चेति षट्कर्माणीति चोच्यते " ॥
 मनुः (१।८८)—

" अध्यापनं चाध्ययनं यजनं याजनं तथा । दानं प्रतिग्रहश्चेति षट्कर्माण्यग्रजनमनः"॥ याज्ञवल्क्यः (आचरे ११८)—–

५५ 'इज्याध्ययनदानानि वैश्यस्य क्षत्रियस्य च । प्रतिग्रहोऽधिको विप्रे याजनाध्यापने तथा''॥इति । तत्र बाह्मणस्येज्यादीनि त्रीणि धर्मार्थानि प्रतिग्रहादीनि त्रीणि वृत्यर्थानि ''वण्णां तु कर्मणामस्य त्रीणि कर्माणि जीविका । याजनाध्यापने चैव विशुद्धाच्च प्रतिग्रहः''॥ इति मनुस्मरणात् (१०।७६) । अत इज्यादीन्यावश्यकर्तव्यानि न प्रतिग्रहादीनि । तद्वाह गौतमः (१०।१-३)—"द्विजातीनामध्ययनिमञ्यादानं ब्राह्मणस्याधिकाः प्रवचनयाजन-

श्विमहाः । पूर्वेषु नियमः " इति । आपस्तंबः (२।१२।१)— "सवर्णापूर्वाशास्त्रविहितायां यथतुं गच्छतः पुत्रास्तेषां कर्माभः संबंधः " इति । सवर्णा च अपूर्वा च शास्त्रविहिता चेति कर्मधारयः । सवर्णा सजातीया । अपूर्वा अनन्यपूर्वा । शास्त्रविहिता शास्त्रोक्तबाह्मादिविवाह-संस्कृता । एवंभूतायां भार्यायां यथर्तुगमनकल्पेन गच्छतो ये पुत्रा जायंते तेषां कर्मभिः संबंधो भवतीत्यर्थः । कर्माण्यपि स एवाह (२।१०।४) " स्वकर्म बाह्मणस्याध्ययनमध्याषनं १५ यत्रो याजनं दानं प्रतिग्रहणं दायायं सिलोंच्छ" इति । दायायं दायस्वीकारः । सिलोंच्छः क्षेत्रादिषु पतितानि मंजरीभृतानि ततश्च्युतानि च धान्यानि सिलशब्दार्थः । तेषामुंच्छनमंगुलिभिनंसैर्वा आदानम् । एतान्यष्टौ बाह्मणस्य स्वकर्मेत्यर्थः । इति वर्णधर्माः ॥

अथ यजनम् । यज्ञे श्रुतिः । "यज्ञ इति यज्ञो हि देवानां यज्ञेन हि देवा दिवं गता यज्ञेनासुरानपानुदंत यज्ञेन दिवंतो मित्रा भवंति यज्ञे सर्व प्रतिष्ठितं तस्मायज्ञं परमं वदंति " । • यज्ञ इति यज्ञो नामाधानामिहोत्रादि । स हि देवानां संबंधी । देवत्वस्य प्रापकत्वात् । तदेवाह । यज्ञेन हि देवा इति । अत्र श्रुत्यंतर्रम् । "यज्ञेन वै देवाः स्वर्ग होकमायन्" इति । यज्ञेनासुरान-पानुदंत । यज्ञेन द्विषंतः शत्रवः मित्राणि भवंति । ऋत्विवश्रसर्पकादिद्विश्वणादानेन दानं यज्ञानां क्रियं गृहस्थानीयम् । दाने हि यज्ञास्तिष्ठंति । तद्भावे कुतो यज्ञः । ' मृतो यज्ञस्त्वद्क्षिणः ' । "यो अद्क्षिणेन यज्ञेन यज्ञेत स यज्ञः प्रक्षामोऽनायुः" इत्यादिवाक्येभ्यो दानस्य यज्ञे अवश्य-

[🤋] अनित्येषु । २ नारायणोपनिषादे । ते । सं । आरण्यके ' सहवे । उपनिषदि ।

कर्तव्यत्वात् यज्ञे सर्वं प्रतिष्ठितं सर्वंस्य जगतो यज्ञाधीनत्वात् यस्माद्यज्ञं परमं वदंति भगवंत इत्यर्थः । अत्र टयासः (भगवद्गीता अ. ३ श्लो. १०-१२)—

" सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः । अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ॥

" देवान्भावयतानेन ते देवा भावयंतु वः । परस्परं भावयंतः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥

"इष्टान्भोगानिह वो देवा दास्यंते यज्ञभाविताः । तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुंके स्तेन एव सः"॥इति। भ यज्ञस्य त्रैविध्यमाह भगवान् (भ. गी. अ. १७ श्लो. ११–१३)—

" अफ़लाकांक्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते । यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्विकः ॥

" अभिसंधाय तु फलं दंभार्थमपि चैव यत्। इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम्॥

" विधिहीनमसृष्टान्नं मंत्रहीनमदक्षिणम् । श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते '' ॥ इति । हारीतः—

" यज्ञेन लोका विमाँला विभांति यज्ञेन देशा अमृतत्वमाप्नुवन् ।

" यज्ञेन पाँपैर्वह्रभिर्विमुक्तः प्राप्नोति लोकान्परमस्य विष्णोः "॥

"नास्त्ययज्ञस्य लोको वै नायः तो विंद्ते शुभं। अनिष्टयज्ञोऽपूतातमा अरुयति च्छिन्नपर्णवत् "॥ माधवीये—

"नास्तिक्याद्थं वाऽऽलस्याद्योऽग्रीन्नाधातुमिच्छति।यजेत वा न यज्ञेन स याति नरकान्बहून् ॥ ९५ "तस्मात्सर्वप्रयत्नेन बाह्मणो हि विशेषतः। आधायाग्नीन्विशुद्धात्मा यजेत परमेश्वरम्"॥ इति। कार्ष्णाजिनिः—

"पुत्रमुत्पाच कर्मैतत्कुर्याद्वैतानिकं द्विजाः। यथाकथंचिदादध्यात्प्राप्तं चेत्साधुतो धनम्"॥ इति।

प्रजापतिः--

"सर्वसंस्थाधिकारी स्यादाहिताग्निर्धने सित । आद्ध्यात्रिर्धनोऽप्यग्नीत्रित्यं पापभयाद्विजः " ॥ २० विसिष्ठः—"अवरुयं ब्राह्मणोऽग्नीनाद्धीत दुर्रापूर्णमासाग्रयणैश्चातुर्मास्यपशुसोमैश्च यजेत"इति । हारीतोऽपि——

"पाकयज्ञान्यजेनित्यं हिवर्यज्ञान्तसुनित्यशः । सौम्यांस्तु विधिपूर्वेण य इच्छेन्द्रमंमव्ययम्"इति । ते च गौतमेन द्शिताः (८१८–२४)—" अष्टका पार्वणश्राद्धं श्रावण्याग्रहायणीचैं ज्याश्व-युजीति सप्त पाक्रयज्ञसंस्थाः । अग्न्यावेयमग्निहोत्रं द्र्शपूर्णमासौ चार्तुमास्यान्याग्रयणेष्टि- २५ निरूद्धपुर्श्ववः सौत्रामणीति सप्त हिवर्यज्ञसंस्थाः । अग्निष्टोमोऽत्त्यग्निष्टोम उद्मध्यः षोढशी वाजपेयोऽतिरात्रोऽप्तोर्याम इति सप्त सोमसंस्थाः " इति । अष्टका हेमंतशिशिरयोरष्टमीषु किय-माणं श्रान्द्म । पर्वाणे भवः पार्वणः स्थाठीपाकः । श्रान्दं मासिश्रान्द्म । श्रावणी सर्पविष्ठः श्रावण्यां पौर्णमास्यां तिक्वयते । आग्रहायणी पौर्णमासी । तस्यां कियमाणः सर्पविष्ठरुत्सर्गः । हेमंतप्रत्यवरोहणाख्यं च कर्म आग्रहायणीश्चित्रोचयते । चेत्री चैत्रपौर्णमास्यां कियमाण । ईशानबितः । आश्वयुजी आग्रयणम् । अग्न्याधयाद्यः श्रुतिप्रसिद्धाः । वौधायनः (१।२।६)— "कृष्णकेशोऽग्रीनाद्धीतेति श्रुतिः " इति । स एव (१।४।८२)—

" अयज्ञेनाविवाहेन वेदस्योत्साद्नेन च । कुळान्यकुळतां यांति ब्राह्मणातिक्रमेण च " ॥ इति । गर्गः—"प्रवानं वैदिकं कर्म गुणभृतं तथेतरत् । गुणनिष्ठाप्रवानं तु हित्वा गळत्यघोगतिम् ॥ " यो वैदिकमनादृत्य कर्म स्मार्तेतिहाासिकम् । मोहात्समाचरेद्विप्रो न स पुण्येन युज्यते ॥ ~ ३५ "श्रोतं कर्म न चेच्छक्तः कर्त्तुं स्मार्ते समाचरेत् । अत्राप्यशक्तः करणे कुर्यादाचारमंततः" ॥ इति ।

१ क्ष-विपुला । २ क्ष-प्राप्यं ।

अग्निहोत्रदर्शपूर्णमासविषये श्रुतिः। (तै.सं.१।६।९)—"प्रजापतिर्यज्ञानसृजताग्निष्टोमं च पौर्णमासीं चेाक्श्यं चामावास्यां चातिरात्रं च । तानुद्दिमिन्नीत । यावद्गिहोत्रमासीत्तावानग्निष्टोमो यावती पौर्णमासी तावानुदश्यो यावत्यमावास्या तावानतिरात्रः" इति ॥ प्रजापतिरग्निहोत्रादीन्षड्भागान- मृजत्तत्राग्निहोत्रपोर्णनास्यमावास्यायागाः अल्पेर्द्रव्यमंत्रिक्रयाविशेषैः साध्या अल्पफलाः, अग्नि- १ श्रोमोक्श्यातिरात्रयागा बहुमिर्द्रव्यमंत्रिविशेषेः साध्या अधिकफलाः-इति विमर्शे सत्यनुग्रहेण तुलया त्रीणि द्वानि उत्नितवान् । तदनुग्रहाद्गिहोत्रादीन्यग्निष्टोमादितुल्यानि संपन्नानि । एवं वेदने फलमाह श्रुतिः (१।६।६)—"य एवं विद्वानग्निहोत्रं जुहोति यावद्गिष्टोमेनोपाग्नोति तावहुपाग्नोति । य एवं विद्वानमावास्यां यजते यावद्तिरात्रेणोपाग्नोति तावहुपाग्नोति । त्रानयुक्तस्य कर्मणः फलाधिक्यं छंदोगा । आमनंति—"यदेव विद्या करोति तदेव वीर्यवत्तरं भवति " इति

पुनरिप दुर्शपूर्णमासौ प्रशंसित (१।६।९) " परमेष्ठिनो वा एष यज्ञोऽग्र आसीत्तेन स परमां काष्ट्रामगच्छत्तेन प्रजापतिं निरवासाययत्तेन प्रजापतिः परमां काष्ट्रामगच्छत्तेनेंद्रं निरवासाय-यत्तेनंद्रः परमां काष्टामगछत्तेनामीषोमौ निरवासाययत्तेनामीषोमौ परमां काष्टामगच्छताम् । य एवं विद्वान्दर्शपूर्णमासौ यजते परमामेव काष्टां गच्छति" इति। परमे पदे सत्यलोके तिष्ठतीति पर-👣 मेडी चतुर्मुखः; तस्य चाग्रे पूर्वस्मिन्कल्पे यजमानत्वेनावस्थितस्यैष द्रीपूर्णमासयज्ञः प्रवृत्तः; तेन चेश्वरार्पणबुध्चाऽनुष्ठितेन यजमानः परां काष्ठामिदं परमेष्ठित्वपदं प्राप्तवान् । प्रजापतिर्दक्षादि: । तं पूर्विस्मिन्जनमिन तेनोत्तमफलहेतुद्रश्रूणमासोपदेशेन निरवासाययत् अनुष्ठानाय प्रेरितवाच् स च तिसन्जन्मिन यजमानस्तैनानुष्ठानेन परमां काष्ठां दक्षत्वादि पदं प्राप्तवान् एवमितरत्रापि योज्यम् । तथाऽग्रिहोत्रं पैशंसति-" अग्निहोत्रः सायंप्रातर्गृहाणां निष्कृतिः स्विष्टः सहतं २ । यज्ञकतृनां प्रायण १ सुवर्गस्य लोकस्य ज्योतिस्तस्माद्ग्निहोत्रं परमं वदंति" इति । अग्निहोत्र-मिति कर्मनाम । तत्सायंत्रातश्च निर्वतितं गृहाणां गृहस्थाश्रमिणामार्जितपापानां निष्कृतिः प्रायश्चित्तम् । स्विष्टं शोभनयागहेतुः । सहुतं शोभनहोमहेतुः । यज्ञकतूनां प्रायणम् । यज्ञा द्र्श-पूर्णमासाद्यः । कतवः अग्निष्टोमाद्यः । एतेषां यज्ञकतूनां प्रायणं कारणभूतम् । सुवर्गस्य . होकस्य बह्महोकादेः । ज्योतिः प्रकाशकम् । ब्रह्महोकादिप्रःतिहेतुरिति यावत् । तथाऽन्यत्र श्रूयते— ९५ "तस्मादाहुरग्निहोत्रं वें देवा गृहाणां निष्कृतिमपञ्यत्"इति । "अग्निहोत्रप्रायणा यज्ञाः" इति च । हारीतः-

" नाग्निहोत्रात्परो धर्मी नाग्निहोत्रात्परं तपः । नाग्निहोत्रात्परं श्रेयो नाग्निहोत्रात्परं य**राः** ॥ " नाग्निहोत्रात्परा सिद्धिनीश्निहोत्रात्परा गतिः । नाग्निहोत्रात्परं स्थानं नाग्निहोत्रात्परं वतम् ॥ "औद्या व्याहतयस्तिन्नः स्वधा स्वाहा नमो वषट्। यस्यैते वश्मिनं सद्यावह्मठोकस्थ एव सः"॥ इति । अस्त्यव्यतः——

14

[&]quot; सिलें िछनां च यो धर्मस्त्वहन्यहिन यत्फल्ष । तङ्शीपूर्णमासं च ये यजांति द्विजातयः ॥ " न तेषां पुनरावृत्तिर्वस्नलोकात्कदाचन " ॥ वृद्धसनुः

[&]quot;नित्यामिहोत्रं दर्शश्च पूर्णमासः पितृकिया।आतिथ्यं वेश्वदेवं च ब्रह्मलोकस्य शाश्वतः"॥ इति । षृद्धमनुः—

[&]quot; यस्य त्रैवार्षिकं धान्यं पर्याप्तं भृत्यवृत्तये । अधिकं वापि विद्येत स सोमं पातुमईति॥

९ ख-मने । २ नारायणोपनिषदि । ३ क् खग-अन्या ।

"पुण्यान्यन्यानि कुर्वीत श्रद्धानो जितेंद्रियः । न त्वल्पद्क्षिणे यज्ञैर्यजेताथ कथंचन॥ "इंद्रियाणि यशः स्वर्गमायुः कीर्तिं प्रजां प्रजून् । हन्त्यल्पद्क्षिणे यज्ञस्तस्मान्नाल्पधनो यजेत् ॥ " प्राजापत्यमद्त्वाऽइवमग्न्याधेयस्य दक्षिणाम्। अनाहिताग्निर्भवति ब्राह्मणो विभवे सति"॥ इति । ट्यासः—

"अन्नहींनो दहेद्राष्ट्रं मंत्रहीनस्त्वथितंजः । आत्मानं दक्षिणाहींनो नास्ति यज्ञसमो रिपुः"॥ ५ याज्ञवल्कयः (आ. १२४)—" प्राक्सोमिकीं क्रियां कुर्याचस्यान्नं वार्षिकं भवेत् " इति । प्रतानि मन्वादिवचनानि काम्ययागविषयाणि । यतो विहितदक्षिणापर्याप्तद्वव्याभावेऽपि नित्यं न लोपयेदित्याह बोधायनः –

- " यस्य नित्यानि लुप्तानि तथैवागंतुकानि च । विषयः सोऽपि न स्वर्ग गच्छेत्तु पतितो हि सः ॥ "तस्मात्कंदैः फलैर्मूलैर्मधुनाऽथ रसेन वा । नित्यं नित्यानि कुर्वीत न च नित्यानि लोपयेत्"॥इति । १० स्मत्यर्थ सारे
- " विवाहात्परमाथाय जुव्हन्देवाभिहोत्रकम् । दुर्शपूर्णमासाययणसोमयागान्कमाच्चरेत् ॥
- " सर्वथा प्रथमः सोमयागः कार्यो द्विजातिाभिः । यथासंभिवनांगेन शक्त्या द्त्वा तु दक्षिणाम् ॥
- " बात्यवुर्बाह्मणत्वादिमहादोषोपशांतये " ॥ इति । संग्रहे—
- " अग्निहोत्रफला वेदा सषडंगपदक्रमाः । अग्निहोत्रसमो धर्मो न भूतो न भविष्यति ॥ " दर्श च पूर्णमासं च कुप्त्वाऽथोभयमेव वा । एकस्मिन्कुच्छ्रपादेन द्वयोरर्थेन शोर्भनम्" ॥ इति । मनुः (४।१०)—–
- " वर्त्तर्यस्तु शिलोंछाभ्यामग्निहोत्रपरायणः । इष्टीः पार्वायणांतीयाः केवैला निर्वेपेत्सदा " ॥ २० पर्व चायनं च पर्वायने । तयोरंतः पर्वायणांतः । तत्र भवाः पार्वायणांतीयाः । दर्शपूर्णमासाम्रयण- स्रक्षणाः केवलाः फलाभिसंधिरहिताः नित्या इष्टीर्निवेपेत्सिलोंच्छवृत्तिरप्येतावच्छ्रोतं कर्भ कुर्याञ्च ततोऽधिकमित्यर्थः । असंकुचितवृत्तेर्वृत्त्यंतराण्याह स एव (४।२५–२६)—–
- "अग्रिहोत्रं च जुहुयादायंते युनिशोः सदा । दर्शेन चार्धमासांते पूर्णमासेन चैव ह ॥
 "सस्यांते नवसस्येष्टचा तथर्त्वते द्विजोऽध्वरैः । पशुनाप्ययनांते तु समांते सौभिकैर्मसैः"॥इति । २५
 अनयोरयमर्थः । युनिशयोरहोरात्रयोरायंते । अर्धमासांते पक्षयोरंते पर्वणोरिति यावत् । सस्यांते
 सस्यपाककाले । नवसस्येष्टचाऽऽग्रयणेन अध्वरैश्वातुर्मास्यैः । पशुना निरूढपशुबंधेन । समांते संवत्सरांते । सौमिकैः सोमवद्भिरिति । आपस्तंबः (१।१३-२२;१४।१-२)—"निवेशे हि वृते नैयमिकानि श्रूयंते अग्रिहोत्रमितथयोयच्चान्यदेवं युक्तम् "इति । निवेशे वृत्ते दारकर्मणिं निर्वृत्ते नैयमिकानि नियमेन कर्त्तव्यानि नित्यान्यग्निहोत्राणि श्रूयंत इत्यर्थः । आथर्वणे श्रूयते—" यस्याग्नि- ३०
 होत्रमदर्शपूर्णमासमनाग्रयणमितिथविजितमहुतमवैश्वदेवमविधिना हुतं आ सप्तमांस्तस्य लोकानिहनस्ति " इति । अस्यार्थः-यस्याग्निहोत्रिणः अग्निहोत्रमदर्शम् आग्नेयोऽष्टाकपाल ऐदं दिधे
 ऐदं पय इति यागत्रयवर्जितम् अपौर्णमासमाग्नेयोपांश्वग्नीषोमीययागत्रयवर्जितम् अनाग्रयणमाग्रयणेष्टिरहितम् अतिथिवर्जितम् आतिश्याख्यकर्मणा सत्त्रियमाणः सोमोऽतिथिः तद्वर्जितं

कग-शोधनम् । २ कग-कवला ।

सोमयागरहितमित्यर्थः । अहुतं कस्मिश्चित्काले आलस्यादिना होमवर्जितम् । अवैश्वदेवं वैश्व-देवहामरहितम् । अविश्विना द्वतं मंत्रदेवतादिशिपर्यासेन हृतम् । आसतमां छोकान् हिनस्तीति त्रयः यित्रियितामह्मपितामहाः त्रयः पृत्रपोत्रप्रयोत्राः आत्मा च सप्तमः तान्पुरुषानभूरादिलोकांश्च हिनस्तीति । याङ्गश्क्यः (आ. १२५)—

- ५ " प्रतिनंदत्सरं सेत्मः पञ्चः प्रत्ययनं तथा । कर्तव्याग्यणेष्टिश्च चातुर्मास्यानि चैव हि ॥
 - " एसानसंत्रवे कुर्यादि विवानशी द्विजः "॥ इति । **मनुरा**वि (४।२८; ११।२७, ४१)—
 - " नवेन:नर्चिता हास्य पशुहरुवेन चाग्नयः। प्राणानेवासुभिच्छंति नवासामिषजगिधनः॥
 - " इष्टिं वैद्वानरीं वापि निर्वपेद्वद्यर्थये । क्रुप्तानां पशुसोमानां निष्कृत्यर्थमसंभवे ॥
 - " अब्रिहोध्यपविध्याबीत् ब्राह्मगः कामकारतः । चां**द्रायणं चरेन्मासं वरिहत्यासमं हि तत्** "॥
- श्रुतिरिप च विरहा वा एर देवानां योग्निऽपुदासयते " इति । स्मृतिभास्करे—
 " निर्यने धनसाध्येषु निर्येष्वपि कृतेषु च । चौर्यादन्यैः कुमार्गैर्वा इज्यार्थ धनमाहरेत् ॥
 " स्य्येष्रदे कुरुक्षेत्रे मधीकृष्णाजिनादिकस् । चंडालात्प्रतिगृह्यापि यजेदावक्यकैर्मसौः"॥ इति ।
 एउत् वचनं यत्किंचिः इनसंपादनेनाप्यावक्यकानि कर्त्तव्यानीत्येवंपरम् । तथा च यमः—
 - " धर्मविज्ञाझणः ज्ञूदायज्ञार्थं नाहरेत् धनव् । जायते प्रेत्य चंडाठः शुद्धार्थेनेष्टदेवतः॥
- ९५ " उपादाय धनं द्वाद्योऽमिहो मुपाविशेत । जूदामिहोत्री स भवेद्वस्रवादिषु गर्हितः " ॥ इति । व्यासः— "कुटुंवाधे तु सच्छूदात्प्रातिमाह्यमयाचितम्। कत्वर्थमात्मने चैव न हि याचेत कर्हिचित्"॥ अदुरिष (११।२४, ४३, ४२)—
 - े न यहार्थ धनं श्रुद्राङ्किनो भिक्षेत धर्मवित् । यजमानो हि भिक्षित्वा चंडालः प्रेत्य जायते ॥ "तेषां सततमज्ञानां वृषलाग्न्युपसेविनास् । पदा मस्तकमाकम्य दाँता दुर्गाणि संतरेत् ॥
- २० "ये ज्हाद्यिगम्यार्थमिष्ठहात्रष्ठपासते । कत्विजस्ते च ज्ह्या हि बह्मवादिषु गर्हिताः " ॥ इति । छागलेयः "यः ज्हाद्यिगम्यार्थमिष्ठहोत्रमुपाचरेत्। दाता तत्कलमाम्रोतिकर्ता च नरकं वजेत्"॥ याज्ञवल्य्यः (आ.१२७)—"चंडालो जायते यज्ञकरणाच्छ्द्रभिक्षितात्"। एतानि ज्रूद्रप्रतिमहविवयपगणि वचनानि नित्यव्यतिक्रमविषयाणिः, "चंडालात्प्रतिगृह्यापि यजेदावक्यकैर्मसैः" इति
 नित्यम्याद्यस्यकत्वस्मगणादिति स्स्रुतिरत्यावल्यादावभिहितम् । मनुः—
- २५ "यज्ञार्थ विक्षितं द्रव्य यः सर्वे नोपयोजयेत् । श्वपाकयोनौ जायेत स तद्भुक्त्वा तु दुर्मतिः"॥ इति । यक्ष:---
 - "यज्ञार्थमर्थ भिक्षित्वा यो न सर्व प्रयच्छिति। स याति भासतां विष्रः काकतां वा शतं समाः " ॥ याज्ञवक्त्यः (আ. १२७) " यज्ञार्थमद्दद् दृष्यं भासः काकोऽपि वा भवेत् " इति ॥ रमृतिभारकरं—
- " वाजपेय कंता सर्वद्शिणानामसंभव । गावः सप्तद्शीकेषां संभवेऽपीति सामगाः॥
 " न लभ्यंते यदा गावो दक्षिणात्वेन चोदिताः । प्रत्येकं तत्र निष्कं स्यात्तद्धं पाद्मेव वा " ॥
 नित्यविषयमेतत् । शंखः—
 - " सहस्रं भोजयेत्सोमे बाह्मणानां क्षतं पशो । चातुर्मास्येषु सर्वेषु क्षतं पर्वाणि पर्वणि " ॥ रमृत्यंतरे—

⁾ कग-उपवासेत् ख-उपाचरेत् । २ क्ष-तदा । ३ ट-यमः । ४ कखगक्ष-ऋहो ।

"दिजभोजनमत्रैव सोमयागे सहस्रकम्। पशौ शतं दर्शेष्टौ स्युः भोज्या ऋत्विज एव वा"॥ स्मृतिमास्करे—

" तावद्भं विना कुर्यान्नित्येष्टिं सौमिकीं क्रियाम् । यथालब्धगुणोपेतां यथासंभवदक्षिणाम् ॥

" संनिधौ यजमानः स्यादुद्देशत्यागकारकः । असन्निधौ तु पत्नी स्याद्ध्वर्युस्तदनुज्ञया ॥

" स्याद्दर्शपूर्णमासेष्टौ चतुर्णामृत्विजां क्रियाँ । चत्वारश्चेन्न लभ्यंते त्रयः कुर्युस्रयोऽपि वा ॥ ५ " न संभवति कुर्यातां द्वावेवेष्टिं कथंचन ॥

"यदि द्वाविष न स्थातां एकेनापि समापयेत् । यजमानः प्रयुंजीत तज्ञानाज्ञातिनिष्कृति । अखंडादर्शे--

''दायप्राप्तैः स्वकृष्या वा लब्धैः शिष्टप्रतिग्रहात्। यजेत श्रद्धया विष्णुं श्रेयोऽर्थी नान्यथा यजेत्''॥ व्यासः—–

" संरुद्धेर्यजमानेश्व ऋत्विग्भिश्व तथाविधैः । शुद्धेर्द्दच्योपऋरणैर्यष्टव्यमिति निश्वयः ॥

" तथाकृतेषु यज्ञेषु देवानां तोषणं भवेत्। तुष्टेषु देवसंवेषु यज्ञा यज्ञफलं लमेत्॥

"देवाः संतोषिता यज्ञैर्ठोकान्संवर्धयंत्युत । उभयोर्ठोकयोश्चैव भूतिर्यज्ञैः प्रहर्देयते "॥ आधानकर्तन्त्रति चतुर्विंशतिमते विशेषो दर्शितः—

" जीवे पितरि नादध्यादग्रिहोत्रं कदाचन । तथैव आतरि ज्येष्ठे न यजेन्न विशहयेत् " ॥ यत्तु १५

"पिता पितामहो यस्य अग्रजो वाऽथ कस्यचित्। तपोभिहोत्रमंत्रेषु न देखः परिवेदने "॥ इति तत्स्त्वपितृर्वेषुर्यादिविषयम्। तत्रेवोक्तम्—

'ज्येष्ठभात्रा त्वनुज्ञातः कुर्याद्मिपरिग्रहम्। अनुज्ञातोऽपि वा पित्रा नाद्ध्यान्मनुरव्रवीत्"॥ इति। भारतातपः—

" दाराग्निहोत्रसंयोगं कुरुते योऽग्रजे स्थिते । परिवेत्ता स विज्ञेयः परिवित्तिस्तु पूर्वजः ॥ 💎 २०

" अज्ञे देशांतरस्थे च पतिते प्रविजितेऽपि वा । योगशास्त्रनियुक्ते च न दोषः परिवेदने ॥

" कुडजवामनषंढेषु गद्गदेषु जडेषु च । जात्यंथे विधिरे मूके न दोष: परिवेदने ॥

" एकमातृप्रसूतानां आतृणां परिवेदने । दोषः स्यात्सर्ववर्णेषु नेतरेष्वन्नवीन्मनुः ॥

" परिवेत्तर्न चाग्रिस्तु न वेदा न तपांसि चं? इति ॥ सुन्नं ु:--

"व्यसनासक्तचित्तो वा न।स्तिको वाऽथ वाऽयजः । कनीयान् धर्मकामश्चेदाधानमथ कारयेत् ॥ २५

" पितुर्यस्य तु नाधानं कथं पुत्रस्तु कारयेत्। अग्निहोत्राधिकारोऽस्ति शंखस्य वचनं तथा "॥ 'बुद्धवसिष्ठः

"अम्रजस्तु यदानिमरादध्यादनुजः कथम् । अग्रजानुमतः कुर्यादिमिहोत्रं यथाविधि ''॥ इति । शातातपः—" नाग्रयः परिविदंति न वेदा न तपांसि च ''॥ हारीतः——

" सोदराणां तु सर्वेषां परिवेत्ता कथं भवेत् । दारैस्तु परिविद्यंते नाग्निहोत्रेण नेज्यया " ॥ इति । 🕠 परावारोपि—

" पितृब्यपुत्रः सापत्न्यः परनारीसुतस्तथा । दाराधिहोत्रसंयोगे न दोषः परिवेदने " ॥ परनारीसुतः दत्तकीतादिः । स एव---

" ज्येष्ठो भाता यदा तिष्ठेदाधानं नैव कारयेत् । अनुज्ञातस्तु कुर्वीत शंखस्य वचनं तथा " ॥ कारयेत्कुर्यादित्यर्थः । माधवीये—" अनुज्ञातः किनष्ठो ज्येष्ठात्पूर्वमाधानं कुर्याात्पित्रा ३५

त्वनुज्ञातोऽपि पितुः पूर्वे न कुर्यात् । पित्रादेर्वेधुर्यादिना प्रतिबंधे कुर्यात् " इति ॥ वृद्धयाज्ञवल्क्यस्तु ज्येष्ठस्यापि कदाचित्परिवेत्तृत्वमाह---

" आवसध्यमनाहत्य प्रतायां यः प्रवर्तते। अनाहिताग्निर्भवति परिवेत्ता तथोच्यते "॥ इति। अवसध्ये आपासने ब्रह्मोदनपाकमकृत्वा निर्मथ्याग्निना कृत्वा यः प्रथमाधानं करोति स ५ परिवेत्तेत्यर्थः । " वसंते ब्राह्मणोऽग्निमादधीत ग्रीष्मे राजन्यः शरिद वैश्यः " इति श्रुत्युक्ते (ते. ब्रा. ११११२।७) काले पर्वण्युक्तनक्षत्रे वाऽग्निरीधेयः । तदाह ट्यासः—— " वसंते ब्राह्मणस्य स्यादाधेयोऽग्निर्यथाविचि । क्षत्रियस्याग्निराधेयो ग्रीष्मे तु श्रेष्ठ उच्यते ॥

" शरद्रात्रेथ वैश्यस्याप्याधानीयो हुताशनः " इति । पुनराधाननिमित्तमाहापस्तंबः

"अमीनाधायैतस्मिन्संवत्सरे यो नर्भुयात्स पुनराद्यीत " इति । तथा च श्रुतिः (तै. १० सं. १०५०१) "भागधेयं वा अमिराहित इच्छमानः प्रजां पश्न्यजमान्योपदाद्वावोद्दास्य पुनराद्यीत भागधेयेनैवैनः समर्धयत्यथोशांतिरेवास्येषा " इति । निभित्तांतरमाह स एव "यद्ग्णयोः समास्त्वो नश्येषस्य वोभावनुगतावभिनिम्नोचेद्मसुदियाद्द्या पुनरोधयं तस्य प्रायिविनः " इति । समास्त्वाग्न्योररण्योनश्चि पुनराधेयम् तथा प्रणयनात्पूर्व केवलगार्ह-पत्यानुगमने प्रणयनानंतरमजस्र वा गार्हपत्याहवनीययोरुभयोरनुगमने प्रतिनिधी चास्थापिते १५ सूर्यो यवभिनिम्नोचेद्सतं गच्छेद्वदियाद्द्या तद्या पुनराधेयं कार्यमित्यर्थः । केचितु केवलगार्हपत्यानुगमने प्रतिनिध्यस्थापनेऽपि न पुनराधानं किं तु प्रायश्चित्तमेवेति वदंति । आश्वलायनः—"सर्वी-श्चेद्रनुगतानादित्योऽभ्युदियाद्द्याऽभ्यस्तिमयाद्दाऽग्न्याक्षयं पुनराधेयं वा" इति ॥ कात्यायमः—

" विहायाग्निं सभार्यश्चेत्सीमामुहंध्य गच्छति । होमकालव्यपेतस्य पुनराधानमिष्यते "॥ जीनकः—

Ser.

'अम्रावनुगते यत्र होषकालद्वयं वजेत् । उभयोविंग्रवासे वा लौकिकोऽग्निर्विधीयते ॥
 'प्रोषिते तु यदा पत्नी यदि ग्रामांतरं वजेत् । होमकाले यदि प्राप्ता न दोषेण प्रयुज्यते ॥
 अय तजेव वसति होनकालव्यतिक्रमः । लौकिकाग्निर्विधीयेत काठकश्रुतिद्र्शनात् ॥
 यजनानश्च पत्नी च उभौ प्रवसते। यदि । आ होनान्न निर्वर्तेतां पुनराधानमईति "॥
 संग्रहे "केचिन्तु पत्न्यस्तमयोद्योश्चद्ग्रामादिसीमामतिलंद्य गच्छेत्।

२५ ''समुद्रगो सिंधुं गतोऽन्यदापि स्याल्लोकिको बन्हिरिति बुवंति''॥ ''चतूरा त्रमहूयमानोऽग्निलोंकिको भविति हिरेयुर्वेयतिहरेयुर्लोंकिको भविति हिरेयुर्वेयतिहरेयुर्लोंकिकाः संपर्येरन्यावत्यारे पाममर्थादा नद्यः स्युस्तावद्यतिकामंतावन्वारभेयातां यदि नान्वारभेयातां लोंकिकाः संपर्येरन् '' इति । वोधायनः—

• '' अचोदितेन पाकेन कुतेनोद्धरणेन वा । लोकिकोऽग्निः स विज्ञेयः पुनराधानमहीति ॥ ''नंकयाऽपि विना कार्यमाधानं भार्यया दिजः । अकृतं तदिजानीयात्सर्वानान्वारभंत यत् ॥ ''ज्येष्ठायां दोषहीनायां कनीयस्या यदाग्निमान् । ब्रह्महत्या भवेत्तस्य प्रतिपर्वणि सर्वदा "॥ मृद्धः (५:१६७, १६६)—

भार्याये पूर्वमारिण्ये दस्वाऽमीनंत्यकर्माणि । पुनर्दारिकयां कुर्यात्पुनराधानमेव च ॥ १५ " एवं वृत्तां सवर्णा स्त्री द्विजातिः पूर्वमारिणीम्। दाहयेद्ग्रिहोत्रेण यज्ञषात्रेश्च धर्मवित्"॥ इति । याज्ञवल्क्योऽपि (आचारे ८९)——

१ कखग-प्रथमप्राधान । २ क्ष-म्या । ३ क्ष-हो । ४ क-हि

"दाहियत्वाऽभिहोत्रेण स्त्रियं वृत्तवतीं पतिः।आहरेद्विधिवद्दारानभींश्चेवाविलंबयन्"॥ इति। कात्यायनः—

" स्त्री धर्मचारिणी साध्वी मृता दाह्या तथाऽग्निना । विपरीता न दाह्या तु पुनर्दारिक्रया तथा ॥ " मृतायां चैव भार्यायां दितीयायां कथंचन । समुत्मुजेदग्निहोत्रं मोहितो यो दिजोत्तमः ॥

" ब्रह्मोज्झं तं विजानीयानात्र कार्या विचारणा॥

"दितीयां वै तु यो भार्या दहेदैतानिकाभ्रिभिः । तिष्ठंत्यां प्रथमायां तु सुरापानसमं हि तत्॥" इति । 'एतदाधाने सहाधिकृताया अभिदाने वेदितव्यमिति' विज्ञानेश्वरीये (पृ. २५ पं. १४)। कपदीं— "यदि त्वनेकभार्यस्य काचित्पत्नी मृता तदा । निर्मध्येनैव सा दाह्या तद्भिं धारयेत्पतिः॥" इति । "यदि त्वनेकभार्यः स्यात् विभज्याभिं दहेनमृताम्" इति तु स्मार्ताभिविषयम् । तत्राभिसंसर्गस्य विभागस्य बोधायनादिभिरुक्तक्वात्पुनद्रारिक्तयासंभवे पूर्वमृतायाः पत्न्या अभिदानम् । असंभवे १० तु "निर्मध्येन पत्नीं दाहियत्वा अभिहोत्रं यावज्जीवं यावदाश्रमांतरं वा जुहुयात्"। यदाहुर्वह्वाः "अपत्नीकोऽप्यभिहोत्रमाहरेदित्याहुः । यदि नाहरेत् अनद्धा पुरुषः । कोऽनद्धा पुरुष इति । न देवाम्न पितृन् न मनुष्यानिति । तस्माद्पत्नीकोऽप्यभिहोत्रमाहरेदिति " । भारद्वाजः—

सूत्रम् "यद्यपत्नीकः स्यादुभाभ्यां तस्य संस्कारः औपासनाग्निहोत्राभ्यामिति " 'निर्मन्थ्येन पत्नीमिति'। जैमिनिरिप सूत्रम् "आहिताग्निश्चेत्पूर्वं जाया मृयेत तां निर्मन्थ्येन १५ दहेत् सान्तपनेन वा " इति । आश्वलायनः सूत्रम् " आहार्येणानाहिताग्निं पत्नीश्च " इति । कप्दीं च

"अपत्नीकोऽग्निभिः कुर्यान्नित्यनैमित्तिकाः क्रियाः।अकाम्या अङ्गवैकल्या न हि काम्यासु तत्समम्॥ "आहिताग्निः पूर्वमृतां स्वाग्निभिर्दाहयेत् स्त्रियम्। शक्ये विवाहेऽथाशक्ये नैर्मन्थ्येनैव दाहयेत्"॥इति।

किञ्च आचारोऽप्यत्र दृष्टः शिष्टतमानां पूर्वेषां कण्वविभाण्डकादीनां यथा च भगवतो २० दाशरथेस्तस्मादभावेऽपि पत्न्या नाभिहोत्रादिनिवृत्तिः । तथा विष्णुः—

" मृतायामिप भार्यायां वैदिकाग्निं न संत्यजेत्। उपाधिनाऽपि तत्कर्म यावज्जीवं समापयेत्। " अन्ये कुशमयीं पत्नीं कृत्वा तु गृहमेधिनः। उपासते ह्याग्निहोत्रं यावज्जीवमतन्द्रिताः॥ "रामस्तु कृत्वा सौवर्णो सीतां पत्नीं यशस्विनीम्। ईजे बहुविधैर्यज्ञैः सिहतो भ्रातृभिर्विशी॥" इति। सैत्रायणीश्रुतिरिपि—

''यस्तु स्वैर्गिभिर्भार्यो संस्करोति कथंचन । असौ मृतः स्त्री भवति स्त्री चैषा स पुमान् भवेत्''॥इति । त्रिकाण्डी च—

"यस्य भार्याऽतिदूरस्था मृता वा व्याधिताऽपिवा।अनिच्छुः प्रतिकूला वा तस्याः प्रतिनिधौ क्रिया"॥ इति । यस्वापस्तम्बयचनम् सूत्रं "दारकर्मणि ययशक्त आत्मार्थमग्न्याधेयं कुर्याद्गिहोत्रं दर्शपूर्णमासावाययणञ्च शेषाणि कर्माणि न भवन्तीति"तत्पत्नीमृतेः पूर्वं विच्छिन्नाग्निविषयम् । ३६ तथा च कपर्दिभाष्यम्—" विच्छिन्नाग्नेः कदाचित्पत्नीमरणे यावज्जीवं श्रुतेरवगतत्वात् दारान्तरग्रहणे चासामर्थ्यादात्मार्थमग्न्याधेयं कार्यामिति "। स एव—

" नष्टोत्सृष्टाऽनलसहचरी दाहकुत्येन कुर्यात्येताधानं मथितदहनस्तित्वयायां प्रकल्प्य " इति ॥ नष्टाग्निरुत्सृष्टाग्निर्वा पत्नीमरणे दाहार्थं प्रेताधानं कुर्यात् । किन्तु दाहकृत्ये मथिताग्निरेव कल्प्यः । ततः आत्मार्थमग्न्याधेयं कुर्यात् । आधानप्रभृति यजमान एवाग्नयो भवन्ति । 'यज- ५५ मानो वा अग्नेर्योनिरिति ' श्चतेः (तै. सं. २१४।१०) । यद्पि कपाईवचनम्—

९ अतःपरं पृ. २७ प. २७ पर्यन्तं काखा पाठः।

"पत्नीदाहोपयुक्ताग्नेरग्न्याधेयातपुरा मृतौ । श्रेताधानं तु कर्तव्यमग्न्याधानं तु जीवतः ॥
"पत्नीदाहोपयुक्ताग्नेर्विच्छिन्नाग्निममत्वतः । नाहत्य ऋतुनक्षत्रं नारम्भार्थोदिकं च न "॥ इति ।
तत्युनः क्वतोद्वाहविषयम्। पुनर्दारिक्षयां कुर्योतपुनराधानमेव च इति मन्यादिस्मरणात् (पृष्टिष्ण)।
न च 'अग्न्याधानं तु जीवत वस्यितदशक्यविवाहविषयम् । 'अथाशक्ये नैर्मन्थ्येनैव
प दाहयेत् ' इति वस्यात् । तदेवं शक्यविवाहः पत्नीं स्वाग्निमिद्दाहियत्वा पुनर्दारिक्षयां
कृत्वा अविलंबेनाग्नीनाद्य्यात् । अशक्यविवाहस्तु निर्मन्थ्येन पत्नीं दाहियत्वा यावज्जीवमग्नीन्परिसरेदिति स्थितम् । अपरे तु पत्नीदाहोपयुक्ताग्निविधुर आत्मार्थमग्न्याधेयं कृत्वा यावजजीवमिग्निहोत्रं कुर्यादित्याहुः। तथा च 'अपत्नीकोऽपि अग्निहोत्रमास्वरेत् ' इति, 'दारकर्मणि
यद्यशकः आत्मार्थमग्न्याधेयं कुर्यात् । पत्नीदाहोपयुक्ताग्निः अग्न्याधेयं कृत्वा तत्पुरा मृतौ '
१० इत्यादीनि पूर्वोक्तानि वस्यनानि तदिषयतया योजयन्ति ।

'पत्नीदाहोपयुक्ताभिरन्याधेयं तु जीवतः ' इति वचनं यः शक्याशक्यसंशयविषयः 'पत्नीदाहोपयुक्ताभिः सन् विवाहं न शक्नुयात् ' तद्धिषयम् । ततश्च ' आहिताभिः पूर्वमृताम् ' इत्यनेन न विरुध्यते । विच्छिन्नाभेः पत्नीमरण इत्यादि भाष्यस्यापि कदाचित्पत्नीमरणे सित विच्छिन्नाभेरिति योजनेति ते वर्णयन्ति । यद्यपि 'पाणिग्रहणाद्धि सहत्वं कर्मसु' इत्यादिभिः भ पतिवत् पत्न्या अपि स्वाभित्वमवगम्यते तथापि नोभयोस्तुल्यता । 'पत्नीवदस्याग्निहोन्नम्' इत्यादौ यजमानस्यैव प्राधान्येन स्वाभित्वावगमात् । 'ज्योतिष्टोमेन यजेत' इत्यादोकेवचनश्रुत्या च यज-मानस्यैवाधिकारत्वावगमात् । तदङ्गत्या पत्न्याः स्वामिकोट्यनुप्रवेशात्स्वामित्वं सहत्वं च नि-वेद्य्यम् । 'पत्नी हि पारीणह्यस्येश ' इति श्रुत्या (ते. सं. ६।२।१) गृहोपकरणक्षपधनैकदेश-स्वामित्वमवगम्यते । अत एव ' उपाधिनाऽपि तत्कर्म यावज्ञीवं समापयेत् ' इति पत्न्याः श्वितिनिधिः स्मर्थते । अन्यथा ' न च प्रतिनिधिर्भन्त्रस्वामिदेवाग्निकर्मसु ' इति स्वामिप्रतिनिधि-निवेधेनोपाधिना कर्म समापनमयुक्तं स्यात् । न च वचनात् प्रतिनिधिस्थापनमिति वाच्यम् । वचनादेव पत्न्याभावेऽपि अभिहोत्रादेरनिवतेः । कपर्दीं च—

"अस्ति स्वामित्वलेशोऽस्यास्तःप्राचुर्यं तु भर्तरि।स हि प्रधानं विधिभिस्तस्यैवाथ क्रिया यतः"॥इति। अनेनेव न्यायेनानाहिताग्रेशि शक्ये विवाहे औपासनेन पूर्वमृतां पत्नीं दाहियत्वा १५ विवाहः कार्यः । अशक्ये तु नैर्मन्थ्येन दाहियत्वा धार्यीपासन इति द्रष्टव्यम् । अत्र आङ्बलायनो विशेषमाह—-

- " स्मातिधिनामिभिर्दग्ध्वा मृतां पत्नीं च तां त्रिभिः।शिष्टार्धनोद्वहेद्न्यां पुनश्चैवाग्निमान्यजेत्॥ " प्रागुद्दाहाच शिष्टार्धं स्मार्तस्याभेर्यथाविधि। शुक्रृषेद्य्यपत्नीक इष्टिं कुर्याच वा न वा॥ " सायंप्रातहोंमधर्ममर्थामाविष सब्वरेत् " इति ॥
- अनाहिताग्निः पूर्वमृतां पत्नीमौपासनार्धेन दग्ध्वा शिष्टार्धे सायंप्रातर्जुह्नन् स्थालीपाकं च कुर्वन् तिसमन्नन्यामुद्दहेत् । पुनसद्दाहमकुर्वन्वा सायंप्रातहोममर्थाग्रावेव यावज्जीवं
 सञ्चरेत् । आहिताग्रिस्तु त्रिभिरग्निभिस्तां दग्ध्वा पुनसद्दाहानन्तरमग्निमान् भूत्वा यजेत् ।
 उद्दाहाशक्तौ निर्मन्थ्येन पत्नीं दग्ध्वा यावज्जीवमग्निहोत्रं कुर्वन् पर्वणोरिष्टिं कुर्यादित्यर्थः।
 आरद्वाजोऽपि—
- भ " दंपत्योरुभयोरेको यदि प्राणैर्वियुज्यते । भर्ता वा यदि वा पत्नी जीवन्विधुर उच्यते ॥ " द्वयोः साधारणो विद्धः सहसंस्कारसंस्कतः । प्रेतं विधिबलादेति वन्नीं प्रतीरक्रेत सा॥

" संस्कृत्य विधिवत्प्रेतं विद्वर्जीवन्तमङ्गुते ' ॥ इति । तद्वेमेकाग्निः पत्न्या अभिमद्त्वार्धं द्रत्वा वा अपत्नीकोऽपि यावज्जीवमौपासनं परिचरेत् । केचित्तु औपासनाभ्रिना पत्नीं द्रम्ध्वा विधुरोऽप्यभिमृत्पाद्यौपासनं कुर्योदिति ॥

अग्न्युत्पत्तित्रकारः क्रियाकल्पकारिकायामभिहितः—

- " उद्धृत्य विह्नं प्रणवेन पूर्वमन्विग्नमन्त्रेण हरेत्पुरस्तात् ।
- "निधाय ' पृष्टो दिवि ' मन्त्रकेण ततस्त होमः राकलैश्चतुर्भिः ॥
- "रेखादयो नैव च तत्सतां स 'विश्वानिनोचान ' इमे च मन्त्राः।
- " आरोहणं नास्त्यवरोहणं स्याद्धत्पत्तिरेवं विधुरानलस्य ॥
- " नित्यानि नैमित्तिककाम्यकर्माण्यत्रैव कुर्याद्विधुरः सदैव " ॥ इति । एवमुत्पाय सायं-प्रातरौपासनं कुर्यात् । कर्मान्तेऽग्निलींकिक इत्याहुः । तथा च भारद्वाजः—
 - " आधाय विधिवद्विह्नं भर्ता पत्न्यपि वा पुनः । यावज्जीवं परिचरेदोषधीभिर्यथाविधि ॥
 - " स्थालीपाकं चाययणमस्मिन्नग्नौ विधीयते । आ प्राणविष्रयोगान्तं न जहात्येष पावकः ॥
- "प्राणैवियुक्ते संस्कुर्याद्विधुरं विधुराग्निना" ॥ इति । 'स्त्री चैवं भर्तिरि प्रेते' इति वचनाद्भर्तिरि प्रेते पत्न्यप्योपासनं परिचरेदित्यर्थः । अत्र सार्वभौमीये—' पाणिग्रहणाद्धिगृहमेधिनोर्वतम्' इति द्विचचनस्वारस्याद्न्यतरात्यये स्मार्तकर्मानधिकारज्ञापनादावाभ्यां कर्माणि कर्तव्या- ५५
 नीत्युभयाधिकारित्वेनैव गार्श्वकर्मादौ सङ्कल्पाच्च विधुरस्याश्रमान्तरपरिग्रहार्हत्वाय सन्ध्यावन्दनमात्रं कर्तव्यमिति ।

तथा च तस्याग्न्याभावं सिद्धवत्कृत्य मन्त्रजपेन तत्फलावाप्तिमाह शौनकः

"महत्तत्प्रजपेत्मुक्तं पञ्चवारं दिनेदिने ! औपासनं विना दोषो न स्पृशेद्विधुरं ततः ॥

"अग्ने नय'जपेंद्वर्चं पञ्चवारं दिनेदिने ।विधुरस्याग्निकस्यैन यत्फलं तद्भवेद् ध्रुवस्"॥इति। २० शातातपोऽपि——

"अनिग्नरिप यो विप्रः सदाचारपरो यदि । श्राद्धादिषु समस्तेषु सोऽपि याद्यो मनीषिभिः ॥ "अनिग्नकस्य वेदोऽग्निर्वेद्हीनोऽण्यनग्निकः । साऽग्निकोऽण्यनधीतह्चेद्नग्निक इति स्मृतः ॥ "वैधुर्ये न तु बाधेत पुत्रवान्यदि यो द्विजः । तथा च वेद्विचैव सर्वकर्मसु सोऽर्हति ॥ "पुत्रवान्मृतभार्योऽपि सोऽग्निमानिति संस्कृतः । पुत्र एवाग्निरित्याहुः पुत्रार्थं दारसङ्ग्रहः ॥ "मृतायामिष भार्यायां प्रत्यक्षाग्निर्विन्ह्यति । आत्मन्यग्निर्न नक्षेत्रु तस्मात्कर्मार्ह एव सः"॥ इति ॥ एवं चैकाग्नेविधुरस्याग्निस्वभावासद्भावयोः शिष्टाचारप्राचुर्येण व्यवस्थाऽवगन्तव्या । इति यजनम्॥

अथ याजनं निरूप्यते।

तत्र विधिः श्रूयते—" द्व्यमार्जयन्त्राह्मणः प्रतिगृह्णीयाद्याजयेद्ध्यापयेद्वा " इति । न चायं नित्यविधिः । अकरणे प्रत्यवायादिनित्यलक्षणाभावात् । अपि तु काम्यविधिः । ३० द्रव्यार्जनकामस्य तत्राधिकारात् । तत्रापि नापूर्वविधिः । जीवनोपायत्वेन याजनस्य प्राप्तत्वात् । अग्निहोत्रं जुहुयादृष्टकाः कर्त्तव्या इत्यादिवद्त्यंताप्राप्त्यभावात् । अत्यंताप्राप्तप्रापणं ह्यपूर्वविधिः । नापि परिसंख्या । एकस्यानेकत्र प्राप्त्यभावादेकस्योभयत्र प्राप्तस्यान्यतो निवृत्त्यर्थमेकत्र पुनर्वचनं परिसंख्या ।

१ ज स्यनेकः, क्ष-स्यानेकपुत्रप्राप्त्य ।

" इमामगृभ्णनरश्नामृतस्येत्यश्वाभिधानीमाद्त " इत्यत्र मंत्रिलंगसामर्थ्यादश्वाभिधान्यां गर्दभाभिधान्याश्व रश्नाया ग्रहणे विनियुक्तः पुनरश्वाभिधानीमाद्त इति वचनेनाश्वाभिधान्यां विनियुक्त्यमानो गर्दभाभिधान्यां निवर्तते । तथा च 'पंच पंचनसा भक्ष्या' इत्यत्र स्वेच्छया श्रशादिषु श्र्यमाणं श्वादिभ्यो निवर्तत इति । तस्मात्पक्षे भ प्राप्तत्वात् 'समे देशे यजेत' 'प्राङ्मुखोऽन्नानि भुंजीत्' इतिविन्नियमाविधिरयम् । मंत्रेष्वृष्ट्यादिन्नानं च याजनांगत्वेन छंदोगब्राह्मणे समाम्नायते "यो ह वा अविदितार्षेयछंदोदैवतबाह्मणेन मंत्रेण याजयित वाऽध्यापयित वा स्थाणुं वर्च्छति गर्त वा पद्यते प्र वा मीयते पापीयान्भवति । यातया-मान्यस्य छंदांसि भवंतीति " तद्त्रौतृयाजकस्य दोषाभिधानात् " याजयित्त्वा प्रतिगृह्म वाऽनश्रन् त्रिः स्वाध्यायं वेदमधीयेत " इत्यादीनि अयाज्ययाजनविषयाणि । तथा च देवलः भनः (२।६५५)—

"अयाज्ययाजनेश्चेतैर्नास्तिक्येन च कर्मणाम् । कुलान्यकुलतां यांति यानि हीनानि मंत्रतः ॥ "संवत्सरेण पतित पतितेन समाचरन् । याजनाध्यापनाद्यौनान्न तु शय्यासनादिनां"॥(११।१८०)। पतितेन संसर्ग कुर्वन् शयनादिना संवत्सरेण पतित । याजनादिना तु संवत्सरेण न किंतु सद्यः

पततीत्यर्थः । योनं विवाहः । देवलः——

"याजनं योनिसंबंधं स्वाध्यायं सहभोजनम् । क्वत्वा सद्यः पतत्येव पतितेन न संशयः"॥ बोधायनः (२।१।६२)—

"संवत्सरेण पतित पतितेन समार्चैरन्। याजनाध्यापनाधौनात्सधो न तु शय्यासनादिभिः"॥इति। आपस्तंवः (१।२१।५) " न पतितैः संव्यवहारो विद्यते । तेषामभ्यागमनं भोजनं विवाहमिति २० च वर्जयेत् " इति (१।१।३३)। व्यासः—

" संवत्सरेण पतित संसर्ग कुरुते तु यः । यानशय्यासनैर्नित्यं जानन्वै पतितो भवेत् ॥ "याजनं योनिसंबंधं तथेवाध्यापनं द्विजः। कृत्वा सद्यः पतेत् ज्ञानात्सहभोजनेमेव वा"॥ संवर्त्तः— " महापातकसंयोगी ब्रह्महत्यादिभिर्नरः । तत्संसर्गविशुध्यर्थं तस्य तस्य वतं चरेत् " ॥ इति । यसः—" प्रतिग्रहाध्यापनयाजनानां प्रतिग्रहं श्रेष्ठतमं वदंति ।

२५ " प्रतिमही शुध्यति जप्यहोमैः याँज्यं तु पाँपेर्न पुनन्ति वेदाः" ॥ इति याजनम् ॥ अथाध्ययनम् ।"स्वाध्यायोऽध्येतव्यो ब्राह्मणेन पढंगो वेदोऽध्येय"इति श्रूयते(सह वै उपनिषदि)। अनेन अर्थज्ञानपर्यतं अध्ययनं विधीयते इति न्यायसिद्धम् । मंत्राः पुनरविदितार्थानुष्ठाना अनुष्टेयार्थप्रकाज्ञानासमर्थाः । तस्मात्प्रतिपन्नवेदार्थेऽनुष्ठाताभिल्रषितानि कर्मफलानि प्रामोति न च प्रत्यवेतीति वेदोऽध्येतव्यः तदर्थश्च प्रतिपन्तव्यः । अत्र मनुः (२।१६५)—

30 " तपोविशेषेविंविधेर्वतेश्व विधिचोदितेः । वेदः कुत्स्नोऽधिगंतव्यः सरहस्यो द्विजन्मना " ॥ वतेः प्राजापत्यादिभिः । कुत्स्नः सांगः । स एव (२।१६६)—

"वेद्मेव सदाम्यस्येत् तपस्तप्स्यन् द्विजोत्तमः । वेद्मियासे हि विष्रस्य तपः परमिहोच्यते "॥ इह वेदे । उच्यते "तपो हि स्वाध्याय " इति श्रूयते ।

"योऽनधीत्य द्विजो वेदानन्यत्र कुरुते श्रमम्। स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः"(१६८)॥ ,५ " कुविवाहैः कियालोपेवेंदानध्ययनेत च। कुलान्याशु विनर्श्यति ब्राह्मणातिक्रमेण च (३।६३)॥

१ ट-पाटः । २ क्ष-भो । ३ ट-हा । ४ क्ष-न यजनं कर्म पुनर्निवेदाः । ५ क्रग-निष्कारणं ।

" मंत्रवन्ति समृद्धानि कुलान्यलपधनान्यपि। कुलसंख्यां च गच्छंति कर्षति च महद्यशः॥ " यदधीतमविज्ञानं निगदेनैष शब्यते । अनुमाविव शुष्केंधौ न तज्ज्वलति कर्हिचित्"॥

श्रुवते च (निरुक्ते १।८)---

'' स्थाणुरयं भारहाव: किलाभूद्धीत्य वेदान् न विजानाति योऽर्थम् । योऽर्थज्ञ इत्सक्लं भद्रमश्चुते स नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा "॥ इति । मनुरपि (१२।१००)--

" सेनापत्यं च राज्यं च दंडनेतृत्वमेव च । सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविद्हीते ॥

" इतिहासपराणज्ञः पदवाक्यप्रमाणवित् । अंगोपकारवेदी च वेदार्थं ज्ञातुमर्हति" ॥ इति । इतिहासो भारतरामायणादि:। कुर्मपुराणे (उत्तरार्धे अ. १४ श्लो. ८४–८७)--

" योऽन्यत्र कुरुते यत्नमनधीत्य श्रुतिं द्विजः । स वै मूढो न संभाष्यो वेदबाह्यो द्विजातिभिः ॥

" न वेद्रपाठमात्रेण संतुष्टो वे द्विजोत्तमः । पाठमात्रावसानस्तु पंको गौरिव सीद्ति ॥ "योऽधीत्य विधिवद्वेदं वेदार्थं न विचारयेत्। सं सान्वयः शूद्रसमः पात्रतां न प्रपद्यते" ॥

याज्ञवल्क्यः---

" पारंपर्यागतो येषां वेदः सपरिबृह्वणः । तच्छासाकर्म कुर्वीत तच्छासाध्ययनं तथा ॥ "यः स्वज्ञासां परित्यज्य पारक्यमधिगच्छति। स शूद्रवद्गहिष्कार्यः सर्वकर्मसु साधुभिः॥

" अधीत्य ज्ञाखामात्मीयां परज्ञाखां ततः पठेत्" ॥ मनुः (२।१५७-१५८)--" यथा काष्टमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः । बाह्मणश्चानधीयानः त्रयस्ते नामधारकाः " ॥ इति । '' यथा षंढोऽफलस्त्रीषु यथा गौर्गवि चाफला। यथा चाज्ञेऽफलं दानं तथा विप्रोऽऋचोऽफलः''॥ पराशरः (८।२८)--

"ये पठंति द्विजा वेदं पंचयज्ञरताश्च ये । त्रैलेक्यं तारयंत्येते पंचेंद्रियरता अपि "॥ संवर्तः "वेदं चैवाभ्यसेन्नित्यं शुचो देशे समाहितः" इति । दृक्षः--

" वेदस्वीकरणं पूर्व विचारोऽभ्यसनं जपः । तद्दानं चैव शिष्येभ्यो वेदाभ्यामो हि पंचधा"॥

व्यासः-"वेदाभ्यासं ततः कुर्यात्प्रयत्नाच्छिकितो द्विजः । वेद्मध्यापयेच्छिष्यान् धारयेच्च विचारयेत् ॥ " अधीतमपि ये। वेदं विमुंचित यदा नरः । भ्रूणहा स तु विज्ञेयो वियोनिमधिगच्छिति " ॥ मनुः (१९।१९८)--" शरणागतं परित्यज्य वेदं विश्लाब्य च दिजः । संबत्सरं यवाहारस्तत्पापमपसेधति " ॥

याज्ञवल्क्यः (आ. ४०)---

" यज्ञानां तपसां चैव शुभानां चैव कर्मणाम् । वेद एव द्विजातीनां निःश्रेयसकरः परः"॥

यज्ञादीनां बोधकत्त्वेन निःश्रेयसकरः । दयासः —

" हिरोमिति निर्दिश्य यत्कर्म क्रियते बुँधैः । अधीयते अपि राजर्षे तिद्ध वीर्यकरं भवेत्"॥ ३० आपस्तंबः (१।१ २।६-७)-"ओंकारः स्वर्गद्वारं तस्माद् ब्रह्माऽध्येष्यमाणः एतदादि प्रतिपद्येत । विकथां चान्यां कृत्वा एवं लौकिक्या वाचा न्यावर्त्तते ब्रह्म"॥इति । ब्रह्म वेदं स्वर्गसाधनम् अध्येष्य-माणः स्वर्गद्वारं प्रणवमादौ कृत्वा प्रतिवधेत उपक्रमेत । अध्येतुमध्ययनेन अनुपयुक्ता कथा-विकथां चान्याकृत्वेतदादिप्रतिपद्येत । एवं सित ब्रह्म वेदः होिकवया वाचा व्यावर्तते तया व्यामिश्रितं न भवतीत्यर्थः । अथर्वणे श्रूयते-"प्रणवं देवा असुरजयार्थे प्रार्थयंतः । वरं वृणी- ३५

९ 'स चालार शतकळाच्न 'ति गारः । २ स—निमति । २ ध्य—त गैर ।

ष्वेत्यवृवंस्तान् प्रणवोऽत्रवीत् न मामनिरिधत्या ब्राह्मणा ब्रह्म वदेयुर्यदि वदेयुः अब्रह्मेव स्यादिति। तस्मादोंकारः पूर्वमुच्यत इति। एव एव हि पुरस्तादुच्यते एव पश्चादितीति च "। इत्यध्ययनम्॥

अथाध्यापनम् । स्मृतिरत्ने-

े याजनाध्यापने शुद्धे तथा पूतप्रतिबहः । एव सम्यक्समारूयाता त्रितंयी तस्य जीविका "॥ ५ अध्यापने नियमानाह यमः--

"सततं प्रातरुत्थाय दंतधावनपूर्वकम् । स्नात्वा हुत्वा च शिष्येभ्यः कुर्यादध्यापनं नरः "॥ मनुरपि (२।७०)—

" अध्येष्यमाणं तु गुरुर्नित्यकालमतंद्रितः । अथीष्व भो इति ब्रूयाद्विरामोऽस्त्विति चारमेत् ॥

" आचार्यपुत्रः जुश्रूषुर्ज्ञानदो धार्मिकः जुचिः । शक्तोऽर्थदोऽर्थी स्वः साधुरध्याप्या दश् धर्मतः ॥ १ - (२।१०९)

"धर्मार्थों यत्र न स्यातां शुश्रूषा वाऽपि तिद्ध्या। तत्र विद्या न वक्तव्या शुमं बीजिमिवोषरे (११२)॥
"विद्ययेव समं कामे मैर्तव्यं ब्रह्मवादिना। आपद्यपि च घोरायां न त्वेनामिरिणे वपेत् (११३)॥
"विद्या ब्राह्मणमेत्याह शेवधिस्तेऽस्मि रक्षमां। असूयकाय मां माऽदाः तथास्यां वीर्यवत्तमा (११४)॥
"यमेव तु शुचिं विद्यान्नियतं ब्रह्मचारिणम्। तस्मै मां ब्रूहि विप्राय निधिपायाप्रमादिने" (११५)॥
1५ शेवधिरित्यादिविद्याया वचनं शेवधिनिधिः। ते शेवधिरस्मि विद्या जानीयाः। निधिपाळाय विद्या

निधिपालाय । स एव (२।११६)---

" ब्रह्म यस्त्वननुज्ञातमधीयानाद्वाप्नुयात् । स ब्रह्मस्तेयकृद्विप्रो नरकं प्रतिपद्यते ॥

"नापृष्टः कस्याचिद्ब्र्यात् न चान्यायेन पृच्छतः। जानञ्जपि हि मेधावी जडवह्रोक आचरेत्(११०)॥

"अधर्मेण तु यः प्राह यश्चाधर्मेण पृच्छति । तयोरन्यतरः प्रैति विद्देषं वाऽधिगछति" (१११)॥
• प्राह वचनं करोति । प्रैति श्रियते ।

विद्याधर्मस्त्रियो विशिष्टतराश्चेदविशिष्टाद्प्यपादानाद्वैश्यमुपादेया इत्याह स एव (२।२३८)

" श्रद्धानः शुभां विद्यामाददीतावरादि । अंत्यादिष परं धर्मः स्त्रीरत्नं दुष्कुलादिष " ॥ एतदेव दृष्टांतेनोपपादयति (२।२३९-२४३)

" विषाद्प्यमृतं माह्यं वालाद्पि सुभाषितम् । अभित्राद्पि सद्वृत्तममेध्याद्पि कांचनम् ॥ अ ''स्त्रियो रत्नं तथा विद्या धर्मः शोचं सुभाषितम् । विविधानि च शिल्पानि समादेयानि सर्वतः ॥

" अबाह्मणाद्ध्ययनमापत्काले विधीयते । अनुवज्या च शुश्रूषा यावद्ध्ययनं गुरोः " ॥ अबाह्मणात्क्षत्रियवेक्याभ्याम् ।

''अधीयीरन्स्वकर्मस्थास्त्रयो वर्णा द्विजातयः। प्रब्रूयात् बाह्मणस्त्वेषां नेतराविति निश्चयः(१०।१)॥

'' बान्नणः क्षत्रियो वेश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः । चतुर्थ एकजातिस्तु शूदो नास्ति तु पंचमः ''॥ • हारीतः— (१०४)

(१०१५) "मंत्रार्थज्ञे जपञ्जुटहंस्तथेवाध्यापयत् द्विजः । स्वर्गलोकमवामोति नरकं तु विपर्यये"॥

लिखितं पाउं निषेधति नारइ:--

" पुस्तकप्रत्ययाधीतं नाधीतं गुरुसंन्नियो। भ्राजते न सभामध्ये जारगर्भ इव स्त्रियाः"॥ इति। स्र एव---

ः "हस्तहीनस्तु योऽधीते स्वरवर्णविवार्जितः । ऋग्यजुःसामभिर्दग्धो वियोनिमधिगच्छति"॥ हारीतः——

१ क्ष-तृतीयं। २ क्ष-कर्तव्यं। ३ क्ष-ऐस्म। ४ क्ष-त्यं।

"अध्यापनं च त्रिविधं धर्मार्थं चार्थकारणात् । शुश्रूषाकरणाचेति त्रिविधं परिकीर्तितम् ॥
"येषामन्यतमाभावे यृषाचारे भवेद् द्विजाः । तत्र विद्या न दातव्या पुरुषेण हितेषिणा ॥
"योग्यानध्यापयेच्छिष्ठाष्यानयोग्यानिष वर्जयेत् " ॥ याज्ञवल्क्यः (आ. २८)——
"कुतज्ञोऽद्रोहि मेधावी शुच्चः कल्पोऽनसूयकः। अध्याप्यो धर्मतः साधुः शक्तासो ज्ञानवित्तदः"॥
व्यासः—

"कुतज्ञश्च तथाऽद्रोही मेधावी शुभक्कत्तरः। आप्तः प्रियोऽथ विधिवैत् षडध्याप्या द्विजोत्तमेः"॥इति।
आपस्तंबः (२।५।१८)—"यथागमं शिष्येभ्यो विद्यासंप्रदाने नियमेषु च युक्तः स्यादेवं वर्त्तमानः
पूर्वापरान् संबद्धानात्मानं च क्षेमे युनिक " इति । येन प्रकारेणागमपाठार्थयोस्तथैव शिष्येभ्यो
निर्मत्सरेण विद्या संप्रदेया । एवंभूतो विद्यासंप्रदाने युक्तोऽविहतः स्यात् च गृहस्थस्य नियमाध्यापनेऽन्यत्र च तेष्विप युक्तः स्यादेवं वर्त्तमानः पूर्वान्पितृपितामहप्रपितामहानपरान् पुत्रपौत्रनप्तृ- १०
न्कर्मणिवर्त्तुस्वसंबंधिनः पुरुषानात्मानं च क्षेमे अभयस्थाने नाकगृष्टे युनिक स्थापयतीत्यर्थः ॥
बोधायनः (१।२।४९–५०)——

"धर्मार्थों यत्र न स्यातां शुश्रूषा वाऽपि तद्दिधा । विद्यया सह मर्तव्यं न चैनामूषरे वेपेत् ॥ "अग्निरिव कक्षं दहित ब्रह्मपृष्ठमनादृतम् । तस्माद्दे शक्यं न ब्रूयाद्वह्म मानमकुर्वताम्" ॥ इति । स एव (१।२।४२-४३)-"अबाह्मणाद्दध्ययनमापदि शुश्रूषाऽनुवज्या च यावद्ध्ययनम्'॥इति । १५ गौतमः (९।६८)-" सत्यधर्मार्येवृत्ती शिष्टाध्यापकः" इति । स एव (७।१) " आपत्कल्पो बाह्मणस्याबाह्मणाद्दिद्योपयोगोऽनुगमनं शुश्रूषा समाप्ते बाह्मणो गुरुः"॥ इति । न चापररात्रमधीत्य पुनः प्रतिसंविशेत्न स्वप्यादित्त्यर्थः । मनुः (४।९९)

"नाविस्पष्टमधीयीत न जूद्रजनसंनिधौ। नानिँशीथे परिश्रांते ब्रह्माधीत्य पुन: स्वपेत्''॥ ठ्यास:"अनध्यायेष्वधीतं यद्यच्छूद्रस्य च संनिधौ। प्रतिग्रहनिमित्तं च नरकाय तदुच्यते''॥ इति। स एव- २०
"आत्मार्थं भोजनं यस्य रत्यर्थं यस्य मैथुनम्। वृत्त्यर्थं यस्य चाधीतं स याति नरकान्बहून्''॥
जातातपः--

"वेदाक्षराणि यावंति नियुंज्यादर्थकारणात्। तावंति भ्र्णहत्या वै वेदविक्रय्यमाप्नुयात्"॥ छागलेयः—

" प्रस्यापनं प्राध्ययनं प्रश्नपूर्वप्रतिग्रहः। याजनाध्यापने वादः षिद्धधो वेद्विकयः"॥२५ प्रख्यापनं अहं चतुर्वेदीत्यादि राजमंदिरादावाक्रोशः। स्वस्योत्कर्षार्थमध्ययनं प्राध्ययनम्। कियन्मे दास्यतीत्युक्त्वा प्रतिग्रहो याजनमध्यापनम्। प्रश्नपूर्वाणि इतरमधिक्षिप्य स्वविद्याख्यापने परस्परं विवादः। शातातपः—–

" प्रश्नपूर्वे तु यो द्याद्वाह्मणाय प्रतिग्रहम् । स पूर्वे नरकं याति ब्राह्मणस्तद्नंतरम् " ॥ स्मृतिसंग्रहे—

"गायत्रीं मूल्यमादाय यः परस्मै प्रयच्छति। स जीवन्नन्त्यैजातित्वं संप्राप्नोति न संशयः"॥ शौनकः--

" वेदाक्षराणि यावंति नियुंक्ते त्वर्थकारणात् । तावंति भ्र्णहत्या वै लभते नात्र संशयः ॥ " अर्थार्थं भोजनार्थं वा यो वेदाक्षरमुच्चरेत्। चांडालः स तु विज्ञेयः सर्वकर्मबहिष्कृतः"॥ इति । भृतकाध्ययनभृतकाध्यापने उपपातकेषु पठित याज्ञवल्क्यः (पा.२३५)–" भृतकाध्ययनादानं ३५ भृतकाध्यापनं तथा " ॥ इति । इत्यध्यापनस् ।

अथोपाकरणम् ॥ मनुः (४।९५-९६)---

" श्रावण्यां प्रौष्टपद्यां वा उपाकृत्य यथाविधि । युक्तश्छंदांस्यधीयीत मासान्विप्रोऽर्धपंचमान् ॥ " पुष्ये तु छंदसां कुर्याद्महिरुत्सर्जनं द्विजः । माघशुक्कस्य वा प्राप्ते पूर्वाह्ने प्रथमेऽहिन " ॥

अध्वर्यूणां श्रावण्यां प्रोष्ठपद्यां छंदोगानामिति व्यवस्थितविषयोऽयं विकल्प इति त-५ ब्राख्यानम् । प्रामाद्वहिरुत्सर्जनाख्यं कर्म प्रथमेऽहिन प्रथमायां तिथौ पुष्येऽध्वर्यूणां माघे छंदो-गानाम् । आपस्तंदः (१।९।१–३)—" श्रावण्यां पौर्णमास्यामध्यायमुपाकृत्य मासं प्रदेषि नौधीयीत तैष्यां पौर्णमास्यां रोहिण्यां वा विरमेद्धंपंचमांश्वतुरो मासानित्येके" इति ॥

"मेषादिस्थे सवितरि यो यो दर्शः प्रवर्तते। चांद्रमासास्तत्तदंताश्चेत्राचा द्वादश स्मृताः ॥
"तेषु या या पौर्णमासी सा सा चैंत्यादिकाः स्मृताः । कौदाचित्केन योगेन नक्षत्रस्येति निर्णयः"॥

तदेवं सिंहस्थे सवितरि याऽमावास्या तदंते चांद्रमासे या मध्यवर्तिनी पौर्णमासी सा श्रावर्णी ।
श्रवणयोगस्तु भवतु वा मा वाँऽभूत्। तस्यामध्यायमुपाकृत्य स्वगृद्धोक्तेन विधिना 'उपाकर्म स्वगृद्धोक्ते
काल ' इत्यित्रस्मरणात् । स्वगृद्धोक्तकाले उपाकर्म कृत्वा स्वाध्यायमधीयीत । अधीयानश्च
मासमेकं प्रदोषे प्रथमे रात्रिभागे नाधीयीत । तैष्यां पौर्णमास्यां तेषे मासि तिष्यात्पूर्वा या
रोहिणी तस्यां विरमेत् । स्वगृद्धोक्तविधिना उत्सर्जनं कुर्यात् । अनयोः पक्षयोः पंच मासानप्रधीयीत अर्धपंचमानिति अर्ध पंचमो येषां ते अर्धपंचमाः । अर्धोधिकांश्चतुरो मासानधीयीतेत्येके
मन्यते । अस्मिन्पक्षे प्रौष्ठपद्यामुपाकरणं शाखांतरदर्शनादिति । तथा गौतमः (१६।१)
"श्रावणादिवार्षिकं प्रौष्ठपदीं वोपाकृत्य तदादि छन्दांस्यधीयीत"। तदिद्मध्ययनं वार्षिकं प्रतिसंवत्सरं भवति अर्धपंचमान्पूर्णान्यावद्क्षिणायनं वाऽधीयीतेत्यर्थः । बोधायनस्तु (१।५।१४२)——
"श्रावण्यां पौर्णमास्यामाषाढ्यां वोपाकृत्य तैष्यां माध्यां वोत्रसृजेयुः" ॥ इति । याज्ञवाहक्यः

(आ. १४२)—
" अध्यायानामुपाकर्म श्रावण्यां श्रवणेषु वा । हस्तेनौषधिभावे वा पंचम्यां श्रावणस्य वा " ॥
ओषधीनां प्राहुर्भावे सति श्रावणमासस्य पौर्णिमास्यां श्रवणयुक्ते वा दिने हस्तेन युक्तायां पंचम्यां वा स्वगृह्योक्तविधिना कृर्यात् ।

अत्र व्यवस्था दार्शिता स्मृतिंसारे-श्रावण्यां पौर्णमास्यां श्रावणमासस्य श्रवणे वा पंचम्यां प्रहस्ते वा पंचम्यां पंचमीहस्तयोगे वा यथास्वकृताचारं कुर्यादिति । कालादशैंऽपि—

"अध्यायानामुपाकर्म श्रावण्यां तैत्तिरीयकाः। बह्वृचाः श्रवणे कुर्युः सिंहस्थोऽकीं भवेद्यदि ॥ "सहस्तशुक्कृपंचम्यां न तद्ग्रहणसंक्रमे । असिंहार्के प्रोष्ठपद्यां श्रवणे च व्यवस्थया" ॥ इति । अर्कः सूर्यः सिंहराशिस्थितो यदि स्यात्तदा तैत्तिरीयाः श्रावणमासस्य पौर्णमास्यामध्यायानामुपाकर्म कुर्युः। बह्वृचाः श्रवणनक्षत्रयुक्तातियौ कुर्युः। तत्रासंभवे तन्मास एव हस्तनक्षत्रयुक्तपंचम्यां वा कुर्यात्। ग्रहणे संक्रमे च तद्वपाकर्म न कुर्युः। असिंहार्क इति यदि सूर्यः सिंहराशिस्थितो न भवति तदा प्रोष्ठपद्यां भाद्रपदपौर्णमास्यां श्रवणे च व्यवस्थया कुर्युः। प्रोष्ठपद्यां तैत्तिरीयकाः कुर्युः। बह्वचाः श्रवणर्क्षयुक्तिथाविति व्यवस्था। चकारात् भाद्रपद्मासे हस्तनक्षत्रयुक्तिथा-विति सूचितम्। तथाह गार्ग्यः—

" पर्वण्योदयिके कुर्युः श्रावणं तैत्तिरीयकाः। बह्वचाः श्रवणे चैव ग्रहसंक्रांतिवर्जिते " ॥ औद्यिके उद्यकालव्यापिनी । गौभिलोऽपि—

१ छो—या । ३ छो—स्य । ३ छा—स्या । ४ जल्पास्याकोत्साते । १० वर वरणस्याना

"पर्वण्यौदैयिके कुर्युः श्रावणं तैत्तिरीयकाः। बह्नुचाः श्रवणर्क्षे तु हस्तर्क्षे सामवेदिनः "॥ इति। स एव-

''छंदोगाभिहिताः कुर्युः प्रातरौत्सर्गिकीं क्रियाम्।अपराह्णेऽप्युपाकर्म पुष्यहस्तर्क्षयोर्द्विजाः''॥ हस्तर्क्ष उपाकर्म पुष्यर्क्षे उत्सर्ग कुर्युः ।

"अध्यायानामुपाकर्म कुर्यात्कालेऽपराह्निके। पूर्वाह्ने तु विसर्गः स्यादिति वेदविदो विदुः॥ "उपाकर्मणि चोत्सर्गे यथाकालं समेत्य च। ऋषीन् दर्भमयान् कृत्वा पूजयेत्तान् द्विजस्ततः"।इति॥

सामवेदिनः सिंहभाद्रपदे मौड्यादिना दृषिते सति कन्यामास अपरपक्षे हस्त-नक्षत्रे उपाकरणं कुर्विति । तत्र सायं त्रिमूहर्त्तव्यापि हस्तनक्षत्रं ग्राह्मम् । मौढ्यादिरहिते तु सिंहभाद्रपदे शुक्के उद्यादिसंगवान्तव्यापि हस्तर्क्ष बाह्यम् । तथा संग्रहे " हस्तर्क्षेऽनुद्ये शुक्के त्रिमुहूर्त्तास्तगे सिते " इति । हस्तर्क्षे त्वाष्ट्रक्षेण संयुतं संगवांतयुगिति च । तिथिद्र्षेणे च— १० "औदयिके संगवस्पर्शे श्रुतौ पर्वणि चार्कभे हैं। कुर्युर्नभस्युपाकर्म ऋग्यजुःसामगाः क्रमात्"॥ इति । संगवस्पर्शे संगवांतस्पर्शे । अत्र वृद्धगार्ग्यः—

" घटीपरिमितः कालः संगवादूर्ध्वपर्वाणि । औदयिकमिति प्राहुर्मुनयः स्मृतिचिंतकाः " ॥ " परेन्हि संगवादूर्ध्वं पूर्णिमाश्रवणं वजेत् " । स्मृत्यंतरे—

" सन्धिः संगवतः पश्चादर्वाङ्मध्यंदिनाद्यदि । तत्रैवोपाकृतिं कुर्यात्सद्यश्च समिदाहुतिः " ॥ १५

"संधिः संगवतः प्राक्चेत्पूर्वस्मिन्पर्वाणे क्रिया। श्वोभृते समिदाधानमेष श्रावणिको विधिः"॥ तथाऽध्वर्युनधिकृत्य स्मर्यते

"श्रावणी पौर्णमासी तु संगवात्परतो यदि । तदैवौदयिकी प्राह्मा नान्यदौद्यिकी भवेत्"॥ इति। तदेवं उदयादि द्वादशघटिकाधिकं किंचित्कालव्यापिन्यां पौर्णमास्यां यजुःशाखिन्या-मुपाकर्म । उद्यादिद्वाद्श्वटिकाव्यापिनि हस्तनक्षत्रे छंदोगानां मौद्यादिदूषिते तु सिंह- २० भाद्रपदे कन्यापरपक्षे सायं त्रिमुहूर्त्तव्यापिनी । हस्तनक्षत्रे छंदोगानां बह्वचानां तु सूर्योदयात्परं घटिकाद्वयव्यापिनि श्रवणनक्षत्रे । तथैव संग्रहे

"उदयन्यांपिनं चैव विष्णवर्क्षे घटिकाद्वयम्। तत्कर्म सार्थकं स्याच्च तदोपाकरणं भवेत्''॥ वैंसिष्टः मलमायां--

"यां तिथिं समनुप्राप्य श्रवणं घटिकाद्दयम्। तस्यामुपाक्वतिं कुर्युराश्वलायनशाखिनः"॥इति। २५ गार्ग्य:-

" अर्धरात्राद्रथस्ताच्चेत्संक्रांत्यां ग्रहणेऽपि वा। न कर्त्तव्यमुपाकर्म परतश्चेन्न दोषभाक्[?]॥

⁽⁽⁾ मलमासे निपतिते सूतके मृतकेऽपि वा । यहणे संक्रमे वाऽपि मौढ्येऽपि गुरुशुक्रयो: ॥

" प्रौष्ठपद्यामथाषाढ्यामुपाकरणमिष्यते । प्रौष्ठपद्यामुपाकुर्याच्छ्रावणं दूषितं यदि ॥ "आषाढे वाऽपि कर्त्तव्यं प्रौष्ठपद्यां च दूषिते।मासत्रयेऽपि दोषश्चेच्छ्रावण्यामेव कारयेत्"॥

" श्रावण्यामथवाऽऽषाढ्यां प्रौष्ठपद्यामथापि वा । दुष्टायां पूर्वपूर्वस्यामुत्तरस्यां विधीयते ॥ " कालत्रयेऽपि दोषे तु श्रावण्यामेव कारयेत् । पौर्णमास्यास्तु नित्यत्त्वादापस्तंबस्य शासनात् ॥

" मुक्त्वा भाद्रपदाषाद्यौ श्रावण्यामेव कारयेत्" ॥ इति ।

९ क्ष-धि। २ ख-अन्यच्च। ३ क्ष-हे। ४ कखग-स्थिति। ५ कखग-श्रावणवते। **६ करवग**-आवर्तनादादि । ७ क्ष- एवाधिको । ८ क्ष-घटिकाच्याधिना । ९ **खग-**च्यापिनि त्वेन । १० कखग- पद्धतो । ११ कखग-वसिष्ठः ।

"अधीतवेदविद्यानां कर्त्तव्यं तु द्विजन्मनाम् । अध्यायांगमिदं नित्यमिति होवाच भार्गवः॥

" वेदोपाकरणे प्राप्ते कुळीरस्थे दिवाकरे । उपाकर्म न कर्त्तव्यं कर्त्तव्यं सिंहयुक्तके ॥ " सिंहद्र्शा तु या पूर्वा पूर्णा सा श्रावणी मता। तत्रैवोपाकृतिं कुर्यात्सिंहस्थोऽकों भवेन वा " ॥ इत्यादीनां वचनानां परस्परविरुद्धानां देशभेदेनाविरोधमाहुः

"कुर्लीरे सूर्यसंयुक्ते उपाकुयार्तु दक्षिणे । नर्मदोत्तरदेशे तु कर्तव्यं सिंहयुक्तके "॥ इति । आंधमहाराष्ट्रककर्णाटककायस्था दाक्षिणात्या तद्यतिरिक्ताः सर्वे नर्मदोत्तरतीरस्था इत्यभियुक्त-वादः । गुरुशुक्रमौद्ये मलमासे च प्रथमोपाकरणं प्रतिषेधति वृद्धमनुः—

"गुरुभार्गवयोमैंक्ये मलमासे तथैव च। प्रथमोपाकृतिर्न स्यात्कुर्याच्चेत्स विनश्यिति"॥इति। यत्तु "प्राधान्येन विधानाच्च मनुनाऽध्यायकर्मणः। प्रथमोपाकृतिश्चापि कर्त्तव्येत्याह गौतमः"॥इति

१० गौतमवचनं तत्कृतशांतिविषयम् । यदाह **बृहस्पातः**—

"शांतिं कृत्वा तयोर्वाऽपि शुकदेवेंद्रमंत्रिणोः । होमैर्दानैर्जपैर्वाऽपि तयोरुद्तिमंत्रकैः ॥
"क्तिंव्यं श्रावणं विप्रैरिति जीवेन भाषितम् "॥ इति । श्रावणप्रोष्टपद्गषाहेषु एकस्मिन्दोषरिहते प्रथमोपाङ्गतिः कर्तव्या । त्रिष्वपि दुष्टेषु श्रावणमासे शांतिपूर्वका कर्त्तव्या । उदितमंत्रकैः गृहयज्ञोक्तमंत्रैः । पद्धतिग्रंथे 'वृहस्पते अति यद्र्ये' इति बृहस्पतेः । 'प्रवः शुक्राय ' इति
भ शुक्रस्य । "आप्यायस्य स मे तु" इति मलमासो सोमस्य । सूर्योपरागसंक्रातौ 'चित्रं देवानाम् 'उद्धत्यं जातवेदसं'सूर्यो देवीमुषसम्"उद्धयंतमसस्पिरे' आ सत्येन रजसा देवो वः सवितोत्पुनातु । इति सूर्यस्य । सोमोपरागे 'सोमो धेनुम्' इति षड्मिः 'नवो नवो भवति' इति च सोमस्य शांतिहोमं कृत्वा उपाकरणांगहोमं कुर्यादिति ।

" प्रथमोपक्रमे प्राप्ते कुर्लीरस्थे रवौ सित । उपाकर्म न कुर्वीत कुर्यात्सिंहस्थिते रवौ " ॥ यत्तु २० " यज्ञोपवीतं कर्त्तव्यं श्रावणे गुरुशुक्रयोः । बाल्ये मौद्धोपि वार्धक्ये कर्त्तव्यं नित्यकर्मवत् " इत्यादि तत् छासाधीशस्य शक्तिसद्भाविषयमिति । सार्वभौमीये तत्रैव—

" ऋग्यजुः सामाथर्वशा जीवशुक्रकुर्जेदुजाः । शालाधीशे शक्तियुक्त तच्छालाध्ययनं शुभम् ॥ "एको मूढो भवेदन्यः स्वोचिभित्रांशगो यदि । स्वराशिमूढगौ चैव मोठ्यदोषो न विद्यते"॥ इति आत्रेयदर्शनात् शुक्रे शिक्तयुते गुरुमोठ्येऽपि यजुःशाले।पाकर्म कर्त्तव्यम् । शुक्रमोठ्यादावप्ये-२५ वम् । मोठ्यादिदोषेषपाकर्मवर्जनस्मरणं स्वशालाधीशस्य शक्तवभावविषयमिति शालाधीशस्य शक्तो सत्यामपि मासत्रयदोषे श्रावणमासे शांतिपूर्वकभेवोपाकर्म कर्त्तव्यामित्यन्ये । एतचो-पाकरणं गृहस्थबह्मचारिणोः साधारणं कर्म।मन्वादिभिर्गृहस्थधममध्ये उपाकरणस्य विधानात्। "उपाकर्म तथोत्सर्ग वनस्थानामपीष्यते । धारणाध्ययनं कृत्वा गृहिणां ब्रह्मचारिणाम्"॥ इति देवळस्मरणात् । " अर्धायीत गृहस्थोऽपि नियमाद ब्रह्मचारिवत्" इति व्यासस्मरणात् ।

३० "समावृत्तो ब्रह्मचारी कल्पेन यथान्यायमितरः" इति शौनकस्मरणाच्च। अत्र ब्रह्मचारिकल्पेनेति ईषद्समाप्तौ कल्पविधानात् गृहस्थस्य मेखलाजिनदंडविरहित मुपवीतधारणं तर्पणहोमादिक-मविरुद्धं कर्त्तव्यतयाऽवगम्यते ।

. अत्रोपवीतधारणमाह **भरद्वाजः**—" अथ यज्ञोपवीतस्य धारणे कथ्यते विधिः ।

" स्नात्वा शुद्धः शुचौ देशे प्रक्षालितपद्द्यः । करदंद्वपवित्रश्च कृतोद्रस्पर्शनो द्विजः ॥ " उपविश्यासने दुर्भे प्राणानायम्य मंत्रतः । मंत्रं सदैवमुच्चार्य ब्रह्मसूत्रं गले क्षिपेत् ॥

१ सग-पूर्णिमा ।२ कखग-पाबल्ये सति वेदितन्यमिति। ३ खग-स्यादिवचन। ४ खग-वाग्यतः।

" दक्षिणं बाहुमुद्भृत्य शिरसैव सह द्विजः। गृहस्थस्य वनस्थस्य सूत्रं प्रति पुनः पुनः ॥ " मंत्रोच्चारणमाचामद्वितयं क्रमशः स्ष्टृतम् " ॥ शांडिल्यः—

" आर्द्रवासा न कुर्वीत कर्म किंचित्कथंचन । राक्षसं तिद्धि विज्ञेयं तस्मायत्नेन वर्जयेत् ॥ ' उपवीतादिकं धार्य उपाकर्मणि तन्नवस्। अनवं वा नवं वाऽपि पुरातनिमह त्यजेत्"॥स्मृतिसारे—

" मौंजीयज्ञोपवीतादि नवमेव तु धारयेत् । किटिस्त्रं चैव नवं नववस्त्रमुपाकृतौ "॥ ५ व्रतच्छिष्टेपेधं स्मर्थते

" मेखलामजिनं दंडं वस्त्रं यज्ञोपवीतकम् । पूर्वोपयुक्तमुत्मुज्य धारयेयुर्नदं व्रते"॥ इति । अत्र कपर्दी—

" प्रजापितमुखान देवाने के के त्रिस्तिलोदकम्। उद्घृत्य तर्पणं कुर्याच्छ्रावण्यां तैसिरीयकाः "॥ उपाकर्मणि ब्रह्मचारिणां वपनमावज्यकम्। 'श्रावण्यां पौर्णमास्यां शिष्यं वापयित्वेति ' व वैखानसे दर्शनात्

'श्चरकर्म न कर्तव्यं चौलात्परमृतुत्रयम् । तथोपनयनादूर्ध्वमुपाकर्म विन। कचित्'॥ इति स्मृतेश्च । तत्र तिथिवारादिदोषो न चिंत्यः

"वैधे कमीण तु प्राप्ते कालदोषं न चिंतयेत्। सद्यः क्षीरं तु कुर्वीत मातापित्रोर्म्वतौतथा "॥ इति विस्वष्टस्मरणात् । एवं प्रत्यब्दं श्रावण्यामुपाकर्भ कार्यम् । कात्यायनः——

" प्रत्यब्दं यदुपाकर्म सोत्सर्गे विधिवत् द्विजैः । कियते छंदसां तेन पुनराप्यायनं परम् ॥ " अयातयामैश्च्छंदोभिर्यत्कर्म कियते द्विजैः । कैशिडमानैरिप तदा तत्तेषां सिद्धेकारणम्"॥ इति इत्युपाकरणम् ॥

अथानध्यायाः ॥ सनुः (४।९७)--

"यथाशास्त्रं तु कृत्वैवमुत्सर्गे छंदसा बिहः। विरमेत्पक्षिणीं रात्रिं यद्दाऽप्येकमहार्निशम्"॥ २० तद्देदाध्ययनम्

"अत ऊर्ध्व तु छंदांसि शुक्के तु नियतः पठेत् । वेदांगानि च सर्वाणि कृष्णपक्षेषु संपठेत्"॥ एतद्भगकत्याध्ययनं स्नातकानां ब्रह्मचारिणामपि साधारणम्

"इमान् नित्यमनध्यायानधीयानो विवर्जयेत् । अध्यापनं च कुर्वाणः शिष्याणां विधिपूर्वकम्॥ "उपाकर्मणि चोत्सर्गे विरात्रं क्षपणं स्मृतम् । अष्टकासु त्वहोरात्रमृत्वंतासु च रात्रिषु"॥ (४।१०१) २५ उपाकर्मणि विरात्रमृत्सर्गे तु पूर्वोक्तपक्षिण्यहोरात्राभ्यां सह विकल्प इति विज्ञानेश्वरः (१.४१ पं. १९) । प्रथमाध्ययने व्यहमितरत्र पक्षिण्यहोरात्रं वा

"उत्सर्गे प्रथमाध्यायेऽत्वनध्यायस्त्रचहं भवेत्। धारणाध्यापनादौ तु पक्षिणीं दिनमेव वा "॥ इति मनुस्मरणादित्यन्ये ।

"मार्गशीषे तथा प्रोष्ठे माघमाते तथैन च। तिस्रोऽष्टकाः समाख्याताः कृष्णपक्षेषु सूरिभिः"॥ इति। ३० विष्णुस्तु "तिस्रोऽष्टकाः तिरत्रोष्टन्वकास्तिस्रः पुर्वेद्यः। प्रौष्ठपदे हेमंतिशिशिरयोरपरपक्षेषु"॥ इति। नित्यानध्यायानाह हारीतः—

"आमावास्या गुर्ह हंति शिष्यं हंति चतुर्दशी। ब्रह्माष्टकापोर्णमास्यौ तस्मात्ताः परिवर्जयत्"॥ ३५ ब्रह्म वेद वीर्यं चनित अष्टका पौर्णमास्या।नैमित्तिकानध्यायानाह याज्ञवल्क्यः (आ.१४८-१५१)-

[&]quot; श्वक्रोष्ट्रगर्दभोलुकसामवाणार्तनिस्वने । अमेध्यशवश्रुदान्त्यरुमशानपतितांतिके ॥

१ क्ष-क्षिय। २ खग-वृद्धि।

ч

" देशेऽशुःचावात्मानि च विद्युत्सनितसंप्रुवे । भुक्तवाऽऽर्द्रपाणिरंभोतरर्धरात्रेऽतिमारुते ॥ " पांसुप्रवर्षे दिग्दाहे संध्यानीहारभीतिषु । धावतः पूर्तिगंधे च शिष्टे च गृहमागते ॥ "सरोष्ट्रयानहरूत्यश्वनौवृक्षेरिणरोहणे । सप्तत्रिंशदनध्यायानेतार्कातकालिकान्त्रिद्धः" ॥ इति । स एवं (आ. १४४।१४५)

"इयहं प्रेतेब्बन्ध्याय: शिष्यर्त्विग्गुरुबंधुषु । उपाकर्मणि चोत्सर्गे स्वशासाश्रोत्रिये तथा ॥ " संघ्यागर्जितनिर्घातभूकंपोल्कानिपातने । समाप्य वेदं द्युनिरामारण्यकमधीत्य च "॥ द्युनिश्महोरात्रमनध्यायः।

"पंचद्रयां चतुर्द्रयाष्टम्यां राहुसूत्रके । ऋतुसंधिषु भुक्त्वा च श्राद्धिकं प्रतिगृह्य च" (१४६)॥

ऋतुसंधिः प्रतिपत् । चुनिशमनध्यायः ।

🥦 ''पर्तमं दुकनकुलस्वाहिमार्जारमूषकैः। गतेंऽतरे त्वहोरात्रं शकपाते तथोच्छ्ये" (१४७)॥ शुक्रपातः आस्वयुक्शुक्रुद्दादशी । उच्छ्यः भःद्रपदशक्रुद्वादशी । यत् पुनगौतमेनोक्तं (१।६०) " इवनकुलमंडूक्सर्पमाजीराणां ज्यहमुपवासमनध्यायो विप्रवासश्च " इति तत्प्रथमाध्ययन-विषयमिति विज्ञानेश्वरीये (ए. ४२ पं. ११)। मनुः (४।१०२-१०३)---" कर्णश्रवेऽनिले रात्रौ दिवापांसुसमूहने । एतौ वर्षास्टबनध्यायावध्यायज्ञाः प्रचक्षते ॥

१५ "विद्युत्सनितवर्षेष महोल्कानां च संप्रुवे । आकालिकमनध्याययेतेषु मनुरब्रवीत्"॥ विद्युदादिप्रादु-र्भावकालादारम्य नाडिकाषष्टिराकालः । तत्र भवमाकालिकम् । थेयमुक्ता विद्युदादिरिति प्रवृत्तिः सा वर्षास संध्ययोश्चेदाकालिकानध्ययननिश्चितं भवेदन्यद्। चेत् नेत्याह स एव (४।१०४)-

" स्वतस्त्वभ्यदितान्विद्यान्यदाप्रादुकुष्ताभिष् । तद्याविद्यादनध्यायमचृतावभ्रद्र्शने "॥ प्रादुष्कृताग्निषु विह्तेष्वग्निषु संध्ययोरिति यावत् । एतान्विच्याद्वीनभ्यदितान्विचात्पर्येत्तदा आ-🤏 कालिकमनध्यायं विचात्। अनृतौ वर्षतुंव्यतिरिक्ते चत्तौं अञ्जसंष्ठवे आकालिकमनध्यायं विद्यात्। "निर्घाते भूमिचलने ज्योतिषां चोपसर्जने । एतानाङालिङान्बियादनध्यायानृताविप (१०५)॥ ंउपसर्जने उपप्लवे । चलनादौ अपिशब्दादनतावपि ।

"अंतःज्ञवगते ग्रामे वृषत्रस्य च संनिधौ । अनध्यायो रुध्यमाने समवाये जनस्य च (१०८) ॥ "उद्के मध्यरात्रे च विष्मूत्रे च विसर्जिते । उच्छिष्टे श्राद्धभंक्तो च मनसापिन चिंतयेत् (१०९)॥ २५ "प्रतिगृह्य दिजो विदानेकोहिष्टस्य केतनम् । ज्यहं न कीर्तयेद्रह्म राज्ञो राहोश्च सूत्रेक" (११०)॥ एके। हिष्टस्य नवश्राद्धादी केत्यते निमंज्यते ८नेनेति केतनं द्वयम् । राज्ञः सूतके पत्रजन्मनि राहुसूतके ग्रहणमुक्ते च । ज्यहं न कीर्तयोदिति । एतत् ग्रस्तास्तमयाविषयम् । 'रवीन्दोर्भहणे

चैव नाधीयीत् दिवानिशम् ' इति स्मरणात् । "शयानः प्रौढपादश्च बढ्वा चेवावसिक्थकाम् । नाधीयीतासिषं जग्ध्वा सूतकान्नाद्यमेव च "॥

(११२)11 पादस्योपरि पादो यस्य सः प्रौढपादः । वस्त्रादिना अवसक्थिका बध्वा नाधीयीत । " नीहारे बाणशब्दे च संध्ययोरुभयोरिष । अमावास्याचतुर्द्श्योः पौर्णिक्षास्यष्टकासु च (११३)॥ "पांसुवर्षे दिशां दाहे गोमायुविरुते तथा। श्वखरोष्ट्रेच उवतेतिपंकतौ न पठेत् द्विजः (११५)॥ "नाधिर्यात स्मशानांते यामांते गोत्रजे तथा।वसिन्द्या मैथुनं वासः श्राद्धिकं प्रतिगृह्य च[?]'(११६)॥³ ३५ इत्यादिकं प्रपंचयति स एव (४।११७)

"प्राणि वा यदि वाऽप्राणि यर्तिकंचिच्छ्राद्धिकं भवेत् । तदालभ्याप्यनध्यायः पाण्यास्यो हि द्विजोत्तमः" (११७).

आरुभ्य दत्तं पाणिना स्पृष्ट्वा प्रतिग्रह्म एव भोजनमित्याह पाण्यास्यो हीति ।

९ **कखग-पाटः । २ क्ष-पं**के च । **३ कखग-** श्मशानान्ते श्मशानसम्पि । गोबजे-मोष्ठे मैथनं मिथनसंबंधि प्रतिगृध मुक्तवा श्राद्धिकं प्रतिगृह्य च।

"न विवादे न करुहे न स्तेये न च संकरे। न भुक्तिमात्रे नाजीर्णे न विमन्ता न शुक्तके" (१२१)॥ वाग्युद्धं विवादः। अंगयुद्धं करुहः। शस्त्रयुद्धं संगरः। शुक्तके भुक्तस्यात्रस्य यातयामस्य गंधरसाविभवि।

"अतिथीन्नाननुज्ञाप्य मारुते वाऽतिवायति । रुधिरे तु सुते गात्राच्छस्नेण च परिक्षते (१२२)॥ "सामध्वनौ ऋग्यजुषं नाधीयीत कदाचन । वेदस्याधीत्य चैवान्तमारण्यकमधीत्य च "(१२३)॥ ५ सामध्वनौ सामाधीत्य तत्क्षणमेव ऋग्यजुषां नाधीयीत । वेदास्यांतमुपनिषदमारुणकेतुकं चाधीत्य ऋग्यजुषं नाधीयीत । सामध्वनावृगयजुषामनध्यायेऽर्थवादमाह स एव (४।१२४)—

"ऋग्वेदो देवदेवत्यो यजुर्वेदस्तु मानुषः। सामवेदः स्पृतः पिव्यस्तस्मात्तस्याशुचिध्वनिः॥

"पशुमंडूकमार्जारसर्पइवनकुलादिषु। अंतरागमने विद्याद्नध्यायमहर्निशम्" (१२६)॥
"द्वावेव वर्जयित्वरयमनध्यायौप्रयत्नतः।स्वाध्यायभूमिं चाशुद्धावात्मानं चाशुचि द्विजः"(१२७)॥ १०
नित्यमापद्यपि । अनेन नान्येषामनध्यायनिमित्तानामापद्यनुज्ञा सूचिता । नारदः——
"अयने विषुवे चैव शयने बोधने हरेः । अनध्यायस्तु कर्त्तव्यो मन्वादिषु युगादिषु" ॥ इति ।
मन्वादयो मत्स्यपुराणेऽभिहिताः (अ. १७ श्लो. ६८)—

"आर्वयुक्शुक्कृतवमी कार्तिकी द्वादशी तथा। तृतीया चैत्रमासस्य तथाभाद्रपदस्य च ॥
"फाल्गुनस्याप्यमावास्या पुष्यस्यैकादशी सिता । आषाढस्यापि दशमी माघमासस्य सप्तमी ॥ १५
"श्रावणस्याष्टमी कृष्णा आषाढस्यापि पूर्णिमा। कार्तिकी फाल्गुनी चैत्री ज्येष्ठी पंचदशी सिता॥
"मन्वंतरादयश्चेते इत्तस्याक्षयकारकाः" इति। युगादयोऽपि विष्णुपुराणोभिहिताः (२१४४१२)—
" वैशाखमासस्य सिता तृतीया नवस्यसौ कार्तिकशुक्कपक्षे ॥
"नभस्य मासस्य च कृष्णपक्षे त्रयोदशी पंचदशी च माघे"॥ इति। शयनमाषाढशुक्कद्वादशी।
बोधनं कार्तिकशुक्कद्वादशी । व्यासः—
 र॰
"श्लेष्मातकस्य छायायां शाल्मलेर्मधुकस्य च । कदाचिदपि नाध्येयं कोविदारकपित्थयोः " ॥
हारीतः

"महानवम्यां द्वाद्श्यां भरण्यामिष पर्वसु। तथाऽश्चयतृतीयायां शिष्या नाध्यापयेद्विजः॥
"माधमासे तु सप्तम्यां रथारूयायां तु वर्जयत्। अध्यापनं समभ्यञ्जन स्नानकाले च वर्जयेत्"॥
द्वाद्श्यां श्रवणद्वाद्श्यां। भरण्यां भाद्रपद्भरण्याम्। तदाह वृद्धगार्ग्यः—

"क्षेत्रषूद्वाहनश्चत्रे स्वाध्याये परिवर्जयेत्। द्वाद्श्यां श्रवणं भाद्रे भरणी च महालये "॥ इति।
शातातपः "आभाकासितपक्षेषु मैत्रश्रवणरेवती। द्वाद्श्यां संस्पृशेयुश्चेत्तत्रानध्ययनं विद्धः"॥इति।
गार्ग्यः—"मैत्रक्षांत्षोढशक्षेषु वर्षेऽनध्ययनं विद्धः। अतिवर्षे त्रिरात्रं स्याद्व्यवर्षे तु वासरम् "।
मेत्रक्षमनुराधा। तस्माद्वारभ्य यृगशीर्षातेषु। अतिवृष्टौ त्रिरात्रमत्यृष्टौ वासरमित्यर्थः। जाबाल्धः—
"नाधीयीत नरे। नित्यमाद्वावंते च पक्षयोः। आद्यौ च हीयते वृत्धिरंते ब्रह्म प्रवृत्येयते"॥ इति । ३०
पक्षादिः प्रतिपत्पक्षांतः पंचदैशी । तथा पुराणे हनुमद्वचनं
"सा स्वभावेन तन्वंगी त्वदियोगाच्च कर्षिता। प्रतिपत्पाठशीलस्य वियेव तनुतां गता"॥ इति।
बोधायनः—" सायंप्रातः संध्ययोश्च नाधीयीत महानिशि॥
"प्रातःसंध्या त्रिनाढी स्यात्सायंसंध्या तथाविधा।महानिशा तु विशेया चतस्रा विद्वास्तथा"॥इति।

१ कखग-चतर्दशी । २ खग-रामायणे ।

चृद्धगौतमः—
"यायाद्रजों इतरे व्याच्रों नैवाधीयीत हायनम् । शशोऽपि वा श्वपाकोऽजः षण्मासानिति सूरयः"॥
गौतमः (१६।५-१३;१४)— "नाधीयीत वायौ दिवाणां मुहरे । कर्णश्राविणि नकम् ।
वाणभेरी मृदंगरथगर्तार्तशद्वेषु श्वसृगालगर्दभसंह्रादे । रोहितेन्द्रधनुनीहारेषु । अश्रदर्शने
अव्यापत्तो । मृत्रित उच्चारिते । निशासंध्योदकेषु । वर्षति च । संकुलोपाहितवेदसमाप्तिच्छिद्दैश्राद्धमनुष्ययज्ञभोजनेष्वहोरात्रम् " इति च । संकुलो राजायुणद्वः । उपहितोऽग्निदाहः ।
छर्दिर्भक्तोद्वारः । श्राद्धं पार्वणम् । मनुष्ययज्ञः सीमंतादि । आपस्तंवः (१।९।४) — निगमेष्वध्ययनं वर्जयेत्' इति । निगमेमश्रवारः । स एव (१।९।६—८)—

"स्मज्ञाने सर्वतः ज्ञम्याप्रासाद्ग्रामेणाध्यविति क्षेत्रेण वा नानध्यायो ज्ञायमाने तु । तिस्मन्नित्र देशे नाधीयीत" इति । ज्ञम्या क्षित्रा यावित देशे पति ततोऽर्वाक्देशे स्मज्ञानसमीपे नाध्येयम्। यदा स्मज्ञानं ग्रामतया क्षेत्रतया वाऽध्यविततं स्वीकृतं तदाऽध्येतव्यमेव । यदि अविस्तापि स्मज्ञानं ज्ञायते अयं स प्रदेश इति तदा तावत्येत्र प्रदेशे नाधीयत न ज्ञम्याप्रासाद्वादित्यर्थः । स एव (११८१२०-२१)—"संधावनुस्तिनिते रात्रिम् । स्वप्रपर्यतं विद्युति" इति । सायंसंध्याया भेघगर्जने रात्रिं सर्वा नाधीयीत । तत्र विद्युति सत्यां स्वप्रपर्यतं प्रहराविश्वष्टां रात्रिं । नाधीयीतेत्यर्थः । प्रातःसंध्यायामाह स्म एव (११८१२२) । " उपव्युषं यावता वा कृष्णां रोहिणीमिति ज्ञम्याप्रासाद्विजानीयादेतिस्मिन्काले विद्योतमाने सप्रदोषमहरनध्यायः " इति । उपव्युषि व्युवित सत्यां परेत्रुः सप्रदोषमहरनध्यायः । प्रदोषादृध्वमहरनध्यायः यावता कालेन शम्याप्रासाद्वीगवस्थितां गां कृष्णामिति वा रोहिणीं गौरवर्णामिति वा जानीयादेतस्मिनकाले उपवृत्रपत्रि वेत्यन्वयः । स एव (११९१२-२४)—

२० "दै-हैऽपरराज्ञे स्तनिधित्नुनोर्ध्वमर्धरात्रादित्येके"वर्षतीविद्म।इतरतीं स एवाह। (१।२१।२७,२९) 'विद्युत्स्तनिधित्नुर्वृष्टिश्चापत्तीं यत्र संनिपतेयुरुव्यहमनध्यायः। एकेन द्वाभ्यां वैतेषां कालम् " इति। यिस्मिन्देशं यो वर्षाकालस्ततोऽन्यस्तत्रापर्तुः। तत्र यदि विद्युद्द्यः समुद्तिताः स्युः तद् व्यहमनध्यायः। एतेषां विद्यद्विनां मध्ये एकेन द्वाभ्यां वा संयोगे आकालमनध्यायः। परेद्युरेतस्मात्कालादित्यर्थः। स्मृत्यर्थसारे—

भ चतुर्वर्यष्टमीपर्वप्रतिपद्दर्जितेषु तु । वेदांगन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राणि चाभ्यसेत् ॥
 अद्येऽस्तमये वाऽपि मुहूर्त्त्रयगाभि यत् । तिद्दिनं तदहोरात्रं चानध्यायिवदो विदुः "॥ इति । " केचिदाहुः कचिद्देशे यावनिद्दिनगिढिकाः । तावदेव त्वनध्यायो न तिस्मिन्न दिनांतरे ॥
 अधिकायां त्रयोद्द्रयां चतुर्वर्यां दिवा यिद् । अमावास्या च दृश्येत तदानध्ययनं भवेत्"॥
 अत्र त्रयोद्द्रीावृध्यादिनद्वये स्वाध्यायदिनद्वयमापन्नाधिकेत्युच्यते । अत्र तस्यां त्रयोद्द्रयामन ध्ययनम् । यदि चतुर्वर्यां दिवा अमावास्या स्वरूपिप दृश्येतत्यर्थः ।

"प्रणवन्याहृतीनां चगायज्याः शिरसस्तथा । नित्यनैमित्तिके काम्ये वते यज्ञे कतौ तथा ॥ "प्रवृत्ते काम्यकार्ये च नानध्यायास्तथा स्पृताः । देवतार्चनमंत्राणां नानध्यायाः सदा तथा"॥ आपस्तेवोऽपि (१।१२।९) "विद्यां प्रत्यनध्यायः श्रूयते न कर्मयोगे मंत्राणाम्"॥इति। संग्रहे— "अल्पं जपेदनध्याये पर्वण्यल्पतरं जपेत्। श्रीरुदं पवमानं च गृहीतिनियमाहृते"॥इति । भ मनुः । (२।१०५)

१ खग-मळ्लाः। २ खग- + तेन । ३ खग-अधे ।

30

" वेदोपकरणे चैव स्वाध्याये चैव नैत्यके । नानुरोधोऽस्त्यनध्याये होममंत्रेषु चैव हि"॥ कूर्मपुराणे (अ. उ. १४ श्लो. ८२-८२)

"अनध्यायश्चे नांगेषु नेतिहासपुराणयोः। न धर्मशास्त्रेष्वन्येषु पर्वण्येतान्विसर्जयेत् "॥ इति । काळादर्शे—

" पूर्व चोध्वमनध्यायमहःसंक्रमणे निशि। दिवा पूर्वोत्तरा रात्रिरिति वेदविदो विदुः "॥ इति । " स्वाध्यायस्य ह्यनध्यायो मुहूर्तदितयादिषे। स्यात्किचिदिषे न प्राहुरनध्यायं च संहाये॥

"यदा भवेदनध्यायितिथिरुत्तरभागिनी । तदा पूर्वतिथो रात्रौ नाधीयीतेति निश्चयः" ॥ अनयोर्श्यः । स्वाध्यायस्याद्धि अनध्यायो मुहूर्तदितयाद्धि । ऊर्ध्व क्विंचिद्पि स्यात्तद्नध्यायं प्राहुः । पूर्वोक्तनिमित्तसंदेहादनध्यायसंशये चानध्यायं प्राहुः । यदोत्तरभाविनी तिाथिरनध्यायो भवेत् तदा पूर्वतिथिरात्रौ नाधीयीतेति निश्चय इति ॥ अत्र बोधायनः——

"यद्यनध्यायदिनं अत्रापि स्वाध्यायदिनं द्विमुहूर्त्तादुपिर हर्श्येत निमित्तविश्यनेनाध्यायं प्राहुरिति विज्ञायते" इति । हारीतः—

"श्वोनध्यायेऽय शर्वयां नाधीयात कदाचन। चातुर्मास्यद्वितीयासु वेदाध्यायं विसर्जयत्"॥ इति । किं च आषाढकार्तिकपालगुनकुष्णद्वितीयाश्चातुर्मास्यद्वितीयाः। गौतभोऽपि (१६।२७–२८)— "कार्तिकीपालगुन्याषाढीपौर्णिमासीति तिस्रोऽष्टकास्त्रिरात्रौ "॥ इति । उक्तपौर्णमासीष्ट्वारभ्य १५ त्रिरात्रं तथा तिस्रोष्टकाः तत्र सप्तम्याद्यस्तास्विप त्रिरात्रमनध्याय इत्यर्थः। प्रदोषानध्यायसाह वृद्धगार्थः—

"रात्रौ यामद्वयाद्वित्सप्तमी स्यात्रयोद्शी । प्रदोषः स तु विज्ञेयः सर्वविद्याविगर्हितः ॥ "रात्रौ नवसु नाडीषु चतुर्थी यदि दृश्यते । प्रदोषः स तु विज्ञेयो वेद्राध्यायविगर्हितः॥

"आदंतयोः कलामात्रं यदि पश्येत्रयोदशी । प्रदेशः स तु विज्ञेयः सर्वश्बद्विगहितः" २० " त्रयोदशी यदा रात्रौ यामस्तत्र निशामुले । प्रदोष इति विज्ञेयो ज्ञानार्थी मौनमाचरेत् ॥

" भोजनं मैथुनं यानमभ्यंगं हरिदर्शनम्। अन्यानि शुभकार्याणि प्रदोषे नैव कारयेत् "॥

बृद्धमनुः— ''त्रयोद्द्दयां च सप्तम्यां चतुर्थ्यामर्धरात्रतः।नार्वागध्ययनं कुर्याद्यदीच्छेत्तत्र धारणम् "॥ इति । **स एव**—

" रात्रौ यामद्वयाद्वीग्यदि पश्येत्रयोद्शीम् । सा रात्रिः सर्वकर्मन्नी शंकराराधनं विना" ॥ इति। स्कांदे---

" त्रिमुहूर्त्तः प्रदोषः स्याद्रवावस्तंगते ततः । मितसंध्यस्रयोद्श्यां न स्मरेच्च मनोहितम् ॥ "अन्होऽष्टमां संप्रयुक्तं राज्यर्ध मौनमाचरेत् । प्रदोषे भानुत्रारे च चरराश्युद्ये तथा ॥ " स्वल्पदानादृणं शिष्टं विनश्यति न संशयः" ॥ ल्लिखितः

" छिद्राण्येतानि विप्राणां येऽनध्यायाः प्रकीर्तिताः। छिद्रेभ्यः स्रवति ब्रह्म ब्राह्मणेन यद्जितम् ॥ "तत्काले तस्य रक्षांसि श्रियं ब्रह्म यशो बलम्। सर्वमादाय गच्छंति वर्जयंति च तत्फलम्"॥ इति। स्मृत्यर्थसारे—

" चतुर्थ्यो पूर्वरात्रो तु नवनाडीप्रदर्शने । चातुर्मास्याद्वितीयासु वेदाध्यायं विवर्जयेत्" ॥ आषाढफाल्गुनकार्तिककुष्णवृतीयाश्चतुर्मास्यद्वितीयाः। गौतमोपि (१६।२७–२८)–"कार्तिकी- ३५

९ कखग-(ना) नध्यायविशयमध्य (नध्याय) ।

फाल्गुन्याषाढीपोर्णमासीस्तिस्रोष्टकास्त्रिरात्रम्"॥इति उक्तपौर्णमासीरारम्य त्रिरात्रं तथा तिस्रोऽ-ष्टकाः सप्तम्यादयः तास्त्रपि त्रिरात्रमनध्याय इत्यर्थः ।

" नाध्येयं पूर्वरात्रों स्यात्तप्तमी च त्रयोद्शी । अर्धरात्रात्परस्ताच्चेन्नाध्येयं पूर्वरात्रकम् " ॥ स्मृत्यंतरम्—

- ५ " कृष्णपक्षे तृतीयायां फाल्गुनावाडकार्तिके । शुक्काइवयुग्द्वितीयायां नैवाध्ययनमाचरेत् ॥ "अनध्यायेष्वध्ययने प्रजानायुः श्रियं तथा । ब्रह्म वीर्थं च तेजश्च निक्कंति यमः स्वयम् ॥
 - " मंत्रवीर्यक्षयभयादिंद्रो इज्रेण हंति च । ब्रह्मराक्षसता चांते नरकं च भवेद्धुवम् ॥ " अत्र गाथां यमोद्गीता कीर्त्तयंति पुराविदः ॥
- " आयुरस्य निकृंतामि प्रज्ञानस्याद्देऽध वा । य उच्छिष्टः प्रवद्ति स्वाध्यायं वाऽधिगच्छिति ॥ ५० "यश्चानाध्यायकारेऽपि मोहाद्म्यस्यति द्विजः।तस्माद्यकोऽप्यनध्याये नाधीयीत कदाचन॥"इति "अनध्यायेष्वधीयीत द्विजस्तैन्यं करोति यः"॥ इति अनध्यायः॥

अथ दानं निरूप्यते । तत्र दाने श्रुंतिः—" दानिमिति सर्वाणि भूतानि प्रशः संति दानान्नाति दुष्करं तस्माद्दाने रमंत " इति । अन्यच्च—" दानं यज्ञानां वर्र्ष्थं दक्षिणा लोके दातार सर्वभूतान्यूपजीवंति दानेनारातीरपानुदंत दानेन द्विषंतो मित्रा भवंति दाने सर्वं प्रतिष्ठितं अप तस्माद्दानं परमं वदंति " इति च । मनुः (४।२३१)—

- " यत्किंचिद्पि दातव्यं याचितेनानसूयया । उत्पत्स्यते हि तत्पात्रं यत्तारयति सर्वतः" ॥ याज्ञवल्क्यः (आ. २०३)---
- " दातव्यं प्रत्यहं पात्रे निमित्ते तु विशेषतः । याचितेनापि दातव्यं श्रत्धापूर्वे तु शक्तितः ॥
- " गोभूतिरुहिरण्यादि पात्रे दातव्यमचिंते। नापात्रे विदुषां किंचिदात्मनःश्रेय इच्छता॥ " इति । २० देवलः—
 - " ध्रुवमजस्रकं काम्यं नैमित्तिकमिति कमात् । वैदिको दानमार्गोऽयं चतुर्घा वर्णितो द्विजै: ॥
 - " प्रपारामतटाकादिसर्वकामफलधुवम् । तदाजस्त्रिकामित्याहुर्दीयते यद्दिने दिने ॥
 - " अपत्यविजयेश्वर्यस्त्रीवालार्थं यदिष्यते । इच्छासंज्ञं तु तद्दानं काम्यामित्यभिधीयते ॥
- " कालापेक्षं कियापेक्षमर्थापेक्षमिति स्नुतम् । त्रिधा निमित्तिकं प्रोक्तं सहोमं होमवार्जितम्" ॥ २५ व्यासः (कूर्मपुराणे उ. २६।४-८)—" नित्यं नैमित्तिकं काम्यं विमलं चेति कथ्यते ।
 - " अहन्यहिन यिव्हिंचित दीयतेऽनुपकारिणे । अनुद्दिश्य फळं तस्माद्वाह्मणाय तु नित्यकम् ॥
 - " यतु पापोपशांत्यर्थ दीयते विदुषां करे । नेमित्तिकं तदुद्धिं दानं सद्भिरनुष्ठितम् ॥
 - " अपत्यविजयैश्वर्यस्वर्गार्थं यत्प्रदीयते । दानं तत्काम्यमाख्यातमृषिभिर्धर्माचितकः ॥
 - " ईश्वरप्रीणनार्थं यद्वह्मवित्सु प्रदीयते । चेतसा भक्तियुक्तेन दानं तिद्वम्लं शिवस् । (भगवद्गीतायां अ. १७ श्लो. २०-२२)
- 30 " दातव्यमिति यहानं दीयतेऽनुपकारिणे । देशे काले च पात्रे च तहानं सात्विकं स्मृतम् ॥
 - " यत्तु प्रत्युपकारार्थ फलमुद्दिश्य वा पुनः । दीयते च परिक्विष्टं तद्राजसमुदाहृतम् ॥
 - " अदेशकाले यहानं अपात्रेभ्यश्च प्रदीयते । असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ॥
 - " सात्विकानां फळं भुंक्ते देवत्वे नात्र संशयः । अतोऽन्यथा तु मानुष्ये राजसानां फळं भवेत्॥

१ नारायणोपनिषादि।

```
" तामसानां फलं भुंके तिर्यक्ते मानवः सदा ॥
" एकस्मिन्नप्यतिकांते दिने दानविवर्जिते । दस्प्यग्निमुषितेनैव युक्तमाकंदितं भृशम् ॥
" यस्य वित्तं न धर्माय नोपभोगाय देहिनाम् । नापि कीत्यै न यशसे तस्य वित्तं निरर्थकम् ॥
" तस्माद्वित्तं समासाय दैवाद्वा पोरुषात्तथा । द्यात्सम्यगु द्विजातिभ्यः कीर्तनानि न कारयेत्॥
" सीदते द्विजमुख्याय योऽथिंने न प्रयच्छति । सामर्थ्ये स तु दुर्बुद्धिर्नरकायोपपचते ॥
" अक्षरद्वयमभ्यस्तं नास्ति नास्तीति यत्पुरा । तदिदं देहि देहीति विपरीतमुपास्थितम् ॥
''वीयमानं तु यो में।हाद्गोवित्रामिसुरेषु च । निवारयति पापात्मा तिर्यग्योनिं भजेतु सः"॥ इति ।
मनुः ( ४।२३२–२३७ )---
" वै।रिदस्तृतिमाप्तोति सुखमक्षय्यमन्नदः । तिलप्रदः प्रजामिष्टां दीपद्श्रश्चरुत्तमम् ॥
" भूमिदो भूमिमामोति दीर्घमायुर्हिरण्यदः । गृहदोऽप्रयाणि वेइमानि रूप्यदो रूपमुत्तमम् ॥
" वासोदैश्चंद्रसालोक्यमारिवसालोक्यमश्वदः। अनहुदः श्रियं जुष्टां गोदो बन्नस्य विष्टपम् ॥
"यानशय्यापदो भार्यामैर्व्ययसभयप्रदः। धान्यदः शास्त्रतः सौरूयं ब्रह्मदो ब्रह्मसार्ष्टितम् "॥
ब्रह्म वेदः । सार्ष्टितां सायुज्यम् ।
'' सर्वेषां तु प्रदानानां ब्रह्मद्रानं विशिष्यते । वार्यक्रगोमहीवासस्तिलकांचनसर्पिषाम् ॥
" येन येन तु भावेन यद्यहानं प्रयच्छाति । तत्तेनैव भावेन प्राप्नोति प्रतिपूजितः " ॥
भावेन श्रद्धादिना । न केवलं दात्रा प्रतिगृहीतैर्वाचनीयः किंतु देयद्रव्यमपि ताभ्यामित्याह
स एव ( ४।२३८-२४० )---
" योऽर्चितं प्रतिगृह्णाति द्याद्चिंतमेत्र वा । तावुभौ गच्छतः स्वर्गे नरकं तु विपर्यये ॥
" न विस्मयेत तपसा वदेदिष्ट्वा च नान्ततम् । नार्त्तोऽप्यपवदेद्विपान् न दत्त्वा परिकीर्त्तयेत् ॥
" यज्ञोऽन्तेन क्षरति तपः क्षरति विस्मयात् । आयुर्विप्रापवाद्नेन दानं तु परिकीर्तनात् ॥
" न वार्यपि प्रयछेतु बैढालवतिके द्विते । न बकवितिके पापे नावेदविदि धर्मवित् (१९२)॥
" त्रिष्वप्येतेषु दत्तं हि विधिनाऽप्यितं धनम् । दातुर्भवत्यनर्थाय परत्रादातुरेव च (१९३)॥
"यथा प्रवेनोपलेन निमज्जत्युद्के तरन् । तथा निमज्जतोधस्ताद्ज्ञौ दावृप्रतीच्छकौ" (१९४)॥
बैडालवृत्तिकवकवृत्तिकयोः स्वरूपमाह स एव ( मनुः ४।१९५–१९६ )—–
" धर्मध्वजी सद्। तुञ्बश्छाचिको लोकडांभिकः । बैडात्वविको ज्ञेयो हिस्नः सर्वातिसंधकः॥ २५
"अघोट्टिनैंकृतिकः स्वार्थसाधनतत्परः । शठो मिथ्या विनीतश्च बकवतत्त्ररो द्विजः "॥
श्लोकद्वयस्यायमर्थः । धर्मध्वजी धर्मिलंशी । छाझिको व्याजवृत्तिः । डाम्भिकः विशिष्टवेषेण
स्वदोषतिरस्कारी । अतिसंघकः वंचकः । अधोद्दृष्टिः परानवेशी । नेक्टुतिकः गृहैरुपायैः परानर्थ-
कारी । शठः नृशंसः । स एव ( ४।१९७ )---
" ये बकन्नतिनो विप्रा ये च मार्जारिलिंगिनः। ते पतंत्यंधतामिस्रे तेन पापेन कर्मणा (१९७)॥ 3.º
"अर्लिंगी लिंगवेषेण यो वृत्तिमुपजीवति । स लिंगिनां हरत्येनस्तिर्यग्योन्यां च जायते "(२००)॥
इति । याज्ञवल्क्यः ( आचारे २०४।२०५ )-
"हेमशूंगी शफे रूप्यैः सुशीला वस्त्रसंयुता । सकांस्यपात्रा दातव्या क्षीरिणी गौः सदक्षिणा ॥
"दाता स्वर्गमवामोति वत्सरात्रोमसंमितान् । कपिठा चेतारयति भूयश्चासप्तमं कुरुम् ॥
```

१ क्षु-दोषान् । २ क्षु-पारदः । ३ क्ष्-वाससोमिद्र । ४ क्ष-वास्यन्य ।

'' सवत्सरोमतुल्यानि कुलान्युभयतोमुखी । दाता स्वर्गमवामोति पूर्वेण विधिना ददत् (२०६)॥ ''यावद्दत्सस्य पादौ द्दौ मुखं योन्यां च दृहयते। तावद्गौः पृथिवी ज्ञेया यावद्गर्भ न मुंचाते (२०७)॥

हेमशंगाद्यसंभवेऽप्याह स एव-

" यथाकथंचिद्दत्वा गां धेनुं वाऽधेनुमेव वा । अरोगामर्गरिक्किष्टां दाता स्वर्गे महीयते (२०८) ॥ ५ "श्रांतसंवाहनं रोगिपरिचर्या सुरार्चनम्।पादशौचं द्विजोच्छिष्टमार्जनं गोपदा समम्"(२०९)॥ श्रांतसंवाहनं आसनादिदानेन श्रमापनोदना। रोगिपरिचर्या ओषधदानादिना। हरिहरादीनामर्चनं सुरार्चनम् । गोप्रदा समं गोदानसमम् । स एव (अ. २१०)-"भूदीपांश्चान्नवस्त्रांभस्तिलसर्पिःप्रतिश्रयान् । नैवेशिकं स्वर्णधुर्यं दत्वा स्वर्गे महीयते" ॥

प्रतिश्रयः प्रवासिनामावासदानम् । नैवैशिकं कन्यादानम् । धुर्यं बलीवर्दः ।

ง• "गूह्धान्याभयोपानच्छत्रमाल्यानुऊेपनम् । यानं वृक्षं प्रियं शय्याँ दत्वाऽत्यंतसुखी भवेत् (२११)॥ "सर्वधर्ममयं ब्रह्म प्रदानेभ्योऽधिकं यतः । तद्द्दत्सँमवाप्रोति ब्रह्मलोकमविच्यवम्[?]॥ इति। (२१२) अविच्यवं च्युतिरहितम् । परस्वत्वापादानमात्रं वेदादेदीनं स्वत्वनिवृत्तेः कर्तुमश्वयत्वात् । धर्मदानमपि स्मर्यते

"देवतानां गुरूणां च मातापित्रोस्तथैव च । पुण्यं देयं प्रयत्नेन नापुण्यं चोदितं कचित्"।इति।

अपुण्यदाने तदेव वर्धेत दातुर्लोभादिना प्रवृत्तस्य प्रतिगृहीतुरिष ।

" यः पापं स्वर्वेठं ध्यात्वा प्रतिगृह्णाति दुर्मातिः । गर्हिताचरणात्तस्य पापं तावत्समाश्रयेत् ॥

" समद्विगुणसाहस्रमानंत्यं च प्रदातृषु " ॥ इति स्मरणात् । शातातपः--

"तिलान् ददत्तिलस्नायी शुचिर्नित्यं तिलोदकी । होता दाता तिलानां च शतवर्षाणि जीवति''॥ संवर्तः-

"श्रोतियाय कुलीनायार्थिने च विशेषतः। यहानं दीयते भक्तचा तद्भवेत्सुमहत्फलम् ॥ " यद्यदिष्टतमं लोके यच्च स्याद्धिकं गृहे । तत्तद्भणवते देयं तदेवाक्षय्यमिच्छता ॥

" तांबूळं चैव यो द्यात् बाह्मणेभ्यो विशेषतः । मेघावी सुभगः पाज्ञो दर्शनीयश्च जायते ॥

"द्याच शिशिरेष्विमं बहुकाष्ठं प्रयत्नतः । कायामिदीप्तिं प्राज्ञत्वं रूपसौभाग्यमाप्नुयात्॥

" अलंकृत्य तु यः कन्यां भूषणाच्छाद्नादिभिः । द्यात्स्वर्गमवाप्रोति पूजयन्नुतसवादिषु ॥ ५ " कपिलाइवतिलानागरथदासीगृहाण्यपि । कन्यासुवर्णरत्नानि महादानानि ते द्शा

" आधासज्ञतलब्धस्य प्राणेभ्योऽपि गरीयसः । गतिरेका हि वित्तस्य दानमन्या विपत्तयः ॥

" यस्य वित्तं न दानाय नोपभागाय देहिनः । पुण्यकीर्तेर्न धर्भाय तस्य वित्तं निरर्थकम् ॥

" स्थितार्द्धमिविश्राममार्थिभ्यः किं न दीयते । इच्छानु ह्रपो विभवः कदा कस्य भविष्यति ॥

" तैलमामलकं प्राज्ञः पादाभ्यंगं ददाति यः । प्रहृष्टः स नरो लोके सुस्ती चैव सदा भवेत् ॥

" अनङ्गाही च यो दद्याद्युगसीरेण संयुती । अठंकृत्य यथाशक्तिर्ध्वेही शुभलक्षणी ॥ " सर्वपापविशुद्धात्मा सर्वेकामसमन्वितः । वर्षाणि वसाति स्वर्गे रोमसंख्याप्रमाणतः ॥

" भूमिं सस्यवतीं श्रेष्ठां ब्राह्मणे वेद्पारगे । गां दत्वा द्वि:प्रसूतां च स्वर्गलोके महीयते ॥

" यावंति सस्यमूलानि गोरोमााणि च सर्वशः । नरस्तावंति वर्षाणि स्वर्गलोके महीयते ॥

" अग्नेरपत्यं प्रथमं सुवर्णं भूर्वेष्णवी सूर्यसुताश्च गावः

" लोकत्रयस्तेन भवंति दत्ता यः कांचनं गां च महीं च द्दात्॥

१ क्ष-इत्वा। २ क्ष-प्रशंस्यं स्यात् तत्त्क । ३ क्ष-सर्वं। ४ ख्वा-विपुरुं। ५ क्ष-द्यिकं ६ खग-यासाद्धमंपियासं ।

```
'' सर्वेषाभेव दानानामन्नदानं परं स्मृतम् । सर्वेषामेव भूतानां यतस्तज्जीवनं परम् ॥
" मृत्तिकागोशकुद्दभीनुपश्चीतं तथोत्तरम् । दत्वा गुणाढचिवपाय कुछे महित जायते ॥
" मुखवासं तु यो दद्याइंतथावनमेव च । पाद्शौचं तथा स्नानं शोचं च गुद्रिंगयोः॥
" यः प्रयच्छति विप्राय शुचिबुद्धिः सदा भवेत्॥
" ब्रह्मचारियतिभ्यश्च वपनं यश्च कारयेत् । नलङर्माणि कुर्वाणश्वक्षुव्मान् जायते नरः ।
                                                                                            4
" देवागारे द्विजातीनां दीपं दुस्वा चतुष्पथे । स विज्ञानेन संपन्नः चक्षुष्मांश्च भवेत्सदा ॥
" यो येनैवार्थितो विप्रस्तदस्य प्रतिपाद्येत् । तृणकाष्टसमेऽप्यर्थे गोप्रदानसमं भवेत् ॥
मनः-
" त्रीण्याहुरतिदानानि गावः पृथ्वी सरस्वती । अतिदानं हि दानानां विद्यादानं ततोऽधिकम् ॥
" विद्यानां च परा विद्या ब्रह्मविद्या समीहिता । अतस्तद्वातुरस्त्येव लाभः स्वर्गापवर्गयोः ॥
" यो द्यात् ज्ञानमज्ञानं कुर्याद्वा धर्मदेशनम्। स कृत्स्नां पृथिवीं द्यात्तेन तुल्यं न तद्भवेत्"॥
सारसमुच्चये--
       " एकतः क्रतवः सर्वे समाप्तवरदक्षिणाः । एकतो भयभीतस्य प्राणिनः परिरक्षणः ॥
       " महतामि यज्ञानां कालेन क्षीयते फलम् । भीताभयप्रदानस्य क्षय एव न विद्यते"॥
जांडिल्यः---
"अयाचितानि देयानि सर्वदानानि ्यत्नतः । अन्नं विद्या च कन्या च अनर्थिभ्यो न दीयते ॥
" आश्रुतस्याप्रदानेन दत्तस्य हरणेन च । जनमप्रभृति यहत्तं तत्सर्वे नरुयति ध्रुवम् ।
"मा द्दस्वेति यो बृयात् गव्यमौ बाह्मणेषु च। तिर्यग्योनिशतं प्राप्य चंडालेष्वमिजायते ॥
"द्वाविमौ पुरुषौ लोके स्वर्गस्योपरि तिष्ठतः । अन्नप्रदाता दुःभिंक्षे सभिक्षे हेमवस्त्रदः"॥
देवलः--
"स्वैल्पत्वं वा बहुत्वं वा दानस्याभ्युद्यावहम् । श्रद्धा भक्तिश्च दानानां वृद्धिक्षयकरे हि ते ॥
"शौचं शुचिर्महाप्रीतिरर्थिनां दर्शने तथा । सत्क्वतिश्वानसूया च दानश्रद्धेत्युदाहृता ।
" दाता प्रतिगृहीता च श्रद्धादेयं च धर्मयुक् । देशकालौ च दानानामंगान्येतानि षड्डिदुः।
"अपापरोगी धर्मात्मा दित्सुरव्यसनः शुचिः। अनिंदः शिवकर्मा च षड्डिद्गीता प्रशस्यते ॥
"अन्नविद्यावधूस्त्रीणां गोभुरुवमाश्वहस्तिनाम् । दानान्युत्तमदानानि उत्तमद्वयदानतः ॥
                                                                                          24
" विद्यादाँच्छादनं वासः परिभोगौषधानि च । दानानि मध्यमानीति मध्यमद्रव्यदानतः॥
" उपानत्प्रेष्ययानानि छत्रपात्रासनानि च । दीपकाष्ठफठादीनि चरमं बहुवार्षिकम् ॥
" इष्टं दत्तमधीतं च प्रणर्यत्यनुकीर्तनात् । श्लावानुशोचनाभ्यां वा भैग्रतेजो विपचते॥
" तस्मादात्मकृतं पुण्यं न वृथा परिकीर्तयेत् " ॥ बृहस्पतिः—
''अतोयंं सात्विकं दानमुद्पूर्वे तु शान्तिकम्। आशिषा पौष्टिकं द्यात्रिविधं दानलक्षणम् ''॥ इति । ३०
आपस्तंबस्तु (२।९।८-९) "सर्वाण्युद्कपूर्वाणि दानानि। यथाश्रुतिविहारे " इति । विहारे यज्ञ-
कर्मणि। अर्न्यदानानि सर्वाणि उदकपूर्वाण्येवेत्यर्थः। स एव (२।१०।१-२) 'भिक्षणे निमित्तमा-
चार्यो विवाहो यज्ञो मातापित्रोर्चुभूषीर्हतश्च। नियमविलोपस्तत्र गुणानसमीक्ष्य यथाशक्ति देयम्"
```

इति । भिक्षणं याचनम्। तत्राचार्याद्यो निमित्तम् । बुभूषां भर्त्तुमिच्छा । अर्हतो विद्यादिमतोऽग्नि-होत्रादौ नियमे योग्यस्यार्थस्याभावेन होयस्तत्रैवंभूते भिक्षणे याचकश्रुतवृत्तादीनगुणानसमीक्ष्य ३५

१ क्ष-संपन्नश्य । २ ख-ना । ३ क्ष-सिद्धा । ४ ख-वर । ५ ख-गी । ६ क्ष-मिन्न । ७ क-यत् । ८ ख-यानि ।

शक्त्यनुरूपमवर्थं देयमदाने प्रत्यवेयात्। आपस्तंव एव (२।१०।२) "इंद्रियपीत्यर्थस्य तु भिक्ष-णनिभित्तम्। न तद्।दियेत "इति। इदियप्रीत्यर्थस्य सक्चंद्नवानितादेस्तनमूलस्य भिक्षणं नियमे। न निभित्तं दानं न भवति तस्मान्न तदाद्रियेत। दानेपि न प्रत्यवायः। तत्र दृष्टान्तमाह "धर्मप्रजा-संन्नायां प्रथमायां परन्यां द्वितीयाविवाहोऽपि न निमित्तम्। पुत्राभावे तु निमित्तं भवत्येव "। ५ तथा भविष्योत्तरे-"सुवर्णयाचकानां च विद्यां चैवोध्वरेतसाम् । कन्यां चैवानपत्यानां ददतां गतिरुत्तमाम् "॥इति। गौतमः-(५।१९-२२) " गुर्वर्थनिवेशोषधार्थवात्तिशीणयश्यमाणाध्य-यनाध्वसंयोगवैश्वजितेषु द्रव्यसंविभागो बहिर्देदि । भिक्षमाणेषु कृतान्नमितरेषु । प्रतिश्रुत्या-प्यधर्मसंयुक्ते न द्यात् । क्रुद्धहृष्टभीत्तार्तलुब्धवालस्थिविरमूढमत्तोन्मत्तवाक्यान्यवृतान्यपात-कानि "॥ इति । निवेशो विवाहः । वृत्या हीनो वृत्तिक्षीणः । नित्यं यज्ञं करिष्यन् यक्ष्यमाणः । अध्ययनेन संयोगो यस्य सः अध्ययनसंयोगः । अध्वानि वर्त्तमानः अध्वसंयोगः । वैश्वजितः विश्वजिद्यागे सर्वस्वदानेन निर्दृब्यः । यज्ञे दक्षिणाकाले सदस्येभ्यो यहानं ततोऽन्यत्र बहि-र्वेदिद्वयस्य हिरण्यादेर्शनमावरूयकं अदाने प्रत्यवेयात् । इतरेषु उक्तव्यतिरिक्तेषु भिक्षमाणेषु कृताचं पद्धाचं देथं प्रतिश्रवो दास्यामीति संवादः । तं कृत्वाऽपि अधर्मसंयुक्ते विषये न द्यात् । हृष्टः हर्षवरोन कृत्याकृत्यविवेकशून्यः । लुब्धो लोभवरोन । कुद्धः कोपवरोन । मत्तो मया-१५ दिना मदद्रच्येणाप्रकृतिंगतः । उन्मत्तो श्रांतः । एतदादीनां वाक्यानि अयथार्थान्यपातकानि न पापं नयंति । तेषां प्रतिश्रुत्यापि अदाने न दोव इत्यर्थः । बोधायनः (२३-६१)--"अन्ने श्वतानि भूतानि 'अन्नं प्राणम्' इति श्रुतिः। तस्माद्नं प्रदातव्यमनं हि परमं हविः"।। इति।

" अर्थानामुद्दिते पात्रे श्रद्धया प्रतिपादनम् । दानिम्तियभिनिर्दिष्टं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥

- २० " यस्तु द्वानमहीं भक्त्या ब्राह्मणायाहितामये। स याति परमं स्थानं यत्र गस्वा न शोचिति ॥ " भूमिद्रानात्परं दानं विद्यते नेह किंचन। अन्नदानं तेन तुल्यं विद्यादानं ततोऽधिकम्"॥ महाभारते आनुशासिनेक (अ. १०१।६४)——
 - " अन्नमेव प्रशंसाति देवाः सर्विंगणाः पुरा । लोकतंत्रा हि यज्ञाश्च सर्वमन्ने प्रतिष्ठितम् ॥ " अन्नोन सदृशं दानं न भूतो न भविष्यति ॥
- २५ " कुटुंबं पीडिथित्वाऽपि ब्राह्मणाय महात्मने । दातव्यं भिक्षवे चान्नमात्मना भूतिमिच्छता ॥ "वानीयदानं परमं दानानां मनुरब्रवीत्।तस्मात्कूपांश्च वापीश्च तटाकानि च सानयेत्॥
 - " निदाधकाले पानीयं यस्य तिष्ठत्यवारितस् । सं क्रुक्नं विषमं दुर्गं न कदा चिद्वाप्नुयात् ॥ " बलकामो यशस्कामः पृष्टिकामश्च नित्यदा । घृतं द्याद्विजातिभ्यः सततं शुचिरात्मवान् "॥ उपमन्यः—
- ३० ''शिविछिंगं तु यो द्यात् शिवभक्ताय तन्मनाः । स्वर्णह्रप्यादिह्रपं वा सोमं संपूज्य शक्तितः ॥ '' सर्वदानाधिकं पुण्यं संप्राप्य करणात्यये । गाणपत्यमवाप्यैव गणैः सह स मोद्ते ॥
 - " कैं।लग्रामशिलामूर्ति विष्णुमाराध्य भक्तितः । विष्णुभक्ताय यो दद्याङ्गाह्मणाय सदक्षिणाम् ॥
 - " पंचाशत्कोटिविस्तीर्णभूमिदानेन यत्फलम् । तत्फलं समवामोति देहांते वैष्णवं पदम् ॥
 - " कुर्यात्प्रतिकृतिं देवं सुवर्णेन स्वशक्तितः। शेषपर्यकशयनं श्रिया देव्या युतं तथा ॥
- 3५ " शंखचक्रगदायुक्तं वासुदेवं सुरेश्वरम् । दत्वा गुणाड्यविप्राय विष्णुलोके महीयते " ॥

१ क्स-प्रतिनयंति । २ क्स-श्रि । ३ ख्र-सा ।

ब्यासः

- " गोभूहिरण्यदानानि यमाश्च नियमास्तथा । गृहदानस्य वै होके कहां नाईति बोडशीय ॥
- " यः कारयेन्मठं शैलं शिवायतनसंनिर्धा । स शैवं पदमासाय कल्पायुतशतं वसेत्॥
- " गां पंकाद्वाह्मणीं दास्याद्वृत्तिं लोपाद्विजं वधात् । मोचयन्मुच्यते पापादाजनममरणांतिकोत् ॥
- " अनाथप्रेतसंस्कारं कूर्त्यालेंगप्रपूजनम् । द्ीनांधकुपणेभ्यश्च दानं सर्वाचनाशनम् " ॥ योगीश्वरः—
- " स्वर्णयुक्तं ताम्रपात्रं गोघृतेन समान्वितम् । आत्मावलोकनं कृत्वा बाह्मणाय निवेद्येत्॥
- " अनेन विधिना दानं यः कुर्यात्प्रयतो नरः । सर्वपापविनिर्मुक्तः स याति परमां गतिम्" ॥ स्मृतिरत्ने कन्यादानमंत्रः
- "कन्यां लक्षणसंपन्नां कनकाभरणैर्युताम् । दास्यामि विष्णादे तुभ्यं ब्रह्मलोकिजिगीषया"॥ १० पुस्तकदानम्—
- " सर्वविद्यास्पदं ज्ञानकारणं विमलाक्षरम्। पुस्तकं संप्रयच्छामि प्रीता भवतु भारती ''॥ ज्ञालग्रामदानम्—
- " शालयामाचलोजूतां शिलां पापप्रणाशिनीम् । सुवर्णकुसुमोपेतां गृहाण त्वं द्विजोत्तम " ॥ नारायणमूर्तिदानमंत्रः—
- " नारायण जगन्नाथ शंखचकगदाधर । नाशयाशु महारोगान् दानेनानेन केशव "॥
 उमामहेश्वरदानमंत्रः—
 - " प्रसीद्तु भवो नित्यं कृत्तिवासा महेश्वरः। पार्वत्या सहितो देवो जगदुत्पत्तिकारकः॥
 - "शिवशक्तचात्मकं यस्माज्जगदेतच्चराचरम् । असतस्तु समादायं साधुभ्यो यः प्रयच्छति॥
- '' धनस्वामिनमात्मानं स तारयति निश्चितम्। तस्माद्दानेन सर्वं मे करोतु भगवांश्चिवः''॥ २० ब्रह्मांडपुराणे''महिषीं वत्सेसंयुक्तां सुशीलां च पयस्विनीम्।रक्तवस्रेण पुष्पेण अलंकृत्य प्रयत्नतः॥
 - "श्रोत्रियाय सुशांताय दत्वा मृत्युं जयेन्नरः । कालमृत्युस्वरूपा सा महिषी रक्तभूषणा ॥
 - " पुच्छदेशे प्रदातव्या अतः शांतिं प्रयच्छ मे " ॥ पाद्मे---
 - " तिरुपूर्ण ताम्रपात्रं सुवर्णेन समन्वितम् । तत्पात्रं ब्राह्मणे दत्वा ब्रह्मरोके महीयते ॥
 - " देवदेव जगन्नाथ वांछितार्थफलपद । तिलपात्रं प्रदास्यामि तवाग्रे सुस्थिरोऽस्म्यहम् ॥ ४५
 - " गोभूतिरुहिरण्याज्यवासोधान्यगुडानि च । रूप्यं ठवणमित्याहुर्द्श दानान्यनुक्रमात् ॥
 - " गवामंगेषु तिष्ठंति भुवनानि चतुर्दश । यस्मात्तस्माच्छिवं मे स्याद्तः शांतिं प्रयच्छ मे॥
 - "" सर्वसस्याश्रया भूमिर्वराहेण समुद्धृता । अनंतसस्यफलवत्यतः शांतिं प्रयच्छ मे ॥
- "" तिलाः पापहरा नित्यं विष्णोर्देहसमुद्भवाः । तिलदानाद्सह्यं मे पापान् नाश्य केशव ॥
- " हिरण्यगर्भगर्भस्थं हेमबीजं विभावसों । अनंतपुण्यफलद्मतः शांतिं प्रयच्छ मे ॥
- " कामधेनुसमुद्भूतसर्वकतुषु संस्थितम् । देवानामाज्यमाहारमतः० मे ॥
- " शीतवातोष्णसंत्राणं रुज्जाया रुक्षणं परम् । देहारुंकरणं वस्त्रमतः शांतिं प्रयच्छ मे ।
- " धन्यं करोषि दातारमिह लोके परत्र च । प्राणिनां जीवनं धान्यमतः । मे ।
- " यथा रसानां प्रवरस्तथैवेक्षरसः स्मृतः । मम चैव परां लक्ष्मीं ददस्व गुड सर्वदा ।

अन्नदानमन्त्रः

- " पितृप्रीतिकरं नित्यं विष्णुशंकरयोरि । शिवनेत्रोद्भवं रूप्यमतः भे । "रसानामग्रजं श्रेष्ठं लवणं बलवर्धनम् । ब्रह्मणा निर्मितं साक्षाद्तः ० थे ॥ इति द्शदानमंत्राः । " सालग्रामशिलाचके भुवनानि चतुर्दश । तस्मादस्य प्रदानेन प्रीते। भवतु केशवः ।
- **िञ्जिंगदानमंत्रः** ५ '' कैळासवासी गौरीक्षो भगवान्भगनेत्रहा । चराचरात्मको <mark>ठिंगरू</mark>पी दिशतु वांछितम् "॥
 - " अत्र प्रजापतिर्विष्णुबह्मेंद्रिशिवभास्कराः । अभिवायुःथापश्च अतः शांतिं प्रयच्छ मे " ॥ शर्करादानमंत्रः
- "अमृतस्य कलोत्पन्ना इक्षुसारं च शर्करा । सूर्यप्रीतिकरा नित्यम**े मे** "॥ ७० आज्यावेक्षणदानमंत्रः
 - " अलक्ष्मीपरिहारार्थे सर्वीगेषु व्यवस्थितम्। तत्सर्वे शमयाज्य त्वं श्रियं पुष्टिं च देहि मे ॥ चणकदानमंत्रः
 - " गोवर्द्धनगिरिद्धारे समवे हरिरक्षिता । चणकाः सर्वपापन्ना अतः०मे ॥ माषदानमंत्रः
- १५ " यस्मान्मधुवने काले विष्णोर्देहसमुद्भवाः । पितृप्रीतिकरा माषम०मे ॥ सङ्गरा०
 - "मुद्गा बीजानि वे यस्मात्प्रियाणि परमेष्टिनः । तस्मादे<mark>षां</mark> प्रदानेन अ०मे ॥ **अन्नदानमंत्रांतर**म
- " अन्नेन जायते विश्वं प्राणिनां प्राणधारणम्। तंडुलं वैश्वदेवार्थपांकेनान्नं प्रयच्छ मे ''॥ २**० श्रीतांब्लदानमंत्रः**
 - " पूर्गः ब्रह्मा हरिः पर्णं चूर्णं साक्षान्महेश्वरम् । एतेषां संप्रदानेन संतु मे भाग्यसंपदः"॥ शाकदाने
 - " सर्वदेवप्रियक्रं शाकनृप्तिकरं नृणाम्। द्दाति सर्वभद्राणि मम संतु मनोरथाः"॥ जलका०
- २५ " जीवनं सर्वभूतानां सर्वभूतं जहं यतः । सर्वदानोत्तमं पुण्यमतः० मे ॥ कंबलदान०
 - " ऊर्णाच्छादनसुश्लाघ्यं शीतवातभयापहम् । यस्माद् दुःखनिवारं तु अतः०मे ॥ उपानद्वा०
- " उपानहाँ प्रदास्यामि कंटकादिनिवारको । सर्वस्थानेषु सुखदावतः०मे ॥ ३• औषधदा०
 - " प्राणिनां जीवने।पाय प्राणिनां शाश्वतं पदम्। तस्मादौषधदानेन सर्वपापै: प्रमुच्यते "॥ कूष्मांडदानम्
 - " कूष्मांडं घृतसंयुक्तं तिलमिश्रं तु यत्फलम् । पुत्रपौत्राभिवृध्यर्थे अतः०मे ॥ सूर्यदा० " पद्मासनः पद्मकरो दिवाहुः पद्मप्रियः सप्ततुरंगवाहः ।
- भ "दिवाकरो लोकगुरुः किरीटी मयि प्रसादं विद्यातु देवः"॥

30

34

आयसदा०

" यस्मादायसकर्माणि तवाधीनानि सर्वदा । लांगलाबायुधादीनि तस्माच्छांतिं प्रयच्छ मे " ॥ छागदानमंत्रः

" यस्मात्त्वं छाग यज्ञानामंगत्वेन व्यवस्थितः । यानं विभावसीर्नित्यमतः भे "॥ ताम्रदानमंत्रः

" ताम्रं शुद्धिकरं सर्वदेवप्रियकरं शुभम् । सर्वरक्षाकरं नित्यम०मे " ॥ कांस्यद्गा०

" शुद्धं कांस्यमिहामुत्र पात्रयोग्यं मनोहरम् । निर्मितं पापशमनम०मे " ॥ छत्रदः।

" वर्षवातातपत्राणामातपत्रं यशस्करम् । अस्य प्रदानाद्भूतानि सुसं यच्छंतु मे सदा "॥ १० वयजनदा०

"व्यजनं वायुदेवत्यं धर्मकाले सुखप्रदम् । तस्माद्स्य प्रदानेन शान्तिरस्तु सदा मम ''॥ फलदा०

" फलं मनोरथफलं प्रददाति सदा चणाम् । पुत्रपौत्राभिवृध्वर्थम०मे ॥ **दानस्य देशकालौ** ॥

याज्ञबल्क्यः (व्य० १७५)---

"स्वं कुटुंबाविरोधेन देयं दारसुताहते । नान्वये सित सर्वस्वं यच्चान्यस्मै प्रतिश्रुतम् "॥ बृहस्पतिः—(अ. १५ श्लो. ३)

" कुटुंबभक्तवसनाहेयं यदितिरिच्यते । अन्यथा दीयते यद्धि न तद्दानफलप्रदम् " ॥ शं**सिलिजितो**

" आहारं मेथुनं निद्धां संध्याकालेषु वर्जयेत् । कर्म चाध्ययनं चैव तथा दानप्रतिग्रहों " ॥ " कुरुक्षेत्रे गयातीर्थे तथा वामकरण्डके । एवमादिषु तीर्थेषु दत्तमक्षयतामियात् ॥ द्यासः – "अयने विषुत्रे चैव ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः । संकान्त्यादिषु कालेषु दत्तं भवति चाक्षयम् ॥ " प्रयागादिषु तीर्थेषु पुण्येष्वायतनेषु च । दत्तं चाक्षयमामोति नदीषु च नदेषु च " ॥

संवर्तः-"अयने विषुवे चैव व्यतीपाते दिनक्षये। चंद्रसूर्यग्रहे चैव दत्तं भवति चाक्षयम्॥ " अमावास्या द्वादशी च संकांतिस्तु विशेषतः। एताः प्रशस्तास्तिथयो भानुवारस्तथैव च ॥

" अत्र स्नानं जपो होमो ब्राह्मणानां च तर्पणम् । उपवासस्तथा दानमेकैकं पावनं स्मृतम्''॥इति ।

" पौर्णमासीषु सर्वासु मासर्क्षसहितासु च। दत्तानामिह दानानां फळं दशगुणं भवेत् ॥

" सहस्रगुणितं दानं भवेद्दत्तं युगादिषु । कर्मश्राद्धादिकं चैव तथा मन्वंतरादिषु " ॥ याज्ञवल्क्यः—

"शतमिंदुक्षये द्वं सहस्रं तु दिनक्षये । विषुवे शतसाहस्रं व्यतिपातेष्वनंतकम् " ॥ भरद्वाजः — "व्यतिपाते वैष्टृतौ यद्त्तमक्षय्यक्वन्द्ववेत् । द्वौ तिथ्यंतावेकवारे यस्मिस्तत्स्याद्दिनक्षयः ॥ "तस्मिन्दानं जपो होमः स्नानं चैव फलप्रदम् " ॥ सुमंतुः —

" वानप्रस्थस्य पकाञ्चं तांबूहं ब्रह्मचारिणः । संन्यासिनः सुवर्णं च दाताऽपि नरकं व्रजेत् ॥ " बहूनां न प्रदातव्या गौर्वस्त्रं ज्ञयनं स्त्रियः । तादृग्भृतं तु तद्दानं दातारं नोपतिष्ठति " ॥

यम:--

- " प्रतिश्रुताप्रदानेन दत्तसँय हरणेन च । जन्मप्रभृति यत्पुण्यं तत्सर्व हि प्रणश्यित ॥
- " आज्ञाकरस्त्वदाता च दातुश्च प्रतिषेथकः। दत्तं च यः कीर्तयति स पापिष्ठतरः स्मृतः ॥
- " काले संकल्पिते दाने आ मासं न प्रदीयते । मासे मासे शतं वृद्धिर्यावत्संवत्सरं भवेत्"॥

५ नारदः--

- " ब्राह्मणाय यहुद्दिष्टं तत्सद्यः संप्रदीयते । अहोरात्रमतिकम्य तहानं द्विगुणं भवेत् ॥
- " त्रिरात्रं षड्गुणं द्याद् द्शरात्रं तु षोडश । मासे शतगुणं द्याद्वत्सरं तु सहस्रकम् ॥
- " वत्सरात्परतो नास्ति दाता तु नरकै वजेत् । ब्राह्मणस्य तु यद्तं तद्भावे तु तद्भनम् ॥

" सकुल्ये तस्य निनयेत्तद्भावेऽस्य बंधुषु । द्यात्सजातिशिष्येभ्यस्तद्भावेऽप्सु निक्षिपेत् " ॥ • आपस्तंबः (२।१५।१२) "देशतः काळतः शौचतः सम्यक्प्रतिगृहीतृतः"इति दानानि प्रतिपाद्यति

इति । वाल्मिकः--

" उत्पतन्नपि चाकार्शं विशन्नपि रसातलम् । अटन्नपि महीं कृत्स्नां नादत्तमुपतिष्ठते ॥

"दत्तं हि प्राप्यते स्वर्गे दत्तमेवोपभुज्यते । यत्किंचिद्दत्तमश्चाति नादत्तमुपतिष्ठते "॥
यतु 'दानं ऋयो धर्मश्चापत्यस्य न विद्यते " इत्यापस्तंबस्मरणम् (२।१३।१०) । "स्वकुटुंबा१५ विरोधेन देयं दारसुतादृत" इति यद्पि याज्ञवल्क्यवचनं (व्य. १७५) तज्ज्येष्ठपुत्रविषयं

एकपुत्रविषयं च । द्वादशविषेषु पुत्रेषु दत्तकीतयोरिप मन्यादिभिः पठितत्त्वात् ''दत्तोरसेतरेषां तु पुत्रत्वेन परिग्रहः '' इति दत्तौरसञ्यतिरिक्तानामेव पुत्राणां कलौ वर्ज्यन्व-

स्मरणाच्च । तथा च वसिष्ठः (अ. १५१३-६) " न ज्येष्ठं पुत्रं द्यात्प्रतिगृह्णीयाद्वा । न चैकं पुत्रं। स हि संतानाय पूर्वेषां। न स्त्री पुत्रं द्यात्प्रतिगृह्णीयाद्वाऽन्यत्रानुज्ञानाद्भर्तुः। पुत्रं

२॰ प्रतिगृहीष्यन्त्रं यूनाहूय राजिन चावेय निवेशनस्य मध्ये व्याहृतिभिर्हुत्वा अदूरबांधवं संनिक्वष्टमेव प्रतिगृहीयात् " ॥ इति । बहु चत्राह्मणेऽपि शुनःशेपाख्याने ज्येष्ठं पुत्रं न प्रयच्छेदित्यादि ॥ इति दानम् ।

अथ पात्रनिरूपणम् ॥ मनुः (१।९९-१००)---

" ब्राह्मणो जायमानो वै पृथिव्यामधिजायते । ईश्वरः सर्वभूतानां धर्मकोशस्य चैव हि ॥

'सर्व स्व ब्राह्मणाश्चेदं यत्किंचिज्जगतीगतम् । श्रेष्ठचेनाभिजनेनेदं सर्व वै ब्राह्मणोऽर्हति''॥

स्मृतिसारे---

" सर्वस्य प्रभवो विष्राः श्रुताध्ययनशालिनः । तेभ्यः क्रियापराः श्रेष्ठास्तेभ्योऽप्यध्यात्मवित्तमाः''॥ स्मृत्यर्णये——

"अज्ञेम्यो ग्रंथिनः श्रेष्ठा ग्रंथिभ्यो धारिणो वराः।धारिभ्यो ज्ञानिनः श्रेष्ठा ज्ञानिभ्योऽध्यवसायिनः"॥ ३० यमः— " विद्यायुक्तो धर्मशीलः प्रशांतः क्षांतो दांतः सत्यवादी कृतज्ञः।

- " स्वाध्यायवान् धृतिमान् गोशरण्यो दाता यज्वा ब्राह्मणः पात्रमाहुः ॥
- " स्वाध्यायाद्यं योनिमंतं प्रशांतं वैतानस्थं पापभीरं बहुज्ञम् ॥
- " स्त्रीषु क्षांतं धार्मिकानां शरण्यं व्रतैः क्वांतं तादृशं पात्रमाहुः ॥ " **याज्ञवल्क्यः** (आ. २००)—
- अप "न विद्यया केवलया तपसा वाऽपि पात्रता। यत्र वृत्तमिमे चोमे तिद्ध पात्रं प्रवक्षते"।

शातातपः--

" यथाश्वा रथहीनाः स्यू रथश्चाइवैर्यथा विना । एवं तपो ह्यविद्यस्य विद्या वाऽप्यतपस्विनः ॥ " यथाश्चं मधुसंयुक्तं मधु चान्नेन मिश्रितस् । एवं तपश्च विद्या च संयुक्तं भेषजं नतद् " ॥ वासिष्ठः—

" किंचिद्देदमयं पात्रं किंचित्पात्रं तपोमयम् । पात्राणामपि तत्पात्रं शूदान्नं यस्य नोदरे "॥ ब्रह्मवैवर्ते—

"ये पूर्वे पूजिता एव पुरस्तात्स्युर्नमश्चिया । तां निराङ्गत्य चान्येषु कुर्वन्भक्तिं वजत्यधः "॥ देवलः–" मातुश्च ब्राह्मणश्चेव श्रोत्रियश्च ततः परम् । अनूचानस्तथा भ्रूणऋषिकल्पऋषिर्मृतिः ॥

" इत्येतेऽष्टौ समुद्दिष्टा ब्राह्मणाः प्रथमं श्रुतौ । तेषां परः परः श्रेष्ठो विद्यावृत्तैविशेषतः "॥ एतेषां लक्षणं स एवाह-

" ब्राह्मणानां कुले जातो जातिमात्रो यथा भवेत् । अनुपेतः कियाहीनो मातृ इत्यभिदीयते ॥

" एकदेशमितक्रम्य वेदस्याचारवानृजुः । स ब्राह्मण इति ख्यातो निभृतः सत्यवाग् घृणी ॥ एकदेशातिक्रमो वेदस्य किंचिन्नूनस्याध्ययनस् । निभृतः शांतः ।

" एकां शाखां सकल्पां वा षड्भिरंगैरधीत्य वा । षट्कर्मनिरतो विष्रः श्रोत्रियो नाम धर्मवित् ॥

" जन्मना ब्राह्मणो ज्ञेयः संस्कारैर्द्विज उच्यते । विद्यया चापि विप्रत्वं त्रिभिः श्रोत्रिय उच्यते ॥ १५

" वेदवेदांगतत्त्वज्ञ: शुद्धात्मा पापवर्जितः । शेषं श्रोत्रियवत्प्राप्तः सोऽनूचान इति स्मृतः ॥

" अंतर्वतगुणोपेतयज्ञस्वाध्याययंत्रितः । भ्रृण इत्युच्यते शिष्टैः शेषमोजी जितेंदियः ॥

" लौकिकं वैदिकं चैव सर्व ज्ञानमवाष्य च । आश्रमस्थो वशी नित्यमृषिकल्प इति स्मृतः "॥ लौकिकमर्थार्जनादिकम्॥

" ऊर्ध्वरेताः तपस्वर्ग्यो नियताशी न संशयः । शापानुग्रहयोः शकः सत्यसंधो भवेद्दिषः " ॥ " निवृत्तः सर्वतत्त्वज्ञः कामकोधिववर्जितः । ध्यानार्थो निष्कियो दांतस्तुल्यमृत्कांचनो मुनिः"॥ यमः—" शीलं संवासतो ज्ञेयं शौचं संव्यवहारतः । प्रज्ञा संकथना ज्ञेया त्रिभिः पात्रं परीक्ष्यते"॥ बोधायनः—" वेदानां किंचिद्धीत्य ब्राह्मण एकां शासामधीत्य श्रोत्रिय अंगाध्याय्यनूचानः॥ कल्पाध्यायी ऋषिकल्पः सूत्रप्रवचनाध्यायी भ्रूणः " ॥ इति ।

दक्ष:- " समं द्विगुणसाहस्रमनंतं च यथाक्रमम्। दाने फलविशेषः स्याद्धिंसायामेवमेव हि॥ २५

³" सममब्राह्मणे दानं द्विगुणं ब्राह्मणबुवे । प्राधीते शतसाहस्रमनंतं वेदपारगे " ॥ गौतमोऽपि (५।१८)—" समद्विगुणसाहस्रानंत्यानि फलान्यब्राह्मणश्रोत्रियवेदपारगेभ्यः" इति।

" सांगं सकल्पं सरहस्यं च यो वेद्मधीरते स वेदपारगः " इति हरदनः ।

"अब्राह्मणास्तु षट् प्रोक्ता ऋषिः शातातपोऽब्रवीत् । आयो राजभृतस्तेषां द्वितीयः ऋयविक्रयी ॥ " तृतीयो बहुयाज्यः स्याच्चतुर्थो ग्रामयाजकः । पंचमस्तु भृतस्तेषां ग्रामस्य नगरस्य च ॥

''अनादित्यां तु यं पूर्वां सादित्यां चैव पश्चिमाम्।नोषासीत द्विजः संध्यां स षष्ठोऽत्राह्मणः स्मृतः''॥इति। संवर्त्तस्तु—

" उत्पत्तिप्रलयों चेव भूतानामागितं गितम् । वेत्ति विद्यामिवद्यां च स भवेद्देदपारगः " ॥ इति । बृहस्पितः "श्रोत्रिये चैव साहस्रमाचार्ये द्विगुणं तथा । आत्मज्ञे शतसाहस्रमनंतं त्विप्रहोत्रिणि"॥ व्यासः—"प्रथमं तु गुरोर्दानं द्वात् श्रेष्ठमनुक्रमात् । ततोऽन्येषां च विप्राणां द्वात्पात्रानुसारतः॥ ३५

१ विसिष्ट धर्मसूत्रे अ. २६११७-१८। २ क्स-व्रत । ३ मनुस्मृ-णटप् । ४-क्स तत्वेषा । ७-[स्म. म. फ.]

90

२५

```
'अथैकभविकं दानं कर्मयोगरतात्मना । शतजन्मद्रवं दानं गोषु ज्ञेयं महाफलम् ॥
       " द्विगुणं च तदेकैकं तथा वै वर्णसंकरे । शूद्रे चतुर्गुणं शोक्तं विशि चाष्टगुणं भवेत् ॥
       " क्षत्रिये षोडषरागुणं ब्रह्मबंधी तदेव तु । द्वात्रिंशद्धि कृतं दानं वेदाध्ययनतत्परे ॥
       " शतभं तिद्दिनिर्दिष्टं प्राधीते रुक्षसंमितम् । अनंतं च तदेवोकं ब्राह्मणे वेदपारगे " ॥
अर्थापात्रनिरूपणं । शातातपः
" नष्टं देवलके दत्तमप्रतिष्ठं च वार्धुषौ । यच्च वाणिज्यके दत्तं न च तत्प्रेत्य नो इह ॥
" देवार्चनरतो विप्रो वित्तार्थी वत्सरत्रयम् । स वै देवलको नाम हव्यकव्येषु गर्हितः " ॥ इति ।
स्मृतिसंघहे---
"देवार्चनपरो येो हि परार्थ वित्तकांक्षया। चतुर्वेद्धरो विप्रः स चंडालसमो भवेत् ॥
" कर्मदेवलकाः केचित्कल्पदेवलकाः परे । शुद्धदेवलकाः केचित्रिधा देवलकाः स्मृताः ॥
" अर्थार्थी कालनिर्देशी यो देवं पूज्येत्सदा । कर्मदेवलको नाम सर्वकर्मबहिष्क्रत: ॥
" पांचरात्रविधानज्ञो दीक्षाविरहितोऽर्चकः। चतुर्वेदाधिकारोऽपि कल्पदेवलकः स्मृतः॥
" आगमोक्तिविधानज्ञो रुद्रैकाल्युपजीवकः । शुद्धदेवलको नाम सर्वकर्मबहिष्कृतः ॥
" आर्षेयोक्तविधाने तु देवलत्वं न विद्यते । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वैदिकेनैव पूजयेत् " इति ॥
यम:- " समर्घ धनमादाय महार्घ यः प्रयच्छति । स वै वार्धुषिको नाम यश्च वृध्योपजीवति॥ १५
"यस्तु निंदन्परगुणान्प्रशंसत्यात्मनो गुणान्। स वै वार्धृषिको नाम ब्रह्मवादिषु गर्हितः"॥ इति।
वृद्धमनु:---
       "पात्रभूतोऽपि यो विप्रः प्रतिगृह्य प्रतिग्रहम् । असत्सु विनियुंजीत तस्मै देयं न विंचन ॥
       "संचयं कुरुते यश्च प्रतिगृह्य समं ततः। धर्मार्थं नोपयुङ्के च न तं तस्करमर्चयेत्"॥
व्यासः- " परस्थाने वृथादानमशेषं परिकीर्तितम् । आरूढपतिते चेव अन्यथार्थधनैश्च यत् ॥ ३०
       " व्यर्थमबाह्मणे दानं पतिते तस्करे तथा । गुरोश्वाप्रीतिजनके कृतम्ने ग्रामयाजके ॥
       "वेद्विक्रयंके चैव यस्य चोपपतिर्गहे । न वार्यपि प्रयच्छेतु नास्तिके हैतुके तथा ॥
       " न पाषंडेषु सर्वेषु नावेदविदि धर्मवित् " ॥ पराशरः-
       "युक्तिछ्ठेन सर्वत्र यः शौस्त्रविहितेष्विप । संशयं कुरुते सोऽयं हैतुको नास्तिकाधमः"॥
प्रजापतिः
       " स्वधर्मस्य परित्यागी पाषंडीत्युच्यते बुधैः। तत्संगङ्गत्तत्समः स्यात् तावुभाविप पापिनौ ॥
       " ये तु सामान्यभावेन मन्यन्ते पुरुषोत्तमम् । ते वै पाषंडिनो ज्ञेया नरकार्हा नराधमाः"॥
नारदः-" षंढस्य पुत्रहीनस्य दंभाचाररतस्य च । नक्षत्रपाठकस्यापि दत्तं भवति निष्फलम् "॥
विष्णुधर्मोत्तरे-"परस्थाने वृथादानमशेषं परिकीर्तितम्। आरूढपतिते चैव त्वन्यथाप्तैर्धनैश्च यत्।
" व्यर्थमब्राह्मणे दानं पतिते तस्करे तथा । गुरोश्चाप्रीतिजनके कृतव्ने ग्रामयाजके ॥ ३०
"वेदविक्रयिके चैव यस्य चोपपतिर्गृहे "॥
वृद्धमनु:- 'श्रीभिर्जितेषु यत् दत्तं व्यालगाहे तथैव च। बह्मबंधुषु यद्त्तं यद्त्तं वृषलीपतौ ॥
       " परिचारकेषु यहत्तं वृथादानानि षोडश "॥ वृषठीपतिलक्षणमाह दृक्षः--
       "पितृगृहे तु या कन्या रजः पश्यत्यसंस्कृता। सा कन्या वृषठी ज्ञेया तत्पतिर्वृषठीपतिः"॥
```

१ क्ष-पात्र । २ क्ष-ह्यासीत्परार्थ । ३ क्ष-भूत । ४ क्ष-यत्र वा ।

देवलः---

"दंध्या च वृषली ज्ञेया वृषली च वृतप्रजा।अपरावृषली ज्ञेया कुमारी या रजस्वला "॥ इति । ट्यासः-

"पंग्वंधविदा मूका व्याधिनोऽपहताश्व ये। भर्तव्यास्ते तु सततं न तु देयः प्रतिग्रहः॥ ५ " यस्त्वसद्भयो द्दातीह सद्द्व्यं धर्मनाशनस्। स पूर्वीभ्यधिकः पापी नरके पच्यते नरः॥ " यतीनां कांचनं दत्वा तांबुठं बद्धचारिण: । चोराणामभयं दत्वा दाता तु नरकं बजेत्"॥

मतुः— " अनर्हते यहदाति न ददाति यद्हते । अर्हानर्हापिरिज्ञानात् धनाद्धर्माच्च हीयते " ॥

चम:--

- १० " अर्त्रतानाममंत्राणां जातिमात्रोपजीवनाम् । नैषां प्रतिग्रहो देयो न शिला तारयेच्छिलाम् ॥ " अपविद्धानिहोत्रस्य गुरोर्विप्रियङारिणः । द्रविणं नैव दातव्यं सततं पापकर्मणः ॥ "न प्रतिग्रहमर्हन्ति वृषलाच्यापका द्विजाः। जूदस्याध्यापनाद्विप्रः पतत्यत्र न संशयः"॥ वृषलस्वरूपमाह **पराशरः**—
- " अग्निकार्यपरिभ्रष्टाः संध्योपासनवर्जिताः । वेदं च येऽनधीयानास्ते सर्वे वृषलाः स्मृताः ॥ १५ " उपारुदंति दानानि गौ रथः कांचनं क्षितिः। अश्रोत्रियस्य विप्रस्य करं दृष्ट्वा निराकृतेः ॥ ''राजधानी यथा जून्या यथा कूपश्च निर्जलः। यथाहुतमनमौ तु तथा दुत्तं द्विजड्रवे"॥ अपात्रे दातुर्दोषमाह ट्यासः—
 - " दुर्विपा गणिका वैक्या विट्चारणकारवः । सततं यं प्रशंसंति तं विद्यात्पुरुषाधमम् ॥
- " ये च ज्योतिषकाश्चोराः कुंडगोलाश्च याचकाः । सौनिका यं प्रशंसंति तं विद्यात् पुरुषाधमम् ॥ २० " उत्कोच जीविनो अष्टा वैश्यापतिविदूषकाः। गायका यं प्रशंसंति तं विद्यात्पुरुषाधमम्"॥ इति । आपस्तंब:-"अन्तराने न कर्तव्यं पात्रावेक्षणमण्वपि । अन्नं सर्वत्र दातव्यं धर्मकामेण वै द्विजा:॥
 - " दीनांधक्रपणादिभ्यो वाग्विहीनेषु यत्तथा । विकलेषु तथाऽन्येषु जडे बिधरपंगुषु ॥ " गेवृत्तेषु च यइतं तत्स्याद्रहुफ्लं धनम् ॥
- " विवाहमेखलावंधप्रतिष्ठादिषु कर्मसु । आपन्नेषु तु यद्दत्तमक्षय्यं तदुदाहृतम् " ॥ देवपिञ्यव्यति-२५ रिकाविषयम् । तत्र शुचिमनमंत्रवतः सर्वकृत्येषु भोजयेम् "कृतान्नमितरेषु " इति गौतमवचनम् अथ द्रव्याख्यदानांगसुच्यते-(4120)11
 - " यद्यदिष्टं विशिष्टं च न्यायशाप्तं च यद्भवेत् । तत्तद्धणवते देयमित्येतद्दानलक्षणम् ॥ "तत्पुनस्त्रिविधं ज्ञेयं शुक्कं शवलमेव च । कृष्णं तु तस्य विज्ञेयो विभागः सप्तधा पुनः ॥ " श्रुतझोर्यतपःकन्यायाज्यशिष्यान्यथागतम् । धनं सप्तविषं शुक्कमुदयो यस्य तद्विधः ॥
- कन्यागतमार्षिविवाहे यद्गृहीतं गोमिथुनादि । उदयः फलं द्दात्यँस्य शुद्धमित्यर्थः ॥ " कुसीदक्विषिवाणिज्यशिल्पशुल्कानुवृत्तितः।कृतोपकारादाप्तं च शबलं समुदाहृतम् "॥ शुल्कमाकगादिभ्यो द्रव्यागमः । अनुवृत्तिः सेवा ।
- " पाइर्वकद्यातचौर्यार्थिपतिरूपकसाहसैः । व्याजेनोपार्जितं यत्तत्सर्वेषां कृष्णमुच्यते ॥ पाइर्वकोपार्जितमुत्कोचादिरुब्धं तध्युपार्जितं परपीडारुब्धं प्रतिरूपकर्मणि प्रतिरूपादैः प्रति-३५ रूपकरणं साहसं स्वप्रमाणयथांगिकारेण पश्यतो हरत्वादिकम् । व्याजो डंभतपःप्रभृति ।

१ **क्ष-**आवृत्ताना । २**-ख** तत्रुष्णं समुदाहृतम् । ३ **क्ष-**प्य ।

```
" शुक्केन वार्तेन कृतं पुण्यं बहुफलं भवेत्। शबलं मध्यमफलं कृष्णं हीनफलं धनम्॥
 "शुक्कवित्तेन यो धर्म प्रकुर्याद्वयान्वितः। तीर्थं पात्रं समासाद्य देवत्वे तत्समश्चते ॥
 "राक्षसेन च भावेन वित्तेन शवलेन च। यँद्याद्दानमार्थिभ्यो मानुषत्वे तद्रश्रुते ॥
 " तमोवृत्तस्य यो द्यात्क्वव्यवित्तेन मानवः। तिर्यक्त्वे तत्फरुं प्रेत्य समश्नाति नराधिपः॥
        " स्वैकुटुंबाविरोधेन देयं दारस्तुताहृते । नान्वये सित सर्वस्वं यच्चान्यस्मे प्रतिश्रुतम् ॥ ५
 " तस्मात्त्रिभागं वित्तस्य जीवनाय प्रकल्पयेत्। भागद्द्यं तु धर्मार्थमनित्यं जीवनं यतः <sup>सं</sup>॥
        वित्तं पंचधा विभज्य भागत्रयं जीवनाय भागद्वयं धर्माय परिकल्पयेत् ।
" एकां गां दशगुर्दयाह्याहादश गोशति । शतं सहस्रगुर्दयात्सर्वतुल्यफलाः स्मृताः॥
 " कुटुंबं पीडियत्वा तु ब्राह्मणाय महात्मने । दातव्यं भिक्षये चात्रं वाह्मणो भूतिमिच्छता ॥
 "सौदायिकं कमायातं स्वयं प्राप्तं च यद्भवेत् । श्चिज्ञातिस्वाम्यनुज्ञाते दत्तं सिव्हिमदाप्नुयात्"॥ १०
 सौदायिकं विवाहलञ्घं तद्भार्ययाऽनुज्ञातम् क्रमायातं ज्ञातिभिरनुज्ञातम् । अृत्येन सता युद्धे
 लब्धं स्वाम्यनुज्ञातम् ।
 " यच्च वाचा प्रतिज्ञातं कर्मणा नोपपादितम् । तद्धनं ऋणसंयुक्तमिह होके परत्र च ॥
" सप्तधा तान्नरो हन्याद्दर्तमानांश्च सप्त च । अतिक्रांतान्सप्त हन्याद्श्यच्छन्प्रतिश्रुतम्॥
" संशृत्य यो न यच्छेत याचित्वा यश्च नेच्छति । उभावनृतकावेतौ वृषा पापमवाप्नुतः ॥
                                                                                               94
"ब्राह्मणस्य तु यद्द्रव्यं सान्वयस्यैव नास्ति सः । सकुल्ये तस्य निनयेत्तदभावेऽस्य बंधुषु ॥
"यदा तु न कुलस्य स्यान्न च संबंधिबांधवाः । द्यात्सजातिशिष्येभ्यस्तद्भावेऽप्सु निक्षिपेत्॥
" यज्ञोपकरणं द्रन्यं बाह्मणेषु महाफलम् । युद्धोपकरणं द्रन्यं क्षत्रिये द्विजपुंगवाः ॥
" पुण्योपयोगि तद्दैश्ये शूद्रे शिल्पोपयोगि च । यस्योपयोगि यद् दृब्यं दे्यं तस्यैव तद्भवेत् ॥
" येन येन च भावेन यस्य वृत्तिरुदाहृता। तत्र तस्यैव दातव्यं पुण्यकामेन धीमता ॥
" मृष्टान्नं मानवो दत्त्वा मृष्टान्नानि तु कांक्षिणा । अक्षय्यं फलमाप्नोति स्वर्गलोकं च गच्छति"॥
" कृष्णाजिनं...चैतत्तथा विद्यां कमंडलुष् । धीरः पुण्यमवामोति दत्वैतान् ब्रह्मचारिणाम् ॥
"वस्त्रं शय्यासनं धान्यं भस्म वेरुम परिच्छद्म । गृहस्थाय तु यद्तं श्रेयो बहुफलं सदा ॥
" यो द्यायतये भिक्षां पात्रं दत्तं तथैव च । हुत्स्नां यां पृथिवीं द्यात्तेन तुल्यं न तत्फलम् ॥
                                                                                              २५
" बाले कीडनकान्दत्वा मृष्टमञ्चं तथैव च। फर्ड मनोहरं चापि अग्निष्टोमफलं भवेत्॥
" प्रार्थितं बालकानां च दातव्यं स्यात्प्रयत्नतः । बालानां प्रार्थितं दत्वा नाकलोके महीयते ॥
" बालकाः पूजनीयाः स्यूर्धर्मकामेच्छुभिर्निरैः । तेषां भोज्यश्रदानेन गोदानफलमाप्नयात् ॥
'' तस्मात्सर्वप्रयत्नेन बालानग्रे तु भोजयेत् । गंधमंगलतांबूलं रक्तवस्त्रादिकं स्त्रियः ॥
" स्त्रीणां प्रदानं दातव्यं भर्तृगेहेषु नान्यथा ।
                                                                                              30
" द्रव्येणान्यायरुब्धेन यः करोत्यौर्ध्वदेहिकम् । न स तत्फरुमाप्नोति तथार्थस्य पुरागमात् ॥
" अपहृत्य परस्यार्थं दानं यस्तु प्रयच्छति । स दाता नरकं याति यस्यार्थस्तस्य तत्फलम् ॥
" परिभुक्तमवज्ञातमपर्याप्तमसत्कृतम् । यः प्रयच्छति विष्रेभ्यस्तत्सर्वमवतिष्ठते " ॥
परिभुक्तं गृहीतोपयोगं वस्त्रादि । अपर्याप्तं स्वकार्याक्षमम् ॥
" सामान्यं याचितं न्यासमाधिर्दाराश्च तद्धनम् । अन्वाहितं तु निक्षेपः सर्वस्वं चान्वये सित ।
```

'आपत्स्विप न देयानि नववस्त्रादि पंडितैः। यो द्दाति स मूढात्मा प्रायश्चितीयते नरः"॥ सामान्यमनेकस्वामिकम्। याचितं संव्यवहारार्थमयाचितं त्वानीतम्। वस्त्रालंकारादिन्यासं गृहस्वामिनेऽदर्शियत्वा तत्परोक्षमेव च गृहस्वामिनेऽपंणीयमिति। गृहजनहस्ते स्थापितं द्व्यमाधिः प्रसिद्धम्। दाराः कलत्रं तद्धनं दारधनम्।

५ "अध्यग्न्यध्यावाहिनकं द्तं च प्रीतिकर्मणि। श्रातृमातृपितृप्राप्तं स्त्रीधनं षड्विधं स्मृतम्"(९।११४)॥ अध्यमि अमिसाक्षिकं यत्स्रिये दत्तम् । अध्यावाहिनकं विवाहकालेऽपि दत्तम् । प्रीतिकर्मणि स्त्री-पुंसंबंधेन भावितं चाप्तादिभ्यः प्राप्तं वा । अन्वाहितं यदेकस्य हस्ते स्वामिनि देहीति निमित्तान्नि-श्लेपः गृहस्वामिसमश्लं स्थापितं द्रव्यम् । "नै त्वेकं पुत्रं द्यात्प्रतिगृह्णीयाद्वा न तु स्त्री पुत्रं द्यात्प्रति-गृह्णीयाद्वा " ॥

ि "बहुभ्यो न प्रदेयानि गौर्गृहं शयनं स्त्रियः । विभक्तदक्षिणा ह्येता दातारं तारयंति हि ॥ "एका ह्येकस्य दातव्या न बहुभ्यः कथंचन । विवशां रोहिणीं रक्ष्यां विवत्सां शृंगभीषणीम् ॥ "क्षीणक्षीणशरीरां गां दत्त्वा दोषमवाप्नुयात् ।

"न ब्यंगां रोहिणीं वंध्यां न क्षत्रहृतवत्सलाम्। न वामनां वेहेद्गर्भी द्याद्विप्राय गां नरः"॥ वेहद्गर्भी गर्भोपघातिनीम्।

५ " न चोषरां न निर्दग्धां महीं द्धात्कथंचन । न स्मशानपरीतां च न च पापनिषेविताम् "॥
पापा हिंस्रा प्राणिनाम् ।

"न नर्कादिकृतिकटा भूमिर्देया कदाचन। न च द्याद्विजश्रेष्ठो या चतुःसंधिसंस्थिता॥
" दुःसं द्दाति योऽन्यस्य ध्रुवं दुःसं स विंद्ति। तस्मान्न कस्यचिद्वुःसं दातव्यं दुःस्वभीरुणा॥
" सुवर्णं रजतं ताम्रं यतिभ्यो यः प्रयच्छति। न तत्फलमवामोति तत्रैव परिवर्त्तते"॥
॰ परिवर्त्तते धर्मविपरीतं जनयतीत्यर्थः।

" न शूद्राय हिवर्द्धात्सिपः क्षीरं तिलं मधु। न शूद्रः प्रतिगृह्णीयात्तेषामन्यं निवेदयेत्"॥ तेषामिति क्षीरादीनां क्रयार्थमन्यद्रव्यं निवेदयेत्यर्थः। 'कुसरं पायसापूपदाधिमधुकुष्णाजिनानि शृद्रेभ्यो न द्धात् '।

"यया कयाऽपि वा वृत्या निजकर्मात्ययन्सदा। पितरौ विभृयात्सम्यक् साध्वीं भायीं शिश्चनिष ॥ ५ "मोहाद्वा वृत्तेर्हतोर्वा धर्मछोभाच्छठाच्च वा । पितरौ त्यजतो वृद्धौ गतिरूर्ध्वा न विद्यते ॥ "अनाधो पितरौ पुत्रं साध्वीं भायीं च वाऽत्मजाम्। शक्तस्य त्यजतो मोहाद्गतिरूर्ध्वा न विद्यते ॥ "गुर्वर्धमतिथीनां च भृत्यानां च विशेषतः। शूद्राणां प्रतिगृह्णीयान्न च भुंके स्वयं ततः "॥ अथ प्रतिग्रह्णो निरूप्यते । मनुः (८।११२)—

" सिलां छमप्याददीत विप्रो जीवन्यतस्ततः । प्रतिग्रहात्सिलं श्रेयस्ततो ह्यंच्छः प्रशस्यते ॥

ः "सप्त वित्तागमा धर्म्या दायो ठाभः क्रयो जयः। प्रयोगः कर्मयोगश्च सत्प्रतिग्रह एव च (११५)॥ "प्रतिग्रहसमर्थोपि प्रसंगं तत्र वर्जयेत्। प्रतिग्रहेण ह्यस्याशु ब्राह्मं तेजः प्रणश्यिति (४।१८६)॥ प्रतिग्रहविधिज्ञो विद्यायुक्तश्च प्रतिग्रहसमर्थः। अयावदर्था पुनः पुनः प्रवृत्तिः प्रसंगः। स एव (८।१०३)

" नाध्यापनायाजनादा गर्हितादा प्रतिग्रहात्। दोषो भवति विप्राणामनलार्कसमा हि ते"॥ इति। , अगर्हितप्रतिग्राहद्प्यप्रतिग्रहः श्रेयानित्याह याज्ञवल्क्यः (आ. २१३)—

१ वासिष्ठे अ. १५।३-५।२ क्स-हेम । ३ क्स-त।

''प्रतिग्रहसमर्थोऽपि नाद्त्ते यः प्रतिग्रहम्। ये लोका दानशीलानां स तानाप्रोति पुष्कलान् ''॥ इति । **ट्यासः**——

" द्विजातिभ्यो धनं लिप्सेत् प्रशस्तेभ्यो द्विजोत्तमः। अपि वा जातिमात्रेभ्यो न तु शूद्रात्कथंचन॥ " प्रतिग्रहरुचिर्न स्याद्यात्रार्थे तु समाहरेत् । स्थित्यर्थाद्धिकं गृह्णन्द्राह्मणो यात्यधोगतिम् ॥

" अभ्युष्णात्सघृतादन्नाद्च्छिदाचैव वाससः । अपरप्रेष्यभावाच्च भूय इच्छन् पतत्यधः " ॥

नारदः---

" धनमूलाः क्रियाः सर्वा अतस्तस्यार्जनं मतम् । वर्धनं रक्षणं भोग इति तस्य विधिः क्रमात् " ॥ तत्परंस्त्रिविधं ज्ञेयमित्यादिपूर्वोक्तमवगंतव्यम् ॥ सप्तिर्षिसंवादे—

(१५९१) इंचयो यस्य द्रव्याणां स प्रशस्यते । तपसंचय एवासौ विशिष्टो द्रव्यसंचयात् ॥ '' यथा यथाऽनुगृह्णाति बाह्मणोऽसत्प्रतिग्रहम् । तथा तथाऽस्य संतोषात् ब्रह्मतेजोऽभिवर्षते ॥ १०

"आकिंचन्यं च राज्यं च तुलायां समतोलयत्। आकिंचनन्त्वमधिकं राज्याद्ि जितात्मनः"॥

" यो राज्ञः प्रतिगृह्यैव शोचितव्ये प्रहृष्यति। स वै संयाति मूद्धातमा नरकानेकविंशतिम्"॥
स्मृत्यंतरे—

" तीर्थे पापं न कुर्वीत विशेषाच्च प्रतिग्रहम् । दुर्जनं पातकं तीर्थं दुर्जनाच्च प्रतिग्रहः" ॥ मनुः (১।८४)---

" न राज्ञः प्रतिगृह्णीयाद्राजन्यप्रसूतितः । सूनाचक्रध्वजवतां वेशेनैव च जीविनाम् ॥ "अपि पापकृतो राज्ञः प्रतिगृह्णन्ति साधवः। पृथिवीं नान्यदिच्छंति पावनं ह्येतदुत्तमम्"॥ अक्षित्रयजातस्य राज्ञः द्रव्यं न प्रतिगृह्णीयात् । सूना हिंसा । चक्रं तैलयंत्रं तद्दान् ध्वजवान् सुराकारि । वेशः वेशकर्म । एषु तारतम्यमाह स एव (४।८५)—

" दशसूना समश्रकी दशचिकिसमो ध्वजी । दशध्वजिसमा वेश्या दशवेश्या समो नृपः " ॥ २० राजन्यप्रसूतेरपि छुब्धस्य प्रतिग्रहे दोषमाह स एव (४।८७, ९१)—

"यो राज्ञः प्रतिगृह्णाति लुब्धस्योच्छास्रवर्तिनः । स पर्यायेण यातीमान् नरकानेकविंशातिम् ॥ "एतद्विदित्वा विद्वांसो ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनः । न राज्ञः प्रतिगृह्णंति प्रेत्य श्रेयोऽभिकांक्षिणः"॥ याज्ञयल्क्यः (आ. १४१)—

"प्रतिग्रहे सूनि चकी ध्वजिवेश्या नराधिपाः । अष्टादशगुणं पूर्वात्पूर्वादेते यथाकमम्" ॥ २५ स एव (आ. १३०)---

" राजान्तेवासियाज्येभ्यः सीद्शिच्छेद्धनं क्षुधा । डम्भहेतुकपाषण्डिबकवृत्तींश्च वर्जयेत् " ॥ कात्यायनः—

"उपन्यस्तेन यहब्धं विद्यया पणपूर्वकम् । शिष्यादार्त्विज्यतः प्रश्नासंदिग्धप्रश्ननिर्णयात् ॥

" विज्ञानशंसनाद्वादाछुब्धं प्राध्ययनाच्च यत् । धनमेवंविधं सर्वे विज्ञेयं धर्मसाधनम् ॥

" अयाचितसिलोंच्छेश्च शिष्यदत्तैः क्रमागतैः । जीवेत्कर्मविशुद्धेभ्यः प्रतिगृह्यापि वा धनम् ॥

" याचितेनापि वार्ऽतेन दैन्यं हित्वा शमस्थितः । स्तोकादानेन वा नित्यं प्रतिगेहमतंद्रितः ॥

" द्धिक्षीर्षृतादीनां ठेवणस्य पशोस्तथा । विक्रयिभ्योऽपि नाद्यादश्वविक्रयिणस्तथा ॥

" कौसीदकात्तथा भोकुः श्राद्धस्य सततं तथा "॥ कौसीदको वार्धुषिकः ।

१ क्ष-पृ। २ क्ष-अ

" न ग्रामयाजकेम्यश्च नागम्यागाधिनस्तथा । विणग्भयश्च तथा शूद्राद्विसृष्टाग्नेर्न चाहरेत् " ॥ मनुः (११।१।६)—

"तथेव सप्तमे भक्त भक्तानि षडनश्वता । अश्वस्तनविधानेनाहर्तव्यं हीनकर्मणः"॥ ज्यहमुपोष्यान्यत्रालाभे चतुर्थादेने तिद्दनमात्रपर्याप्तं ज्ञूद्रतो गृह्णीयादित्यर्थः स एव

"गृह्ण-गोभूहिरण्यादि तथा नैव विचारयेत् । कृतानं तु गृहीतं तु बहुशः सुपरीक्षितात्"॥ वृहस्पतिस्मृतौ—

"वृद्धो च मातापितरौ सार्ध्वा भार्या सुतः शिशुः। अप्यकार्यशतं कृत्त्वा भर्तव्या मनुरब्रवीत्"॥ अपि कार्यशतमित्यपि पाठांतरम्। हारीतः—" विदितात्प्रतिगृह्धीयाद्गृहकर्मप्रसिद्धये " इति । अगिराः—

- भः " यत्तु राज्ञीकृतं धान्यं सरुं क्षेत्रेऽथ वा भवेत् । ज्ञूदाद्पि गृहीतव्यमित्यांगिरसभाषणम् " इति । व्यामः—
 - " कुटुंबार्थे तु सच्छ्द्राद प्रतिग्राह्यमयाचितम् । क्रन्वर्थमात्मने चैव न हि याचेत कर्हिचित्॥ " वृत्तिसंकोचमन्त्रिच्छेन्नेहेत धनविस्तरे । घनलोभप्रवृत्तिस्तु ब्राह्मण्यादेव हीयते"॥ इति । चस्तुविंशतिमते—
- १५ " सीदंश्चेत्प्रतिगृह्णीयाङ्गाझणेभ्यस्ततो चणात् । ततस्तु वैश्यशूद्रेभ्यः शंसस्य वचनं तथा ॥ "आमं गांसं मधु घृतं धान्यं श्लीरं तथौषधम् । गुडतक्ररसा प्राह्मा निवृत्तेनाणि शूद्रतः" ॥ याज्ञवल्क्यः (आ. २१६)—
 - " देवातिथ्यर्चनकृते गुरुभृत्यार्थमेव च । सर्वतः प्रतिगृह्णीयात् आत्मवृत्त्यर्थमेव च "॥ अनापद्यधार्मिकराजप्रतिग्रहं निन्दति स एव याज्ञवल्क्यः (आ. १४०)——
- २० " न राज्ञः प्रतिगृह्णीयात् लुब्धस्योच्छास्त्रवर्तिनः " । इति । **स्कान्दे** "मरुदेशे निरुद्के ब्रह्मरक्षस्त्वमागतः । राजप्रतिग्रहात्पुष्टिः पुनर्जन्म न विंद्ति"॥ इति । ब्रह्मांखपुराणे—
 - " अनापचिप धर्मेण याज्यतः शिष्यतस्तथा। गृह्णनप्रतिग्रहे विप्रो न धर्मात्परिहीयते" ॥ इति । आपद्विषये मनुराह (१०।१०२)—
- १५ " सर्वतः प्रतिगृह्णीयाङ्गाह्मणस्त्वनयं गतः । पवित्रं दुष्यतीत्येतद्धर्मतो नोपपद्यते"॥
 अनयं गतः आपदं गतः ।
 - ''र्जावितात्ययमापन्नो योऽन्नमत्ति यतस्ततः । आकाशमिव पंकेन न स दोषेण लिप्यते (१०४)॥ '' अर्जागर्तः सुतं हंतुमुपासर्पद्वुभुक्षितः । न चालिप्यत दोषेण क्षुत्प्रतीकारमाचरन् (१०५)॥
 - ''श्वांसमिच्छन्नातीं ऽत्तुं धर्माधर्मविचक्षणः। प्राणानां रक्षणार्थाय वामदेवो न लिप्तवान् (१०६) ॥
- े '' भरद्दाजः श्च्यार्तन्तु सपुत्रो निर्जने वने । बह्वीर्गाः प्रतिजग्राह वृधोस्तंश्र्णो महातपाः (१०७)॥ ''श्चुधार्त्तश्चासुमभ्यानाद्विश्वामित्रश्च जाघनीम्।चंडालहस्तादादाय धर्माधर्मविचक्षणः"॥इति(१०८) अनापचपि प्रतिग्राह्याण्याह मनुः (४।२५०)—
 - " एघोदकं मूलफलमन्नमभ्युद्यतं च यत् । सर्वतः प्रतिगृह्णीयान्मध्वथाभयदक्षिणाम् " ॥ अभयदक्षिणा अभयदानम् ॥

९ **क्षकरवग**--युःहिस्तीक्ष्णिर्महातपाः ।

"आहृतामुद्यतां भिक्षां पुरस्ताद्रप्रवेदिताम् । मेने प्रजापतिभोंज्यामपि दुष्कृतकारिणः"॥ (२५१) भिक्षामन्नम्

"न तस्य पितरोऽश्नंति दशवर्षाणि पंच च। न च हव्यं वहत्यग्निर्यस्तामभ्यवमन्यते" (२५२)॥ तस्य तदीयां तां भिक्षां अवमन्यते प्रत्याख्याति । अन्यद्प्यभ्युदितं प्रतिग्राह्यमाह स पव--(४।२५३)

"शय्यां गृहान्कुशान्गंधानपःपुष्पं मणिं दिधि।धाना मत्स्यान् पयो मांसं शाकं चैव न निर्णुद्देत्"॥इति। आपस्तंबः (११८।१)—"मध्वामं मार्गं मांसं भूभिमूंलफलानि रक्षा गव्यूतिनिवेशनं युग्यधासञ्चोयतः प्रतिप्राह्याणि" इति । आमं तंडुलादि । मार्गमांसं मृगमांसं । भूमिः शालेयादि-क्षेत्रं । रक्षा अभयदानं । गव्यूतिर्गोमार्गः । निवेशनं गृहम् । युग्यो बलीवर्दस्तस्य धासो भक्षणं पलालादि । एतान्यनापदि उप्रतोऽपि प्राह्माणि । उप्रः वेश्याच्छूदायां जातः पापकर्मा वा । १० ततोऽपीत्यर्थः । स एव (१।१८।७–८)— "नात्यंतमन्ववस्येद्वृत्तिं प्राप्य विरमत्" इति । अत्यंतं नावसीदेयथाकथंचिज्जीवेत् । यदा तु विहिता वृत्तिर्लभ्यते तदा निषिद्धाया वृत्ते-विरमोदित्यर्थः । विशेषवचनम्

" गुर्वर्थमतिथीनां वा भृत्यानां वा विशेषतः । शूद्रान्नं प्रतिगृह्णीयान्न तु भुंक्ते स्वयं ततः॥ " प्रतिग्राह्यं परिक्षेत पुरस्ताद्धि प्रतिग्रहे । अन्नस्य तु विशेषेण महान्नं न प्रतिग्रहः॥

" दुष्कृतं निसलं नृणामनाधारव्यवस्थितम्"। गौतमः (अ.१७ सू.१-५)—" प्रशस्तानां स्वकर्मसु द्विजातीनां ब्राह्मणो भुंजीत।प्रतिगृह्णीयाचैधोदकयवसमूलफलमध्वभयाभ्युचतशय्यासना-वसथयानपयादिधधानाशफरीप्रियंगुस्रक्मार्गशाकान्यप्रणोद्यानि सर्वेषाम्। पितृदेवगुरुभृत्यभरणेऽ-प्यन्यत्। वृत्तिश्चेन्नांतरेण शूद्रात्" इति। स्वकर्मसु वर्णाश्रमप्रयुक्तेषु ये प्रशस्तास्तेषामेव गृहे ब्राह्मणो भुंजीतेषामेव सकाशात्प्रतिगृह्णीयाच्च। एधोदकानि तु सर्वेषामप्रशस्तानामपि सकाशाद् ग्राह्माणि। २० शफरी मत्स्यविशेषः। पितृभरणं श्राद्धकरणम्। देवभरणमग्निहोत्रादि। गुरवः पित्रादयः। भृत्याः पुत्रद्वारादयः। तेषां भरणं भक्तादिदानम्। एतेषु निमित्तेष्वन्यदप्रणोद्यं सर्वं सर्वतः प्रतिग्रह्मानंतरेण जीवनं न निवर्तते तदा शृद्धादपि प्रतिगृह्णीयादित्यर्थः। " शूद्देभ्योऽपि समाद्या-च्छुद्धेभ्य इति मे मितः " इति आश्वलायनः—

"यया कयाऽपि वा वृत्त्या निजकर्मात्यजन् सदा। पितरौ विभृयात्सम्यक् साध्वीं भार्यो शिशूनिष ॥ २५ "मोहाद्वा वृत्तिहेतोर्वा धर्मलोभाच्छठाच्च वा। पितरौ त्यजतो वृद्धौ गतिरूध्वी न विद्यते ॥ "अनाथौ पितरौ वृद्धौ साध्वीं भार्यो तथात्मजान्। शकस्य त्यजतो मोहात् गतिरूध्वी न विद्यते ॥ " गुर्वर्थमतिथीनां च भृत्यानां च विशेषतः। शूद्रानं प्रतिगृह्णीयात् न च भुङ्के स्वयं ततः ॥ " शूद्रेभ्योऽपि समाद्द्यात् शुद्धेभ्य इति मे मितः"। इति। याज्ञवल्क्यः (आ. २१५)—

" अयाचिताहृतं माह्यमपि दुष्कृतकारिणः। अन्यत्र कुलटाषंढपतितेभ्यस्तथा द्विषः "॥ ३ ॥ हारीतः—

" चिकित्सकस्य मृगयोर्वेश्यायाः कितवस्य च । षंढसूतकयोश्चेव उद्यतामपि वर्जयेत् " ॥ अत्र मनुः (४।२५४–२५५)—-

" गुरून्भृत्यांश्चोज्जिहीर्ष्यन्निर्चेष्यन् देवतातिथीन् । सर्वतः प्रतिगृह्णीयात्र तु तृष्यात्स्वयं ततः ॥

"गुरुषु त्वभ्यतीतेषु विना वा तेर्गृहे वसन् । आत्मनो वृत्तिमन्विछन्गृह्णीयात्साधुतः सद्। " ॥ तैर्विना गुरुर्विना स्वयं न प्रतिगृह्णीयात् । द्रव्यनिरपेक्षेषु गुरुष्वित्यर्थः । हेमाद्रौ—

" असत्प्रतिग्रहः प्रोक्तः कालतो देशतस्तथा । स्वरूपतो जातितश्च कर्मतश्चेति पंचधा" ॥ कालो ग्रहणादिः । देशः कुरुश्नेत्रादिः । स्वरूपं मेषीकृष्णाजिनादिकम् । जातिः शूदादिः । कर्म पतनीयवृत्तिः । तत्रैव—

'' मेषीं च महिषीमाज्यं गामप्युभयतोमुखीम् । कारणं कालपुरुषं पुरुषं च तिलाचलम्॥

"अजाविकं तथाश्वं च मरणे चाद्यमासिकम् । दुर्दानान्याहुरेतानिः, प्रतिगृह्णंति ये द्विजाः॥ "न तेषां वदनं पश्येदृष्ट्वा चश्चरिनीलयेत्॥

" कृष्णाजिनं च महिषं मेषीं चोभयतोमुसीम् । दासीं च प्रतिगृह्णानो न भूयः पुरुषो भवेत् ॥ १० " प्रेतान्नं प्रेतशय्यां च नग्नप्रच्छादनं भजन् । उत्क्रांतिं कारुरूपं च न भूयः पुरुषो भवेत् ॥

" बहुशो द्विजवित्तानामपि स्तेयं तरिष्यति " ॥ आतुरं मुमूर्षुः ।

" सर्वीलंकारवस्त्राणि प्रतिगृह्य मृतस्य तु । नरकान्न निवृत्ते तं धानां तिलमयं तथा ॥ "कालं च महिषीमाज्यमेकोद्दिष्टमृतुत्रये। दाता प्रतिगृहीतारं पश्येच्चेत्पुण्यनाशनम् " इति ॥

" आविकं त्वैधिकं वस्त्रं त्लं तूलपटीं तथा। काञ्चनं शिबिकां गाश्च भूमिं धान्यं धनं स्त्रियः॥

भप "दासीं दासं गृहं यानं रसद्रव्यं तथा पशून् । प्रतिगृह्य यतिश्चैतान्पतितो नात्र संशयः "॥ जाबालिः—

" यतिहस्तगतं द्रव्यं गृह्णीयाज्ज्ञानतो यदि । अधः स नयते मूढः कुळानामेकविंशतिम् " ॥ याज्ञवल्क्यः (आचारे २०२)—

" विद्यातपोभ्यां हीनेन न तु ग्राह्यः प्रतिग्रहः । गृह्णन् प्रदातारमधो नयत्यात्मानमेव च "॥ २० मनुः (४।१८७)–

" न द्रव्याणामविज्ञाय विधिं धर्म्यं प्रतिग्रहे । प्राज्ञः प्रतिग्रहं कुर्यादवसीदन्नपि श्रुधा"॥ यत्किं चित्प्रतिगृह्णीयात्सर्वमुत्तानस्त्वांगीरसः प्रतिगृह्णात्वित्येव प्रतिगृह्णीयादिति विधिः ॥

द्रव्यप्रतिघहविधिः॥

विशेषतो हिरण्यादिकमविदुषा न प्रतिग्राह्ममित्याह स एव मनुः (४।१८८-१८९) २५ "हिरण्यं भूभिमश्वं गामनं वासास्तिलान्घृतम् । अविद्वान्प्रतिगृह्णानो भस्मीभवति दास्वत् ॥ "हिरण्यमायुरनं च भूगौंश्चाप्योषतस्तनुम् । अश्वश्वक्षस्त्वचं वासो घतं तेजस्तिलाः प्रजाः "।

" हिरण्यमायुरन्नं च भूगौंश्चाप्योषतस्तनुम् । अश्वश्चक्षुस्त्वचं वासो घृतं तेजस्तिलाः प्रजाः "॥ औषतः दहतः । दाहश्चात्र रोगः ॥

" अतपास्त्वनधीयानः प्रतिग्रहरूचिर्द्दिजः । अंभस्यश्मप्रवेनेव दात्रैव सह मज्जिति (१९०) ॥ " तस्माद्विद्दान्बिभियायस्मात्कस्मात्प्रतिग्रहात् । अल्पकेनाप्यविद्दान् हि पंके गौरिव सीदिति ॥ अल्पकेनाप्यविद्दान् हि पंके गौरिव सीदिति ॥ अल्पकेनाप्यविद्दान् हि पंके गौरिव सीदिति ॥ (८।२४०) । तथैव चेति मुद्रितपाठः

" चणकवीहिगोधूमयवानां मुद्गमाषयोः । अनिषिद्धो ग्रहीतव्यो मुष्टिरेकोध्वनिर्जितैः" ॥ आपस्तंचः (१।२८।३-५) " शम्योषा युग्यवासो न स्वामिनः प्रतिषेधयन्ति । अतिव्यवहारो व्यृद्धो भवति सर्वत्रानुमतिपूर्व इति हारीतः" । शम्योषाः कोशधान्यानि माषमुद्गादयः ॥

¹ श्र-त्वसिकं। २ श्रः तारकः। १ नमा विकिने का विन्ने ।

गौतमः (१२।२५)— " गोग्न्यर्थे तृणमेधान्वीरूद्दनस्पतीनां च पुष्पाणि स्ववदाददीत फलानि चापरिवृतानाम् " इति ।

मनुः (८।३४२)---

"द्विजोऽध्वगः क्षीणवृत्तिर्द्वाविश्च दे च मूलके। आद्दानः परक्षेत्रान्न हस्तच्छेदमर्हति"॥ द्विजेभ्योऽन्यो दण्ड्य एव। " तृणं वा यदि वा काष्टं मूलं वा यदि वा फलम्। अनाष्ट्रष्टं तु गृह्णानो हस्तच्छेदनमर्हति"॥ इति स्मतेः। संवर्तदक्षौ—

" यस्तु जापी सदा होमी परपाकविवर्जितः । सर्वरत्नामिमां पृथ्वीं प्रतिगृह्णन्न हिप्यते" ॥ व्यासः—

"प्रतिगृह्य द्विजो नित्यं दुग्धा गौरिव गच्छति । पुनराप्यायते धेनुस्तृणैरमृतसंभवैः ॥ १० "एवं जपैश्च होमैश्च पुनराप्ययते द्विजः " इति ॥ मनुः (१०१११)——
"जपहोमैरेपैत्येनो याजनाध्यापनैः कृतम् । प्रतिग्रहनिमित्तं नु त्यागेन तपसैव च " ॥ इति
विष्णुधर्मोत्तरे—

" ग्राह्मं प्राणप्रदानं तु चंडालात्पुल्कसादिप । जीवन्सर्वमवामोति जीवन्कर्म करोति च ॥
" शरीरं धर्मसर्वस्वं रक्षणीयं प्रयत्नतः " ॥ इति प्रतिग्रहविधिः ॥
अप

अथ ब्राह्मणस्य वृत्त्येन्तराण्याह मनुः (४।२-६)---

"क्रतामृताभ्यां जीवेत्तु मृतेन प्रमृतेन च। सत्यानृताभ्यामिष वा न श्ववृत्त्या कदाचन॥
"क्रतामृञ्छिसिलं प्रोक्तममृतं स्याद्याचितम्। मृतं तु याचितं प्रोक्तं प्रमृतं कर्षणं स्मृतम्॥
"सत्यानृतं तु वाणिज्यं तेन चैवापि जीव्यते। सेवा श्ववृत्तिराख्याता तस्मात्तां परिवर्जयेत् "॥
पूर्वपूर्ववृत्त्युपायालाभे परः पर आस्थ्रेयः। एवं वृत्त्युपायान्नियम्योपेयमिषि नियम इति।
"कुसूलधान्यको वा स्यात्कुंभीधान्यक एव च। ब्रहोहिको वाऽपि भवेदश्वस्तानिक एव वा॥(७)
"चतुर्णामिषि चैतेषां द्विजानां ग्रहमेधिनाम्। ज्यायान्परः परो ज्ञेयो लोकजो धर्मवित्तमः"॥(८)
कुसूलात् किंचिन्न्यूना धान्याधारी कुंभी। द्वयारन्होरैहिकिमिह भोग्यं वस्तु यस्य स ब्रहेहिकः।
श्वो भोज्यं वस्तु श्वस्तनं तद्यस्य नास्ति स अश्वस्तनिकः। चतुर्णां कुसूलधान्यादीनां एव
तावद्वपेयपरिमाणतश्चातुर्विद्यां ग्रहमेधिनामुक्तम्। उपायपरिमाणतोऽप्याह स एव (४।९)— २५

" षद्कर्मैको भवत्येषां त्रिभिरन्यः प्रवर्तते । द्वाभ्यामेकश्चतुर्थस्तु ब्रह्मसूत्रेण जीवति " ॥ एषां मध्ये एकः षद्कर्मा भवति । षड्भिर्म्बाह्मणनियतैर्याजनाध्यापनप्रतिग्रहेश्चेवर्णिकनियतैः प्रमृतसत्याचृतकुसीदैश्चार्थसंचये प्रवर्तत इत्यर्थः । त्रिभिर्याजनाध्यापनप्रतिग्रहेः द्वाभ्यां याजनाध्यापनाभ्यां 'प्रतिग्रहः प्रत्यवरः' (अ. ८-१०५) इति निंदितत्त्वात्प्रतिग्रहो विवर्जनीय इत्यर्थः ॥ ब्रह्मसूत्रेण अध्यापनेन विहितयाऽपि वृत्त्या हिंसारहितया तदशकौ हिंसाबाहुल्यरहितया वा ३० जीवेदित्याह स एव (४।२–३)—

" अद्रोहेणैव भूतानामल्पद्रोहेण वा पुनः। या वृत्तिस्तां समास्थाय विप्रो जीवेदनापदि॥ " यात्रामात्रप्रसिद्ध्यर्थ स्वैः कर्मभिरगर्हितैः। अक्केशेन शरीरस्य कुर्वीत धनसंचयम् "॥ इति। छोकिकवैदिककर्मणामवश्यकर्तव्यानां निवृत्तिर्यात्रा। स एव (४।११-१२)—

१ क्ष-वतां।

" न लोकवृत्तं वर्तेत वृत्तिहेतोः कथंचन । अजिम्हामशाठां शुद्धां जीवेद्राह्मणजीविकाम् ॥ " संतोषं परमास्थाय सुलार्थी संयतो भनेत् । संतोषमूलं हि सुलं दुःलमूलं विपर्ययः" ॥ इति । याज्ञवल्क्यः (आचारे १२८)——

"कुस्लकुम्भीधान्यो वा ज्याहिकोऽश्वस्तनोऽपि वाजिविद्वाऽपि सिलेछिन श्रेयानेषां परः परः"॥इति।
५ एतच्चातिसंयतत्त्वं यायावरं प्रति उच्यते । न ब्राह्मणमात्राभिप्रायेण । तथा सित "त्रैवार्षिकाधिकान्नो यः स हि सोमं पिवेद्विज " (या. व. आ. १२४) इत्यादिभिर्विरोधः स्यात् । तथा च
देविध्यमुक्तं देवलेन "दिविधो गृहस्थो यायावरः शालीनश्च । तथोर्यायावरः प्रवरो याजनाध्यापनप्रतिग्रहरिक्थचयवर्जनात्ष्यद्कर्माधिष्ठितः । प्रेष्यचतुष्पद्ग्रहग्रामधनादियुक्तो लोकानुवृत्तिः
शालीनः" इति । दयासः—

- १० "द्विविधस्तु गृही ज्ञेयः साधकश्चाप्यसाधकः । अध्यापनं याजनं च पूर्वस्याहुः प्रतिग्रहम्॥
 "कुसीदं कृषिवाणिज्यं प्रकुर्वीतास्वयंकृतम् । आपत्कल्पः स्वयं ज्ञेयः पूर्वोक्तो मुख्य इष्यते॥
 "असाधकस्तु यं प्रोक्तो गृहस्थाश्रमसंस्थितः । शिलोंछे तस्य कथिते द्वे वृत्ती परमिष्विभिः॥
 "अमृतेनाथवा जीवेन्मृतेनाप्यथवापदि । अयाचितं स्याद्मृतं मृतं भैक्षं तु याचितम्"॥ इति ।
 शांडिल्यः—
- अयाचितोपपन्नेषु नास्ति दोषः प्रतिग्रहे । अमृतं तद्विदुर्देवास्तस्मात्तनेव निर्णृदेत् "॥ इति । अथापद्वृत्तः ॥ तत्र मनुः (८।८१-८२)
 अञीवंस्तु यथोक्तेन ब्राह्मणः स्वेन कर्मणा । जीवेत्क्षत्रियधर्मेण स ह्यस्य प्रत्यनंतरः ॥
 "उमाभ्यामप्यजीवंस्तु कथं स्यादिति चेद्भवेत् । कृषिगोरक्ष्यमास्थाय जीवेद्देश्यस्य जीविकाम्"॥
 व्यासः—
- २० "क्षत्रवृत्तिं परामाहुर्न स्वयं कर्षणं द्विजैः । तस्मात्क्षत्रेण वर्तेत वर्तनेनापदि द्विजः ॥ "तेन चैवाप्यजीवंस्तु वैह्यवृत्तिं कृषिं यजेत्"॥ इति । याज्ञवल्क्यः (प्रायश्चित्ते २५)— "क्षात्रेण कर्मणा जीवेदि्शां वाऽप्यापदि द्विजः । निस्तीर्यतामधात्मानं पावयित्वा न्यसेत्पथि"॥ आपन्निस्तरणानंतरं स्वमार्गे वर्तेतेत्यर्थः । गौतमः (७)६-७)—" तद्रहाभे क्षत्रियवृत्तिस्तद्रहाभे वैह्यवृत्तिः "॥ इति । मनुः (८)७९)—
- २५ "शस्त्रास्त्रभृत्त्वं क्षत्रस्य विणक्षशुकृषीर्विशः । आजीवनार्थं धर्मस्तु दानमध्ययनं यजिः"॥ देवलः—
- "यागाध्ययनद्दानास्त्रप्रजारक्षाभयादि च । दंडनीतिर्धनुर्वेदः क्षत्रियस्यानुवृत्तये ॥
 "शौर्यं तेजो धृतिर्धाष्टर्च युद्धे चाप्यपलायनम् । दानमीश्वरभावश्व क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ॥
 "स्वाध्यायादीनि कर्माणि कुसीदं पशुपालनम्।कृषिक्रिया च वाणिज्यं वैश्यकर्माण्यमूनि च"॥इति।
 ः "वरं स्वधर्मो विगुणः परधर्मात् स्वनुष्ठितात् । परधर्मेण जीवन्हि सद्यः पति जातितः"॥इति ।
 इत्यादीनि मन्वादिवचनानि आपदि विगुणस्यापि स्वधर्मस्य याजनादेः संभवे वेदितव्यानि ।
 असंभवे त्वापदि क्षत्रियादिवृत्तिः । इयं हि हिंसाप्राया कलौ वर्जनीया ।
 "आततायिद्विजाग्न्याणां धर्मयुद्धेन हिंसनम्।आपद्वृत्तिद्विजाग्न्याणामश्वस्तनिकता तथा"॥इति।
 कलौ निषद्धत्वात् । "क्षत्रवृत्त्या वैश्यवृत्तिः प्रशस्ता स्यात् कलौ युगे" इत्याश्वलायनः।

आपस्तंबः (१।२०।१०-११)-- अविहिता ब्राह्मणस्य वाणिज्या आपदि व्यवहरेत् पण्यानामपण्यानि व्युद्स्यन् " इति । ऋयश्च विक्रयश्च वाणिज्या । अपण्यानि व्युद्स्य-न्वर्जयन्पण्यानि व्यवहरेत् विक्रीणीयाद्वेत्यर्थः । क्रत्स्नाया वैश्यवृत्तेरूपलक्षणिमदम् । अपण्यानि स्वयमाह (११२०१२-१६; २१।१-४)--- मनुष्यान् रसान् रागान्गंधानन्नं चर्म गवां वर्शा श्लेष्मोदके तोक्मविकिण्वे पिप्पलिमरीचे धान्यं मांसमायुधं सुकृताज्ञां च । तिलतंडुलांस्त्वेव **५** धान्यस्य विशेषेण न विकीणायात्। अविहितश्चेतैषां मिथो विनिमयो ज्ञेन चान्नस्य मनुष्याणां च मनुष्ये रसानां च रसैर्गधानां च गंधेविंद्यया च विद्यानामकीतपणैर्ध्यवहरेत । मुंजबल्वजेर्मूलफलै-स्तृणकाष्ठेरविकृतैर्नात्यंतमन्ववस्येद्व्तिं प्राप्य विरमेत् "॥ इति । मनुष्या दासाद्यः । रसा गुड-लवणाद्यः क्षीराद्यो वा। रागाः कुसुंभाद्यः। गंधाश्चंद्नाद्यः। गवां मध्ये वज्ञा वंध्या। गौश्लेष्म-विश्ठिष्टचर्मादिसंधानहेतुभूतं जतुपभृति तोक्मानि ईषद्ंकुरितानि बीह्यादीनि। किण्वं सुराप्रकृतिकं १० द्रव्यम् । सुकृतं पुण्यं तस्य फलं सुकृताशाम् । धान्यानां मध्ये तिलतंडुलानेव विशेषतो न विक्रीणीयाद्न्येषां विकल्पः विनिमयः । परिवर्तनं येषां विक्रयः प्रतिषिद्धस्तेषां परस्परेण विनि-मयोऽप्यविहितः प्रतिषिद्धस्तेष्वेव केषांचिद्ञादीनां विद्यान्तानां विनिमयो भवत्येव। अऋीतानि स्वयमुत्पादितानि अरण्यादाहृतानि तैर्व्यवहरेत । मुञ्जबल्वजास्तृणविशेषाः । तृणविकारो रज्वादिभावः। काष्टानां विकारः। स्थूणादिभावः न पुनरत्यंतमवसीदेत्प्रतिषिद्धानामपि विकयवि- १५ निमयाभ्यां जीवेदित्यर्थः । अत्र मनुः (८।८६-८९)--

" सर्वात्रसानपोहेत कुतान्नं च तिलैः सह । अइमनो लवणं चैव परावो ये च मानुषाः॥ " सर्वे च तांतवं रक्तं शाणश्लौमाविकानि च । अपि चेत्स्युररक्तानि फलमूले तथौषधीः। "आपः रास्त्रं विषं मांसं सोमं गंधांश्च सर्वशः। क्षीरं क्षारं दिध घृतं तैलं मधु गुडं कुशान्। "आरण्यांश्च पशून्सर्वान दृंष्ट्रिणश्च वयांसि च । मयं नीठं च ठाक्षांश्च सर्वाश्चैकशफान्पशून् ॥ २० "त्रपुसीसे तथा लोहं रजतं चेव सर्वशः। बालांश्चर्म तथाऽस्थीनि वसास्नायूनि रोचनाम्"॥इति। यतु"काममुत्पाद्य कृष्यां तु स्वयमेव कृषीवलः । विक्रीणीत तिलान् शुद्धान्धर्मार्थमचिरस्थितान्"॥ (८।९०) इति मानववचनं तद्दिनिमयाभिप्रायमिति व्याख्यातारः । स्वयमुत्पादिततिलविकये न दोष इत्यन्ये । वसिष्ठः (२।३७-३९) " रसा रसैः समतो हीनतो वा तिरुतं हुलपकान्न-विहिता मनुष्याश्च परिवर्तनीयाः " इति । **मनुः** (८।९२-९३)---२५ "सद्यः पतित मांसेन लाक्षया लवणेन च। त्र्यहेण ज्ञूदो भवित ब्राह्मणः क्षीरिवक्रयात्॥ " इतरेषां त्वपण्यानां विक्रयादिह कामतः । ब्राह्मणः सप्तरात्रेण वैरुयभावं निगच्छति ॥ " एका गौर्न प्रतियाह्या द्वितीया न कथंचन। सा चेद्विकयमापन्ना दहत्या सप्तमं कुलम्॥ " गवां विक्रयकारी तु गवि रोमाणि यानि तु । तावद्दर्षसहस्राणि पंकेष्वेवावसीदिति ॥ " दानाभ्यंजनहोमेभ्यो यदन्यत्कुरुते तिलैः । ऋिमिभूतश्च विष्टायां कर्मणा तेन पापकृत् ॥ ३० " कीताः प्रतिगृहीताश्च न विकेयास्तिलाः स्पृताः " । **बोधायनः** (२।१।५३)— '' पितृन्वा एष विक्रीणीते यस्तिलान्विकीणीते । ब्राह्मणान्वा एष विक्रीणीते यस्तडुंलान्वि-

कीणीते " इति । पराशरः (२।८)—

"तिला रसा न विक्रेया विक्रेया धान्यतः सनाः। विप्रस्यैवंविधा वृत्तिस्तृणकाष्ठादिविक्रयः॥"इति । विक्रेया विनिमेयाः। यावाद्भिः प्रस्थैस्तिला द्त्तास्तावद्भिरेव धान्यांतरमुत्पादेयं नाधिकमित्यर्थः। तिलन्यायो रसेऽपि वृतादो योजनीयः। गौतमोऽपि (७८-२३)— "तस्यापण्यं गंधरसः कृतान्नतिलशाणश्लोमाजिनानि । रक्तनिणिक्ते वाससी । श्लीरं सविकारं मूलफलपुष्पौषधमधु- मांसतृणोद्कापण्यानि । पश्चश्च हिंसासंयोगे । पुरुषवशा कुमारीवेहतश्च नित्यम् । भूमि- व्रीहियवाजाव्यश्ववृष्ठभधेन्वनडुहश्चेके । नियमस्तु । रसानां रसैः। पश्चनां च । न कृतान्नलवणयोः। तिलानां च । समेन तु पक्तस्य संप्रत्यर्थे । सर्वथा तु वृत्तिरशक्तावशूद्रण । तद्ययेके प्राणसंशये" इति । तस्य वैश्यवृत्तेवर्ग्वश्चापण्यमविक्रेयं रक्तं लक्षादिविकृतं निर्णिक्तं रजकादिधौतं ते वाससी अपण्ये अपथ्यं विषादि पश्चो गवाद्यः ते चाप्यपण्या हिंसासंयोगे सौनिकादौ । वेहरूषभः पुरुषाद्योऽपि नित्यं हिंसासंयोगादन्यत्रापि रसानां रसैरेव विनियमः कर्तव्यस्तय्था तंडुलं दत्वा घृतं प्राद्यमिति । लवणस्य कृतानस्य न केनचिद्पि विनियमः कर्तव्यस्तय्य तिलानां च धान्यैर्विनाऽन्यैर्विनिमयो न कर्त्तव्यः । श्चितस्य संप्रति इद्दानीमेव बुमुक्षायां समेनामेन पक्रस्य विनिमयः प्रस्थतडुलं दत्वा तावता पक्र ओद्दाने विनिमेयः । अशक्तः सर्वथा प्रतिषिद्धानामपि विक्रयविनिमयाभ्यां जीवेन शूद्दकर्मणा तद्पि प्राणसंशये एके मन्यते । भ शौदमपि कर्मोच्छिष्टभक्षणादिकम् । इत्यर्थः तथा च व्यासः—

" धर्मार्थकाममोक्षाणां प्राणाः संस्थितिहेतवः । तानि घ्रतां किं न हतं रक्षता किं न रक्षितम् "॥ शातातपः-

" सयः पतित मांसेन लाक्षया लवणेन च। व्यहेण शूद्रो भवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयी॥ "आममांससुरासोमलाञ्चालवणसर्पिषाम।विक्रये चाप्यपण्यानां द्विजश्चांद्रायणं चरेत्"॥ इति॥ ३० पराश्चरः (१।२७)— " षट्कर्मनिरतो विष्ठः कृषिकर्म च कारयेत्"। इति

'हिंसाप्रायां पराधीनां कृषिं यत्नेन वर्जयत् । भूमिं भूमिश्चयांश्चेव हंति काष्ठेरयोमुखैः'' ॥ इति

मनुवचनं (१०।८३–८४) स्वयंकृताभिप्रायम् । तथा च गौतमः ॥ (१०।५) ''कृषि-वाणिज्ये चास्वयंकृते '' इति मनुबृहस्पतिः स्वयंकृत्विं तां कृषिमंगीचकार

" कुसीदं कृषिवाणिज्यं प्रकुर्वीत स्वयं कृतम् । आपत्काले स्वयं कुर्यान्नैनसा युज्यते द्विजः" ॥ २५ इति । वाढं कारयितुमप्यशक्तस्य तत्कर्नृत्वमापत्काल इति विशेषितत्त्वात् युगांतरेषु काग्तित्वमापद्धर्मः । कलो कारयितृत्वं मुख्यधर्मः कर्नृत्त्वमापद्धर्मः प्राधान्येन कलियुगधर्मप्रति-पादने प्रवृत्तेन पराशरेण (२।१-२)

"अतः परं गृहस्थस्य कर्माचारं कठो युगे । संप्रवक्ष्यामि" इत्युपक्रम्य "क्वाषिकर्म च कारयेत्" इति आचारत्वेनाभिधानात्कारयिवृत्त्वं मुख्यं "आपत्काठे स्वयं कुर्यात् " इति स्मृतेः कर्तृत्व-क मापद्धर्म इति माधवीये ।

" अत्यापदि स्वापित्रोस्तु पालनाय स्वयं यदि । यः करोति कृषिं सोऽपि हलाग्रं न स्पृशेद्विजः ॥ " शावं निर्वापि चेद्यश्च यश्च स्याद्धलकृद्विजः । घोर तमसि मज्जंति ते विप्रा नामधारकाः"॥ इत्याश्वलायनयाञ्चवल्कयो (प्रा. ३६–४०)

१ क्ष-नियमः । २ क्ष-कृतां ।

```
" फलोपुरक्षीमसोममनुष्यापूर्विक्धाम् । तिरुदिनरसक्षारान् द्धि क्षीरं घृतं जलम् ॥
       " शस्त्रासवमधूच्छिष्टं मधु लाक्षा च बर्हिषः । मृच्चर्भपुष्पकृतपकेशतकविषक्षितीः ॥
कृतपः कंबलश्चमरिः
" कौशेयं तैललवणमांसैकशफसीसकान् । शाकाद्रौंषधिपिण्याकपशुगन्धांस्तथैव च ॥
" वैञ्यवृत्याऽपि जीवन्नो विकिणीत कदाचन । धर्मार्थ विकयं नेयास्तिला धान्येन तत्समाः ॥ ५
" ठाक्षाठवणमांसानि पतनीयानि विकये। यवो द्धि च मद्यं च हीनवर्णकराणि तु॥
" क्रुषिः शिल्पं भृतिर्विद्या कुसीदं शकटं गिरिः । सेवानृपो भैक्षचर्यमापत्तौ जीवनानि तु" (४२)॥
आपत्तौ जीवनानीतिविशेषणाद्नापद्वस्थाया इयं सेवावृत्तिरनेन नाभ्यनुज्ञायते । यथा अना-
पदि वैश्यवृत्तिः स्वयंकृता कृषिर्विप्रक्षत्रिययोरम्यनुज्ञायते एवं शिल्पादीनि अभ्यनुज्ञायंते। विद्या
भतकाध्यापकद्वारा। कुसीदं वृध्यर्थे द्रव्यप्रयोगः। तत्स्वयं कुतमभ्यनुज्ञायते। शकटं धान्यादिवहन- 🥫 ०
ट्ट
द्वारा । गिरिस्तद्गतमूळं धनादिद्वारेण जीवनहेतुः । अनूपं प्रचुरतृणवृक्षजलपायप्रदेशः । एतान्या-
पत्तौ जीवनानीत्यर्थः। कृषौ वर्जनीयान्याजयंश्च बलीवर्दानाहं श्लोकद्वयेन पराज्ञरः (२।४-५)
" भुधितं तृषितं शांतं बलीर्वदं न योजयेत् । हीनांगं व्याधितं क्लीवं वृषं विप्रो न वाहयेत् ॥
" स्थिरांगं नीरुजं द्वतं सुनर्द् षंढवर्जितम् । वाहयेद्विवसस्यार्धं पश्चात्स्नानं समाचरेत् " ॥
स्नापयेदित्यर्थः । हारीतः-
                                                                                          94
" अष्टागवं धर्म्यहरुं षद्भवं जीवितार्थिनाम् । चतुर्गवं चशंसानां द्विगवं ब्रह्मघातिनाम् ॥
" बालानां दमनं चैव वाहनं च न शस्यते । वृद्धानां दुर्बलानां च प्रजापतिवचो यथा "॥
       प्राण्युपघातदोषापनयनाय यथाज्ञक्ति जपादिकं विधत्ते पराज्ञरः ( २।६ )-
"जप्यं देवार्चनं होमं स्वाध्यायं चैवमभ्यसेत्। एकद्वित्रिचतुर्विप्रान्स्नातकान् भोजयेद्विजः"॥इति।
       पुनः प्रतिकारं वक्तुं कृषौ पापाधिक्यं दर्शयित स एव ( २।९ )
                                                                                          २०
" ब्राह्मणश्चेत्कुषिं कुर्यात्तन्महादोषमाप्नुयात् ।
" संवत्सरेण यत्पापं मतस्यवाती समाप्नुयात् । अयोमुखेन काष्ठेन तदेकाहेन लांगली"॥ इति ।
       स एव ( २।१३ ) " विप्राणां त्रिंशकं भागं सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
" यो न द्याद्विजातिभ्यो राशिमूलमुपागतः। स चोरः स च पापिष्ठो ब्रह्मग्नं तं विनिर्दिशेत् "
चंद्रिकायां
                                                                                          २५
" अद्त्वा कर्षको गेहं र यस्तु धान्यं प्रवेशयेत्। तस्य तृष्णाभिभूतस्य कूरं पापं बवीम्यहम् ॥
" दिञ्यं वर्षसहस्रं तु दुरात्मा कृषिकारकः । मरुद्देशे भवेद् वृक्षः सपुष्पफलवर्जितः ॥
" तस्यांते मानुषो भूत्त्वा कदाचित्कालपर्यये । दरिद्रो व्याधितो मूर्जः कुलहीनश्च जायते ॥
" भूमिं भित्त्वौषधिं छित्वा कुमिकीटिपपीलिकाः । पुनंति सलयज्ञेन कर्षका नात्र संशयः॥" इति ।
कर्षकस्यायं खलयज्ञो नित्यकाम्य इति वचनद्दयबलाद्वसीयते । अकरणे प्रत्यवायात्तस्य ३०
नित्यत्वाच्छेदनादिपापनिवर्तकत्वात्काम्यत्वम् । नारदः
```

" आपत्स्त्विप हि कष्टासु ब्राह्मणस्य न वार्धुषम् । भ्रूणहत्यां च तुरुया वार्धुष्यं समतोरुयत् । " अतिष्ठत् भ्रूणहा कोट्यां वार्धुषिः समकम्पत " ॥ इति अत्र **मनुः**—(८।१४१; १०।९५)

१ श्र-दर्यो । २ श्र-देवि । ३ श्र-कंपतः ।

'' अशीतिभागं गृह्णीयान्मासाद्दार्धुषिकः शते । जीवेदेतेन राजन्यः सर्वेणाप्यनयं गतः '' ॥ अनयं आपदम् ।

याज्ञवल्क्यः (२।३७)---

" अशीतिभागो वृद्धिः स्यान्मासि मासि सबंधके । वर्णक्रमाच्छतं द्वित्रिश्चतुःपंचकमन्यथा"॥

५ अन्यथा अत्रंधके । पराज्ञरः (२।७)--

"स्वयं कृष्टे तथा क्षेत्रे धान्यैश्च स्वयमर्जितः । निर्वपेत्पंचयज्ञांश्च ऋतुदीक्षाश्च कारयेत् "॥ बोधायनः (१।५।८५)---

" वेदः कृषिविनाशाय कृषिवेदिविनाशिनी। शक्तिमानुभयं कुर्यादशक्तश्च कृषिं त्यजेत् " ॥ इति ॥ " विप्राणां दासवृत्तिस्तु वर्ज्या यत्नेन सर्वदा " इत्याश्व लायनः ।

🦡 अथ क्षत्रियधर्माः ॥ मनुः (१০।७७–७८)—

" त्रयो धर्मा निवर्तते ब्राह्मणात्क्षत्रियं प्रति । अध्यापनं <mark>याजनं च तृतीयश्च प्रतिग्रहः ॥</mark> " वैइयं प्रति तथेवेते निवर्त्तरिक्षिति स्थितिः " ॥ **याज्ञयल्क्यः** (आचारे **११**९)

" प्रधानं क्षत्रिये कर्म प्रजानां परिपालनम् । कुसीदं कुषिवाणिज्यपाशुपाल्यं विशः स्मृतेः" इति । अभिषेकादिगुणयुक्तस्य राज्ञो विशेषधर्मानाह् याज्ञवल्ययः (आ. २०९–२११)

- १५ " महोत्साहः स्थ्लळक्षः कृतज्ञो बृद्धसेवकः । विनीतः सत्वसंपन्नः कुळीनः सत्यवाक्शुचिः ॥
 - " अदीर्घसूत्रः स्मृतिमानश्चद्रो पुरुषस्तथा । धार्मिकोऽन्यसनश्चेव प्राज्ञः शूरो रहस्यवित्॥
 - " स्वरंभगोप्ताऽऽन्वीक्षिक्यां दण्डनीत्यां तथैव च। विनीतस्त्वथ वार्तायां त्रय्यां चैव नराधिपः" ॥
 - " ब्राह्मणेषु क्षमी क्षिग्धेष्वजिम्हः क्रोधनोऽरिषुः । स्याद्राजा भृत्यवर्गेषु प्रजासु च यथा पिता॥ (३३४)
- २० "पुण्यात्पड्डभागमाद्त्ते न्यायेन परिपालयन् । सर्वदानाधिकं यस्मात्प्रजानां परिपालनम् (२२५)॥
 "चाटतस्करदुर्वृत्तमहासाहसिकादिभिः । पीड्यमानाः प्रजा रक्षेत्कायस्थैस्तु विशेषतः (३२६)॥
 "सापूर्नसंमानयेद्राजा विपरीतांश्च घातयेत्। उत्कोचजीवने द्रव्यहीनान् कृत्वा विवासयेत् (३३९)॥
 प्रमाकर इति पाठांतरं । उत्कोचपरिधानाय द्रव्यग्रहणस्तपकर्म ।
 - " सद्दानमानसत्कारान् श्रोत्रियान्वासयेत्सद्दा ।
- २५ "उपायाः साम दानं च भेदो दंडस्तथैव च।सम्यक्ष्रयुक्ताः सिद्धेयुर्देडस्त्वगितका गितिः(२४६)॥ "संधिं च विष्रहं यानमासनं संशयं तथा। देधीभावं गुणानेतान्यथावत् परिकल्पयेत् (२४७)॥ संधिर्घ्यवस्थाकरणम् । विष्रहोऽपकारः । यानं परंप्रति यात्रा । आसनमुपेक्षा । संश्रयो बलवदा-श्रयणम् । स्ववलस्य दिधाकरणं देधीभावः ॥

मनुः (९।३०१-३१९)

अधौ मासान्यथादित्यस्तोयं हरति रिश्मिभः । तथा हरेत्करं राष्ट्रात्सम्यगर्कतं । स्वाणि राजा हि युगमुच्यते ॥ "कृतिः प्रमुप्तो भवित सजाग्रद्वापरं युगम् । कर्मस्वभ्यदितस्त्रेता विचारस्तु कृतं युगम् ॥ "इन्द्रस्यार्कस्य वातस्य यमस्य वरुणस्य च । चंद्रास्याग्रेः पृथिन्यां च तेजोवृत्तं नृपश्चरेत् । "वार्षिकांश्चतुरो मासान्यथेंद्रोऽभिप्रवर्षति । तथाभिवर्षेत् स्वं राष्ट्रं कामैरिंद्रवतं चरन् ॥ "अष्टौ मासान्यथादित्यस्तोयं हरति रिश्मिभः । तथा हरेत्करं राष्ट्रात्सम्यगर्कवतं हि तत् ॥

" प्रविद्य सर्वभूतानि यथा चरति मारुतः । तथा चारैः प्रवेष्टव्यं व्रतमेताद्धि मारुतम् ॥ " यथा यमः प्रियद्वेष्यौ प्राप्ते काले नियच्छति।तथा राज्ञा नियन्तव्याः प्रजास्तद्धि यमवतम्॥ " वरुणेन यथा पाशैर्वध्यते वारुणेर्नरः । तथा पापान् निगृह्णीयाद् वतमेतद्धि वारुणम् ॥ " परिपूर्ण यथा चंद्रं दृष्ट्रा हृष्यंति मानवाः । तथा प्रकृतयो यस्मिन् स चांद्रवितको नृपः ॥ " प्रतापयुक्तस्तेजस्वी नित्यं स्यात्पापकर्मसु । दुष्टसामंतहिंस्रश्च तदाग्नेयं वतं स्मृतस् ॥ 4 " यथा सर्वाणि भूतानि घरा धारयते समस्। तथा सर्वाणि भूतानि निभ्रतः पार्थिवं व्रतम् ॥ " एतेरुपायैरन्येश्व युक्तो नित्यमतद्भितः । स्तेनान्राजा निगृह्णीयात् स्वराष्ट्रे पर एव वा ॥ '' परामप्यापदं प्राप्तो ब्राह्मणान् न प्रकोपयेत् । ते ह्येनं कृपिता हन्युः सद्यः सबलवाहनम् ॥ " यान्समाश्रित्य तिष्ठंति देवा लोकाश्च सर्वदा। ब्रह्म चैव धनं येषां को हिंस्यात्तान् जिजीविषु:॥ " अविद्वांश्चेव विद्वांश्च ब्राह्मणो देवतं महत् । प्रणीतश्चाप्रणीतश्च यथाग्निर्देवतं महत् ॥ 90 " एवं यद्यंथिनिष्टेषु वर्त्तते सर्वकर्मसु । सर्वथा बाह्मणः पूज्यः परमं दैवतं हि सः ॥ '' यदधीते यद्यजते यददाति यदर्चति। तस्य षड्भागभाष्राजा सम्यक् भवति रक्षणात्(८।३०६)॥ '' अरक्षितारं राजानं बलिषडुभागहारिणम्। तमाहुः सर्वलोकस्य समग्रमलहारकम् (३०९) ''॥ बोधायनः (१।५।१०२)--" न विषं विषमित्याहुर्भेह्मस्वं विषमुच्यते । विषमकािकनं हंति ब्रह्मस्वं पुत्रपोत्रकम्" ॥ इति । तस्मादाजा बाह्मणस्वं नाददीत परमं ह्यतद्विषं यद्वाह्मणस्वमिति । " सर्वतोधुरं पुरोहितं वृण्यात्तस्य शासने वर्त्तेत संधामे न निवर्तेत " इति च (१।५।७-९) । गौतमः (१०।७-१८) ''रक्षणं सर्वभृतानःम्। न्याय्यदंडत्वम्। बिभूयाद्वाह्मणाञ्च्छोत्रियान्। निरुत्साहांश्च बाह्मणानकरां-श्चोपकुर्वाणांश्च योगश्च विजये। भये विशेषेण। चर्या च रथधनुभ्यी संग्रामे संस्थानमनिवृत्तिश्च। न दोषो हिंसायामाहवे। अन्यत्र व्यथ्वसारथ्येनायुधकृतांजिलप्रकीर्णकेशपराङ्गुस्वोपविष्ठस्थलवृक्षा- ३० रूढवृतगोब्राह्मणवादिभ्यः''इति। सर्वरक्षणं शास्त्राविरुद्धश्च दंढश्च राज्ञो धर्मः। अधीतवेदान्ब्राह्मणा-नन्नादिदानेन बिभयाज्जीवनार्थमुन्साहं कर्त्तमसमर्थान् ब्राह्मणानपि बिभयात्। ये पूर्वद्त्ता अकरा अग्रहारा ब्राह्मणादिभ्यः तांश्च यथापृर्वं बिभृयादुपकुर्वाणानधीयानान् ब्रह्मचारिण्यश्च बिभृयात्।योग उपायः। जये पराभिभवनिधित्ते भये सति विशेषेण योगः कार्यः। युद्धे अवस्थायामपलायनं च। चर्या चरणं रथहस्त्यादिकमाह्रढो धनुर्बाणादिहस्तश्चरेतु । युद्धे शत्रूणां हिंसायां न दोषः । व्यश्वेति ३५ विश्रब्दस्त्रिभिः संबध्यते व्यश्वो विसारथिर्व्यायुष इति । स्थलमुन्नतप्रदेशः । दृतो वार्ताहरः । गौरस्मि ब्राह्मणोऽस्मीति ये वदंति ते गोब्राह्मणवादिनः । एतेभ्योऽन्यत्र हिंसायां न दोषः । एतेषु दोष

"न विषं विषमित्याहुर्बह्मस्वं विषमुच्यते । देवस्वं चापि यत्नेन सदा नापहरेत्ततः"॥इति । ३० आपस्तंबः (२।२५।१५; २६।१-४)—" क्षेमकुद्राजा यस्य विषये ग्रामेऽरण्ये वा तस्करभयं न विद्यते । भृत्यानामनुपरोधेन क्षेत्रं वित्तं च ददत् ब्राह्मणेभ्यो यथार्हमनंतांहोकानिभजयित । ब्राह्मणस्वान्यपिजिगिषमाणो राजा यो हन्यते तमाहुरात्मयूपो यज्ञोऽनन्तदक्षिण इति"।आहुर्धमंज्ञाः। "एतेन राज्ञा ब्राह्मणद्रव्यप्रत्यायनार्थं युध्यमानास्तनुत्यजोऽन्येऽपि ज्ञूरा व्याख्याताः । प्रयोजने युध्यमानास्तनृत्यजो ग्रामेषु नगरेषु चेति"। ब्राह्मणस्वानि चोरादिभिरपह्नतानि अप- ३५

इत्यर्थः । स एव- (१०।४३-४४) "निध्यधिगमो राजधनम् । न ब्राह्मणस्याभिरूपस्य राजा

सर्वस्येष्टे ब्राह्मणवर्जम्" इति च । द्यासः (११।१)---

१ **३म**—पि ।

९-सिम. म फो

```
जिर्गाषमाणो बाह्मणेभ्यो दानाय तानपजित्य ग्रहीतुमिछन्योऽपि राजा युद्धे चोरैः हन्यत तमात्म-
   यूपो यज्ञोऽनंतदक्षिण इत्याहुर्धर्मज्ञाः। एतेन राज्ञा बाह्मणद्व्यप्रत्यायनार्थं युध्यमानास्तनुत्यजोऽ-
   न्येऽपि ज्ञा व्याख्याता आत्मयुषा अनंतद्क्षिणा यज्ञा इति । सनुः (७१३४)—
   ''म्रियमाणोऽप्यादर्दात न राजा श्रोत्रियात्करम् । न च क्षुधाऽस्य संसीदेच्छ्रोत्रियो विषये वसन् ॥
  "मोहाद्राजा स्वराष्ट्रं यः कर्ज्यत्यनवेक्षया । सोऽचिराद्धर्यते राज्याज्जीविताच्च सर्बाधवः"॥
   इति ( ७।११२ ) । पराद्यरः ( १:५६।१।५७,५९ )--
   " अवता हानधीयाना यत्र भेंश्यचग द्विजाः। तं बार्स दंडयेद्वाजा चोरभक्तप्रदो हि सः ॥
   " भ्रत्रियो हि प्रजा रभुन्छम्रपाणिः प्रदंडवान् । निर्जित्य परसेन्यानि भ्रितिं धर्मेन पारुयैन् ॥
   " पुष्पं पुष्पं विचिनुयानमूलच्छेदं न कार्येत्। मालाकार इवाऽऽरामे न यथांऽगारकारकः (३।३७)॥

    " द्वाविमी पुरुषों छोके सूर्यमंडलभेदिनों । परिवाद योगयुक्तश्च रणे चामिमुखो हतः (२०)॥

   " यत्र यत्र हतः शुरः शत्रुभिः पग्विधितः। अक्षयान् रुभते ठोकान्यदि क्लोबं न भाषते (३८)॥
   🔭 यस्तु भम्रेषु सन्येषु विद्वतसु समततः । परित्राता यदा गच्छेत्स तु ऋतुफलं रुभेत् (४०)॥
   " यस्य च्छेद्क्षतं गात्रं शरपुद्गरयष्टिभिः । देवकन्यास्तु तं वीरं हरंति रमयंति च ( ४१ )॥
   ''देवांगनासहस्राणि शूरमायोधने हतस् । त्वरमाणाः प्रधावंति मम भर्त्ता ममेति च ( ४२ ) ॥
५ " यं यज्ञसंघेस्तपसा च विप्राः स्वर्गेषिणो वाऽत्र यथैव यांति ।
  '' तथेव यान्त्येव हि तत्र वीराः प्राणान्सुयुद्धेन परित्यंजति ( ४४ ) แ
  '' ललाटदेशे रुधिरं सर्वेधदस्याहवे तुँ प्रविशेच्च वक्त्रम् ।
  '' तत्सोमपानेन किलास्य तुल्यं संग्रामयत्ते विधिवच्च दष्टन् '' ( ४३ ) ॥ विष्णुपुराणे—
  ''दुष्टानां शासनाद्राजा शिष्टानां परिपालनात्। प्राप्तोत्यभिमतान् लोकान्वर्णसंस्थाकरो नृपः''॥ इति।
, इति क्षत्रियधर्माः । अथ वैश्यधर्माः । मनुः ( १।५० )--
  " पञ्जनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च । विणविषयं कुसीदं च वैरुयस्य कुषिमेव च " ॥
  विणक्पेथं वाणिज्यार्थं स्थलछलजलयात्रा । कुसीदं वार्धुव्यम् । अकल्पयदित्यनुवर्त्तते । हारीतः—
  ''गोरक्षां कृषिवाणिज्यं कृर्याद्देश्यो यथाविधि।दानं द्यं यथाज्ञक्त्या बाह्मणानां च भोजनम्''॥इति।
  पराश्चरः (११६०)—
         " हाँभकर्म तथा रत्नं गवां च परिपालनम् । कृषिकर्म च वाणिज्यं वैश्यवृत्तिरुदाहृता <sup>।</sup> १।
  मनुः ( ९।३२६ )
  ''वैद्यस्तु कृतसंस्कारः कृत्वा दारपरिब्रहम् । वानीयां नित्ययुक्तः स्वात्पञ्चां चेव रक्षणे(३२६)॥
  '' मणिमुक्ताप्रवा<mark>लानां लोहानां तां</mark>तवस्य च । गंबानां च रसावः च विद्यार्थंबलावलम् (३२९) ॥
 'बीजानमृतिविच्च स्थात्क्षेत्रवीजरुणस्य च । सानये।गांश्च जारीयानुँछ।ये।गांश्च सर्वतः(३३०)॥
 `'सारासारं च भांडानां देशानां च गुणागुणह । लाभालाभं च पण्याना पञ्जां च विवेधनम्(३३१)॥
 "भुत्यानां च भृतिं विद्याद्भाषाश्च विविधा सृणास् द्रव्याणां स्वानयागं च क्रयविक्यमेव च(३३२)॥
 ''धर्मेण च द्रव्यवृद्धावातिष्ठेबत्नमुक्तमम् । द्याच्च सर्वभृतानां दालेश्व प्रयत्नतः (३३३)"॥ इति ।
 इति वैश्यधर्माः । अथ शूद्रधर्माः ॥ पराशरः ॥ ( ५।६१ )
 " शूदस्य द्विजशुश्रुषा परमो धर्म उच्यते । अन्यथा कुरुते किंचित्तद्भवितस्य निष्फलम् "॥
 द्विजशुश्रूषया जीवनासंभवे स एवाह ( १।६२ )---
```

९ **क्ष-**येत् । २ **क्ष-**वधस्त । ३ **ख-**च । ४ लोहकर्म इति मदिनपारः । ५ **क्ष-**सन्ता ।

''लवणं मधु तेलं च दाधि तकं घृतं पयः । न दुष्येच्छुद्रजातीनां कुर्यात्सर्वेषु विकयम्''॥ इति । सर्वेषु लवणादिषु विकथं कुर्यात् । आपचिष वज्यानाह् (११६२-६४)--''विक्रीणन् मद्यमांनानि ह्यभक्षस्य च भक्षणम्। कुर्वन्नगम्यागमनं शुद्रः पतित तत्क्षणात् ॥ " कपिलाक्षीरपानेन बाह्मणीगमनेन च । वेदाक्षरिवचारेण श्रुद्धांडालतां ब्रजेत् ॥ ''विकर्म कुरुते सृदा द्विजसेवाविवर्जिताः।भवंत्यल्पायुषास्ते वै निरर्थ यात्यसंशयः(२।१६)''॥इति। 🔫 मनुः (९।३३४।३३५)--" जुश्रुषेत्र तु शृदस्य धर्मो निश्रेयसः परम् ॥ " शुचिरुत्कृष्टशुश्रुषुर्षृदुर्वागनहंकृतः । बाह्मणार्योश्रयो नित्यमृत्कृष्टां जातिमश्रुते " ॥ "अञ्ञक्कवंस्तु शुश्रुषां जूदः कर्तुं द्विजन्मनाम् । पुत्रदारात्ययं प्राप्तो जीवेत्कारुककर्मभिः (१०।९९)॥ ''यैः कर्मभिः सुचरितैः शुश्रुष्यंते द्विजातयः। तानि कारुककर्माणि शिल्पानि विविधानि च(१००)॥ १० " शूद्रस्तु वृत्तिमाकांक्षनक्षत्रमाराधयेदिति । धानेनं वाऽप्युपाराध्य वैरुयं शूद्रो जिजीविषेत्(१२१)॥ " स्वर्गार्थमुभयार्थं वा विप्रानाराधयेतु सः । जातवाझणशब्दस्य साँ ह्यस्य कृतकृत्यता (१२२)॥ " विप्रसेवैव शुद्रस्य विशिष्टं कर्म कीर्त्यते । यदतो ऽन्यत्र कुरुते तद्भवत्यस्य निष्फलम् (१२३)॥ "न <mark>श</mark>ुद्रे पातकं किंचिन्न च संस्कारमर्हति । नास्याधिकारो धर्भेऽस्ति नाधर्मात्प्रतिषेधनम् (१२६<mark>)</mark>॥ " धर्मेप्सवस्तु धर्मज्ञाः सतां वृत्तिमनुष्ठिताः । मंत्रवर्ज्यं न दुष्यंति प्रशंसां प्राप्नुवंति च (१२७)॥ ১५ '' यथा यथा हि सद्भुत्तमातिष्ठत्यनैसूयकः । तथा तथेमं चामुं च होकं प्राप्नोत्यनिंदितः (१२८)॥ " शक्तेनापि हि शृद्रेण न कार्यो थनसंचयः । श्रुद्रो हि धनमासाय बाह्मणानेव बाधते (१२९)॥ ''उच्छिष्टमन्नं दातव्यं जीर्णानि वसनानि च। पुलाकाश्चैव धान्यानां जीर्णाश्चैव परिछद्ाः''(१२५)॥इति उच्छिष्टं भोजनपात्रे अक्तशिष्टभेतद्दासविषयम्।नाबाह्मणायोच्छिष्टं प्रयच्छेद्त्येतत्तु अदासविषयम्॥ गृहस्थशृद्रविषयमित्यन्ये । तथा च ट्याघः--" उच्छिष्टमन्नं दातव्यं शूद्रायं गृहमेधिने । गृहस्थाय तु दातव्यमनुच्छिष्टं दिने दिने "॥ इति । देवलः---

" शौद्रोऽयं धमों द्विजातिशुश्रृषा पापवज्ये कलत्रादिपोषणं कर्षणं पशुपालनं भारोद्वहन-पण्यव्यवहारश्चित्रकर्म नृत्यगीतवीणायृदंगवादनानि' इति। याज्ञवत्कयः (आ. १२०।१२१)— " शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा तयाऽजीवन् विणग्मवेत् । शिल्पैर्वा विविधेर्जीवेद्विजातिहितमाचरन् ॥ २५ " भार्यारतिः शुचिर्भृत्यभर्ता श्राद्धियारतः । नमस्कारेण मंत्रेण पंचयज्ञान्न हापयेत् " ॥ गौतन्नः (१०।५१–५८; ६०–६७)—

' शूद्रश्चतुर्थो वर्ण एकजातिस्तस्यापि सत्यमकोधः शौचमाचमनार्थे पाणिपादप्रक्षालन-मेवेक श्राद्धकर्ध भृत्यभरणं स्वदारवृत्तिः। परिचर्या चोत्तरेषां तेम्यो वृत्तिं लिप्सेत । जीर्णान्युपान-त्छ्ववासः कूर्चादीन्युच्छिष्टाश्नं शिल्पवृत्तिश्च यं चायमाश्रयेत् भर्तव्यस्तेन पुण्यक्षीणोऽपि। तेन ३० चोत्तरस्तदर्थोऽस्य निचयः स्यादनुज्ञातोऽस्य नमस्कारो मंत्रः। पाकयज्ञैः स्वयं यजेतेत्येके" इति। एकजातिः । उपनयनमितरेषां द्वितीयजन्म तस्य तन्नास्ति पाकृतनेषु गृह्यकार आह— ''शूद्रस्यापि निषेकपूंसवनसीदंतोन्नयनजातकर्मनामकरणोपनिष्कमणान्नप्राशनचौलान्यमंत्रकाणि यथाकालमुपदिष्टानि " इति । "आचमनस्थाने पाणिपादप्रक्षालनमेव भवति नान्य आचमनकल्प

१ क्ष-या। २ क्ष-कृत्यस्य। ३ करवग-शूद्रस्य। ४ क्ष-अनुष्ठानेन सूयकः। ५ क्ष-या। ६ क्ष-नि।

दृत्यके "। मनुस्तु सकुद्दन्वुयानिक्छिति (५११६८)—" स्त्री शूद्रोऽपि सकृत् " इति । नित्यस्नानिविषयेऽप्युद्धाना आह—" सच्छ्द्रः स्नायाद्यसच्छ्द्रः पाणिपादो प्रक्षालयेत् " इति । श्राद्धकर्मानावास्यादा आनश्राद्धं मन्त्रवर्णं कर्तव्यम् । स्वद्गार्वृत्तिश्वास्य भवित नाश्रमान्तरेषु प्राप्तिरिति । कृषं वृस्यादि । जीणान्युपयुक्तानि उपानदादीनि परिचरते द्वासाय देयानि । यमसौ पूर्वमाश्रितः कर्माण्यकरोत् क्षीजोऽसमयेरिऽपि तेनासौ भर्तव्यः । तेन च शूद्रेण उत्तरो वृत्तिक्षीणो भर्तव्यः । तत्र्यं उत्तरपोषणार्थं अस्य शृद्धस्य निचयः स्यात् । अस्य वैश्वदेवादिषु देवतापदं चतु- ध्यतं मनता ध्यात्वः नमो नम इत्येवंक्षपो मंत्रोऽनुज्ञातो धर्मज्ञैः । अपर आह— "देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिन्य एव च । नमः स्वधाय स्वाहायै नित्यमेव नमो नमः " ॥ अयं मंत्रो नमस्कारशब्देन विवक्षितः । स पित्रयेषु कर्मसु भवित । पक्षगुणकेषु गार्श्वेषु पाक्यक्रशब्दः प्रसिद्धः । यथाहापस्तंवः— "लोकिकानां पाक्यज्ञशब्दः" इति । तैः पाकयज्ञैः शृद्रोऽपि स्वयं यज्ञेतत्यर्थः । आपस्तंवः (१११६—८)—" अशूद्राणामद्वष्टकर्मणामुपायनमुपन्यनं वेदाध्ययनमद्याध्यं फलवित्तं च कर्माणि। शुश्र्षा शृद्धस्येतरेषां वर्णानाम्। पूर्विस्मिन्पूर्वस्मिन्वंण निःश्चयसं भयः " इति । मनुः—

" येनांगेनावर्ग वर्णो बाह्मणस्यापराधन्यात् । तद्गं तस्य च्छेतव्यं तन्मनोरनुशासनम् ॥ 'न श्ट्राय मित द्वान्नोच्छिं न हिव्कृतम्।न चास्योपिद्शेद्धमे न चास्य वर्तमाद्शेत(५।८०)॥ ''यस्तम्य धर्म व्याच्छे योऽस्येवादिञ्ति वतन्।सोऽसंवृतं नाम तमस्तेनैव सह गच्छति(८१)'शाइति। उच्छिष्टं मिक्सित्रोपम् । हिविष्कृतं पुरोहाज्ञादि । न जाद्राय मितं द्यात् । न चास्यो-पदिशेद्धर्मित्यादि निषेषः जुदानुषयं।गि वैदिकाग्निहोत्रादिधर्मज्ञानविषयः। " श्रावयेच्चतुरो वर्णान् कृत्वा बाद्यणम्यतः इति इतिहासपुराणादिश्रवणस्य बाह्मणमुखेन शूद्रस्यापि विहितःवात्। . किंच स्मृत्युंक शृद्राणामपि उपदेशे प्रतिपेधामावी वाच्य: । अन्यथा "शृद्रश्चतुर्थी वर्ण एक-जातिस्तस्यापि मन्यनकोयः शासनाचननार्थं पाणिपाद्पश्चालनमेवैके । श्रास्तकर्म । भृत्यभरणं स्वदारवृत्तिः परिचर्या चान्नेरपान े इत्यादिगौसमादियमीकानां स्मृत्युकाशौचामश्राद्धादीनां चापदेशासाव तद्विषयतादृश्यमीणामनुष्ठानात् तद्वचनानामननुष्ठानलक्षणमेव । गौतसः (१२।१-५)- ' जुड़ा दिजातीनिभिसंयायाभिहत्य च वाग्दंडपारुष्याभ्यामंगमोच्यो येनो- पहन्यादार्यस्थितिमने तिंगोत्द्वारः स्वहरणं च । गोप्ता चेद्वधोऽधिकोऽथास्य वेदमुपशृण्वतस्त्रपु-जत्भ्यां श्रोत्रशतिपृरणम्दाहरणं जिब्हाच्छेदां धारणे शरीरभेदः। आसनश्यनवाकपथिष समप्रेष्सर्वृह्यः विति । वाचा परपयाऽभिसंधाय निर्भत्थ्यं दण्डपारुष्येण चाभिहत्य दण्डेन परुषं ताडियन्त्रा स्थितः शृद्रो येनाङ्गेनापराध्नुयात् तदङ्गं मोच्यः वियोजनीयः। वाचा निर्भर्त्सने जिव्हाच्छेदो भुजादिना ताडने हस्तादिच्छेदः । आर्यास्त्रैवर्णिकाः तेषां स्त्रियो शूद्रो यद्यभि-。 मछेत्तदा तस्य लिंगोद्धारणं कर्तन्यं सर्वस्वहरणं स शूद्रस्तासां गोप्ता रक्षिता यदि भवति तदा वधः प्रमाणमधिको दंडः । अथ हित वाक्यालंकारे । अस्य शूद्रस्य वेद्रमुपशृण्वतः उपसृत्य वुद्धिपूर्वं शृण्वतः श्रोत्रे त्रपुणा जतुना च द्वीकृतेन प्रतिपूरियतन्ये। उदाहरणे वेदोच्चारणे तस्य जिव्हा च्छेदा। हृदयेनावधारणे परइवादिना शरीरं भेद्यम्। शूदश्चेदासनादिषु द्विजातिभिः साम्यं प्रप्स्यित तत्तुल्यभावं ततोऽसौ दंड्यः । दंडश्चापस्तंबेन दर्शितः (२।२७।१५)- "वाचि

१ क्ष-ब्रह्मा । २ क्ष- + मक्षितशिष्ठं ।

पथि शय्योयामासने समीभवतो दंडस्ताडनम् " इति । वृत्त्यर्थं शूद्रं सेवमानस्य ब्राह्मणस्य निष्कृतिमाहापस्तंबः (१।२७।११)— "यदेकरात्रेण करोति पापं कृष्णं वर्णं ब्राह्मणः सेवमानः। चतुर्थकाल उदकाभ्यवायी त्रिभिवंधेंस्तद्पहंति पापम् " इति । पराश्चरः (१२।६२)—— "शूद्रान्नं शूद्रसंपर्के शूद्रेण च सहासनम्। शूद्रात् ज्ञानागमश्चापि ज्वलंतमपि पातयेत"॥ इति ।

नारद:

''शूद्राणां मासिकं कार्यं वपनं न्यायवर्तिनाम्। वैञ्यवच्छौचकल्पश्च द्विजोच्छिष्टं तु भोजनम्'ो।इति। इति शूदकर्म । अथ ब्राह्मणानां श्रेष्टचम् । आपस्तंबः (१।१।४-५)-- " चत्वारो वर्णा बाह्मणक्षत्रियवैश्यशूद्रास्तेषां पूर्व: पूर्वा जन्मतः श्रेयान "॥ इति । मनुः (१।९३–९५)--'' उत्तमांगोद्भवात् ज्येष्ठचाद्वद्भणश्चेव धारणात् । सर्वस्यैवास्य सर्गस्य धर्मतो ब्राह्मणः प्रभुः ॥ " तं हि स्वयंभुः स्वादास्यात्तपस्तप्त्वादितोऽसुजत्।हव्यकव्यादिवाद्याय सर्वस्यास्य च गुप्तये॥ ५० " यस्यास्येन सदाऽश्नंति हब्यानि त्रिदिवौकसः । कब्यानि चैव पितरः किंभूतमधिकं ततः ॥ '' उत्पत्तिरेव विप्रस्य मूर्तिर्धर्मस्य ज्ञाश्वती । स हि धर्मार्थमृत्पन्नो ब्रह्मभूयाय कल्पते (९८)॥ " ब्राह्मणो जायमानो वै पृथिव्यामधिजायते । ईश्वरः सर्वभूतानां धर्मकोशस्य गुप्तये" (९९)॥ इत्यादि । "न श्रदाय मितं द्यान्न चास्योपिदशेन्द्वर्मम्" (४।८१) इत्यादिनिषेधः श्रदानुप-योगिवैदिकामिहोत्रादिधर्मज्ञानविषयः । " श्रावयेच्चतुरो वर्णान्कृत्वा ब्राह्मणमग्रतः " इति १५ इतिहासपुराणादिश्रवणस्य बाह्मणमुखेन शूद्रविषयेऽपि विहितत्त्वात् । किंच स्वृत्युक्त-भूद्रधर्माणामपि उपदेशप्रतिषेधाभावो वाच्यः । अन्यथा " भूद्रश्चतुर्थो वर्ण एकजातिः । तस्यापि सत्यमकोधः शौचमाचमनार्थे पाणिपादप्रक्षालनमेबैके श्राद्धकर्म मृत्यभरणं स्वदारद्विः तुष्टिः परिचर्या चोत्तरेषाम् " (१।५१-५७) इत्यादिगोतमादि धर्मोक्तानां स्पृत्युक्तशोच-्रशा**द्धादीनां च उपदेशाभावे तद्दिषयताहशधर्माणामननुष्ठानात्तद्दचनानामननुष्ठान**ळक्षणमप्रामाण्य- २० मापश्रते तस्माच्छूदानुष्टानानुपयोगिधर्मविषय एव निषेधः । न तु चातुर्वण्यगृहस्थसाधारण धर्माणामहिंसास्तेयादिरूपाणां प्रातिस्विकशौचामश्राद्धद्विजशृश्रुषादिधर्माणामपि। न च स्वानु-ष्ठानानुपर्योगिधर्मश्रवणे कस्याप्यप्रसक्तेः प्रतिषेधो न्यर्थ इति वाच्यम् । धर्मः श्रुतो वा दृष्टो विति धर्मात्र श्रवणे फलाभिधानात्स्वधर्म इति विशेषाभावाच्छ्द्रव्यतिरिक्तानां त्रैवर्णिकानां यथा सर्ववर्णधर्मश्रवणे अधिकारः संन्यासव्यतिरिक्तानां यथा सर्वोश्रमसाधारणधर्मे अधिकारः त्रैवर्णिक- २५ स्त्रीणां पुरुषधर्मे पुरुषाणां च स्त्रीधर्मे यथाधिकारः तथा शृद्रस्यापि प्रसक्ते तद्विषये प्रतिषेधस्यार्थवत्वात ।

"सर्वस्वं ब्राह्मणस्येदं यत्किंचिज्जगतीगतम्। ज्येष्ठचेनाभिजनेनेदं सर्वं वै ब्राह्मणोऽर्हति(१००)"॥ "स्वमेव ब्राह्मणो भुंक्ते स्वं वस्ते स्वं ददाति च।अन्तर्शस्याद्ब्राह्मणस्य भुंजते हीतरेजनाः (१०१)"॥ इति स्तुतिः। स्तेयादिषु पतनदंडप्रायश्चित्तोपदेशात्। याज्ञवल्क्यः (आ. १९८)—

" तपस्तप्त्वाऽसृजद्वस्ना ब्राह्मणान्वेदगुप्तये । तृष्त्यर्थं पितृद्वानां धर्मसंरक्षणाय 🔫 " ॥

शातातप:--

[&]quot; जन्मनैव महाभागो ब्राह्मणो नाम जायते । माताऽसौ सर्वभूतानां वर्णश्रेष्ठः पिता गुरुः ॥

[&]quot; नास्त्येषां पजनीयोऽन्यस्त्रिष लोकेष कश्चन । वेदविद्याविशेषेण पजयंतः परस्परम ॥

- " अन्योन्यगृरवो वित्रा अन्योन्यातिथयः स्मृताः। अन्योन्यमुपकुर्वाणास्तारयंति तरन्ति च ॥
- " योडि यां देवत.मिटामानववितुमीहते । सर्वीपायप्रयत्नेन **संतोषयतु स द्विजान्॥**
- "देवतादिव्यम्तेषु क्रचित्काचित्प्रतीष्टिता । बाह्मणो देवताः सर्वास्तस्मात्संपूजयेत्सदा " ॥ श्रुतिरणि—— "बाह्मणेटिं नर्वा देवता " इति "यावतीर्वे देवतास्ताः सर्वा वेदविदि । बाह्मणे दसंतीति "च । मनुः (१।९६–९७)——
- "भृतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धिजीविनः। बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः॥
 " ब्राह्मणेषु तु विद्यांसो विद्यत्सु कृतवुद्धयः । कृतबुद्धिषु कर्तारः कर्तृषु ब्रह्मवेदिनः "॥ इति ।
 विद्यांसो वेद्विदः। कृतवुद्धयः परिचितवेदार्थकर्त्तारश्चोदितधर्मकृतः। ब्रह्मवेदिनः परमात्मवेदिनः।
 'कर्तृषु ब्रह्मदेदिने इति वदता ब्रह्मविद्धिरुपि कर्म कर्त्तव्यमिति सूचितम्। इति ब्राह्मणश्चेष्ठन्यम्।
 ९० अथ जातिथिवेकः । तत्र भनुः (१०।५-६)--
 - " सर्ववर्णेषु तुरुवासु परनीष्वक्षतयोनिषु । आनुस्रोम्येन संभूता जात्या ज्ञेयास्त एवते ॥
 - " स्त्रीव्वनंतरजातासु दिजेरत्पदितानसुतान् । सहशानेव तानाहुर्मातृदोषविवर्जितान् "॥

दवल:---

} =

- " तेषां सवर्णजाः श्रेष्टास्तेभ्योऽन्वगनुलोमजाः । अंतराला बहिर्वर्णाः पतिताः प्रतिलोमजाः " ॥ १५ मनुः——" अवरासूनमाज्जाताश्चानुलोमा इति स्मृताः ।
 - ंनूपायां वित्रता जातः सवर्णो बाह्मणो भवेत् । आयुर्वेदाथववेदधनुर्वेदानसदा पठेत् ॥
 - " गजाश्वारोहणं तस्य सवर्णस्य विधीयते । अस्यामनेन चौर्येण जातो नक्षत्रजीविकः॥
 - " विप्रस्य त्रिषु वर्णेषु चपतेर्वर्णयोर्द्वयोः । वैश्यस्य वर्ण एकस्मिन्षडेतेऽपसदाः स्मृताः"॥ (१०) याज्ञवल्क्यः (आ. ९१-९२)—
- ः "विप्रान्मूर्धावसिक्तो हि अतियायां विद्याः स्त्रियाम्। अंबष्ठः शूद्यां निषादो जातः पारहारोऽपि वा ॥ "वेह्याशृद्धोस्तृ राजन्यान्माहीय्योग्नो सुतौ स्मृतौ। वैह्यातु करणः शूद्यां विन्नास्वेष विधिः स्मृतः"॥ एष सवर्णमूर्थावसिक्तादिनंज्ञाविधिः विन्नासु र्जटासु स्मृतः। यत्तु "ब्राह्मणेन अत्रियायामुत्पादितः अत्रिय एव भवति अत्रियेण वेह्यायां वेह्य एव वेह्येन शूद्धायां शूद्ध" इति शंखस्यरणम्— तत्अत्रियादिज्ञातिप्राप्त्यर्थं न तु सवर्णादिसंज्ञानिराकरणार्थम् । अत्रश्च मूर्धावसिक्तादीनां २५ अत्रियादेहकेशेव दंद्याजिनोपवीतादिभिरुपनयनादि कार्यमिति विज्ञानेश्वरः (१.२६ मं.२२)॥ मन्रपि (१०८)—
 - 🕆 त्राह्मणाद्वेहयकन्यायामंत्रष्टे। नाम जायते । निषादः शूद्रकन्यायां यः पारशव एव वा ॥
 - '' अवियाद्देश्यकन्यायां माहिष्यां वष्ठ इत्यसो । आयुर्वेद्मयाष्टांगं पठेदेष स्ववृत्तये ॥
 - ''अस्यामनेन चौर्येण जातश्चाश्विक उच्यते। अश्वानां विक्रयस्तेषां भुश्रूषा वृत्तिरस्य तु॥ ''वैङ्यतः भूद्रकन्यायामुग्रको नाम जायते। मेषाविविक्रयश्चास्य वृत्तिः कम्बलविक्रयः॥
 - "अन्तःपुराणि वा रक्षेन्त्रेपाणामाज्ञया सदा। चौर्येण कटकारः स्यात्कटविक्रयकर्मवान्॥
 - "क्षत्रियोच्छृद्कन्यायां कृराचारविहारवान् । क्षत्रज्ञूद्वपुर्जेतुरुग्रो नाम प्रजायते ॥ (९)
 - "बाह्मणादेश्यकन्यायां निषादो नाम जायते। मंत्रीषधिकयां कुर्यान्नित्यं शालिक्यकर्म च॥
 - "चौर्येण कटकारः स्यादृर्ध्व नापित एव सः । नाभ्यूर्ध्ववपनं वृत्ति कुंभानां करणं मृदा ॥

```
" ब्राह्मणाच्छूद्रकन्याया जातः पारशवस्तथा । भद्रकाल्यर्चनं तस्य नृत्तं वाद्यं च वृत्तये॥
        " अस्यां वै चोरसंगत्या निषादो जायते सुतः। जीवेद्दंभेन गानेन मृगाणां हिंसयाऽिव वा॥
        "क्षत्रियाच्छूद्रकन्यायां जातो दोःषंत उच्यते । वनौकसां संग्रहणं मत्स्यानां ग्रहणं तथा॥
        " खड्गादिशस्त्रकरणं दौःषंतस्य तदुच्यते ॥
        " अस्यामनेन चौर्येण जूलिको जायते नरः। नित्यं जूलधरश्चेव राज्ञां दंड्यांस्तु दंढयेत्॥ ५
        " महिष्यात्करणायां तु रथकारस्तु जायते । अथ पर्यायनामानि तक्षशिरुपी च वर्धकी ॥
        " लोहकारः कर्मकारः विद्यते यजनं तथा । उपवीतं विधानन छुर्यादाधानमध्यसौ ॥
       '' वास्तुशास्त्रमधीयानः प्रासादप्रतिमादिकम् । यज्ञशत्रान्द्विजातीनां हेमान्याभरणानि च ॥
       " कुष्यपस्करणं लेख्यं कर्माण्यस्योदितानि च "। इांखः-
''रथकारस्तस्येज्याधानोपनयनसंस्कारक्रियाश्च प्रतिष्ठा रथसूत्रवास्तुविद्याध्ययनवृत्तिता च'' इति। १०
इत्यनुलोमजातिः ॥ अथ कृण्डगोलकादिजातिः । मनुः---
" ब्राह्मण्यां सथवायां तु जारजातः स कुंडकः । विथवायां गोलकः स्यादेतो श्राद्धे वहिष्कृतौ ॥
" नृपायां क्षत्रियाज्जातस्त्रीर्याद्रीज इति स्मृतः। नाभिषेकः पहुषरो राजके रंजयेत्प्रजाः॥
" वैश्यायां वैश्यतश्चीर्यान्मणिकारश्च जायते । मुक्तानां वेथनं शंसलवनं रतनरंजनम् ॥
" अस्यैव मणिकारस्य त्रीणि कर्माणि वृत्तये ॥
" ज्ञूदायां ज्ञूद्रतश्चौर्याज्जातो माणवको भवेत् । अश्वानां तृणदानेन वर्त्तयेदेष नित्यज्ञः " ॥
अथ प्रतिलोमजातिनिरूपणम् । प्रातिलोमानाह याज्ञवल्क्यः ( आ. ९३-९४ )-
" ब्राह्मण्यां क्षत्रियात्सूतो वेश्याद्वैदेहकस्तथा । शूद्राज्जातस्तु चंडालः सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥
" क्षत्रिया सागर्थं वैरुयाच्छुदात्क्षत्तारमेव च । जूदादायोगवं वैरुयाज्जनयामास वै सुतम् " ॥
मनुः (१०।११)--
       "क्षत्रियाद्दिप्रकन्यायां सूतो भवति जातितः । प्रतिलोभेषु च श्रष्ठो विष्णोरभ्यर्चनं तथा ॥
       " धर्मावचोधनं तस्य सारथ्यं कटविक्रयः । नित्यं द्विजवदाधार इति सूतस्य वृत्तयः ॥
       " चुपायां वैश्यतो जातः काथिता मागयश्च सः । चुपप्रशंसनं कुर्यात्तंत्रिवीणाश्च वाद्येत्॥
       " अस्यामनेन चौर्येण पुलिंदो नाम जन्मतः । हिंसया दुष्टसत्वानामरण्ये वर्त्तयेद्यम् ॥
       " तैलिपण्याकलवणविक्रयेणेव वर्तयेत् । अभोज्यान्नः स्वयं जुद्रैरस्पृङ्योऽपि भवत्युत ॥ २५
       " यामादिष्वपराह्मेषु प्रविशन् दंडमर्हति ॥
       " वैञ्यान्मागधवैदेहौ राजविप्रांगनासुतौ । शृदादायोगवक्षत्ता चंडालश्चाधमो चणाम् ॥
       " वैश्यराजन्यविप्राप्तु जायंते वर्णसंकरः ।
" यथैव जूदो बाह्मण्यां बाह्मजं तु प्रसूयते । यथा बाह्मंतरो बाह्मं चातुर्वण्ये प्रसूयते ॥
'' आयोगवश्च क्षत्ता च चंडालञ्चाथमो नृणाम्। प्रातिलोम्येन जायंते शूदाद्पसदास्त्रयः॥
                                                                                           30
" वैञ्यान्मागधवैदेहौ क्षत्रियात्सूत एव तु । प्रतीपमेव जायंते परेऽप्यगसदास्त्रयः ॥ ( १७)
```

" जातो निषादाच्छूदायां जात्या भवति पुल्कसः । (१८) उगात्तु जातः क्षत्तायां श्वपाक इति

कीर्त्यते ॥

[&]quot; चंडाल्रश्वपचानां तु बहिर्शामात्यतिश्रयः । चैत्यद्वमरमशानेषु शैलेषूपवनेषु च ॥

[&]quot; वसेयुरेते अज्ञाता वार्ताया च स्वकर्मभिः। वासांसि मृतचेळानि भिन्नभांडे च भाजनम् ॥ ३५

" कार्ष्णायसस्त्वलंकारः परिवज्या च नित्यशः। न तैः समयमन्विछेत्पुरुषो धर्ममाचरन्॥

ं वर्णापेतमविज्ञातं नरं कलुषयोनिजम् । आर्यरूपमिवानार्यं कर्मभिः स्वैर्विभावयेत् ॥

" अनार्यतः निष्ठुरता क्र्रता निष्क्रियात्मता। पुरुषं व्यंजयन्तीह लोके कलुषयोनिजम् ॥

" पितुर्वा भजते शीलं मातुर्वीभयमेव वा । न कथंचन दुर्योनिः प्रकृतिं स्वां विमुखति॥

" स्वस्वजातेर्हि यत्कर्म कथितं तेन वर्तयेत्। अन्यथा वर्त्तमाने हि सत्यं पतित जातितः"॥ याज्ञवल्क्यः (आ. ९५)—"असत्संतस्तु विज्ञेयाः प्रतिलोमानुलोमजाः"। असंतः प्रतिलोमजाः सन्तश्चानुलोमजा ज्ञातव्या इत्यर्थः । अनुलोमप्रतिलोमजातीनामनन्तत्वेन वक्तुमशक्यस्वाद्व न लिख्यते । इति प्रतिलोमजातिः

पुन: सावर्ण्यप्राप्तों कारणमाह याज्ञवत्कयः (आ. ९६)---

"जात्युत्कर्षी युगे ज्ञेयः सप्तमे पंचमेऽपि वा।व्यत्यये कर्मणां साम्यं पूर्ववच्चाधरोत्तरम्"॥ जातयो मुर्धावासिकावास्तासामुत्कर्षो बाह्मणस्वादिजातिप्राप्तिः । युगे जन्मनि । सप्तमे पश्चमे अपि शुट्यात्परे वा बोद्धव्या। व्यवस्थितश्चायं विकल्पः। बाह्मणेन शृद्धायामुत्पादिता निषादी सा बाह्यणेनोहा इहित**ं** क्रांत्रिज्ञनयति । साऽपि बाह्यणेनोहा अन्यामित्येनेन प्रकारेण षष्ठी सप्तमं बाह्मणं जनयति । ब्राह्मणेन वैङ्यायामुत्पादिता अंबष्टी । साऽप्येतेन प्रकारेण पंचमी षष्टं ब्राह्मणं ५५ जनयति । मुर्शविभक्ताऽप्यनेन प्रकारेण चतुर्थी पंचमं ब्राह्मणं जनयति । एवमुग्रा क्षत्रियोढा माहिप्या च यथाक्रमं षष्टपंचमं च क्षत्रियं जनयति । तथा करणी वैश्योढा पंचमं वेइयं जनयति । एवं बाह्मणादीनां क्षत्रियादिहीनवृत्त्या क्षत्रियादिहीनजातिर्भवतीत्याह " व्यत्यये कर्मणास् " इति । कर्मणां व्यत्त्यये वृत्त्यर्थानां कर्मणां विपर्यासे सति यद्याप-द्विमोक्षेऽपि तां वृत्तिं न परित्यजाति तदा सप्तमे षष्टे पंचमे वा जन्मनि साम्यं यस्य हीनस्य २. कर्मणा जीवति तत्समानजातित्वं भवति । तद्यथाः । ब्रा<mark>ह्मणः जूदवृत्त्या जीवस्तामपरित्यजन्</mark>यदि पुत्रमृत्याङ्यति सोऽपि तथैव हृत्त्या जीवनपुत्रान्तरभित्येवं परंपरया सप्तमे जनमिन शूद्रमेव जनयति। एवं वैरुयवृत्त्या जीवन्पष्टो वैरुयं क्षत्रियवृत्त्या जीवन पंचमे क्षत्रियमिति पूर्ववच्चाधरोत्तरमधरे चोत्तरे चायरोत्तरम् । यथा मूर्यावसिकायां क्षत्रियवैश्यशूद्रैहत्पादिता अंबष्टायां वैश्यशूद्राभ्यां निषाद्यां सुद्रेण उत्पादिता अपरे प्रतिलोमजा तथामूर्धावसिकांबष्टनिषाद्दिषु ब्राह्मणोत्पादितां २० माहिष्योगयोत्रीहरूणेन क्षत्रियेण च उत्पादिता करण्यां ब्राह्मणेन क्षत्रियेण वैरुयेन च उत्पादिता उत्तरं अनुहोमजा एवमधरोत्तरं पूर्ववत्संकरवत्सदसत् सदिति बोद्धव्यमित्यर्थ:॥ ননু: (१०।^२०)---

''द्विजातयः सवर्णासु जनयंत्यवतान्सुतान् । तान्सावित्रीपरिश्रष्टान् वृात्यानित्यभिनिर्दिशेत् "॥ वंश्यायने।ऽपि

३० 'विषु वर्णेषु साइइयादवतान् जनयेनु यान्।तान्तावित्रीपश्रिष्टान् वात्यान् इत्याहुर्मनीषिण''॥इति। अथ गर्भाधानादि । याज्ञवल्कयः (आ. १०)—" ब्रह्मक्षित्रियाविट्सूदा वर्णास्त्वाद्यास्त्रयो दिजाः। निषेकादिइमशानांतास्तेषां वै मंत्रतः।कियाः'॥ निषेको गर्भाधानम्।तत्र अनुः (२।२६)— ''देविकः कर्मभिः पुण्येर्निपेकाशैर्द्धिजन्मनाम् । कार्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च ''॥ अंगिराः ''चित्रकर्म यथानेकैरंगेरुन्मील्यते शनैः। बाह्मण्यमपि तद्वत्स्यात् संस्कारैविधिपूर्वकैः''॥

३५ **मनुः** (२।२७)—

" गार्भेहींमैर्जातिकर्मचौलमींजीनिबंधनैः । बेजिकं गार्भिकं चैनो द्विजानामपस्य उयते" ॥ बीजं शुक्कशोणितम् । तद्दोषजनितं बैजिकम् । अश्चिगर्भनिवासजनितं गार्भिकम् ॥ तथा च याज्ञवल्क्यः (आ. १३)-" एवमेनः ज्ञामं याति बीजगर्भसमुद्भवम् " ॥ इति । संस्काराश्च गौतमेन द्शिताः (८।१४-२४)-" गर्भाधानपुंसवनसीमंतोन्नयनजातकर्मनाम-करणान्नप्राशनचौलोपयनम् । चत्वारि वेदवतानि । स्नानं सहयर्मचारिणीसंयोगः । पंचानां यज्ञा- ५ नामनुष्ठानं देवपितृमनुष्यभूतब्रह्मणामेतेषां चाष्टकापार्वणश्राद्धं श्रावण्याग्रायणीचै ज्याश्वयजीति सप्त पाकयज्ञसंस्थाः । अग्न्याधेयमग्रिहोत्रं दर्शपूर्णमासा वाग्रयणं चातुर्मास्यानि निरूद्धपञ्-बंधसौत्रामणीति सप्त हविर्यज्ञसंस्थाः । अग्निष्टोमोऽत्त्यग्निष्टोम उवश्यः षोड्यो वाजपेयातिरात्रा-तोर्याम इति सप्त सोमसंस्थाः । इत्येते चत्वारिंशत्संस्कारा अष्टावात्मगुणाः । दया सर्वभूतेषु क्षांतिरनुसूया शौचमनायासो मंगलमकार्पण्यमस्पृहा " इति ॥ वेदवतानि प्राजापत्यादीनि । ९ ० स्नानं समावत्तेनम् । सहधर्मचारिणीसंयोगो विवाहः । पंचानां देवयज्ञादीनामहरहरनृष्ठानं पंचेतै पृथक्संस्काराः एतेषां वक्ष्यमाणानामष्टकादीनामनुष्ठानमित्यर्थः । अष्टकादयः पूर्व व्याख्याताः । मनुनोपनिष्कामणाख्यं कर्माप्युक्तम (२।३४)-- "चतुर्थे मासि कर्तव्यं शिशोर्निष्क्रमणं गृहात्" इति । तदिह नादृतं चत्वारिंशदगहणादेतावंतः संस्कारास्तेनान्यानि श्रौतानि स्मार्तानि च कर्माणि न संस्कारेष्वंतर्भवंति । द्यादीनां लक्षणमाह बृहस्पति:--94

यस्य चत्वारिंशत् संस्काराः अष्टी वाऽत्मगुणाश्च स ब्राह्मणः सायुज्यमामोतीत्याह शंखः---

" संस्कारैः संस्कृतः पूर्वेकत्तरैरपि संस्कृतः । नित्यमष्टगुणेर्युक्तो बाह्मणो ब्रह्मलौकिकम् ॥ २५

" ब्राह्मं पदमवामोति तस्मान्न च्यवते पुनः" ॥ इति गर्भाधानादयः पूर्वे संस्काराः उत्तरे त्वष्टकादयः । तथा हारीतः—" द्विविध एव संस्कारो भवित ब्राह्मो दैवश्च । गर्भाधानादिसमाव-र्तान्ते ब्राह्मः । पाक्यज्ञहिवर्यज्ञसौम्याश्चेति दैवाः । ब्राह्मेण संस्कारेण संस्कृत ऋषीणां समानानां सायुज्यं गच्छिति दैवेनोत्तरेण संस्कृतो देवानां समानतां सलोकतां सायुज्यं गच्छिति" इति । एतच्च आत्मगुणहीनसंस्काराभिप्रायेण । अत एव गौतमः—(८१२५) "यस्येते चत्वारिशत्संस्कारा न ३० चाष्टावात्मगुणा न स ब्रह्मणः सायुज्यं सालोक्यं च गच्छिति" इति। अतश्च यस्येते चत्वारिशत्सं-स्कारा अष्टावात्मगुणाश्च तस्येवेदं ब्रह्मणः सायुज्यप्राप्तिलक्षणं फलमिति मंतव्यम् । अत्र च गर्भाधानाद्य उपनयनपर्येता एव संस्काराः सर्वेषां त्रिजातीनां नियताः। न पुनःस्नानाद्यः। तथात्वे 'यमिच्छेत् कर्तुं तमाविशेत्' 'यदि वेतरथा ब्रह्मचर्यादेव प्रवजेत्' इत्यादिभिर्विरोधः स्यात्॥

अथ गर्भाधानम् । तत्र मनुः (३।४५-४९)--

" ऋतुकालाभिगामी स्यात्स्वदारनिरतः सदा । पर्ववर्ज वजेच्चैनां तद्वतो रितकाम्यया " ॥ " ऋतुः स्वाभाविकः स्त्रीणां रात्रयः षोडश स्मृताः । चतुर्भिरितरैः सार्धमहोभिः सिद्धगिहितैः ॥ " तासामाद्यश्चतस्रस्तु निदितैकादशीं च या । त्रयोदशी च शेषास्तु प्रशस्ता दश रात्रयः ॥ ५ " युग्मासु पुत्रा जायंते त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु । तस्मायुग्मासु पुत्रार्थी संविशेदार्त्तवे स्त्रियम् ॥ " अमावास्यामप्टमीं च पौर्णमासीं चतुर्दशीम् । ब्रह्मचारी भवेन्नित्यमप्यृतौ स्नातको द्विजः" ॥ ब्रह्मपतिः—

"ऋतुकालाभिगमनं पुंसां कार्यं प्रयत्नतः । सद्दैव वा पर्ववज्यं स्त्रीणामभिमतं हि तत्"॥ याज्ञवल्क्यः (आ. ८१)–

"यथाकामी भवेद्दाऽपि स्त्रीणां वरमनुस्मरन्। स्वदारिनरतश्चेव स्त्रियो रक्ष्या यतः स्मृताः "॥ भार्यच्छानतिक्रमेण प्रवृत्तिरिति यथाकामी स्त्रीणां वरिमंद्रदत्तमनुस्मरन् । यथा (तै. स. २।५।१) " सस्त्रीष स्माद्मुपासीददस्य ब्रह्महत्याहे तृतीयं प्रतिगृह्णितिति । ता अब्रुवन्वरं वृणामह क्रित्वयात्प्रजां विंदामहे काममाविजनितोः संभवामेति तस्मादृत्वियास्त्रियः प्रजां विंद्ते काममाविजनतोः संभवंति वारे वृत्र ह्यासां तृतीयं ब्रह्महत्याये प्रत्यगृह्णन् सा मलवद्दासा अभवत् " १५ इति । स्त्रीष स्मादं स्त्रीसमूहम् क्रित्वयादिति कृतः प्राप्तोऽस्येति क्रित्वयमार्त्तवमुच्यते । छंदिस घिमति घम्। तस्ययः। आविजनिनोः। विजननं प्रसवः। भावळक्षणे स्थे णिति जने स्तोसुन्प्रत्ययः। संभवः संयोगः। प्रथमसंयोगे गर्भो भवतीति यद्यपि द्वितीयादिप्रवृत्तिरप्रजार्थो तथापि कामानुह्णपमाप्रसवात्संभवाम । गर्भश्च सुसं वर्धतामिति वारे वरणकाले आसामिनवतं हि ब्रह्महत्याये षठ्यथे चतुर्थी प्रत्यगृह्णिनस्त्रयः मलवद्दासाः रजस्वला। वासोयहणं वासास रजस्पर्शात् प्रभृत्यप्रायत्यमन् २० स्तीति सूचनार्थः । याज्ञवल्क्यः (आ. ७९)—

"षोडषर्तुर्निशाः स्त्रीणां तस्मिन्युग्मासु संविशेत् । ब्रह्मचार्येव पर्वण्याद्याश्चतस्रश्च वर्जयेत् " ॥ निशायहणं दिवसप्रतिषेधार्थम् । अत एव शंखिलाखितौ— " नार्तवे दिवा मेथुनं वर्जे-दल्पवीर्याश्च दिवा प्रस्यंतेऽल्पायुषश्चेति " । युग्मास्विति बहुवचनं समुच्चयार्थम् । तेनैकस्मि-न्नप्यतावप्रतिषिद्धासु युग्मासु सर्वासु रात्रिषु गच्छेदेवं गच्छन्ब्रह्मचार्येव भवति । अतश्च " अत्र २५ ब्रह्मचर्यं चोदितं तत्र गच्छतोऽपि न ब्रह्मचर्यस्वलनप्रयुक्ते दोषोऽस्ताति " विज्ञानेश्वरः (पु. २० पं. १—३)। पर्वाण्याद्याश्च तत्र च वर्जयेदिति । तथाच श्रुतिः " नामावास्यायां च पोर्णमास्यां च स्त्रियमुपेयाद्यद्वपेयान्निरिदियः स्यात् "॥ इति । " तस्मान्मलबद्दाससा न संवदेत न सहासीतेति । यां मलबद्दासमः संभवंति यस्ततो जायतेऽसौ अभिशस्त " इति च । युग्मास्वप्युत्तरात्तरविशिष्ट्यमाहापस्तंदः (२।९।१)—"चतुर्थीप्रभृत्या षोडशीमुत्तरामुत्तरां युग्मां ३० प्रजानिःश्चेयसमृतुगमन इत्युपदिशंति " इति । एतच्चतुर्थेऽह्नि गमनं रजोनिवृत्तौ द्रष्टव्यम् । एतदेवाभिष्रेत्य कात्यायनः—

"रजस्वलां चतुर्थेऽह्नि स्नानाच्लुद्धिमवाप्नुयात् " इति । हारीतश्च—" चतुर्थेऽह्नि स्नाताया युग्मासु च"इति । तदाह गोभिलः—"यदुर्तुमती भवत्युपरतशोणिता तदा संभवकालः " इति ॥ पराशरः—(७१९७-१९)

9 0

3 0

"स्नाता रजस्वलाया तु चतुर्थेऽहिन शुध्यित । कुर्याद्रजोनिवृत्तो तु देविष्ट्यादि कर्म च ॥ "साध्वाचारा न तावत्सा रजो यावत्प्रवर्तते । रजोनिवृत्तौ गम्या स्त्री गृहकर्माण चैव हि ॥ "प्रथमेऽहिन चण्डाली दितीये ब्रह्मघातकी । तृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थेऽहिन शुध्यिति" ॥इति । चंडाल्यादिगमने यावत् प्रत्यवायः तावत् रजस्वलागमनेऽपि । श्रुतिरिपि—" तिस्रो रात्रीर्वतं चरेत्" इति ॥ एवं चतुर्थिदिनवर्ज्यत्वसमरणं रजोनुवृत्तिविषयं अल्पायुर्धनवार्जितपुत्रोद्भवामिप्रायं ५ वा । तथा व्यासः—

" रात्रौ चतुर्थ्यो पुत्रः स्यादल्पायुर्धनवर्जितः । पंचम्यां पुत्रिणी नारी षष्टचां पुत्रस्तु मध्यमः ॥

" सप्तम्यामप्रजा योषिद्षम्यामिश्वरः सुतः । नवम्यां सुभगा दारा दशम्यां च परः पुमान् ॥

" एकादश्यामधर्म्या स्त्री दादश्यां पुरुषोत्तमः । त्रयोदश्यां सुता ठोकवर्णसंकरकारिणी ॥

" धर्मविच्च कृतज्ञः स्यादात्मवेत्ता दृढवतः । प्रजायंते चतुर्दश्यां गुणोधैर्जगतीपतिः ॥

" राजपत्नी महाभोगा राजवंशगताऽथवा। जायते पंचद्र्यां तु बहुपुत्रा पतिवता॥

"विद्यालक्षणसंपन्नः सत्यवादी जितेन्द्रियः । आश्रयः सर्वभूतानां षोडशे जायते पुमान्"॥ इति । **याज्ञवल्क्यः** (आ. ८०)–

" एवं गच्छन्स्त्रियं क्षामां मघामूलं च वर्जयेत् । स्वस्थ इंदौ संकृत्युत्रं लक्षण्यं जनयेत्पुमान् " ॥ स्वस्थ इंदौ चंद्रबले सित मघामूले विहाय क्षामां कृशां सकृद्गच्छन् लक्षण्यं लक्षणयुक्तं च १५ पुत्रं जनयेदित्यर्थः । बृहस्पितः—

"स्त्रियाः शुक्रेऽधिके स्त्री स्यात्पुमान् पुंसोधिको भवेत्।तस्माच्छुकविबृध्यर्थं वृष्यं स्त्रिग्धं च भक्षयेत्॥ " लघ्वाहारां स्त्रियां कुर्यादेवं संजनयेत्सुतम् " । वृष्यं वीर्यवर्धनं द्रव्यम् ॥ मनुः (३।४९)—

"पुमान पुंसोऽधिके शुक्ते स्त्री भवत्यधिके स्त्रियाः। समेऽपुमानपुंस्त्रियौ वा श्लीणेऽल्पे च विपर्ययः"॥ अपुमान नपुंसकः। पुंस्त्रियौ वा यमलौ यदि तदा बीजविभागः। तदाह यमः—

" यदि संयोगकाले तु पुरुषो रागमोहितः । द्विधा समुतसृजेच्छुकं यमकं तत्र जायते "॥ इति । क्षीणे निःसारे अल्पे च विपर्ययः गर्भाग्रहणम् । स्त्री भवत्यधिके स्त्रिया इत्यत्र रजसीत्यध्याहारः । अथवा शुक्रशब्दस्यैव रजोवाचकत्वं चेत्यवगंतव्यम् । सायणीये—

"षष्ट्यष्टमीं पंचदर्शीं चतुर्यशैं चतुर्दशीमप्युभयत्र हित्वा शेषाः शुभाः स्युस्तिथयो निषेके वाराः शशांकार्यसितेंद्वजानाम् ॥ १५ "विष्णुः प्रजेशरविमित्रसमीरपौष्णमूलोत्तरावरुणभानि निषेककार्ये । पूज्यानि पुष्यवसुशीतकराश्विचित्रादित्याश्च मध्यमफला विफलाः स्युरन्याः" ॥ विष्णुः श्रवणम् । प्रजेशो रोहिणी । रविर्हस्तः । मित्रः अनुराधा । समीरः स्वाती । पौष्णो रेवती । वरुणः शतभिषक् । वसु धनिष्ठा । शीतकरः मृगशिराः । आदित्याः पुनर्वसू ।

"वृषभिमश्चनकर्कसिंहकन्या तुलघटचापझषाः द्वाभा भवंति । यदि शुभबलकारिणोऽनुकूला निधनविशुद्धिकरा निषेककार्ये "॥ निधनमष्टमस्थानम् । ऋतुयौगपथे तु गमनकममाह देवलः—

" योगपचे तु तीर्थानां विप्रादिकमशो वजेत् । रक्षणार्थमपुत्रां वा ग्रहणक्रमशोऽपि वा ॥ तीर्थमतः । पराज्ञारः (४।१४)— " ऋतुस्नातां तु यो भार्यी संनिधौ नोषगच्छति । घोरायां भ्रूणहत्यायां युज्यते नात्र संशयः "॥ बोधायनः—

"ऋतुस्नातां तु यो भार्यो संनिधो नोपगच्छति। पितरस्तस्य तन्मासं तस्मिन् रेतासि शेरते"॥ इति। संनिधिग्रहणादसंनिधौ अशक्तो च न दोषः। तथा देवलः—

५ "स्वयं दारान् ऋतुस्नातान् स्वस्थश्चेन्नोपगच्छति । श्रूणहत्यामवामोति गर्भ प्राप्तं विनाश्य सः ॥ " त्रीणि वर्षाण्यतिमतीं यो भार्यो नोपगच्छिति । स तुल्यं श्रूणहत्याया दोषमुच्छत्यसंशयम् ॥ " ऋतौ नोपैति यो भार्याभवृतौ यश्च गच्छिति । तुल्यमाहुस्तयोः पापमयोनौ यश्च सिंचिति " ॥ अवृतुगमनप्रतिषेधः स्त्रिया इच्छाभावे वेदितव्यः । अन्यथा " यथाकामी भवेत् " इत्यादिव्यचनविरोधः स्यात् । तथा च गौतमः (५।१-२)— "ऋतावुपेयात्सर्वत्र वा प्रतिषिद्धवर्जम्" । इति । आपस्तंवः । (२।२०।२२)— " भोक्ता च धर्माविप्रतिषिद्धान्भोगान् " इति । श्रूयते च " स्त्रीरक्षणम् अप्रमत्तारक्षत तन्तुमेतममावां क्षेत्रे परबीजानि वाप्सः" इति । महाभारतेऽपि— " अग्निहोत्रफला वेदा दत्तभुक्तफलं धनम् । रितपुत्रफला दारा शीलवृत्तफलं श्रुतिम्" ॥ इति । व्यासः—

" अनृतावृतुकारुं वा दिवारात्रे तथापि वा । प्रोषितस्तु स्त्रियं गच्छेत्प्रायश्चित्तीयते न च " ॥ १५ ऋतुकारुतिकमदोषापवादमाह व्यासः-

" व्याधितो बंधनस्थो वा प्रवासेष्वथ पर्वसु । ऋतुकालेषु नारीणां भ्रूणहत्या प्रमुच्यते" ॥ भ्रूणहतिशब्दस्तृतीयांतः । वोधायनः—

''यस्तु पाणिगृहीताया आस्ये गच्छति मैथुनम्।तस्येह निष्कृतिर्नास्तीत्येवमाह प्रजापतिः''॥ इति । इयासः—

" परदारान्न गच्छेतु मनसाऽपि कथंचन । परदाररतिः पुंसामुभयत्रापि भीतिदा ॥

"इति मत्वा स्वदारेषु कतुमत्सु बुधो वजेत्" । अजातपुत्रस्यैवात्रर्तुगमननियमः । तथा क्रुर्मपुराणे (उत्तरार्धे १५।११)—— " ऋतुकालाभिगामी स्याद्यावत्पुत्रोऽभिजायते " इति । विसिष्ठोपि (१७१-२)—

"ऋणमस्मिन्संनयत्यमृतत्वं च गच्छतिः पिता पुत्रस्य जातस्य पश्येच्चेज्जीवतो मुखम्" ॥ इति । २५ " जायमानो वै बाह्मणस्त्रिभिर्कणवा जायते ब्रह्मचर्यणर्षिभ्यो यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्य एष वा अतृणो यः पुत्री यज्ञा ब्रह्मचारिवासी प्रजयाहि मनुष्यः पूर्णः "॥

> " संतानरहितो जंतुरिह ठोके परत्र च । न पूयते वृथा जन्म कुलं तस्य विनइयति ॥ " अनंताः पुत्रिणो ठोका नायुत्रस्य ठोकोऽस्ति, प्रजामनुप्रजायसे, तद्दतेमर्त्यायृतम्"

इत्याद्याः श्रुतिस्मृतयः एकेनापि पुत्रम चितार्थाः । तथा च मनुः (९।१०५)-

" ज्येष्ठेतेव तु पुत्रेण पुत्रीभवति तानवः। पितृणामन्द्रणश्चेव स तस्मात्सर्वमर्हिति " ॥ इति । "दशास्यां पुत्रानाधेहि" ॥ "एष्टव्या वहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां वजेत्" इत्याद्यास्त्वनेकपुत्र- प्रशंसापगः। एवं च वहुपुत्रेच्छायां सत्यां जातपुत्रस्य ऋतुगमनातिक्रमे न दोषः। अत एव मनुः (९।१०७)—

" यस्मिन्नृणं संनयति येन चानंत्यमश्रुते । स एव धर्मजः पुत्रः कामजानितरान्विदुः" ॥ इति । अनुशासनिके तु-

१ (ते. सं. ६।३,१०,५) शतपथबाह्म (१।७।२।११)

" कल्मषं गुरुशुश्रूषा हन्यानमानो महद्यशः । अपुत्रत्वं त्रयः पुत्रा कुर्वति दश धेनवः"॥ इति । सायणीये-

"गर्भाधानर्क्षमारभ्य नक्षत्रे जननं भवेत् । नवमे दशमे वापि दादशे वाऽथ निश्चितम् ॥

" आधानर्क्ष समारभ्य प्रसवो द्वादशे यतः । विज्ञाय ग्रुभनक्षत्रं तद्गंतन्यं विशेषतः ॥

" दारप्रियेरलंकारैरलंकृत्य प्रसन्नधीः। प्रियासमीपे शयनं संविशेत्प्रहरद्वयम्"॥ अपरार्के— ५

"न स्वपेदोषु देशेषु तेषु देशेषु चाप्यथा। दीक्षितो वर्जयेदात्नात्कृत्वा श्राद्धं च मानवः"।। दीक्षितोऽनुंमतदीक्षः। यस्मिन्प्रदेशे स्त्री स्वपिति तत्र न स्वपेत्। वर्जयेन्मैयुनमिति शेषः। द्यासः— "नास्नातां तु स्त्रियं गच्छेदातुरां न रजस्वलाम्। नोपयाद्गर्भिणीं नारीं दीर्घशायुर्जिजीविषुः॥ "नानिष्टां न प्रकुपितां न सशकां न रोगिणीम्। नादक्षिणां नान्यकामां नाकामां नान्ययोषितम्॥ "श्रुत्क्षामां नातिभुकां वा स्वयं चेतिगृणेपुतः। स्नातः स्रग्गंधधृविप्रीतो व्यवायं पुरुषो अजेत् "॥ ५० शाहिल्यः—

" न गच्छेद्गर्भिणीं भार्यी मिलनां सिंतमूर्ध्वजां । रजस्वलां रोगवतीं नायोगों न बुभुक्षितः ॥

" सुबस्चवेषधरया स्नातया शुद्धाचित्तया । अरोगया दयितया स्वयमेवंविधं स्वयेत् ॥

" धातुक्षयो रोगवृद्धिरश्रीः सत्कर्मविष्ठवः । सौभाग्यायुर्यशो नाशः पुंसां स्त्रीस्वतिसंगिनाम् " ॥ संवर्तः-

''रजस्वलां च यो गच्छेत् गर्भिणीमष्टमासिकीम्।तस्य पापविशुःद्वचर्थमतिकुच्छ्रं विशोधनाम्''॥इति। भारहाजः—

''भार्यासंभोगसमये पुष्पकालं विनान्यदा। उपबीतमृतौ कुर्यान्निवीतमनृतौ तथा''॥ **मसुः**— " उपवीती स्त्रियं गच्छेद्दतुकाले तु वै बुधः । निवीतमन्दतौ कुर्यात्तद्दोषस्य निवृत्तये ॥ " मुँकवसना योषिद्रमुँकवसनः पुमान् । संविशेतामुभौ मुक्तवसनो कलिराविशेत् " ॥ संवि- २० शेदित्युक्त्या रतिकाले मुक्तवसनत्वमादृतमासीत् । अमुक्तवसनस्वं निद्राकाल इति । "ऋतौ तु गर्भशंकित्वात्स्नानं मैथुनिनः स्मृतम्। अनृतौ तु यदा गच्छेच्छौचमूत्रविदृष्यते" इति। गौतमः (९।२६)— "न मिथुनीभूत्त्वा शौचं प्रति विलंबेत " इति । मिथुनीभूत्त्वा स्त्रियमुपगम्य शौचं प्रति न विलंबेत तत्क्षण एव कुर्यात् । अत्र शौचं क्षालनं न तु वस्त्रादीनां शोधनं "शुक्रे तिस्रो मृत्तिकाः" इति वचनात् । आपन्तंबः (२।१।२३; २।१)- " उदकोप- २५ स्पर्शनमपि वा लेपान्प्रक्षाल्याचम्य प्रोक्षणमंगानाम् " इति । उद्कोपस्पर्शनं स्नानं तच्च पुंस एव । अंगानां तु हरिद्राजढप्रोक्षणिमति । स एव (१।३२।२)-- " मिथुनीभूय च न तया सर्वी रात्रीं शयीत " इति। (२।१।२०।२३) - "स्त्रीवाससैव संनिपातः स्यात्। यावत्संनिपातं च सह शय्या। ततो नाना" इति। स्त्रीवाससा स्त्रीसंयोगार्थवाससा। संनिपातः संयोगः। कालादर्शे-" रजोद्दृष्टेश्चतुर्थ्याद्या षोडशाहाद्दतुः स्मृतः । पुत्रोत्पत्तिकरा युग्मा वासराः सप्त शोभनाः ॥ " पुत्र्युत्पत्तिकराः षट् च मध्यमाश्चायुजः स्मृताः । अतिप्रशस्ता दिवसा उभयत्रोत्तरोत्तराः॥ " राक्षसर्श्न मसर्श्न च पंच पर्वाणि वर्जयेत् " ॥ इति । रजोदर्शनादारभ्य चतुर्थ्याचा आषोडरः त्रयोदशवासराः ऋतुः । गर्भोत्पत्त्यनुभूणकालो ऋतुः । उभयत्र युग्मास्वयुग्मासु च । राक्षसर्क्ष मूलनक्षत्रम् तन्त्रे---

१ क्ष-मुक । २ क-पातपितं । ३ क्ष-सक्तां । ४ क-सिक । ५ कखा-तं पृष्ठमागतः

" चतुर्दश्यष्टमी पक्षद्ये द्शिश्च पूर्णिमा। संक्रांतिश्चेति पर्वाणि पंच प्राहुर्महर्षयः"॥ इति । कूर्मपुराणे (उ. १५।१२)—

" षष्ट्यष्टमीं पंचदशीं दादशीं च चतुर्दशीम्। ब्रह्मचारी भवेन्नित्यं तद्दज्जन्मत्रयेऽहनि''॥ इति।

इति गर्भाधानम् ।

- अथ पुंसवनम् । आपस्तंबः—" पुंसवनं व्यक्ते गर्भे तिष्येण " ॥ इति । पुंसवनमिति कर्मनामधेयम् । येन कर्मणा गर्भिणी पुमांसमेव सूते तत्पुंसवनम् । पुमांसं सूत इत्यर्थवादः । पुंसवनस्य नित्यक्तात् अश्रोवङादेशः छांदसः । आश्वलायनस्तु पुंसवनमिति गुणमेव प्रायुंके । तच्च व्यक्तगर्भे । अस्ति गर्भः । इति निश्चिते व्यक्तिश्च तृतीये चतुर्थे वा मासे तिष्येण पुष्यनक्षत्रे कर्तव्यमित्यर्थः । कालादर्शेऽपि—
- १० " तृतीये वा चतुर्थे वा मासि पुंसवनं भवेत् । गर्भव्यक्तौ स्मृतं तच्च लोकसिद्धान्तिया हि सा॥ तत्पुंसवनं स्मृतं सा गर्भव्यक्तिस्त्रियाः तृतीयचतुर्थमासभवत्वेन लोकसिद्ध्योत्यर्थः । याज्ञवल्क्यः (आ. ११)— " गर्भाधानमृतौ पूंसःसवनं स्पन्दनात्पुरा " । स्पन्दनाद्गर्भचलनात्पुरा कर्तव्यमित्यर्थः । बृहस्पतिस्तु गर्भस्पंदने पुंसवनमाह—"गर्भाधानमृतौ कुर्यात्सवनं स्पंदिते शिशों " इति । वैजावापः— " मासि द्वितीये तृतीये वा पुरा स्पंदने " इति ।
- भ्य पारस्करोऽपि (१।१४।१।२)— "मासि द्वितीये तृतीये वा यद्हः पुत्रक्षत्रेण चंद्रमा युक्तः स्यात् " इति । पुत्रक्षत्राणि रत्नकोशेऽभिहितानि— "हस्तो मूळश्रवणपुनर्वसुमृगशिरस्तथा तिष्यः पुमांसः " इति । जातूकर्ण्यः—
 - "दितीय वा तृतीय वा मासि पुंसवनं भवेत् । व्यक्ते गर्भेऽथवा कार्य सीमंतेन सहाथ वा "॥ धर्मोद्योते ॥ " तृतीये पुंसवः कृत्वा षष्ठे वा सप्तमेऽपि वा ।
- भ "सीमंतोन्नयनं कार्य न कुर्यात्पुंसवं यदि । "पुंसवं प्राग्विनिर्वर्त्य ततः सीमंतमुन्नयेत्"॥ आधानसंस्कारमुख्येन सर्वेषां गर्भाणामयं संस्कार इति प्रथमगर्भ एव पुंसवनिर्वर्वे । 'पुमांसं जनयित ' इत्यापस्तंबवचनं गर्भे गर्भे कर्तव्यतापरिमिति पुत्रेष्सुना प्रतिगर्भ कर्तव्यिमित्यन्ये । इति पुंसवनम् ।
- अथ सीमंतोन्नयनम् । तत्र वैजावापः— "अथ सीमंतोन्नयनं मासि चतुर्थे पंचमे षष्ठे १५ वा" इति । याज्ञवल्क्यः (आ. ११)— "षष्ठेऽष्टमे वा सीमंतो मास्येते जातकर्म च" । एते जाते जातकर्मेत्यर्थः । लोकाक्षिः— " तृतीये गर्भमासे सीमंतोन्नयनं कारयेत् " इति । कालादर्शे— " सीमंतोन्नयनं तृरीये मासि षष्ठेऽष्टमे वा " इति । इांखः " गर्भस्पंदने सीमंतोन्नयनं यावद्दा प्रसवः" इति । एतदुक्तकालस्य केनचिन्निमित्तेन प्रतिबंधे सति दृष्टव्यम् । तदाह काश्यपः— " षष्ठे वा सप्तम मासि सीमंतोन्नयनं भवेत् । अष्टमे नवमे मासि यावद्दा प्रसवो भवेत्" ॥ इति । एतच्च स्त्रीसंस्कारत्त्वात्सकृदेव कार्यम् । न प्रतिगर्भम् । तथा चापस्तंबः— " सीमंतोन्नयनम् प्रथमे गर्भे चतुर्थं मासि" इति । सांख्यायनगृह्योऽपि— "सप्तमे मासि प्रथमे गर्भे सीमंतोन्नयनम्" इति । हारीतः—
- " सक्नत्संस्कृतसंस्काराः सीमंतेन द्विजिश्चियः । यं यं गर्भ प्रसूयंते स सर्वः संस्कृतो भवेत् " ॥ देवलः—" सक्वच्च संस्कृता नारी सर्वगर्भेषु संस्कृता " इति । केचित्सीमंतोन्नयनं गर्भसंस्कार ३५ इति प्रतिगर्भमावर्त्तयंति । तथा च विष्णुः—

" सीमंतोन्नयनं कम तत्स्त्रीसंस्कार उच्यते । केचिद्गर्भस्य संस्काराद्गर्भे गर्भे प्रयुंजते " ॥ इति । एतेषां च पक्षाणां स्वस्वगृह्यानुसारेण व्यवस्था द्रष्टव्या ।

अकृतसीमंतायाः प्रसवे सत्यव्रत आह —

" स्त्री यदाऽकृतसीमंता प्रसूयेत कथंचन । गृहीतपुत्रा विधिवतपुनः संस्कारमहिति " ॥ गार्ग्यः—

"यदि सीमंततः पूर्व प्रसूयेत कथंचन । तदानीं पटके गर्भ स्थाप्य संस्कारमाचरेत् ॥ "मृतो देशांतरगतो भर्ता स्त्री ययसंस्कृता।देवरो वा गुरुर्वाऽपि सिपंडो वा समाचरेत्"॥ इति सीमन्तोन्नयनम्। अथ जातकर्म । तत्र विष्णुः—"जातकर्म ततः कुर्यात्पुत्रे जाते यथो-दितम्"।स्वगृह्य इति शेषः।ततः स्नानादनन्तरम्।तथा च संवर्त्तः—"जाते पुत्रे पितुः स्नानं सचैठं तु विधीयते "। जाबालिः—" कुर्यान्नैमित्तिकं स्नानं शीताद्भिः कार्यमेव च "। वसिष्ठः— १० " पुत्रजन्मिन यज्ञे च तथा संक्रमणे रवेः । राहोश्च दर्शने स्नानं प्रशस्तं नान्यथा निशि " । यज्ञेऽवभृतस्नानम् । व्यासः—

" रात्रों स्नानं न कुर्वीत दानं चैव विशेषतः । नैमित्तिकं तु कुर्वीत स्नानं दानं च रात्रिषु ॥

" ग्रहणोद्गाहसंक्रांतियात्रार्तिप्रसर्वेषु च । दानं नैमित्तिकं ज्ञेयं रात्राविप न दुष्यित ॥

" पुत्रजन्मनि यात्रायां शर्वर्या दत्तमक्षयम् " ॥ रात्रिस्नाने विशेषमाह **सांख्यायनः—**

"दिवा यदाहतं तोयं कृत्वा स्वर्णयुतं तु तत् । रात्रिस्नाने तु संप्राप्ते स्नायादनलसंनिधौ "॥ मनुः (२।२९)—" प्राङ्काभिवर्धनात्पुंसो जातकर्म विधीयते" । संवर्त्तः ॥ " मंत्रवत्प्राञ्चनं चास्य हिरण्यमधुसर्पिषास् " । वैजावापः—

" जन्मनोऽनंतरं कार्यं जातकर्म यथाविधि । दैवादतीतकालं चेदतीते सूतको भवेत् ॥ " यावन्न छिचते नालं तावन्नामोति सूतकम् । छिन्ननाले ततः पश्चात्सूतकं तु विधीयते"॥ इति । २० व्यासः—

" अछिन्ननाभ्यां कर्त्तव्यं श्राद्धं वै पुत्रजन्मिन । आशौचोपरमे कार्यमथवा नियतात्मिभः" ॥ एतद् द्रव्याभावे वेदितव्यम् । श्राद्धमेतदामद्रव्येण हेम्ना वा कार्यम् । यथाह प्रचेताः—

"स्त्रीशूद्रस्वैपचश्चैव जातकर्मणि वाऽप्यथ । आमश्राद्धं तथा कुर्याद्दिधिना पार्वणेन तु"॥ स्वपचः स्वयंपचः । बोधायनः—

" अन्नाभावे द्विजाभावे प्रवासे पुत्रजन्मिन । हेमश्राद्धं संग्रहे च कुर्याच्छूदः सदैव हि "॥ आदिपुराणे तु जातश्राद्धे पकान्ननिषेधो दर्शितः—

''जातश्राद्धे न दयात्तु पक्वान्नं ब्राह्मणेष्वपि।यस्माचांद्रायणाच्छुद्धिस्तेषां भवति नान्यथा'' इति। वृद्धयाज्ञवल्कयः—

"कुमारजन्मदिवसे विग्रैः कार्यः प्रतिग्रहः । हिरण्यभूगवाश्वाजवासःशय्यासनादिषु ॥ अ "तत्र सर्वे प्रतिग्राह्यं कृतान्नं तु विवर्जयेत् । भक्षयित्वा तु तन्मोहात् द्विजश्वानद्वायणं चरेत्"॥ सकुल्यानां तु कृतान्नप्रतिग्रहे दोषाभावः "सूतके तु सकुल्यानां न दोषं मनुरत्रवीत् " इति स्मरणात्। तच्च कृतान्नं सकुल्यब्रह्मचिर्व्यतिरिक्तविषयम्। अन्नदानं सकुल्येभ्योऽपि द्वादित्याह् इांखः—" सर्वेषां सकुल्यानां द्विपद्चपुष्पद्धान्यहिरण्यादि द्वात् " इति । व्यासः— "देवाश्च पितरश्चेव पुत्रे जाते द्विजन्मनाम्। आयांति तदहस्तस्मात्पुण्यं पूज्यं च सर्वदा॥ "तत्र द्वात्सुवर्णे तु भूमिं गां तुरगं रथम्। छत्रं छागं वस्रमाल्ये शयनं चासनं गृहम्॥ "जाते कुमारे तदहः कामं कुर्यात्प्रतिग्रहम्। हिरण्यधान्यगोवासश्चित्रान्नगृडसर्पिषाम् "॥ पराशरः (१२।२२)—

- भ "खल्यज्ञे विवाहे च संक्रांतों ग्रहणे स्मृतों। पुत्रे जाते व्यतीपाते दत्तं भवित चाक्षयम्"॥
 यत्तु "कुमारप्रसवे नाभ्यामिच्छिन्नायां गुडितिलहिरण्यगोधान्यप्रतिग्रहेष्वदोषः " इति इंखिस्मरणं यद्पि "प्राङ्गाभिच्छेद्नात्संस्कारः पुण्यार्थान्कुर्वन्ति छिन्नायामाशौचम् " इति
 हारितस्मरणं। यद्पि "छिन्ने नाले ततः पश्चात्मूतकं तु विधीयते "। इति वैजावापस्मरणं
 तत्सर्व नालछेदात्पूर्वमेव जातकर्मश्राद्धं च कर्त्तव्यमित्येवंपरम् । तदाह सत्यव्रतः—"पुत्रजन्मन्या नाभिकर्त्तनात्पुण्यं दानं कृतं जातकर्मश्राद्धं कुर्यात्" इति ॥ दानप्रतिग्रहयोस्तु कुत्स्नं
 जन्मदिनं प्रशस्तमेव बहुस्मृतिसंमतत्वात् । तत्र वृद्धमनुः—" जाते कुमारे तद्हः कामं कुर्यात्प्रतिग्रहम् "। याज्ञवल्क्यः (प्रा. १९)——" तद्हर्ने प्रदुष्येत पूर्वेषां जन्मकारणात् " हरदत्तश्च— " जाते कुमारे पितृणामामोदात्पुण्यं तद्हः " । आमोदो हर्षः । गौतमः—
 "प्राङ्गाभिवर्धनात्पुण्यं तद्हारित्येके "। इांखश्च——" कुमारप्रसवे नाभ्यामच्छिन्नायां गुडिति१५ लहिरण्यवस्रगोधान्यप्रतिग्रहेष्वदोषस्तदहरित्येके " इति । संग्रहेऽपि—— " पुण्यत्त्वात्पुत्रजन्माहे
 देयं ग्राह्यं सदा परेः " इति । जातुकण्यः——
 - " मृताशोचे समुत्पन्ने पुत्रजन्म यदा भवेत् । आशोचे निर्गते कुर्याज्ञातकर्म च नाम च ॥ "जननाशोचमुत्पन्ने पुत्रजन्म यदा भवेत्। जननानंतरं कुर्याज्ञातकर्म यथाविधि"॥**पूर्णसंग्रहे**— "ग्रहणे चैव गंगायां पुत्रस्यैव च जन्मनि।आशोचं नास्ति भुक्तोऽपिस्नानदानादिकं चरेत्"॥इति।
- २• प्रजापतिः—

"आशोंचे तु समृत्पन्ने पुत्रजन्म यदा भवेत् । कर्जुस्तात्कालिकी शुद्धिः पूर्वाशौचेन शुध्यित "॥ स्मृत्यर्थसारे— " जाते पुत्रे पिता स्नात्वा रात्रौ संध्ययोर्गहणे वा वृद्धिश्राद्धं कृत्वा जातकर्म कुर्यात् । आशौचांतरमध्ये च कुर्यात् " इति । आशौचांतरमध्ये कुर्यादिति पुत्रजन्मन्याहि-तामेरिष्टिः श्रूयते (तै. सं. २।२।५)—

२५ " वैश्वानरं द्वाद्शकपालं निर्वपत्पृत्रे जाते यद्ष्यकपालो भवति गायित्रयैवैनं ब्रह्मवर्चसेन पुनाति यन्नवरूपालस्विवृत्तैवा।स्मिस्तेजो द्धाति यद्दशकपालो विराजेवास्मिन्नन्नायं द्धाति यद्दशकपालि स्वाद्शकपालिस्वृत्तेवास्मिन्नेद्रियं द्धाति यद्दशकपालो जगत्यैवास्मिन्पश्च्न द्धाति यस्मिञ्जात एतामिष्टिं निर्वपति पृत एव तेजस्व्यन्नाद् इंद्रियावी पशुमान्भवति "। यद्ष्यकपाल इत्यादिना द्वादशकपालः ख्यते। जातस्य पूतत्वादिकमिष्टेः फलमिति दर्शयति। यस्मिन्नित्यादिना इयं विष्टिः काम्या आथर्वादिकपुत्रगतबद्धवर्चसादिकाननासंवलितस्यैव जन्मनोऽधिकारहेतुत्वा-भ्युपगमाज्जातेष्टिः प्रवृत्तेश्च जीवत्पुत्रगतपुत्रत्वादिफलरागाधीनन्त्वात्पुत्रजन्मारूयनिमित्तः संयोगेन श्रुतापिहेयमिष्टिर्यदीष्ट्या यदि पशुना यदि सोमेन यजेतामावास्यायां पौर्णमास्यां वेति विधिना आशौचानंतरं पर्वण्येव कर्तव्या जननानंतरमेव संशासनात् जातकर्म कर्तव्यम् ॥ स्मृतिरत्ने—

" सर्वैः स्वजन्मदिवसे स्नातैर्मगठशालिभिः । गुरुदेवाग्निविष्राश्च पूजनीयाः प्रयत्नतः ॥ " स्वनक्षत्रे च पितरस्तथा देवाः प्रजापितः । प्रतिसंवत्सरं यत्नात् कर्त्तव्यश्च महोत्सवः " ॥ इति जातकर्म । अथ नामकरणम् । तत्र मनुः (२।३०)—

" नामधेयं दशम्यां तु द्वाद्श्यां वाऽस्य कारयेत्। पुण्ये तिथौ मुहूर्त्ते वा नक्षत्रे वा गुणान्विते"॥ दशम्यां द्वाद्श्यां तिथौ जन्मदिनाद्दशमे द्वादशे वा दिवस इत्यर्थः । पुण्ये मुहूर्त्ते इत्यन्वयः । प्रयमः—

" नामधेयं दशम्यां तु द्वादश्यां वाऽस्य कारयेत् । पुण्ये नश्चविवसे मुहूर्ते वा गुणान्विते " ॥ गोभिलः – " दशरात्राच्छतरात्रात्संवत्सराद्वा नाम कुर्यात् " इति । बह्व्चर्पारिशिष्टेऽपि – " जननाद्दशरात्रे शतरात्रे संवत्सरे वा नामकरणम् " इति । याज्ञवल्क्यः (आ. १२) – –

" अहन्येकादशे नाम चतुर्थे मासि निष्कमः । षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि चूडा कार्या यथाकुलम् "॥ १० स्मृतिरत्ने – " ततस्तु नाम कुर्वीत पितैव दशमेऽहनि ।

"यद्वा पितुरभावः स्यादयोग्यत्वमथापि वा । अन्यो वा कुलगृद्धो वा जातकर्मादि कारयेत्''॥ कुर्यादित्यर्थे । शंखोऽपि—'' कुलदेवतानक्षत्राभिसंबंधं पिता कुर्यादन्यो वा कुलगृद्धः'' इति । व्यासः—"नामधेयं दशम्यां तु केचिदिच्छंति सूरयः । दादश्यामथवा रात्रौ मासे पूर्णे तथापरे ॥ "अष्टादशेऽहिन तथा वदंत्यन्ये मनीषिणः ''॥ पारस्करः— (११९७१) " दशम्यामृत्थाप्य १५ ब्राह्मणान्भोजियिक्वा पिता नाम करोति" इति । शङ्खोऽपि—"दशम्यामृत्थाप्य पिंडविवर्धनं पितृणां तत्र सांनिध्यम्" इति । उत्थाप्य पूर्वशस्यातः । पिंडविवर्धनं श्राद्धम् । नामस्यक्रपमाह मतुः (२।३१)—

"मंगत्यं ब्राह्मणस्य स्यात्क्षत्रियस्य बलान्वितम् । वैश्यस्य धनसंयुक्तं शृद्धस्य तु अगुन्सितम्' ॥ मंगलबलधननिंदाप्रतिपादकान्येव तेषां क्रमेण नामयेयानि भवंतीत्यर्थः । २० स एवोपपदान्यथाह (२।१२)—

" शर्मवद्वाह्मणस्य स्यादाज्ञो रक्षासमन्वितम् । वैश्यस्य पृष्टिसंयुक्तं शूद्रस्य प्रेष्य संयुतम् "॥ शर्मरक्षापुष्टिप्रेष्यवाचकान्येव तेषां क्रमेण उपपदानीत्यर्थः । एवं चैव नामधेयानि भवंति । भद्रशर्मा शक्तिपाला धनपुष्टो हीनदास इति । अन्ये तु शर्मादीनामर्थपरत्त्वं मन्यंते । न तु शब्द-परत्वम् । अस्मिन्मते सुमित्रिः धृतराष्ट्रः निधिपालः पशुसंव इत्यादीनि भवंति । यमोऽप्युत्तरपदे २५ विशेषमाह—

"शर्मा देवश्च विप्रस्य वर्म त्राता च भूभुजः। भृतिर्दत्तश्च वैश्यस्य दास्यं शूद्रस्य कारयेत्"॥ इति । अत्रापि मंगल्यं ब्राह्मणस्येत्यादि मनूकैः पूर्वपदे नामधेयानि द्रष्टव्यानि । एवं च भद्रशर्मा भद्रदेव इति वा ब्राह्मणस्य नामधेयम् । एविमतरेषामप्यूह्मम् । आश्वलायनः— "शर्मीतं ब्राह्मणस्योक्तं वर्मीतं क्षत्रियस्य तु । गुप्तदासपदां तस्मादिभधा वैश्यशूद्रयोः "॥ ३० आपस्तंबः(६।१५।८)—''दशम्यामुत्थितायाश्चरनातायां पुत्रस्य नाम दधाति पिता माता" इति । उत्थितायां सूतिकागृहान्निष्कान्तायां स्नातायाम् । एवं च दशमेऽहिन नामकरणे सूतीगृहानिर्मित्यस्य स्नातव्यिमत्युक्तं भवति । सूतिकाशुद्ध्वर्थमेकादशेऽहिने च स्नानं भवति । इतिशब्दश्चार्थं मातापितरौ सहितौ नाम धत्त इति । इममर्थ मंत्रवर्णोऽप्याह—(तै.सं.१।५।१०)" मम नाम प्रथमं

जातवेदः पिता माता च द्यतुर्यद्वे दित । प्रकारांतरेण नाझो छक्षणमाहापस्तंद्वः (६।१५।९-१०)
"स्रक्षं चतुरक्षं वा नामपूर्वमाख्यातोत्तरं दीर्घामिनिष्ठानान्तं घोषवद्यावन्तरंतस्थमि वा यस्मिस्वित्युपसर्गः स्यात्तिद्धि प्रतिष्ठितमिति ब्राह्मणम्" इति । द्रव्यवाचकं सुवंतं पदं नाम तत्पूर्वं यस्य
तन्नाम पूर्वमाख्यानं कियावाचि किवंतमुत्तरपदं यस्य नामः तद्याख्यातोत्तरम् । दीर्घामिनिष्ठानां
प्रविघाँऽभिनिष्ठानश्चांत यस्य नामः तत्त्रयोक्तम् । आभिनिष्ठान इति विसर्जनीयस्य पूर्वाचार्याणां
संज्ञा । घोषवान्वर्गपृतियश्चतुर्थां वा वर्ण आदिर्यस्य नामः तद्धोषवदादि । अंतरंतस्यं अंतः
मध्ये अंतस्था यग्ठवयस्य नामस्तत्तस्यक्षरस्य वार्द्य गिर्दा इत्याद्धि । अपि वेति ब्राक्षरादिविशेषणिविकत्यः । यस्मिन्नाभि स्वित्ययमुपसर्गः स्थातन्नाम प्रतिष्ठितं आयुष्मद्यज्ञादिकियावस्य भवति । यथा सुणातः सुदर्शन इत्यादि । वेजावापः—" पिता नाम करोतित्येकाकृतं कुर्यान्नतिद्वतानम् " इति च । वाधायनः विकल्पांतराण्याह (२।१।२८-२९)—
"क्रव्यण्कं देवताण्कं वा यथा वर्षा पूर्वपुरुषणां नामानि स्युः" इति । अणूकमिभधायकम् ।
दाङ्खाऽपि—"कुरुद्वतागक्षत्राभिन्नस्य पिता कुर्यात्" इति । स्वीणां नामधेयं मनुराह(२।३३)भ भीषां सुल्वाचमक्रं विस्पष्टार्थमनाहरम् । मङ्गल्यं दीर्घवर्णान्तमभिवाद्वाभिधानवत्" ॥ इति ।

९५ "श्लीणां सुलोचमकृतं विश्वष्टार्थं मनाहरम् । मङ्गल्यं दीर्चवर्णान्तमाशीर्वादाभियानवत्" ॥ इति । सुलोचं मुखोचचारणक्षमम् । दीर्घवर्णः आकार ईकारो वा । अत एव पारस्करः (११९७४)— "अयुगाक्षरमाकारान्तं ख्रियाः " इति । दांखोऽपि— " ईकारांतं ख्रीणामेवं कृते नाम्नि शुचि तत्कुलं भवति " इति । आपस्तंबोऽपि (६१९५१९)— "अयुजाक्षरं कुमार्याः" इति । अयुजाक्षरं विषमाक्षरम् । अयुजाक्षरमिति छांदसम् । यथा श्रीः यशोदा पार्वतीति । अत्र यथास्वगृद्धं २० यथाकलाचारं वा व्यवस्था । इति नामधेचम् । कर्णवेधः सायणीये दर्शितः——

"कार्तिके पंधिमास या चेंत्रे वा फाल्गुनेऽपि वा । कर्णवेधं प्रशंसित शुक्के पक्षे शुभे दिने ॥ "शिशोगजानदंतस्य मातुकत्संगसिपणः । सोचिको वेधयेत्कर्णो सूच्या दिगुणसूत्रया "॥ इति । इति कर्णवेधः । अथ निष्कमणम् । मनुः (२।३४)— "चतुर्थे मासि कर्तव्यं शिशोर्नि-ष्कमणं सुरात " इति । समृतिचंदिकायां (ए. २१-३१; प्र. २२. पं. १-३)—

२५ ' द्वाद्शे अति कर्तव्यं शिशोर्निष्कमणं गृहात । चतुर्थं मासि कर्तव्यं तथाऽन्येषां मतं विभो''॥ तिष्कमणानत्त्रं कर्तव्यमाह् शङ्खः——'' चतुर्थं मासि कर्तव्यं बालस्यादित्यद्शीनम् ''। यमोपि—

"ततस्वृतिये कर्तव्यं मासि स्यस्य द्र्निम्। चतुर्यं मासि कर्तव्यं शिशीखंद्रस्य द्र्शनम्"॥इति। तथा रमृत्यर्थसारे— " निष्कामणं चंद्रसृथंद्वताद्र्शनं च द्वाद्शेऽत्नि वृतीये चतुर्थं वा मासि ३० कुर्यात् " इति । इति निष्कमणम् ॥ अथास्त्रप्राद्यनम् । तत्र मनुः (२।३४)—

"षष्ठेऽनप्राज्ञनं मासि यच्चेष्टं मंगलं कुले"। यसः-

"ततोऽन्नप्राहानं मासि षष्टे कार्य यथाविधि। अप्टमे वाऽपि कर्तव्यं यच्चेष्टं मंगलं कुले"॥ खोकाक्षिः—" षष्टे मासेऽन्नप्राहानं जातेषु दंतेषु वा " इति । शंखः— " संवत्सरात्प्रावसंवत्सर इत्येक " इति । आपस्तंबः (५।१६।१)— "जन्मनोऽधिषष्ठे मासि ब्राह्मणान्भोजिथित्वाऽऽशिषो

वाचियित्वा द्धिमधुघृतमोदनमिति सः मुज्योत्तरेर्मेत्रैः कुमारं प्राहायेत् " इति । जन्मनोऽधि जन्मदिनमारभ्य दिवसगणनया षष्ठे मासे । यदाह बृहस्पतिः—

"पंचाशहिवसात् त्रिघात् पश्चात् त्रिहतषष्टिकात् । अर्वागेवोत्तमा भुक्तिः " इति । अत्रापि यथास्वगृद्धं व्यवस्था । मार्कडेयः—

"देवतापुरतस्तस्य धाज्युत्संगगतस्य च । अलंकृतस्य दातव्यमन्नं पात्रे च कांचने ॥ " मध्वाज्यकनकोपेतं प्राश्येत्पायसं ततः । कृतप्राशमयोत्संगात् धात्री वालं समृत्सृजेत् " ॥ अन्नप्राशनानंतरं बालस्य जीविकापरीक्षामाह स एव—

" तस्यायतोऽथ विन्यस्य शिल्पभांडानि सर्वशः । शस्त्राणि चैव वस्त्राणि ततः पश्येनु लक्षणम् ॥ " प्रथमं यत्स्पृशेद्वालस्ततो भांडं स्वयं तदा । जीविका तस्य बालस्य तेनैव तु भविष्यति''॥ इति । इत्यक्षप्राशनम् । अथ चूडाकरणम् । तत्र मनुः (२।२५)—

"चूडाकर्म द्विजातीनां सर्वेषामेव धर्मतः । प्रथमेऽब्दे तृतीये वा कर्तव्यं श्रुतिचोदनात्"। द्विजातिग्रहणेन शूद्रपर्युद्रासः । चूडा शिखा। धर्मतः कुरुधर्मतः । श्रुतिचोदनादिति श्रुयते हि— (क्र. सं. ५।१।२२; तै. सं.)

"यत्र वाणाः संपतंति कुमाग विशिषा इव " इति । याज्ञवरुक्यः (आ. १२)— "षष्ठेऽनप्राश्नानं मासे चूडा कार्या यथाकुरुम् "॥ इति । ज्ञोनकोऽपि—— "तृतीये वर्षे चौरुं यथाकुरु- १५
धर्भ वा" इति । यस्मिन्कुरु यदा येन प्रकारेण चूडाकर्म तथा तथैव कार्यमित्यर्थः । यमः—
 "ततः संवत्सरे पूर्णे चूडाकर्म विधीयते । द्वितीये वा तृतीये वा कर्तःषं श्रुतिचोद्नात् ।
यथाकुरुं यथाशाखं चूडा कार्या द्विजातिमिः "॥ वेज्ञावापः— "त्रिवर्षे चूडाकरणम् " इति ।
शांखः— "तृतीये वर्षे चूडाकर्म पंचमे वा "। इति । रोगाक्षिः – "तृतीयस्य वर्षस्य भ्यिष्ठे
गते चूडां कारयते दक्षिणतश्चृडा वासिष्ठानां वामतो भागदाजानामुभयतः काश्यपानाम् "॥ २०
मृकुंद्धः— "पंच चूडा आंभीरसो वाजिमेके मंगर्ठार्थं शिखनोऽन्ये थथा कुरुधर्म भवति " ।
वाजिः केशपंकिः । अन्ये तृ शिखामात्रं यत्रकश्चन मंगर्ठार्थं कुर्वतीत्यर्थः । आपस्तंबः
(६।१६।६—७)— "यथिषै शिखा निद्धाति । एकार्षेयस्यका शिखा ब्रार्थेयस्य द्वे शिख इत्यादि ।
अथवा येन प्रकारेण येषां कुरुजानां धर्मः प्रवर्तते तथा शिखा कर्तव्यत्यर्थः । अत्र च जन्म- २५
प्रभृति वर्षसंख्या वेदितव्या । "जन्मनोधितृतीये वर्षे चौरुं पुनर्वस्वौतिश्चः । इत्यापस्तंबस्मरणात् । (गृ. १६।३) अधितृतीये अर्धाधिकतृतीये अत्र पुनर्वसुग्रहणं विहितनक्षत्रोपरुक्षणार्थम् ।
अत एव वयासः—

" अश्विनीश्रवणस्वातीचित्रा पृष्यपुनर्वसु । धनिष्ठारेवतीज्येष्ठामृगहस्तेषु कारयेत् ॥ " नक्षत्रे तु न कुर्वीत यस्मिजातो भवेत्ररः । न प्रोष्ठपद्योः कार्यं नैवाग्नेये च भारत ॥ अव " तिथिं प्रतिपदं रिक्तां विष्टिं चैव विसर्जयेत् ।वारं शनैश्वरादित्यभौमानां रात्रिमेव च "॥इति । गर्गः—

[&]quot; पुत्रचूडाकृतो माता यदि सा गर्भिणी भवेत्। शस्त्रेण मृत्युमाप्रोति तस्मात् श्लौरं विवर्जयेत्"॥ नारदः—

[&]quot; स्नोर्मातरि गर्भिण्यां चूडाकर्म न कारयेत् । पंचाब्दात्प्रागथोध्वे तु गर्भिण्यामपि कारयेत् ॥

" आरभ्याधानमाचौलात्कालातीते तु कर्मणाम् । आज्यव्याहृतिभिर्हृत्वा प्रायश्चित्तं यथाचरेत् ॥ " एतेष्वेकैकलोपे तु पाद्कुच्छ्रं समाचरेत् । चौलकेऽधं तु सर्वत्र मत्या तु द्विगुणं चरेत् " ॥ इति चौलकर्म । अथ स्त्रीणां जातकर्माद् । तत्र याज्ञवल्क्यः (आ. १२)—

"तूष्णीमेताः किया स्त्रीणां विवाहश्च समंत्रकः" । एता जातकर्मादिचूडाकरणपर्यताः • कियास्तूष्णीं विना मंत्रेण कार्या इत्यर्थः । मनुरिप (२।६६)—

" अमंत्रका तु कार्थेयं स्त्रीणामावृद्दशेषतः। संस्कारार्थं शरीरस्य यथाकालं यथाकमम्" ॥ अवित् जातकर्मादिकिया। गोभिलस्तु विशेषमाह—"तृष्णीमेताः कियाः स्त्रीणाममंत्रेण तु होमः" इति । स्त्रीणामप्युक्तकालातिक्रमे प्रायश्चित्तमाह कात्यायनः——

"संस्कारा अतिपद्येरन्स्वकालाच्चेत्कथंचन । हुत्वैतदेवकर्त्तव्यं यत्तूपनयनाद्यः"॥इति ।

• एतदेव सर्वप्रायश्चित्तमेव । सर्वप्रायश्चित्तमि तिनैवोक्तम् । " सर्वप्रायश्चित्तं च पंचिभः प्रत्यृचं
'त्वन्नो अग्ने' इति द्वाभ्याम् 'अयाश्चाग्ने' 'येज्ञतम्' 'उदुत्तम्' इति च" इति । स्त्रीणामुपनयनकालातिपत्तो बात्यप्रायश्चित्तं भवत्येवेति चंद्रिकायां (ए. २४ पं. ७) । स्त्रीणां विवाह एवोपनयनमित्याह् मनुः (२।६७)—

"वैवाहिको विधिः स्त्रीणामौपनायनिकः स्मृतः।पितसेवा गुरौ वासो महार्थोऽग्निपरिकिया"॥इति।
१५ तत्र गुरुकुठवासोऽग्निकार्यं चोत्तरार्धनोक्तः।पितसेवा गुरुगुश्रूषा गुरुकुठवासोऽग्निकार्यं चोत्तरार्धनोक्तः।पितसेवा गुरुगुश्रूषा गुरुकुठवासोऽग्निकार्यं चोत्तरार्धनोक्तः।पितसेवा गुरुगुश्रूषा गुरुकुठवासोऽग्निकार्यं विदार्थः।
अतश्चात्रापि तत ऊर्ध्वं कामचरादिवर्जनं "प्रागुपनयनात्कामचारवादेत्यादि" (गौतमसू. २।१।२)
च समानम्। यतु हारीतेनोक्तं " दिविधा स्त्रियो ब्रह्मवादिनयः सचोवध्वश्च। तत्र ब्रह्मवादिनीनामुपनयनमग्नीधनं वेदाध्ययनं स्वगृहे च भिक्षाचर्यां " इति " सचोवधूनां तूपस्थिते विवाहे
कथंचिद्यपनयनं कृत्वा विवाहः कार्यः" इति तत्कल्पांतराभिष्नायम्। तथा च यमः-

"पुराकल्पे तु नारीणां मौंजीवंधनमिष्यते । अध्यापनं च वेदानां सावित्रीवचनं तथा ॥
 "पिता पितृब्यो भ्राता वा नैनामध्यापयेत्परः ।

" स्वगृहे चैव कन्याया भेश्नचर्या विधीयते। वर्जयेद्जिनं चीरं जटाधारणमेव च"॥इति। स्मृत्यर्थसारे—" एते संस्कारा वीजगर्भदोषापनुपत्तये यथास्वाचारं कार्याः खीणां तूष्णीं स्युर्वि-बाहस्तु समंत्रकः। स्वकालातिक्रमे व्याहृतिहोमपूर्वं कार्या। एतेषामेकैकलोपे पादकुच्छ्रं मत्यालोपे २५ द्विगुणः " इति । इति जातकर्मादि ।

अथाक्षराभ्यासः । मार्कडेयः--

'' प्राप्ते तु पंचमे वर्षे ह्यप्रमुप्ते जनार्दने । षष्ठीं प्रतिपदं चेव वर्जीयेत्वा तथाऽष्टमीम् ॥ ''रिक्तां पंचद्रशीं चेव सीरभौमदिने तथा। एवं सुनिश्चिते काले विद्यारंभं तु कारयेत्"॥ सायणीये—

- " उत्तरायणगे सूर्ये कुंभमासं विवर्जयेत् । बालस्य पंचमे वर्षे प्राप्ते भानौ कुलीरगे ॥
 " आरभेताक्षरं तत्र शुभकाले यथोदिते ॥
 - " वारे दिनेशभृगुपुत्रबृहस्पतीनां विद्वानसौ भवति योऽपि विमृद्वबुद्धिः ॥
 - " चंद्रे च चंद्रतनये च भृशं च सत्वविधंकरोत्यवनिजो विजयो विनाशम् ॥ " वैष्णवादित्यतिष्येंदुश्रविष्ठास्वातिवारुणाः । भैत्रेंद्रहस्तचित्राश्च विद्यारंभेषु पूजिताः " ॥

" पूजियत्वा हरिं लक्ष्मीं देवीं चैव सरस्वतीम् । स्वविद्यासूत्रकारांश्च स्वां विद्यां च विशेषतः ॥

मार्कडेयः---

" एतेषामेव देवानां नाम्ना तु जुहुयाद्घृतम् । दक्षिणाभिद्धिंजेन्द्राणां कर्तव्यं चात्र पूजनम् ॥ " प्राङ्मुखो गुरुरासीनो वारुणाभिमुखं शिशुम् । अध्यापयेतु प्रथमं द्विजाशीर्भिः सुपूजितिम् ॥ "ततः प्रभृत्यनध्यायान्वर्जनीयान् विवर्जयेत्। अष्टमीद्वितयं चेव पक्षान्ते च दिनद्वयम्" ॥ इति । ५ इत्यक्षराभ्यासः॥" अथानुपनीतधर्माः । अत्रापस्तम्वः (२।१५।१९-२५)—"आऽन्नप्राश-नादुगर्भी नाप्रयता भवंत्या परिसंवत्सरादित्येके यावता वा दिशो न प्रजानीयः । ओपनयना-दित्यपरम् । अत्र ह्यधिकारः शास्त्रेर्भवति । सा निष्ठा । स्मृतिश्च " इति । अन्नप्राशनात्पाक् गर्मा बाला अप्रयता न भवंति रजस्वलादि स्पर्शेऽपि । यावत्संवत्सरो न परिपूर्यते तावन्नाप्रयता इत्येके मन्यन्ते । यावद्वा दिग्विभागज्ञानं नास्ति तावन्नाप्रयताः । उपनयाद्वीङ्गाप्रयता इत्यपि द्र्नीनम् । १० अत्रोपपत्तिरत्र ह्यधिकार इति हि यस्माद्त्र ह्यपनयने सति विधिनिषेधशास्त्रैरधिकारो भवति । सा निष्ठा तदुपनयनमवसानमधिकारस्यास्मिन्नर्थे स्मृतिश्चास्तीत्यर्थः । तथा दक्षः---" जातमात्रः शिञ्चास्तावद्यावदृष्टसमा वयाः । सोऽपि गर्भसमो ज्ञेयो गर्भमात्रप्रकाशितः ॥ "भक्ष्याभक्ष्ये तथा पेये वाच्यावाच्ये तथाऽनृते। अस्मिन्काले न दोषः स्यात्स यावन्नोपनीयते॥ " उपनीते च दोषोऽस्ति क्रियमाणैर्विंगहिंतः " ॥ इति । न चापेय इत्यनेन मद्यादिपाने न दोष १५ इति शंकनीयम् । 'वर्जयेत्' इत्यनुवृत्तौ 'नित्यं मयं ब्राह्मणः' इति गौतमस्मरणात् (२।२५)। तत्र च नित्यग्रहणमनुपनीतस्यापि प्रतिषेधार्थं न च प्रागुपनयनात्त्राह्मण्यमेव नास्तीत्यपि शंकनीयम--

''ब्राह्मण्यां ब्राह्मणेनैव ह्युत्पन्नो ब्राह्मणः स्मृतः। सवर्णभ्यः सवर्णासु जायन्ते हि स जातयः''॥ इति हारीतयाज्ञवल्क्याभ्यामुत्पत्तिमात्रेण साजात्यस्याभिधानात् (आ. ९०) " गर्भाष्टमेऽब्दे २० कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनयनमिति " मनुना (२।३६) ब्राह्मणस्य सत उपनयनविधानाच्च । गौतमः (२।१-१०)- " प्रागुपनयनात्कामचारवाद्भक्षोऽहुताद्ब्रह्मचारी यथोपपादितमूत्र-पुरीषो भवति। नास्याऽऽचमनकल्पो विद्यते। अन्यत्रापमार्जनप्रधात्रनावोक्षणेभ्यो न तद्रपस्पर्शना-दाशीचं । न त्वेवैनमग्निहवनबलिहरणयोनियुंज्यात् । ब्रह्माभिव्याहारयेद्न्यत्र स्वधानिनयना-दुपनयनादिनियमः "। कामाचार इच्छाचरणम्। कामवादोऽश्ठीलावृतादिभाषणम् । कामभक्षः २५ पर्युषितादिभक्षणम् । एतेषु प्रागुपनयनान्न दोषः । एतच्च महापातकव्यतिरिक्तविषयं " स्यात्का-मचारवाद्मक्षोक्तिर्महतः पातकाहत " इति स्मरणात् । तत्करणे प्रायश्चित्तं भवत्येव । " आशीतिर्यस्य वर्षाणि बालो वाऽप्यनषोडशः । प्रायश्चित्तार्धमहीन्त स्त्रियो रोगिण एव च ॥ ''उनैकादशवर्षस्य पंचवर्षात्परस्य च । चरेद्धरः सुहृच्चैव प्रायश्चित्तं विशुद्धये ॥ " अतो बालतरस्यास्य नापराधो न पातकम्। राजदंडश्च नास्यातः प्रायश्चित्तं च नेष्यते " इति॥ ३० अत्र यद्यपि सामान्येन प्रागुपनयनादित्युक्तं तथापि षष्टादृषीत्प्रागेव कामाचारादि द्रष्टव्यम्। ततः परं पित्रादिभिर्वर्णधर्मेषु नियोक्तव्यः । अनियुञ्जानास्तु प्रायश्चित्तिनो दण्ड्याश्चेति मिताक्षर्यो कचित्कामभक्षणस्यापवादमाह । अहुताद्धृतिशष्टं चरुपुरोडाशादि तद्त्तीति । अहुतात् न हुताबथाऽयमहुतात्स्यात्तथा पित्रा नियुज्येतेत्यर्थः । तथा च यमः---

" वैश्वदेवं पुरोडाशमशिमध्याच्च यद्धृतम् । यद्याच्छिशुराकृष्य मात्रा रक्ष्यः प्रयत्नतः" ॥ इति । वेश्वदेवं वैश्वदेवशिष्टम् । कामाचारस्यापवादः । ब्रह्मचारीति गर्भाष्टमादावुपनयनातिक्रमेऽपि स्त्रीषु न प्रसजेत् न च ब्रह्मचारीत्येतत् ब्रह्मचारियर्मप्राप्त्यर्थमिति शंकनीयम् ।

" न ह्यस्य विद्यते कर्म किञ्चिद्यमाँजीवन्थनात् । वृत्त्या शूद्रसमस्तावद्यावद्देदे न जायते " ५ इति दक्षिष्ठस्मरजात् (२१६) । यथोपपादेति मूत्रपुरीषौ यथोपपद्यते तिष्ठतः प्राङ्मुसस्य पथि क्रष्टाद्वी तथेव तो कुर्यात् । नास्येति अस्यानुपनीतस्य कल्पप्रतिषेधात् आचमनमात्रमनुज्ञायते । तरच "र्खीश्रद्रों तु सक्कत् सक्कत् ं इति "स्त्रीशृद्रेण समस्तावचावद्वेदे न जायते " इति रमरणात्। अन्यवेति अवमार्जनमुच्छिष्टिलिसस्य हस्तादेः सोद्केन पाणिना शोधनम्। प्रधावनं गुदे द्योधनम्। अबोक्षणं रजस्वलादिसपृष्टस्य प्रोक्षणम् । यद्यप्यवमार्जनाद्यः आचमनकल्पेनान्तर्भवंति ५३ तथापि पर्दरासम् छेन ते विधीयन्ते । एतत्रितयं षष्टवर्षात्प्रागिति बालस्य भूतिपशाचादिभयो रक्षार्थं कुर्यात् । तदाह ज्ञातातपः- "वालानां पंचमवषद्रिक्षार्थं शौचं कुर्याच्छुध्यर्थं परतः स्वयमव कुर्यात " इति । पञ्चवर्षादृध्वं चंडालादिस्पर्शे स्नापयितव्यः । गौतमः (२।७)--``न तहुपस्पर्शनादाञ्जाचं`ो षष्टवर्षात्प्राक्चण्डालादिस्पृष्टस्य तस्यानुपनीतस्याशुचित्वं । न तस्योप-स्पर्कृतन स्नानं भुक्तोच्छिष्टस्य कृतमूत्रपुरीषस्य चोपस्पर्शनेऽपि नाचमनमिति हरद्ताः । समृति-५७ चंडिकायां तु विशेषो दर्शितः । आचमनकल्पप्रतिषेधातस्त्रीशुद्रवदाचमनमात्रमवमार्जनादिकं चास्ति तावनमात्रेण तस्य प्रयतत्वानदुपस्पर्शनात्पित्रादेरशुद्धिनास्ति । न तु चण्डालादिसपृष्टस्य तस्य स्पर्शेऽपि गौतमवादे चण्डालादेरप्रकृतस्वात् " पतितचण्डालस्तिकोदक्याशवस्पृष्टि-तत्म्पृष्ट्युपस्पृष्ट्युपस्पर्शने सचैलम् ेइत्यत्र (अ. १४ सु. २७) वयोविशेषानभिधानाचेति न त्वे-वनम्मिह्दनबिहरणयोर्नियुंज्यानमनुपनीतमग्निह्वने औपासनहोमादौ वैश्वदेवे यद्विहरणं २ वत्र च न नियुक्षीत तस्य मंत्रविहीनत्वादित्यभिप्रायः । न च मंत्रान्प्राहियत्वा विनियोग इत्याह (२।८) " न ब्रह्माभिच्याहारायेद्नयत्र स्वधानिनयनात्"इति । स्वधानिनयनं प्रेतकर्म । तत्रानुपनीतस्यापि मंत्राध्ययनमविरुद्धामित्यर्थः । मनुरपि (२।१७१–१७२)—

"न बस्मिन्युज्यते कर्म किविद्!मोजिवंधनात । नाभिव्याहारयेद् ब्रह्म स्वधानिनयनाहते"॥इति। रुष्ट्रियर्थसारे— ' उपनयनात्प्रागृन्छिष्टादावप्रयता न स्युः महापातकवर्ज तेषां चण्डालादि । स्वशं नचेलचानं प्रागनप्राशानादभ्युक्षणं प्राकृचौलादाचप्रम प्रशास्तानमित्येके पित्रोः स्वधानिनयनाहते च मनत्राच न बुयुः ' इति । अध्यस्तं इः (२।१५।१६—२५)— " अन्नप्राश्चना हर्मानाश्चरतः सर्वत्या पर्मिवत्यगदि च ब्राव्या वा दिशो न प्रजानीयुरोपनयनादित्यपरम् । अत्र व्यथिकारः शास्त्रेर्मवति मा निष्टति पित्रोः स्वधानिनयनाहते च मंत्रास्त्र ब्रुयुरिति"॥ विसिष्टः— (२।४) — "अन्यत्रादकर्मन्यशादिवस्यः इति । इत्यसुपनीतथर्भाः ॥

३० अथोपनयनम् । तत्र अनुः (२।३६)—

भर्माष्टमान्दे कुर्वीत बाह्मणस्योपनायनम् । मर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः"॥
गर्माष्टमे गर्भादगरभयाष्टमे उपत्यनमेवोपनायनम् । अब्द्संख्यानियमस्यायमभिप्रायः । ब्रह्म-स्वविद्यो गायबीवेष्टुस नागतः छंदोभिः सहजत्वं अयुयते । (ते. सं. ७११९४)—''गायबी-छंदो ग्थंतर साम बाह्मणो मनुष्याणामजः पश्नां तस्मात्ते मुख्या मुखतो ह्यसुज्यंतेति । त्रिष्टुप्छंदो बृहत्साम राजन्यो मनुष्याणामितः पश्नामिति । जगती छंदो वैरूपः साम वैश्यो मनुष्याणां गावः पश्नाम्" इति च । गायञ्यादिभिरेतेषामुपनयनं च स्मर्यते (वासिष्ठे ४।३)— "गायञ्या बाह्मणमुपनयीत । त्रिष्टुमा राज्यन्यं जगत्या वैश्यम्" इति । ततश्चोपनयनाव्दा अपि स्वस्वच्छंदोक्षरसमसंख्या भावितुमईतीति छन्दसां चाक्षरसंख्या श्रूयते (त.सं. २।४।९।०)— "अष्टाक्षरा गायत्री एकादशाक्षरा त्रिष्टुप् द्वादशाक्षरा जगती" इति । एकेकपादाभिप्रायेयम् । तथा ५ च श्रुतिः । (ते.सं. २।५।१०।३)—" चतुर्विःशत्यक्षरा गायत्री चतुश्चत्वारिः शद्क्षरा त्रिष्टुप् अष्टाचत्वारिः शद्क्षरा जगती " इति । हारीतः— " छंदःसु पादाक्षरसमुद्रायवद्वदसमूहे उपनयनम् " इति । गायाञ्यादिपादाक्षरसंमितेऽव्द इत्यर्थः । ततश्चाप्रमेकादशद्वादशेष्वेच वर्षेषु बाह्मणक्षत्रियवैश्यानां मुख्यमुपनयनमिति । याज्ञवल्क्यः (आ. १४)——

"गर्भाष्टमेऽष्टमे वाद्ये बाह्मणस्योपनायनम्। राज्ञामेकाद्ये सेके विशामेके यथाकुलम्"॥ ५० गर्भाज्जन्मनो वाऽरभ्याष्टमे। विशः वैश्यस्य। सेके एकाद्ये द्वाद्यः इत्यर्थः। कुलस्थित्या केचि-दुपनयनमिच्छन्ति। श्रुतिरिप-"अष्टवर्ष बाह्मणमुपनयीत" इति। अत्रापस्तम्बः (४।१०१२-४)— "गर्भाष्टमेषु बाह्मणमुपनयीत गर्भेकाद्येषु राजन्यं गर्भद्वाद्येषु वैश्यं वसन्तो ब्रीक्मः शरद्वः तवो वर्णानुपूर्व्येण " इति । गर्भ अष्टमो एषामिति गर्भाष्टमाः । जननप्रभृति स्थ गृह्यन्ते । एवं यद्यपि सप्तस्वप्युपनयनं प्राप्तं तथापि जनमदित्रिषु चौलान्तसंस्काः भ रवकद्धत्वाच्चतुर्थेऽप्यक्षराभ्यासाभावेनासामर्थ्यात्र कियते अतोऽत्रोपादेयगता बहुत्वसंख्या क्विपिञ्जलन्यायेन गर्भषष्टसप्तमाष्टमेषु विष्वेवावतिष्ठते । एवं च "वर्षत्रयं मुख्यकाल्यः क्विपञ्जलन्यायेन गर्भषष्टसप्तमाष्टमेषु विष्वेवावतिष्ठते । एवं च "वर्षत्रयं मुख्यकाल्यः क्विपञ्जलन्यायेन गर्भषष्टसप्तमाष्टमेषु विष्वेवावतिष्ठते । एवं च "वर्षत्रयं मुख्यकाल्यः स्त्यापस्तम्बमितिरित्येक । अन्ये तु गर्भाष्टमे एव वर्षे न तु षष्टसप्तमयोः तयोर्गर्भाष्टमत्वाः भावाद्वहुवचनं छान्दसमिति वदन्ति । अत्र यथाकुलाचारव्यवस्था । गौतमः (११६।८)— "उपनयनं बाह्मणस्याप्तमे एकाद्द्यद्वाद्ययोः क्षत्रियवैश्ययोर्गभोदिसंख्यावर्षाणाम् " इति । श्वः काम्योपनयनमाह स एव (१।७)— "नवमे पश्रमे वा काम्यम् " इति । यदाहांगिराः— "ब्रह्मवर्चसक्तमस्य पश्चमेऽब्वेऽग्रजन्मनः। आयुष्कामस्य नवमे कार्यं मौञ्जीनिवन्धनम्"॥ इति । सनुः (२।३७)—

"ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पञ्चमे। राज्ञो बलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्यार्थार्थिनोऽष्टमें"॥

अंगिरा:---

" षष्ठे तथा दादशे च राज्ञो वृद्धिबलायुषोः।इहायुषोस्तु वैश्यस्य ह्यष्टमे च चतुर्दशे"॥ ईहा कृष्यादिविषया चेष्टा । स्मृतिरत्ने—

" सप्तमे चाष्टमे वर्षे नवमे दशमे तथा । एकादशे द्वादशे च ह्युपनीयुर्द्दिजातयः ॥

" ब्रह्मवर्चसमायुष्यं तेजोन्नायं तथेव च । पश्ंश्च कामयाना वै प्राप्नुवन्ति यथाक्रमस् '॥ इति । ३ ॰ बोधायनोऽपि (२।५।५-६)— " सप्तमे ब्रह्मवर्चसकाममप्टम आयुष्कामं नवमं तेजस्कामं दशमेऽन्नायकाममेकादश इंदियकामं दादशे पशुकामं त्रयोदशे मेधाकामं चतुर्दशे पृष्टिकामं पंचदशे भ्रातृव्यन्तं षोढशे सर्वकामम् " इति । तथा च भरद्वाजः— " वसन्ते ब्राह्मणमुपनयीत शिष्मे राजन्यं शरदि वैश्यं वर्षासु रथकारम् " इति । चन्द्रिकायां—

" ऋतुर्वसन्तः शुभदोऽग्रजन्मनां ग्रीष्मो नृपाणां च शरद्विशां च ॥

14

- " व्रतस्य बंधे यदि वाऽखिलानां मार्घीद्यः पञ्च भवन्ति मासाः "॥ ङ्यातिःशास्त्रे च-"माघादिषु तु मौञ्जीबन्धः पञ्चसु शस्यत" इति ॥ धर्मसारसुधानिधौ-
 - " विप्रं वसन्ते श्लितिपं निदाघे वैश्यं घनान्ते व्रतिनं विद्यात् ॥
- " माघादिशुकान्तकपत्रमासाः साधारणा वा सकला द्विजानाम्" ॥ वृद्धवसिष्ठः— ५ " विप्रस्य क्षत्रियस्यापि मौज्ञी स्यादुत्तरायणे । दक्षिणे तु विशां कुर्यान्नानध्याये न संक्रमे ॥ " अनध्यायेऽपि कुर्वीत यस्तु नैमित्तिको भवेत् ॥
 - " ज्येष्ठे मासि विशेषेण सर्वज्येष्ठस्य चैव हि । उपनीतस्य पुत्रस्य जडत्वं मृत्युरेव च" ॥ बृद्धगार्ग्यः—
- " स्वाध्यायवियुजो घम्नाः कृष्णप्रतिपदादयः । प्रायश्चित्तनिमित्ते तु मेखठाबन्धने मताः " ॥ १० य**स्राः** वासराः ॥ व्यासः---
 - " विप्रश्चातीतकालश्चेच्छस्ता शुक्का चतुर्दशी। कृष्णे तु प्रतिपच्चेष्टा प्रायश्चित्तोपनायने"॥ अपरार्के-
 - " नष्टे चन्द्रेऽष्टमे शुक्के निरंशे चैव भास्करे । कर्तव्यं नोपनयनं नानध्याये गलगहे ॥
 - " राहोः प्रथमभागस्थो निरंहाः सूर्य उच्यते । त्रयोद्शीचतुष्कं तु सप्तम्यादित्रयं तथा॥ " चतुर्थ्येकादशी प्रोक्ता नव चैते गलग्रहाः ॥
 - '' गुरुर्भृगुसुतो धात्रीपुत्रः शशधरात्मजः । स्युरेते ऋग्यजुःसामाथर्वणामधिपाःक्रमात् ''॥ यात्रीपुत्रों आरकः । शश्थरात्मजो बुधः । तद्दासरे तच्छासीयस्य उपनयनं कर्तव्यमित्यर्थः । तथा सायणीये-
- " गुरोः कवेलोंहितस्य अंगिरेस्य च वासराः। ऋग्यजुःसामाथर्वणां शस्ताः स्युर्वतबंधने " ॥ रक वृद्धगार्ग्योऽपि—" बुधत्रयेंदुवाराणि शस्तानि व्रतबंधने "। स एव
 - " शासाधिपे बलिनिकेन्द्रगते तु मौञ्जीबन्धस्तदीयदिवसेषु सुसाय क्लप्तः॥
 - " अस्मिन्चलेन रहिते तु पुनर्द्दिजानां स्याद्वर्णसंकर इति प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥ " हस्तत्रये पुष्यधनिष्ठयोश्च पौष्णाश्विसौम्यादितिविष्णुभेषु ॥

 - " शस्ते तिथौ चन्द्रबलेन युक्ते कार्यो द्विजानां वतबन्धमीक्षौ " ॥
- २५ द्विजत्वकारणमाह **याज्ञवत्क्यः** (आ. ३**९**)—
 - " मातुर्यद्गे जायन्ते द्वितीयं मौन्जिबन्धनात् । ब्राह्मणक्षत्रियविशस्तस्मादेते द्विजाः स्मृताः"॥ विष्ठोऽपि (२१३)— " मातुरप्रेऽधिजननं द्वितीयं मौश्जिबन्धने "। इति । मनुर्राप (२।१६९-१७०)-
 - " मातुरग्रेऽधिजननं द्वितीयं मौक्षिबन्धने । तृतीयं यज्ञदीक्षायां द्विजस्य विधिचोदितम् ॥
- "तत्र यद्बझजननं मोन्जीबन्धनचिन्हितम् । तत्रास्य माता सावित्री पिता त्वाचार्य उच्यते"॥ आचार्यस्य पितृत्वे हेतुमाह स एव (२-१७)--
 - " वेदप्रदानादाचार्य पितरं परिचक्षते । न ह्यस्य विद्यते कर्म किञ्चिदामौन्जिबन्धनात् " ॥ वेदप्रदानात्सर्ववेदस्वरूपसावित्रीप्रदानादुपनयनाख्यम् । जन्मप्रदानादिति यावत् । आपस्तम्बः (१।१।१६-१८)-
- " स हि विद्यातस्तं जनयति तच्छ्रेष्ठं जन्म शरीरमेव मातापितरौ जनयतः " ॥ इति । अथ गौणकालाः । तत्र मनुः (२।३८)---

१ क-अष्टावेते । २ ख-व्यस्यैव ।

" आ षोडशाद ब्राक्षणस्य साविकी नातिवर्तते । आ द्वाविशात्क्षत्रबन्धोरा चतुर्विशतेर्विशः " ॥ सावित्री उपनयनम् । भूत्रबन्धोः क्षत्रियस्य । आकारोऽत्राभिविधिवचनः । मुख्यकल्पसंख्या देगुण्यानुगुण्याचदाह द्यासः—

"औपनायानिकः कालः परः बोडशवार्षिकः । द्वाविंशतिः परोऽन्यस्य स्याच्चतुर्विंशतिः परः"॥ इति। परः अन्तिमः । तत अर्ध्व गौणकालोऽपि नास्ति इत्यर्थः । याज्ञयत्क्यः (आ. ३७)— ' आ बोडशाच्च द्वाविंशाच्चर्तृविंशाच्च वत्सरात् । ब्राह्मणक्षत्रियविशामौपनायानिकः परः "॥ आपस्तम्बः (१।१।२७)—

"आ पोडशाद् ब्राह्मणस्यानात्यय आ द्वाविंशात्क्षत्रियस्य चतुर्विंशाद्देश्यस्य "। गौतमोऽपि (११३)—"आषांडशाद्बाद्मणस्य पतिता सावित्री " इति । मनुः (२।३९)— "अत ऊर्ध्व ब्रयोऽप्येते यथाकालमसंस्कृताः । सावित्रीपतिता ब्रात्या भवंत्यार्यित्रगिर्हिताः "॥ १ • अतः षोडशादिभ्यः । असंस्कृतः अनुपनीतः । सावित्रीपतिताः सावित्र्युपदेशहीनाः । ब्रात्याः ब्रात्यनामानः । स्र ष्व (२।४०)—

"नैतेरपूर्तेर्विधिवदापद्यपि कदाचन। बाह्यान् यौनांश्च संबन्धान्नाचरेत् बाह्यणैः सह"॥अपूर्तेरकृत-प्रायश्चित्तैः । बाह्यान् अध्ययनाध्यापनादीन् । योनान्कन्यादानप्रतिग्रहादीन् । चिन्द्रकायाम्— " बात्यस्याकृतचित्तस्य न कार्यमुपनायनम् । अध्यापनं याजनं च विवाहादि विवर्जयेत् " ॥ १५ यमः— " समितिकान्तकालाश्च पतिताः सर्व एव ते ॥

"बाह्मणक्षत्रियविशां कारुश्चेद्त्यगाद्यम् । सावित्रीपतिता वात्याः परिहार्याः प्रयत्नतः"॥ इति । बोधानायकोऽपि—"अत उर्ध्व पतितसावित्रीका भवन्ति । नैतानुपनयेयुर्नाध्यापयेयुर्न याजयेयुर्न विवाहयेयुः" । एतानकुतप्रायश्चिनानिति शेषः । प्रायश्चित्तमपि याज्ञवल्कयेनोक्तम् (आ. २८)—

''अत ऊर्ध्व अवंत्येते सर्वधर्मबहिष्कृताः! सावित्रीपतिता बात्या वात्यस्तोमाद्दते कृतोः''॥ २० वात्यस्तोमो वात्यानां प्रायश्चित्तार्थः ऋतुः ।तं विहायान्यव नाधिकारः । तत्र त्वपत्नीकस्यानधीत-वेदस्याकृताधानस्य वचनादधिकारः । दासिष्ठस्त प्रायश्चित्तान्तरमप्याह (११।७६-७९)---''पतितसावित्रीक उद्दारकवतं चरताद्वी भासौ यावकेन वर्तयेन्सासं पयसाऽर्धमासमामिक्षयाऽष्टरात्रं घृतेन षड्रात्रमयाचितं त्रिरात्रमहोरात्रमुपवसेद्श्वमेधावभृथं वा गच्छेद् बात्यस्तोमेन वा यजेत " इति । अस्यार्थः । उडालकमुनिना दृष्टं व्रतमृहालकवतम् । तत्स्वरूपमाह । द्वौ मासावित्यादिना २५ यावको यवक्रतं यवागः।तथैव मासद्यं वर्तेत। अयाचितं तु सर्ववतसाधारणं हविष्यन्तच सङ्घदेव। उपवासे तु उद्कर्यांपि निवृत्तिः । पूर्वमम्बभक्षणेनैव त्रिरात्रविधानादिति । आपस्तम्बः (१।१।२७-३१)-'चयाबतेषु समर्थः स्याद्यानि वक्ष्यामः। अतिकान्ते साविज्याः काले ऋतुं त्रैविद्यकं ब्रह्मचर्यं चरेत्। अथोपनयनम् । ततः संवत्सरमुद्कोपस्पर्शनम् । अथाध्याप्यः" इति । अस्यार्थो हर-दत्तेनाभिहितः। यथा वतेषु समर्थः स्यात्तथैतावान् कालः प्रतीक्ष्यः । पूर्वमेव तु सामर्थ्ये सत्यष्टमवर्षाः ३० यतिक्रमेऽपि प्रायश्चित्तं भवति । एवं बोडशादिभ्य उर्ध्व कियन्तंचित्कालमसमर्थानां पश्चात्सामर्थ्ये सित प्रायाश्चित्तं भवत्येव। तच्च प्रायश्चित्तमाह। अतिकान्ते साविञ्या इति। यः साविञ्या काल उक्तः तद्तिक्रमे त्रैवियकं व्यवयवा विचाः त्रिवियाः तामधीयते त्रैविचाः । तेषामिदं त्रैविचकमेवंभृतं वतं ब्रह्मचर्यमग्निपरिचर्यामध्ययनं गुरुज्ञुश्रूवाभिति परिभाव्य सकलं ब्रह्मचारिधर्मं चरेत्कियन्तं काल-मृतं 'कालाध्वनोरत्यंतसंयोगे' दितीया। अथोपनयनं एवं चिरतवतः उपनेतन्यः। ततः संवत्सर- ३५

१ क्स-गायत्री । २ क्स-त्र । ३ ख-न प्रसक्तिः ४ क्स-हाय्य । ५ पा. स. २१२१५ ।

मुद्दकोषस्पर्धानं कर्नानं कर्नान्यम् । शकस्य त्रिषवणस्नानमन्यस्य यथाशक्ति । अधाध्याप्यः । एवं चित्तवतः पद्धाद्ध्यस्य इति । यत्तु कैमिनिनोक्तन्-" नातिषोडशवर्षमुपनयीत प्रस्नस्तवृषणो होत्र वृष्टिम्त ं इति तद्दृहतप्रायश्चित्तविषयम् । स्मृत्यर्थसारे- " उपनयनं गर्भाज्जन्मतो वाष्टमे वर्षे एकाद्दे हाद्दे वा विप्रादीनां क्रमात्कार्यमा षोडशादा द्वाविंशादा चतुर्विंशाच्च ५ विप्रादीनां क्रमात्कार्यमत क्रमात्कार्यमत क्रमात्कार्यमत क्रमात्कार्यमत क्रमात्कार्यमत क्रमात्कार्यमत विप्रादीनां क्रमात्कार्यमत क्रमात्कार्यमत अर्थः स्वावित्रीपतिता वात्याः स्युस्तेषां चीर्णप्रायश्चित्तानामुपनयना व्यः स्यः " इति । इति गौणकार्छः । अथः यज्ञोपवीतम् । तत्र मनुः (२।४४)—

"कार्पासमुद्यतितं स्याद्वित्रस्योध्वेष्टतं त्रिवृत् । शाणसूत्रमयं राज्ञो वैश्यस्याविकसूत्रकम्" ॥ कार्पासाविकारः कार्पाससः । सूत्रमिति यावत् । अर्ध्ववृतं सव्यहस्ततले न्यस्य दक्षिणहस्ततलेन अर्ध्ववितंतसः । आविकस्त्रकनिविरोमनिर्मितसूत्रमित्यर्थः । युद्धपरिशिष्टेऽपि— "उपवीतमयुग्म- । सरं विषमतंतुकं त्रिवृद्यज्ञोपवीतस्" इति । अयुग्मसरमयुग्मगुणमेकैकगुणो विषमतंतुकः त्रितंतुक अत्यथा नवतंतुकत्वव्याधातात् । तदाह देवलः— "यज्ञोपवीतं कुवीत सूत्रेण नवतंतुकम्" इति । श्वातरिर्दि "नव व त्रिवृत् " इति । कात्यायनः— "त्रिवृद्धि वृतं कार्यं तंतुत्रयमधो वृतस् " इति । बृह्दपतिः —

"इर्गिसिके सदा द्याच्छाचे क्षेत्रं विशोधितम । जीवभर्तकया नार्या ब्राह्मण्या सूत्रकं कृतम्"॥ १५ स्युति अरे —

" च्छेदे दिनारो वा स्नातः कन्यया निर्मितं शुभम् । विषवायाभिरथवा सूत्रं गृह्णीत वै शुचिः" ॥ भाषयीये—

''यक्कोपवीतं कुर्यात स्वं तु नवतंतुक्स । त्रिष्टृद्ध्वे वृतं कार्यं तंतुत्रयमधोवृतम्''॥ ऊर्ध्ववृतस्य स्वरूपमुक्तं चंद्रिकाचाल—

"करेण रक्षिणेनीर्ध्व मतेन त्रिमुणं कृतम् । बिलतं वा त्रिकं सूत्रं त्रिवृद्धविवृतं स्मृतम्"॥ अर्ध्व मतेन दक्षिणेन करेणं यद्दितं तद्भविवृतमित्यर्थः । प्रतितंतु देवताभेदानाह देवलः—

- " ऑकारः प्रथमस्तंतुर्द्धितीयोऽभिस्तथैव च । तृतीयो नागदेवत्यश्चतुर्थः सोमदेवतः ॥
- " पंचमः पिठ्देवत्यः षष्टश्चैव प्रजापतिः । सप्तमो वीयुदेवत्यो धर्मश्चाष्टम एव च ॥
- " नदमः सर्वदेवत्य इत्येता नव देवताः ॥
- २५ " ग्रामानिष्कस्य संख्याय धण्णवत्यंगृहीषु तत् । तावित्त्रगुणितं सूत्रं प्रक्षारूयाब्हिंगकैस्त्रिभिः ॥
 - " देवागारेऽथ दा गोंडे नथां वाऽन्यत्र वा शुचौ । साविज्या विविधं कुर्याभवसूत्रं तु तद्भवेत् ॥
 - " अथ त्रिवेष्टितव्यं स्यात्पितृणां तृप्तिदं हि तत् । त्रिस्ताडयेत्करतलं देवानां तृप्तिदं हि तत् ॥
 - " सब्ये मुद्रं पृहीत्वाऽस्मिन् स्थापये द्वृतिति बुवन् । पत्रं पुष्पं फलं वापि ब्याहृतीभिः प्रतिक्षिपेत्॥
 - " अभिमंत्र्याथ मृर्धिं विति वर्गत्रयं त्रिभिः । हरिब्रह्मेश्वरेभ्यश्च प्रणम्यावाहेयेदिति ॥
 - "यज्ञोपश्चितिनित्यादि मंत्रः स्यादवधारणे। यज्ञोपवीतमंत्रेण व्याहृत्या वाऽपि धारयेत्"॥
 गृह्यपरिशिष्टे ''यज्ञोपश्चीतं परमं पश्चित्रं प्रजाप्तेर्यत्सहजं पुरस्ताद्ययुष्यम्यं प्रति मुंच शुभ्रं यज्ञोपश्चीतं वलमस्तु तेजः '' इति धारणे मंत्रोऽभिहितः । बौधायनः— " यज्ञोपश्चीतं प्रतिमुंच-न्वाचयित यज्ञोपश्चीतं परमं पवित्रमिति '' । ग्रंथिनियममाह देवलः— " एकेन ग्रंथिना तंतुः द्विगुणस्त्रिगुणोऽथ वा ''। परिमाणांतरमप्याह कात्यायनः—

" त्रिवृतं चोपवीतं स्यात्तस्यैको ग्रंथिरिष्यते ।

ج) و

९ क-भग। र क्ष-वसुः, स्त्र-विष्णु। ३ ख-ने नेव तन्तवः। प क्स-श्रो। ५ क्स-वादयेः,

" पृष्ठवंशे च नाभ्यां च धृतं यद्दिन्दते कटिम् । तद्धार्यमुपक्षीतं स्यान्नातिलंबं न चोच्छ्रितम् "॥ वसिष्ठशातातपौ—-

" नाभेरूर्ध्वमनायुष्यमधो नाभेस्तपः क्षयः । तस्मान्नाभिसमं कुर्याद्वपवीतं विचक्षणः"॥ एतदलाभेऽपि परिमाणांतरमाह देवलः—'स्तनादृर्ध्वमधो नाभेनी कर्तव्यं कर्दाचन'' इति॥ भृगुः—

" उपवीतं वटोरेकं दे तथेतरयोः स्मृते । एकमेव यतीनां स्यादिति शास्त्रस्य निश्चयः"॥ ५ देवलः—

" ब्रह्मचारिण एकं स्यात्स्नातस्य दे बहूनि वा । तृतीयमुत्तरीयं स्यादस्त्राभावे तदिष्यते "॥ स्मृतिसारे—

"एकवेदस्य चैकं स्याद्धवा वेदसंख्यया । बहूनि चायुष्कामस्य व्यादिकाम्यं प्रचक्षते " ॥ भरद्वाजः—–

" मंत्रं सदैवमुच्चार्य ब्रह्मसूत्रं गले क्षिपेत् । दक्षिणं बाहुमृद्धृत्य शिरसैव सह द्विजः ॥ "गृहस्थस्य वनस्थस्य सूत्रं प्रति पुनः पुनः । मंत्रोच्चार गमाचानेद्वितयं क्रमशः स्पृतम् ॥ " यज्ञोपवीते द्वे धार्ये श्रौते स्मार्ते च कर्मणि । तृतीयमुत्तरीयं तु वस्त्राभावे तदिष्यते ॥

" एकैक मुपवीतं स्यादायन्ताश्रमिणोर्दयोः । दशाष्टौ वा गृहस्थस्य चत्वारि वनवासिनः॥

"विना यज्ञोपवीतेन दिनमेकमपि दिजः। स्थितः शूद्रत्वद्यायाति पुनः श्वानो भविष्यति ॥ १५ "कोबाद्दा यदि वा लोभाद् ब्रह्मसूत्रं छिनति यः।स कुर्योत्त्रीणि कुच्छ्राणि कुच्छ्रमेकमथापि वा"॥ भृगुः—–

"सदोपवीतिना भाव्यं सदा बद्धशिखेन च । विशिखो व्युपवीतश्च यत्करोति न तत्कृतम्"॥ इति। नै चानेन सदोपवीतित्वं कर्मकाल एवेति संकोचनीयम् । यतः स एखाह्र—–

" मंत्रपूर्त स्थितं काये यस्य यज्ञोपवीतकम् । नोःद्धरेनु ततः प्राज्ञो यदिच्छेच्छ्रेय आत्मनः ॥ २० " कायस्थमेव तत्कार्यमुत्थाप्यं न कदाचन । सकृदुत्तारणात्तस्य प्रायाश्चित्तीयते दिजः "॥ व्यासः--

"विना यच्छिलया कर्म विना यज्ञोपवीतकष् । राक्षसं तद्धि विज्ञेयं समस्ता निष्फलाः क्रियाः"॥ अतोऽग्नीन्धनादेः पूर्वमेव यज्ञोपवीतं धार्यहुपनयने । भृगुः - -

अताऽग्नान्धनादः प्रमव यज्ञापविति धार्यनुपनयने । **भृगुः** " सूत्रं सलोमकं चेत्स्यात्ततः कृत्वा विलोमकम्। सावित्र्या वृक्ष कृत्वाऽद्भिर्मनिताभिस्त**दुक्ष्येत्॥ २५**

" विच्छिन्नं वाऽयतो यातं भुक्त्वा निर्मितमुत्सुजेत् । उपानहीं च वासश्च धृतमन्यैर्न धारये**त् ॥** ' उपवीतमलंकारं स्नजं करकमेव च"॥ **मनुस्**तु—धृतयज्ञोपवीतादिविनाशे प्रतिपत्तिमाह(२।६४)—

" मेखलामजिनं दंडमुपवीतं कमंडलुम् । अप्सु प्रास्य विनष्टानि गृह्णीतान्यानि मंत्रतः ? ॥ इति । पितामहः—

" य एतन्नाभिजानाति यज्ञसूत्रसमुद्भवम् । वेदोक्तं निष्फलं तस्य स्नानदानजपादिकम् " ॥) э • "बाह्मणो यो न जानाति उपवीतस्य संस्थितम् । मोहात्मा वहते भारं पशुर्गौरिव सर्वदा"॥ इति । उक्तोपवीतालौभेऽपि देवल आह—

" कार्पासक्षौमगोवालशणवल्कतृणोद्भवम् । सदा संभवता धार्यमुपवीतं द्विजातिभिः " ॥ इति । तृणोद्भवं कुशनिर्मितम् । तथा च गोभिलः—"यज्ञोपवीतं कुस्ते सूत्रं वस्त्रं कुशग्ज्जं च"॥ इति । सूत्रमपि वस्ताभावे वेदितन्यम्। " वाससा यज्ञोपवीतार्थान्कुर्यात्तद्भावे विवृता स्त्रेण " इति ३५

अस्यग्-कथंचनोति । २ क्ष-म । 3 क्ष-भावे ।

ऋष्यशृंगस्मरणात्। " नित्यमुत्तरं वासः कार्यमपि वा सूत्रमेवोपवीतार्थे" (२।४।२१-२२) इत्यापस्तंबेन वाससोऽअसंभवे अनुकल्पत्वेन सूत्रस्याभिधानाच्चः हारीतः-

" मुक्तामयोपवीतं च चामीकरमथापि वा । धार्य तत्सर्ववर्णानां महादानादिकर्मे हु " ॥ स्मृत्यर्थसारे—

- ५ " वस्त्रं यज्ञोपवीतार्थे त्रिशृत्स्यं च कर्मसु । जुची देशे ज्ञुचिस्तत्र संहतांगुलिमूलके ॥ "आवेष्ट्य षण्णवत्या तु त्रिगृणीकृत्य यत्नतः । अव्हिंगस्तु त्रिभिः सम्यक्प्रक्षाल्योध्वं वृतं तु तत्॥
 - " अप्रदक्षिणमावृत्तं साविज्या त्रिगुणीकृतम् । अथ प्रदक्षिणावैते नवं स्यान्नवसूत्रकम् ॥
 - " त्रिरादेष्ट्य दृढं वथ्वा हरित्रहोश्वरात्रमेत्" ॥ इति । द्योधायनः— " ब्राह्मणकन्यकया ब्राह्मणविधवया वा शुद्धस्नातया कृताचान्ततया निर्मितं सूत्रं गृहीत्वा प्राचीमुदीचीं वा दिश-
- ५ **. मुपनिष्कम्य चतुरंगुलमात्रषण्णवतिस्**त्रपरिमंडलस् " इति । स्व **एव**
 - " चतुर्वेदस्य चत्वारि जिवेदस्य त्रिकं भवेत् । दे स्थातां वै द्विवेदस्य एकमेवैकवेदिनः"॥ इति । कथं संनिवहँयमुपवीतमित्यपेक्षायां सनुराह (२।६२)—
 - " उद्भृते दक्षिणे पाणानुपवीत्युच्यते द्विजः । सन्ये तु प्राचीनावीति निवीती कंठसज्जने " ॥ स्वस्य कर्णसज्जने निवीतमिति संज्ञा तदस्यास्तीति निवीती । निवीतस्य यध्ये दक्षिणे
- भः पाणाबुद्धते यः संनिवेशविशेषः तद्वपवीतं तदस्यास्तीत्युपवीती । सव्ये पाणाबुद्धते यः संनिवेश-विशेषस्तत्याचीनावीतं नाम तदस्यास्तीति प्राचीनावीतीत्यर्थः । तथा च श्रुतिः (सह व उप-निषदि)—' दक्षिणत उपवीय दक्षिणं बाहुमुद्धरतेऽवधचे सव्यमिति यज्ञोपवीतमेतदेव विपरीतं प्राचीनावीतमिति " । विषयविशेषमुपवीतादिना दर्शयति श्रुहिरेव (तै. सं. २।५।११।१)—
- " निवीतं मनुष्याणां प्राचीनावीतं पितृणामुपवीतं देवानाम् " इति । निवीतं मनुष्याणां स्वं २० मनुष्यकार्येषु ऋषितर्पणादिषु प्रशस्तम् । प्राचीनावीतं पितृणां कर्मणि पितृयज्ञादौ प्रशस्तम् । यज्ञोपवीतं देवानामिति कर्मणि अग्निहोत्रादौ प्रशस्तमित्यर्थः ।

व्यासः--

- " उद्भृत्य दक्षिणं वाहुं सब्यांसे तु समर्पितम् । उपवीतं अवेश्वित्यं निवीतं कंठसज्जितम् ॥
- " सब्यं बा**हुं समु**द्धृत्य दक्षिणे तृष्ट्वतं द्विजैः । प्राचीनावातिभित्याहुः विवृङ्गीणि योजयेत् ॥
- २५ "देवागारे गर्वा गोष्ठे होम जप्य तथेव च । स्वाध्याये भोजन नित्यं बाह्मणानां च संनिधी ॥ "उपासने गुरुणां च संध्ययोः साधुसंगमे । उपवीता भविद्यत्यं विद्यित्यं सनातनः " ॥ इति । आपस्तंबापि (१।१५।१) – "उपासने गुरुणां बुद्धानामित्यानां होम जन्यकर्मणि भोजन आचमने स्वाध्याये च यज्ञोपवीती स्थात " इति । एतेषु कर्मसु यज्ञोपवीतविधानात्काळातेर नावक्यंभाव इति केचिद्याचक्षते ।
- अः "कायस्थमव तत्कार्यमुत्थाप्यं न कदाचन । सदापवातिनः गाव्यं सदा बद्धाशिखेन च " ॥ इत्यादि बहुस्मृतिविरोधाच्छिष्टाच्चारविरोधाच्च तद्नाद्र-णीथावेत्यन्ये । उपनयनदीक्षामध्ये उपवीतहानौ उपनयनानंतरं दिसचतुष्ट्यमध्ये यज्ञोपवीतस्य हानौ

" गार्ह्याषु कर्मस्वपराधदृष्टावबाह्मणोक्तपु तु निश्कृतिः स्यात् ।ः

"एकाहुति व्याहितिभिश्च हुत्वा स्मार्तेष्वचादेश्च इहासुयाम"॥ इति च्यायेन सर्वप्रायश्चित्तं

१ क्ष-यतं । २ क्ष-वेश ।

हुत्वा अनाज्ञातत्रयं च जपं च कृत्वा पुनश्च यज्ञोपवीतं धार्यमित्याहुः । इति यज्ञोपवीतनिर्माणादि ॥

अथ दंडधारणम् । अत्र मनुः (२।४५)---

"ब्राह्मणो बैल्वपालाशो क्षत्रियो बाटखादिरौ। पैप्पलौदुंबरौ वेश्यो दंडानर्हति धर्मतः" ॥ पैप्पलः आश्वत्थः। धर्मतः समानधर्मयोगादित्यर्थः। ब्राह्मणो बैत्वदं धर्मतोऽर्इति । उभयोरपि ५ बह्मवर्चससंबंधसामान्यात् । ब्रह्मवर्चसाधिकारणं बाह्मणः । बेल्वस्तु ब्रह्मवर्चसविकारः । "असौ वा आदित्यो यतो जायते ततो बिल्व उद्तिष्ठत्स योन्येव बह्मवर्चसमवरुंधे" इति भ्रतेः (ते. सं. २।१।८)-" ब्राह्मणः पालाज्ञं चाहिति उभयोगीयबत्वात् । "गाय त्रो वै ब्राह्मणः गायत्रः पर्ण " इति हि श्रूयते-" वाटदंडं भित्रयो धर्मतोऽर्हिति । उभयोरेकवर्णत्वात् तदुक्त-में तरेयब्रीह्मणे (७९१५)-" अत्रं वा एतद्दनस्पतीनां न्ययोधः अत्रं राजन्य े इति । सादिरं १ 🛭 चार्हति उभयोबैलिष्ठत्वसामान्यात् । वैद्यः पप्पलमर्हति । अश्वत्यस्य वैद्योजः संबंधात् । " मरुतां वा एतदोजो यदश्वत्थः" (ते. सं. २।३।१।५)। "मरुतो व देवानां विद्या इति हि" श्रूयते (तै. सं. ५।४।७७)॥ औदुंबरं चार्हति उभयोः पशुसंबन्धसामान्यातः पञ्चाराहो बैह्यः प्रसिद्धः। प्राविकार उदुंबरः । " देवा वा ऊर्ज व्यभंजन्त तत उदुंबर उद्तिष्टत उर्क प्रावः " इति श्रुतेः (ते.बा. १।१।२) ॥ बैल्वपालाशाविति दंदनिर्देशोऽपि विकल्प एव विवस्तितः। यदाह यमः -- १५ " विप्रस्य दंढः पाठाशो बैल्वो वा धर्मतः स्मृतः।अश्वत्थः क्षत्रियस्याथ सादिगे वाऽपि धर्मतः॥ " औदुंबरोऽथ वैश्यस्य प्राक्षो वा दंड उच्यते । एतेषामप्यलाने तु सर्वेषां सर्वयज्ञियाः"॥ इति । गौतमोऽपि (१।२१)-" यज्ञियो वा सर्वेषाम् " इति । आषरुतंबोऽपि (१।२।३८)-"पालाज्ञो दंडो ब्राह्मणस्य नैय्यप्रोऽघरकंधजो वाङ्मग्रो राजन्यस्य बादर ऑदुंदरे वा वैरुयस्य वार्क्षा दंड इत्यवर्णसंयोगेनैक उपद्शंति" इति॥ इति । वार्क्षः यज्ञियार्हृबृञ्जसंभृतः। स सवर्णसाधारणः। २० मनः (२।४६-४७)-

"केशांतिको ब्राह्मणस्य दंडः कार्यः प्रमाणतः । ठठाटसंभितो राज्ञः स्याचु नासांतिको विशः ॥ "कजवस्ते तु सर्वे स्युरवणाः सौम्यदर्शनाः । अनुद्देगकरा नृणां सत्वचे।ऽनिधिदृषिताः "॥ गौतमः (११४–२५)–"अपीडिता यूपवकाः सग्लकाः । सूर्द्ध्वरुठाटनासाधप्रमाणाः" इति । अपीडिताः वहीवेष्टनादिभिः । यूपवत्का यूपवक्रतामा इत्यर्थः । द्याकाः—

" शिरोललाटनासामप्रमाणा युपवन्नताः " इति । शंखः—" केशावधिललाटांसतुल्याः प्रोक्ताः क्रमेण ते " इति । वसिष्ठस्तु विशेषमाह (११,५५–५७)—" ब्राणँसं-मितो ब्राह्मणस्य । ललाटसंमितः क्षत्रियस्य । केशेंसंमितो वैश्यस्य " इति । क्रमंपुराणे (उ. ११,१५)—

"धारयेद्वैत्वपालाशो दंडो केशांतिको द्विजः । याज्ञाईवृक्षजं वाऽथ सौम्यमवणमेव च"॥ इति । ३० बोधायनः(१।२।१६)–" मूर्द्वललाटनासाग्रप्रमाणो याज्ञियस्य वृक्षस्य दंडः " इति ।

इति दृण्डनिरूणपम्॥

अथाजिनानि । तत्र गौतमः (१।१६)— '' कृष्णक्रवस्ताजिनानि'' इति । कृष्णः कृष्णमृगः । करः ष्टवतमृगः । वस्तः छागविशेषः । एतेषामजिनानि चर्माणि ब्राह्मणक्षत्रियविशां कृष्णोत्तरीयाणि भवंति । मनुरपि (२।४१)—''कार्ष्णारौरत्रवास्तानि चर्माणि ब्रह्मचारिणः'' इति । ३५

१ ख-तेत्तिरीय। २ केश... ३ ब्राण...इति बासिष्ठेपाठः।

आपस्तंबः (१।२।१०) – "अजिनं त्वेवोत्तरं धारयेत् " इति । उत्तरमृत्तरीयम् । पारस्करोऽपि (२।५।१६–१८) – "ऐणेयमजिनमृत्तरीयं ब्राह्मणस्य रौरवं राजन्यस्य । बास्तं गञ्यं वा वैद्यस्य । सर्वेषां वा गव्यम् " इति । बृहस्पतिरपि –

''बाह्मणस्याजिनं कार्ष्णं रौरवं क्षत्रियस्य तु।बस्ताजिनं तु वैश्यस्य सर्वेषां वा गवाजिनम्''॥इति । ५. कार्यः-'' क्रष्णरुरुवस्ताजिनान्यत्तरीयाणि '' इति । इत्याजिनानि ।

अथ वात्तांसि । तत्र गोतमः (१।१७-१८)-''वासांसि शाणश्रौमचीरकुतपाः । सर्वेषां कार्पासं चाविकृतमः' इति । शणविकारः शाणः । श्चमा अतसी । तद्दिकारः श्लौमस् । श्वेतपट्ट इत्यन्ये । कृतपः पार्वतीयाजरोमनिर्मितः कंबलः । कार्पासं च वासः । सर्वेषां तद्विकृतं कुसुंभादिगा-द्रव्यैररक्तमित्यर्थः । स एव (१।१९-२०)-''काषायमप्येके । वार्क्ष ब्राह्मणस्य मांजिष्ठ-

१० हारिट्रे इतरयोः " इति । एके आचार्याः । कषायेण रक्तमिष धार्यं मन्यंते । तत्र विशेषः । वार्क्ष बाह्मणस्य हुक्षकषायेण रक्तं वार्क्षम् । मंजिष्ठया रक्तं मांजिष्ठम् । हरिद्रया रक्तं हारिद्रम् । ते इतरयोः क्षाित्रयदेहययोर्वाससी इत्यर्थः । आपरुतंबः (१।२।४०-४१; १।३।१-२)-"वासः । शाणी-क्षोमाजिनानि । काषायं चेके वस्त्रमुपदिशन्ति । माञ्जिष्ठं राजन्यस्य । हारिद्रं वैक्यस्य " इति । वस्यते कोपीनमाच्छावते येन तत वासः । व्याकृतं हरद्त्तेन । अनुरिष (२।४१)---

भ "वसीरसानुपूर्व्यण शाणक्षोमाविकानि च"इति । वसिष्ठः (११६४–६६)—"शुक्कमहतं वासो बाह्मणस्य कार्पासं मांजिष्ठं श्लोमं श्लवियस्य पीतं कौशेयं वैश्यस्य " इति । अहतस्य रुक्षणमाह प्रचेताः—

ं ईपद्धोतं नवं वस्त्रं सद्शं यन्न धारितम् । अहतं तद्दिजीनीयात्सर्वकर्मसु पावनम् '' ॥ इति । उपनयने प्रथमतः कौषिनं धार्यं ततोऽहतेन वाससा परिधापनीयमुत्तरीयं च कुष्णाजिनमिति २० व्यवस्था । तथा च यमः-—

''कार्पासं श्लीमकृतपाश्चर्मवस्त्रजकंबलाः। सर्व तु धारयेच्छुक्नु वासस्तत्परिवानिकम्''॥ इति । ''नव वासः मदः क्वतोत्तमुत्तराभ्यामभिमंत्र्योत्तराभिस्तिमुभिः परिधाप्य '' इत्यापस्तंववचनात् (गृ. सू. ४।१०।२०)। परिहितवन्त्रपुच्छेनैवाच्छादनीयमिति मंतव्यम् । ''वासश्चतुर्थीमुत्तरयाद्त्तेन्यत्परिशाण्यो इति वचनाचतुर्थदिने अपि विनेव कोपीनं किटवेष्टितवन्त्रेकदेशेनाच्छादनप्रसंगात्तस्मानद्वचनं कोपीनाद्वपरि मंत्रतो वष्टनीयमित्येववरम् । तथा सरण्यास्त्रये स्मृतिसंब्रहे ः '' कोपीनाच्छन्नं कृतद्योचं कृमारं दक्षिणतः उपवेश्योद्दति । तथा च विक्रांडीः '' तदेवं कुमारस्य कोपीनधारण-भाचन्त्रं परिषेत्रतमापोशनं प्राणाहतीरित्यदीनि भवयुः' इति । भारद्वाजोऽप्ति—

ं यज्ञोपवीतमजिनं मींजिं देहं कमहतुम् । स्वीकं वासश्च कौंपीनं धारयेत्प्रधमाश्चमी ॥ ''पेरऽन्ति मेखला दंहमजिनं चोपवीतकसः धारयेनु पुराणानि त्यजेह्स्त्राणि वा सव''॥इति । ३० पेरऽन्ति चतुर्थदिवस इत्यर्थः । तथा च जातातपः

"चतुर्थेऽइनि संप्राप्त मुस्नातः कृतमंगलः । विभिविष्रेः समायुक्तां गुर्स्गच्छेत्सिशिष्यकः ॥ "ग्रामात्प्राचीमुद्दीचीं वा दिशं नान्यदिशं वजेत् ।

" उकाजासु बह्मवृक्षो नास्ति चेद्धर्मयोग्यकः । यत्र यत्र बह्मवृक्षस्तां दिशं वा बजेहुरः ॥ " बह्मवृक्षमथासाय दिजैः पुण्याहवाचनम् । वाचगेदुक्षयेन्म्हं मार्जयेद्गोमयोदकैः ॥ " वृक्षे चतुर्मुखं यष्ट्वा नमस्कर्यात्यातिक्षणम् ।

34

'' कोपीनं दंडमजिनमृपवीतं च मेखलाम् । नवानि धारयित्वाऽथ पुराणानि पारित्यजेत् ॥ ''वृक्षांग्रं स्थापयेबल्नात्कोपीनाजिनमेखलाः। वासः प्रद्याद्भुरवे ब्राक्षणभ्यस्तु दक्षिणाम्''॥ इति । एतच्च पालाक्षकर्म स्पृतिसिद्धं गृद्यभाष्यादौ च लिखितम् । स्मृत्यर्थसारे च—

"दंडः प्राज्ञन्ययोधिषण्डा यज्ञदृक्षजाः। ते केशफाठनासांतप्रमाणाश्च क्रमात् दि्जैः॥ "धार्याः श्रुक्णाः सदा धार्य कौषीनं किरसूत्रकम्। कौषीनमहतं धार्य खंडवासश्च पार्श्वयुक्"। ५ उपनयनानंतरं त्रिरात्रं क्षारठवणादिवर्जमधःशायी ब्रह्मचार्युपनयनवतं चरेच्चतुर्थेऽन्हि कोषीनदंडाजिनमेसलोपश्चीतानि पूर्वाणि त्यजेत्। वद्यणां त्यागनियम इति। एवं च प्रथमिद्ने। कौषीनधारणस्य बहुस्शृतिसिद्धत्वादावश्यकं तत्प्रतीयते। परिहितवस्नैकदेशेनाच्छाद्ने प्रमाणं मृग्यम्। इति बालोविस्वषणम्। अथ सेखळा। तत्र मनुः (२।४२-४२)—

'भोंजी त्रिवृत्समा श्रुक्षणा कार्या विप्रस्य मेसला। क्षित्रियस्य तु मौर्वी ज्या वैश्यस्य शणतांतवी ॥ १० ' मुझालाभे तु कर्नव्या कुशाश्मान्तकबल्बजैः । त्रिवृता ग्रंथिनैकेन त्रिभिः पंचिभिरेव वा " ॥ अनयोरयमर्थः । त्रिवृत्तिगुणा । समा समगुणा । श्रुक्षणा परिवर्षणे सुस्पर्शा । मूर्वाविकारो मौर्वी । इति ज्याविशेषणम् । भुंजालाभ इति मुंजाग्रहणं मूर्वाशणतंतोरप्युपलक्षणम् । कुशाद्यो विप्रा-वीनो यथासंख्यम् । अश्मन्तकस्तरुविशेषत्वक् । बल्वजः तृणविशेषः । त्रिवृत् त्रिवृत्तेकेन ग्रन्थिना त्रिवृद्धिः त्रिवृत्त्रन्थिभिः पश्चित्रवर्षेपलक्षिता । त्रयाणां वर्णानां ता नियमेनायं ग्रन्थिविकल्यः । १५ नात्र यथासंख्यं वाश्चदेन एकविषयत्वावगमादिति । द्यास्तोऽपि—

"मींजी त्रिशृत्समा श्राह्मा कार्या विष्ठस्य मेसला । मुंजालाभे कुशानां तु ग्रंथिनैकेन वा त्रिभिः ॥ यकः—"विष्ठस्य प्रसला मींजी ज्या मींजी क्षत्रियस्य तु । शणसूत्री तु वैश्यस्य मेसला धर्मतः स्मृताः॥ "एतासामप्यलाभे तु कुशाश्मान्तकबल्बजैः । मेसला त्रिशृता कार्या ग्रंथिनैकेन वा त्रिभिः ॥इति । पेढीलिकः—" मौंजी मेसलाश्मंतकी च बाह्मणस्य । वल्बजी मौर्वी वा राजन्यस्य । शाणी श्लौमी २० वा वैश्यस्य इति । विस्तृष्ठः (२१।५८–६०)—" मौंजी मेसला ब्राह्मणस्य धनुज्यक्षित्रियस्य तांतवी वैश्यस्य इति । प्रचेताः—" त्रिगुणं प्रदक्षिणा मेसला " इति । गौतमः (१।१५) "मौंजी ज्या मौर्वी सौज्यो मेसलाः क्रमेण" इति । बोधायनोऽपि (१।२।१२-१४)—" एषां क्रमेण मौंजी धनुज्यशाणीति मेसला " इति । आपस्तंबः (१।२।३३)—" मौंजी मेसला त्रिशृद्व-ब्राह्मणस्य शक्तिविषयं दक्षिणावृत्तानाम् " इति । शक्तिविषयं शक्तौ सत्यां दक्षिणनावृत्तानां २५ मुंजानां कर्त्तव्यम् । कटिसूत्रमि धार्यीमित्याह संवर्तः—

"क्टिस्त्रं विना कर्म श्रौर्तस्मार्त करोति यः। सर्वं तिन्निष्फलं विद्यात्सोऽपि नग्न इति श्रुतिः"॥ इति। इदं च ब्रह्मचारिगृहस्थसाधारणम् । कटिस्त्रधारणाभावे कर्ममात्रस्य निष्फलत्वाभिधानात् धृतेवस्त्रेऽपि नग्नत्वागमाच्च । इति मेखलानिकपणम् ॥ अथ मिक्षाचर्या। तत्र मनुः (२।४९)— " प्रतिगृह्योक्सितं दंडमुपस्थाय च भास्करम् । प्रदक्षिणं परीत्याग्निं चरेद्भैक्षं यथाविधि ॥

" भवत्पूर्वचरेद्धेक्षमुपनीतो द्विजोत्तमः । भवन्मध्यं तु राजन्यो वैश्यस्तु भवदुत्तरम्" ॥ भवत्पूर्व भवत्पूर्व भवत्पूर्व । गौतमः (२।४२)—"आदिमध्यांतेषु भवच्छब्दः प्रयोज्यो वर्णानुपृथ्यंण" इति । प्रयुज्येव दर्शयति बोधायनः— " भवति भिक्षां देहि " इति बाह्मणो भिक्षेत । " भिक्षां भवति देहीति " राजन्यो 'देहि भिक्षां भवति' इति वैश्य उपनयनांगत्वेनोक्तोऽप्ययं भिक्षाचरणविधिः सार्वित्रिकः प्रत्येतव्यः । उपनयनांगभिक्षायां नियममाह मनुः (२।५०)—

- ''मातरं वा स्वमारं वा मातुर्वा भगितीं निजाम् । भिक्षेत भिक्षां प्रथमं या वैनं न विमानयेत्"॥ विमानं प्रत्यास्यानमः भौतकः—
- " अग्रे भिक्षेत जननीनप्रत्याख्यायिनी च या। ब्राह्मणं ताहरां वाऽपि स्नियमग्रे तु याचयेत्॥ " गर्भिणीं नेव याचेत विश्वामंतिमां न चे ॥ कारिकाकारः—
- ५ '' अग्रे भिक्षेत जननीमप्रत्याख्यायिनी च या । पश्चात्पितरमन्यांश्च आचार्य बांधवांस्तथा " ॥ वसिष्ठ:— " अप्रत्याख्यायिनं पूर्व स्त्रियं वा ताहशीं पुनः ।
 - "भिक्षेत भिक्षां प्रथमं भवान् भिक्षां द्दात्विति । भवति भिक्षां देहीति स्त्रियं वाऽयेऽपि मातरम् ।
- " मौंजीकर्मावसानांतमाममैक्षं समाहरेत् । पकान्नमाहरेन्नित्यमासमावर्तनाद्धटुः " ॥ इति गृह्यतात्पर्यदर्शनेऽप्यामभैक्षमुक्तम्—" श्रीण्यहानि प्रत्यहमामभैक्षमाचरेत् । चतुर्थेऽहनि अन्न-५० मंस्कोग्ग संस्कृतस्य " इति । ब्रह्मचारिणो नित्यभिक्षामाह व्यासः—
 - " गृह्योक्तविधिनोपेतं पश्वित्योत्तिरीयकम् । दंडं पात्रं समादाय नमस्क्वत्य गुरुं रविम् ॥
 - "मिश्नार्थं तु ततो मौनी द्विजवेश्म तथा बजेत्" ॥ मनुः (२।१४३-१४५)-
 - " वेद्यज्ञैरहीनानां प्रशस्तानां स्वकर्मसु । ब्रह्मचार्याहरेद्भैक्षं गृहेभ्यः प्रयतोऽन्वहम् ॥
 - " गुोः कुंह न भिक्षत न ज्ञातिकुरुवन्धुषु । अस्राभे त्वन्यगेहा<mark>नां पूर्व पूर्व परित्यजेत् ॥</mark>
 - , " पर्व वाऽपि चरेड्यामं पूर्वोक्तानामसंभवे। नियम्य प्रयतो वाचमभिशस्तांस्तु वर्जयेत्"॥ **याज्ञवत्क्यः** (आ. २९–३०)–" बाह्मणेषु चरेद्भैक्षमनिंद्येष्वात्मवृत्तये ॥
 - ं आदिमध्यावसानेषु भवच्छब्दे।पलक्षिता । ब्राह्मणक्षित्रयविशां भैक्षचर्या यथाक्रमम्''॥ यनु '' सार्ववर्णिकं नेक्षचरणमभिश्करतपतितवर्जम् '' इति गौतमवचनं (२।४१) यद्पि व्यासवचनं
- ः आह्मणक्षत्रियविशश्चरेयुर्भेक्ष्यमन्वहम्।सजातीयगृहेष्वेव सार्वविणकमेव वा ॥ इति तत्र सर्वशब्दः प्रकृतवर्णत्रयपरः। एतच्च पूर्वोक्तसजातीयालाभविषयम्। तथा च भविष्यतपुराणे— "सर्व वा विचरेद्यानं पूर्वोक्तानामसंभवे। अंत्यवर्जं महाबाहो इत्याह भगवान्त्रभुः"।अंत्यः शूद्रः। "चातुर्वण्यं चरेन्द्रेक्षमलाभे वतिको द्विजः"। इत्येतद्प्यापद्विषयम्। तथा विष्णुः—
- '' अत्रवेदयमृहेष्वेद कियावतिष् साधुषु । चातुर्वण्यं चरेद्भैक्षमापत्काल उपस्थिते ''॥ २५ अंगिराः—''आमीमवाद्वीतास्यादृत्वविकगत्रकम् '' इति । पराज्ञारः—
 - े यस्त् वेदमर्थायानः शुद्राञ्चमुपभुंजते । शृद्रो वेद्फलं याति शुद्रत्वं चाधिगच्छति ''॥ एकान्ननिषेधमाह याज्ञवल्क्यः (आ. ३२)
 - ''ब्रह्मचर्ये स्थिते नेकमसमसहनापदि । ब्राह्मणः काममश्रीयात् श्राद्धे ब्रतमपीडयन्''॥ मधुमांमादिष्टिकारेण । अञ्चरिष् (२१९८८)--
- 'भैक्षेण वनयंत्रित्यं नेकाकाकी अबंद वर्ता । भेक्षेण वितिनो वृत्तिरुपवाससमा स्मृता ॥
 ''वर्तो वा देवदेवत्ये पिच्यं क्षर्भण्यथर्षिवत । काममभ्यर्थितोऽश्रीयाद वतमस्य न तुष्यते "॥
 अत्रिः—
- " शाक्रमक्षाः प्रयोभक्षा य चान्यं यावकाशिनः । सर्वे ते भैक्षमक्षस्य कलां नाहिति षोडशीम् ॥ " तप्तकांचनवर्णेन गवां मूत्रेण यावकम् । पिबेत् द्वादशवर्षाणि न तद्भैक्षसमं भवेत् " । ३५ न चात्र श्रवणादिनयतं भिक्षाचरणमिति वाच्यम् । अकरणे मनुना प्रायश्चित्तविधानात् । मनुः (२।१८७)——

" अकृत्वा भैक्षाचरणमसमिध्य च पावकम् । अनातुरः सप्तरात्रमवकीर्णिवतं चरेत् " इति ॥
यमः—

" आहारमात्राद्धिकं न कचिद्भैक्षमाचरेत् । युज्यते स्तेयदोषेण कामतोऽधिकमाहरन् ॥ "माधूकरं य आदाय ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छति । स याति नरकं घोरं भोक्ता भुंके च किल्मिषम्॥ " तस्मान्नावहरेद्भैक्षमितिरक्तं कदाचन " ॥ स्कृतिसंब्रहे—

"ब्रह्मचारी तु भैक्षासमुच्छिष्टं न समाचरेत्। अश्चाक्षी निखनेद्धमावप्सु वाऽपि प्रवेशयेत्"। अकामतोऽधिकाहरणे तस्य प्रतिपत्तिनियमसाहापस्तंचोऽषि (१।२०।४१)—"न चोच्छिष्टं कुर्यात् अशको भूमो निखनेत् अप्सु वा प्रवेशयेत्। आर्याय वा पर्यवद्य्यात्। अंतर्धिने वा शूद्राय"इति। अंतर्धिने आचार्यस्य दासायेत्यर्थः। स्र एय(१।२१८५-२६)-"तायंप्रातरमञ्जेण भिक्षाचर्यं चरेद्धिक्ष-माणोऽन्यत्रापपात्रेभ्योऽक्षिशस्ताच्च स्त्रीणां प्रत्याचक्षाणानां तमाहितो ब्रह्माचारीष्टं दत्तं हुतं प्रजां १ प्रचून्बह्मवर्षसमकायं वृंके । तस्माद्वह वे ब्रह्मचारिसंघं चरंतं न प्रत्याचक्षीत" इति । अमत्रेण पात्रेण । न हस्तादिना । भिक्षाप्रत्याख्यानं निदिति । स्त्रीणामिति । वृंके अच्छिनचीत्यर्थः । एतच्च व्यताथ्यायनादियुक्तबह्मचारिविषयम् । अत एव वसिद्धणाराहारे (२।४)—

''अत्रता ह्यनधीयाना यत्र भैक्षचरा द्विजाः । तं ग्रामं दंडयेद्राजा चोरभक्तप्रदो हि सः''॥ अत्रिः—

"हस्तद्त्ता तु या भिक्षा लवणं व्यंजनानि च । भुक्ता ह्यशुचितां याति दाता स्वर्ग न गच्छति"॥ मतुः (२।५१)—

"समाहत्य तु तद्भेक्ष्यं यावद्र्थममायया। निदेश गुरवेऽश्नीयादाचस्य प्रयतः शुचिः"॥
गुर्वसंनिधानं तत्पुत्रभार्यादिभ्यो निवेद्यत्। तदाह कौतक्षः (२१४६)— "असंनिधो तद्भार्यापुत्रसब्रह्मचारिसभ्यः " इति । सब्रह्मचारी सहाध्यायी। संतः श्रोत्रियाः। तथा चापस्तंबः २०
(११३१२-३६)— "तत्समाहृत्योपनिधायाचार्याय प्रवृयात्तेन प्रदिष्टं अंजीत। विप्रवासे गुरोराचार्यकुलाय तैर्विप्रवासेऽन्येभ्योऽपि श्रोत्रियेभ्यः। नात्प्रप्रयोजनश्चरेत् । भुक्त्वा स्वयममत्रं
प्रक्षालयीत " इति । हारीतः— "भेक्षमपेक्षितं पर्यमिक्नतमादित्यद्गित्तमनुज्ञातममृतसंमितं
प्राहुस्तदश्चन् ब्रह्मचारी ब्रह्मप्रसिद्धिमवाप्नोति " इति । याक्षवहक्यः (आ. २१)—

"कृताभिकार्यो मुंजीत वाग्यतो गुर्वनुज्ञया। आपोशनाकियापूर्व सत्कृत्यान्नमकुत्सयन् "॥ इति। २५ चंद्रिकायां– " होहे मुन्मये वा पात्रे भुंजीतैतच्च भुक्त्वा स्वयं प्रक्षालयीत " इति। विसिष्ठः (६।२)—

" अष्टौ ग्रासा मुनेर्भक्ष्याः षोढशारण्यवासिनः । दात्रिंशत्तु गृहस्थस्य अमितं ब्रह्मचारिणः " ॥ आपस्तंबः—

" आहिताग्निरनड्वांश्च ब्रह्मचारी च ते त्रयः । अश्वंत एव सिध्यंति नैषां सिद्धिरनश्वताम् "॥ इति। ३० इति भिक्षाचर्या । अथ संध्योपक्रमः । व्यासः—

" गायत्रीं तु गुरे।र्लब्ध्वा सायं संध्यामुपक्रमेत् । कालयोरभ्रिपूजां च कालयोर्भेक्षमाहरेत् ॥

" निमन्त्रणादिना भुक्त्वा गुर्वर्थ भैक्षमाहरेत् "

" 'संध्यात्रयं न कर्तव्यं यावन्मोंजी निबध्यते । संध्यात्रयं तु कर्तव्यं सायमादि ततः परस् "॥ प्रचेताः—

१ कखग-गौतमः।

" मैं। जीवन्यदिने तिष्ठेत्सावित्रीमभ्यसन् गुरोः । सूर्येऽस्तिश्खरं प्राप्ते सायं संध्यां समभ्यसेत् ॥ "सावित्रीं प्राप्य गुरुणा मंत्राध्यायाद्यथोदितात्। अभ्यस्योपासयेत्संध्यां सायमादि यथाक्रमम्"॥ स्मृत्यंतरे---

" उपायनो हि कर्तव्यं सायं संध्योरुपासनम् । आरभेद्ब्बह्मयज्ञं तु मध्यान्हे तु परेऽहिनि ॥ ५ " अनुपाक्कतवेदस्य ब्रह्मयज्ञः कथं भवेत् । वेदस्थाने तु गायत्री गद्यतेऽन्यत्समं भवेत् ॥ " इति । जैमिनिस्तु विशेषमाह--

"याबद्ब्रह्मोपदेशस्तु ताबत्संध्यादिकं न च । ततो मध्याह्नसंध्यादि सर्व कर्म समाचरेत्"॥ इति । इति संध्योपक्रमनिस्तपान् । अथ समिदाधानम् । तत्र याज्ञवल्क्यः (१।२५)---

" अग्निकार्यं ततः कुर्यात्संध्ययोक्तभयोरापि " । मनुः (२।१८५-१८६)—

👊 " अग्नींधनं भैक्षचर्यामधराय्यां गुरोर्हितम् । आ समावर्तनात्कुर्यात्कृतोपनयनो द्विजः ॥

" इरादाहृत्य समिधः संनिद्ध्याद्विहायसि । सायंपातश्च जुहुयात्ताभिरग्निमतंद्रितः "॥ भूमिष्ठ जंतुसंक्रांतिर्मा भृदिति विहायासे इत्युक्तम् । ' आकाशे ' रज्वादिषु स्थापये-दित्यर्थः । सुमंतुरपि- अहमचेर्य ततो भैक्ष्यं संध्ययोरग्निकर्म च " इति । केचित्सायमेवाग्नि-कार्यमिच्छंति । तदाहापस्तंबः (१।४।१६–१७)—" सायंपातर्यथोपदेशम् । सायमेवामि-१५ प्रजेत्येके " इति । लीजाक्षि:-"सायमेवाग्निभिंधीयते इत्येके " इति । समिदाहरणे नियममाह वैजावापः—" पुरास्तमयात्रागुदीचीं दिशं गत्वा अहिंसन्नरण्यात्समिध आहरेत्" इति । आपस्तंबोऽपि (१।४।१५)-" नास्तमिते समिदाहारो गच्छेत " इति । द्यासः-" पालाइयः समिधः कार्याः खादिर्यस्तद्लाभतः। शमीरोहीतकाश्वत्थास्तद्भावेऽकीवेतसौ " ॥

समित्प्रमाणमाह कात्यायनः-

- २० "नांगुष्ठाद्धिका कार्या समित्स्थूलतया कचित्। न वियुक्ता त्वचा चैव न सकीटा न पाटिता॥ "प्रादेशात्राधिका न्यूना तथा न स्यात् विशाखिका । नासपर्णा न निर्वीर्या होमेषु तु विजानता॥ ''विज्ञीर्णा विसला व्हरवा वका सनुषिराः छुजाः। दीर्घाः स्थृला घुणे**र्द्धाः कर्म** सिद्धिविनाशिकाः"॥ इति । सार्वत्रिकं नियवविशेषमा**हापस्तंवः** (१।१५।१२)—"नाप्रोक्षितामिधनमञ्जावाद्ध्यात्" इति । अग्निकर्माकरणे प्रत्यवायमात् हारीतः-
- २० "पुरा जबाह वे मृत्युर्हिसयन् ब्रह्मचारिणम् । अग्निस्तं नोञ्जयामास तस्मात्परिचरे**द्धि तम्** ॥ "ब्रह्मचार्ग यदा त्वग्नावाद्ध्यात्सिश्चं न हि । गृह्मीयात्तं तदा पृत्युराद्ध्यात्समिधस्ततः"॥ इति । बोधायनोऽपि (१२।५२-५४)-- वहा व युत्यवे प्रजाः प्रायच्छत्तस्मै ब्रह्मचारिणमेव न प्रायच्छत्सोऽबर्वाद्स्तु सञ्चमप्यतस्मिन्भाग इति। यामेव रात्रिं समिधं नाहरता इति । तस्भाद्बन्नः चारी यां रात्रिं समिषं नाहरत्यायुव एव तासवद्यय वहाति। तस्माद्बह्मचारी **समिषमाहरेत्^{??} इति।** 3. ब्रह्मा जगत्कारणं ईश्वरः । प्रजा मारियतुं बृत्यवे प्रायच्छत् । ब्रह्मचारिणं न प्रद्दे । अथ मृत्यु-राह । महां मम एतस्मित्रहाचःरिण्यापे भागः अंशोऽस्त्विति । ब्रह्मात्रवीत्सा रात्रिस्तवावसरः यामेव रात्रिं समिषं नाहरति इति । आयुष इति द्वितीयार्थे षष्ठी । तस्यां रात्रावायुर्गुह्णाती-त्यर्थः। गौतमः (२।१२)–''अग्नीन्धनभक्षा चग्णादीनि सप्तरात्रमङ्कृत्वाज्यहोम" इति । बृहस्पतिः– " अवकीर्णिवतं कुर्यात्सप्तरात्रमसंशयम् " इति । सनुरपि (२।१८७)—
- ३५ " अक्रुत्वा भेक्षचरणमसमिध्य च पावकम् । अनातुरः सप्तरात्रमवकीर्णिवतं चरेत् " ॥ इति _।

१ क-लाभेर्कतेजसी।

२ ०

इति समिदाधाननिरूपणम् । अथ चौलादिजातककर्मादिकालातिपत्तिप्रायश्चित्तम् । तत्र कात्यायनः—

" कालातीतेषु कार्येषु प्राप्तवत्स्वपरेषुच । कालातीतानि कृत्वा तु विर्ध्यादुत्तराणि च ॥ " लुप्ते कर्मणि सर्वत्र प्रायश्चित्तं विधीयते । प्रायश्चित्ते कृते पश्चाह्नप्तं कर्म समाचरेत् ॥

" गर्भाधानादिचौलांते स्रकाले विधिना कृते । प्रत्येकं पादकुच्छ्रं स्यात् दिगुणं स्यादनापदि ॥ ५

"आ षोडशाद् ब्राह्मणस्य स्रष्टकाद् व्रतहायने । आज्याहुतीश्च जुहुयादिमं मे वरुणद्वयम् ॥ "त्वं नः सत्वं नो मंत्रौ द्वो त्वमभ्रे तु प्रजापते । ये ते शतमुद्वत्तमं व्याहृतीर्जुहुयात्ततः ॥

" अभ्युद्दिकं तु तंत्रेण सर्वकर्माण्यनुक्रमात् । उपायनवतं कुर्याच्छूद्रतुल्योऽन्यथा भवेत् " ॥

बाह्मणभाजनसंख्यामाह भास्करः—

'' दश द्वादश वाऽयतीं प्रत्यृती च द्वयं द्वयम् । सीमंते पुंसवे नान्नि भूरि बाह्मणभोजनम् ॥ । ॥ । '' बाह्मणाश्चेव पंचाशचौठे तूपायने शतस्। विवाहे तु यथाशक्ति ह्याधाने शतभोजनम् ॥

"भोजयित्वा शतं विप्रान्कुर्यादेवोपनायनम् । अशक्तोऽपि यथाशक्ति कृत्वा कर्म समाचरेत् ॥

" प्रतिगृह्योपनीत्यर्थमिति तेनाचरेद्यदि । ब्राह्मणत्वफ्रलं सर्वे दातारमधिगच्छति ॥

" शूद्राच्च प्रतिगृह्णीयात्स मूढो नरकं वजेत्" ॥ इति च । मातिर रजस्वलायां गर्भिण्यां च कर्मनिषेषः प्रयोगपारिजाते—

"न विवाहोपनयने गार्भिणी मिलनी प्रसूः। गर्भस्यापि विपत्तिः स्याद्वंपत्योश्च शिशोस्तथा" । प्रसूर्माता गार्भिणी वा मिलनी मलनदासा वा भवेचित्रि। पुत्रस्य विवाहोपनयने पित्रा न कर्त्तव्ये। करणे दोषः। गर्भस्य जायापत्योः सुतस्य च विपत्ति स्यादिति। वरहराजीये—

" ईडाकरणपूर्व तु जननी चेद्रजस्वला। न कर्त्तव्या चोपनीतिरिति स्वृतिविदां मतम् "॥ ईडाकरणं नांदीश्राद्धकरणं ततः पूर्व रजस्वला चेदित्यर्थः। तत्रैव— "करणे बात्यतां यायात्र कर्मण्यो भवेद्वटुः। वेद्पाठे वतादौ च ह्यनहीं दारकर्मणि॥ " उपनीतिश्च कर्त्तव्या पुनश्च ब्राह्मणैः सह । अनुज्ञां प्राप्य विद्वषां पीत्वा च ब्रह्मकूर्चकम्॥

" कर्मण्यो जायते वर्णी नात्र कार्या विचारणा ॥

" बटोर्माता गर्भिणी स्थान कुर्याचौलकर्म च । पंचमासाद्धः कुर्याद्तं ऊर्ध्व न कारयेत् ॥ " कर्त्तृभार्या गर्भिणी चेद्दास्तुकर्मोपनायनम् । षण्मासात्परतः सोऽपि न कुर्यादिति शौनकः— २५ " गर्भिणी यदि पत्नी स्थान कुर्योद्वपनायनम् । पंचमासाद्धः कुर्याद्त ऊर्ध्व न कारयेत् " ॥ उपनयनकर्त्तारमाह व्यासः—

" वेदैकिनष्ठं धर्भज्ञं कुर्लीनं च कुटुंबिनम् । स्वशासामनालस्यं विप्रमकुद्धमत्वेरम् ॥ " कर्ज्ञारमीप्सेद्विप्रं वा चतुर्थाश्रमिणं न तु " ॥ विष्णुः—

" क्वंच्छ्रंत्रयं चोपनेता त्रीन्क्वच्छ्रांश्च परश्चरेत् । सावित्रीमभ्यसेन्नित्यं पवित्राणि च संस्मरन् ''॥ ३० वृद्धवासिष्ठः—

"पिता पितामहो भ्राता ज्ञातयो गोत्रजायजाः। उपायनेऽधिकाराः स्युः पूर्वीभावे परः परः "॥ आपस्तंबः (१।१।११–१२)—" तमसो वा एष तमः प्रविश्वति यमविद्वानुपनयते यश्चा-विद्वानिति हि ब्राह्मणम्। तस्मिन्नभिजनविद्यासमुदेतं समाहितं संस्कर्त्तारमीप्सेत् " इति। यं

माणवक्मविद्वानजानानः उपनयते तथा यश्च स्वयमविद्वानसन्तुपनीयते सोऽपि तमसः सकाशात्तम एव प्रविवाति समाहितं विविवतिषेधव्यवहितामित्यर्थः । बोधायनः—

- " जातकमीदिसंस्कारे पिता श्रेष्टतमः स्मृतः । अभावे स्वकुळीनः स्याद्वांधवो वाऽन्यगोत्रजः ॥
- " आर्यावर्तसमुद्भृतस्तस्यामावे स्वसूत्रकः। बाह्मणः सर्ववर्णानां श्रोत्रियो वा स्ववर्णजः॥
- " गृहस्यः सर्ववर्णेषु श्रेष्ठ इत्यभिधीयते । अभार्यस्त्वधमो ज्ञेय उपकुर्वाणनैष्ठिकौ ॥
- " आचार्यो मध्यमो ज्ञेयो सगोत्रौ बतिनावपि । वःनप्रस्थयतीनां तु कर्तृत्वं नेष्यते सद्गा।
- " जितेंद्रियोः जितद्दंदुस्तपोदानपरायणः ।सत्यवादी जितः प्राज्ञो मेघावी नियतः शुचिः॥
- " निःसंदिग्धः कुळीनश्च श्रौतकर्भणि तत्परः । नियहानुयहे दक्षः सर्वदोषविवर्जितः ॥
- "गायत्रीमंत्रकुशेल आचार्यः स उदाहतः । छल्दये तथोत्सन्ने प्राप्ते गर्भाष्टामे बद्धैः॥
- ९० " मोंजीवंधनकर्मार्थ स्वशासाध्याधिनं दिजस् । स्वगोत्रप्रवरं नो चेदाश्रयेदन्यगोत्रजस्" ॥ इति । उपनयनकर्देनिरूपणस् । अथ यमलाञ्चपनथने । संग्रहे—
 - " एकगर्भप्रसूतौ चेदेकवेदिमवाप्य च । एकाचार्यैकलग्ने च कुर्यान्मौजीव्रतं यतः ॥
 - " चोलोपनयने चैव जातकर्माण नान्नि च । चतुर्वतीपाकरणे यमलानां समं भवेत् "॥ कालादरों—
 - "भ्रातृद्ये स्वसृयुगे स्वसृभातृयुगे तथा। समानाऽपि किया कार्या मातृभेदे तथैव च"॥
 "पुंयुग्ने स्त्रीयुग्ने स्त्रीपुंयुग्ने च समकाला किया कार्या। मातृभेदेऽपि तथेत्यर्थः। मातृभेदे विशेषः स्मर्थते—
 - " एकत्रलंबे यदि पुत्रयुग्नजुभाय मौजीवतकर्म कुर्यात् ॥
 - " आचार्ययुग्मं सळु वेदियुग्मं नांदीमुखान स्वस्य पितृश्च नित्वे ॥
- २० " पृथग्भवावेकलग्ने सोदरावुपनाथने । आचार्योऽन्यः पिताऽन्यस्तु श्राता वा पितृसोदरः"॥ इति । अथ मुकोन्मत्ताद्युपलयम् । स्तृतिरत्ये—
 - " षंडांबबधिरस्तब्बज इगङ्गङ्गंगुषु । कुब्जवामनरोगार्तशुष्कांगिविकलांगिषु ॥
 - " मत्तोन्यत्तेषु मुहेषु सदतस्ये निरिद्धि । ध्वस्तगुंस्त्वेषु चैतेषु संस्काराः स्युर्यथोचितम् ॥
 - "मूकोन्मत्तौ न संस्कार्यावितिकेचित्प्रचक्षते । कर्मस्वैनियकाराच्च पातित्यं नास्ति च द्वयोः ॥
- २५ " तद्पत्यं च संस्कार्यमपरे त्वाहुरन्यथा " ॥ स्नृत्यंतरे—
 - " मुकोनमत्तो न संस्कार्यो कर्मस्वनधिकारितः । तद्दरवं त् संस्कार्थं यज्ञार्हमिति च श्रुतिः ॥
 - '' बाह्मण्यां बाह्मणाज्ञातो बाह्मणस्तु श्रुतेर्बन्छात् । छ हिस्यनधिकारोऽपि **संस्कारार्ह् इति श्रुतिः ॥**
 - " मूकोन्मचादिसंस्कारे त्वाचार्यः सर्वनाचरेत् । सुपुत्तं निरीक्षत गायवाँ स्पृक्य वा जपेत् ॥
 - " मुकांथादिषु चोड्रहे ऋन्यास्त्रीकरणं विसा । पाणिकटं विना क्रतपदादिकमणं विना ॥
- "विप्रेण कार्येत्सर्व पंगोः सन्तवकृत्यि ॥
 - "केचिदाहर्द्विजाजातो संस्कार्यी कुंडगोलकी । अवते कारजः कुंडो मृते भर्त्तरि गोलकः॥
 - " द्विजातिप्रतिलोमानां केचिदाहुः पुराणगाः ' ॥ ब्याखः---
- " विद्याग्रहणशक्तस्य होमकर्मक्षमस्य च। उपायनेऽधिकारोऽस्ति मूकादीनां कृताकृतम्"॥ इति । आपस्तंबः (१११९-१०)-" उपनयनं विद्यार्थस्य श्रुतितः संस्कारः । सर्वेभ्यो हि वेदेभ्यः अप साविज्यनूच्यत इति हि ब्राह्मणम्"। इति । विद्ययार्थः प्रयोजनं यस्य स विद्यार्थः । तस्यायं श्रुति-

१ ख-गूर्जितः । २ क्ष-वरः, क-परः । ३ कख-+ कर्तारः । ४ क-र्यो कर्मस्वनाधिकारतः ।

विहितः संस्कारः । उपनयनं नाम विवार्थस्येति वचनान्युकादंर्न भवति । अनेक्ववेदाध्यायिनां वेद्वतवदुपनयनम्यि भेदेन कर्िव्यमिति यते । उच्यते । सर्वेभ्य इति । ततश्च साविच्यनुवचनेन सर्वे वेदा अनुक्ता अवंतीत्वेकसेवोपयनं सर्वार्थत् । अध्यर्वणस्य तु वेदस्य पृथगुयनयनं कर्त-व्यम्। तथा च तथैव श्रूयते—" हान्यत्र छंस्छतो भूग्वंशिरसोविंबीयत " इति । पातिता-नासुपनयनाष्ट्रावनाद्याद्यद्यद्यः (१।१!६)— " अञ्चद्राणामदुष्टकर्मणाष्ट्रपयनम् " इति । ५ ''प्रागुपनयनात्कामचारवाद्भञ्ज" इति (२!१) शैलिखः वर्ने ब्रह्महत्यादिपातकव्यतिरिक्तविषय-भिति पूर्वमेबोक्तम् । स्वृत्यर्थसारे-" षंडांयादिष् प्रथितितं संस्कारः । मुक्रोन्मतावसंस्कार्या-वित्येके। कर्मस्वनिधिकारात्पातित्यं नास्ति। तद्पत्यं संस्कार्यद् । बाह्मण्यां बाह्मणोत्पन्नो बाह्मण एवेति स्पृतेः । अन्ये न संस्कार्यावित्याहुः । होमं ताबद्यार्थाः क्रयति । उपनयनं च विधिना आचार्यसमीपनयनं साविजीतमीपनयनं साविजीवाचनं वा अन्यदेगं यथाशक्ति कार्यम्" इति। १० जडवधिरमूकादीनामुपनयनकरो कोधायजादिभिरुकः। तत एव याद्यः। अथौरसादीनामुपनयननिद्धपणन् । स्मृतिरत्ने-'' औरतः पुत्रिकापुत्रः क्षेत्रजो गूटजस्तथा । क्रानीनश्च पुनर्भूतो दत्तः क्रीतश्च कुत्रिप्तः ॥ "दत्तातमा च सहोद्ध्य अपविद्धः मुतस्तथा। एते द्वादशपुत्राश्च संस्कार्याः स्यृहिं नातयः" ॥ इति । औरसादीनां लक्षणमाह मनुः (९।१६६-१७७)-94 " स्वे क्षेत्रे संस्कृतो यस्तु स्वयमुत्पाद्येन्द्रि यस् । तभौरसं विज्ञानीवात्पुत्रं प्राथमऋत्पिकस् ॥ " यत्स्वमजप्रतीतस्य क्लीवस्य व्याधितस्य वा । स्वधर्मेण वियुक्तायां ५ पुत्रः **क्षेत्रजः स्मृतः** ॥ " माता पिता वा द्यातां यमद्भिः पुत्रशापदि । सहरां प्रीतिसंर्युकं स ज्ञेयो **द्त्रिमः** सुतः ॥ " सहरां तु प्रकृथीयं गुणदोषविचक्षणम् । पुत्रं पुत्रगुणैर्युक्तं स विज्ञेतस्तु क्रुश्रियः ॥ " उत्पद्येत गृहे यस्य न च ज्ञायेत कश्य सः । स्वगृहे गुड्युत्पको यस्य स्थात्तस्य तल्पजः ॥ २० " मातापितृभ्यामुत्सृष्टं तयोरन्यतरेण वा । यं पुत्रं परिगृह्णीयाद्वविद्धस्तु स स्मृतः "॥ " पितृवेइमानि कन्या तु यं पुत्रं जनयेदहः । तं कानीनं वदेत्राम्ना बोदः कन्यासमुद्भवम् ॥ " या गर्भिणी संस्क्रियते ज्ञाताऽज्ञाताऽपि वा सती । वोढुः स गर्भो भवति खहोढ इति चोच्यते ॥ " क्रीणीयाचस्त्वपत्यार्थं मातापित्रोर्यमंतिकात् । स क्रीतकः सुतस्तस्य सङ्दरोऽसङ्शोऽपि वा ॥ " या पत्या वा परित्यक्ता विधवा वेच्छयाऽऽत्मनः । उत्पाद्येत्पुनर्भृत्वा स पौनर्भव उच्यते ॥ ३५ "मातापितृविहीनो यस्त्यको वा स्यादकारणात्। आत्मानं संस्पृशेयसमें स्वयं दत्तस्तु सः स्मृतः"॥ याज्ञवल्क्योऽपि (व्य. १२८-१३२)---'' औरसो धर्मपत्नीजस्तत्समः पुत्रिकासुतः । क्षेत्रजः क्षेत्रजातस्तु स्वगोत्रेणेतरेण वा ॥ '' गृहे प्रच्छन्न उत्पन्नो गूढजस्तु सुतः स्मृतः । कानीनः कन्यकाजातो भातामहसुतो मतः॥ " अक्षतायां क्षतायां वा जातः पौनर्भवः सुतः । द्वान्माता पिता वायं स पुत्रो दत्तको भवेत् ॥ 3 o '' कीतश्च ताभ्यां विक्रीतः कुत्रिमः स्यात्स्वयंकुतः । दत्तात्मा तु स्वयंद्तो गर्भे विन्नः सहोढजः॥ " उत्पृष्टो गृह्यते यस्तु सोऽपविद्धो भवेत्सुतः "॥ इति । मनुः (९।१८०)— '' क्षेत्रजादिसुतानेताने हाद्रा यथोदितान् । पुत्रप्रतिनिधीनाडुः क्रियालोपान्मनीविणः "॥ इति । एतानि गौणपुत्रपरिग्रहसंस्कारवचनानि युगांतरविषयाणि । कलौ तत्परिग्रहस्य निषिद्धत्वात् ॥

" अनेकधाकताः पुत्रा ऋषिभिर्ये पुरातनैः। न शक्यन्तेऽधुना योक्तं शक्तिहीनैः कलौ द्विजैःगा ३५

इति वचनात् । अत्र क्षेत्रजपुत्रोत्पादनाय सप्रकारं सापवादं च नियोगमुक्त्वा पुनरेव प्रतिषेधाति मनुः (९।५९–६०)—

" देवराद्दा सपिंडाद्दा ख्रिया सम्युक् नियुक्तया । प्रजेप्सिताऽधिगंतव्या संतानस्य परिक्षये ॥

" विधवायां नियुक्तस्तु घृताको वाग्यतो निश्चि । एकमुत्पाद्येत्युत्रं न द्वितीयं कथंचन ॥

५ " विधवायां नियोगार्थे निर्वृते तु यथाविधि । गुरुवच्च स्नुषावच्च वर्तेयातां परस्परम् (६२)॥

" नोद्वाहिकेषु मंत्रेषु नियोगः कीर्त्यते कचित् । न विवाहविधावुक्तं विधवावेदनं प्रति (६५) ॥

" अयं द्विजैहिं विद्दिः पशुधर्मा विगहिंतः। मनुष्याणामि प्रोक्तो वैने राज्यं प्रशासित (६६)॥

" स महीमाखिलां भुजनराजार्षिप्रवरः पुरा । वर्णानां संकरं चक्रे कामोपहतचेतनः (६७) ॥

" तदा प्रभृति यो मोहात्प्रमीतपतिकां स्त्रियम्। नियोजयत्यपत्यार्थे तं विगर्हति साधवः (६८)"।

• अत्र मनोरभिशयमाह वृहस्पतिः-

- " नियोगमुक्त्वा मनुना निषिद्धः स्वयमेव तु । युगन्हासाद्शक्तोऽयं कर्त्तुमन्यैर्विधानतः ॥
- " तपोज्ञानसमायुक्ताः कृते त्रेतायुगे नराः । द्वापरे च कठौ चणां शक्तिहानिर्विनिर्मिता ॥
- " संकल्पेन क्टताः पुत्राः ऋषिभिर्यैः पुरातनैः । न शक्यतेऽधुना कर्त्तुं शक्तिहीनैर्नरैरिति ॥
- '' क्षेत्रजो गहिंतः सद्भिस्तथा पौनर्भुवः सुतः । कानीनश्च सहोदश्च गृहजः पुत्रि हासुतः ।
- प् " इत्तोऽपविद्धः क्रीतश्च क्वित्रमो द्विमस्तथा"॥ इति । अत्र दत्तिविधस्त्वसगोत्राभिष्रायः। यदाह **राौनकः**—
 - '' ब्राह्मणानां सिपिंडेषु कर्त्तव्यः पुत्रसंग्रहः । तद्भावं सगोत्रे वा न चान्यत्र तु कारचेत् ॥
 - ' क्षत्रियाणां सजातौ वा गुरुगोत्रसमोऽपि वा । वैश्यानां वैश्यजातेषु शूद्राणां शूद्रजातिषु ॥
 - ''सर्वेषां चैव वर्णानां ज्ञातिष्वेव न चान्यतः।दौहित्रं भागिनेयं वा जूदाणां त्वापदो यदि"॥इति ।
 - सर्वेषां ज्ञातिष्वेव पुत्रपरियहः । दौहित्रं भागिनेयं वा गृह्णीयाच्छ्द्राणां त्वापदि दौहित्रादियहणमित्यर्थः । अत एव किल्युगधर्मान्वदद्भिः "दत्तौरसेतरेषां च पुत्रत्वेन परिग्रहः" इति दत्तपर्युद्दासेन न गौणपुत्रपरिग्रहनिषयः कृतः । अतः सति संभवे सगोत्रादेव दत्तपरिग्रहः

कर्तव्यः । तथा च मनुः (९।१८२)--

- "भातृणाभेकजातानामेकश्चेत् पुत्रवान्भवेत् । सर्वे ते तेन पुत्रेण पुत्रिणो मनुरबवीत्" ॥ सित भातृपुत्रे अन्यस्मात्पुत्रपरियहो न कर्त्तव्य इति भाव इति मानवे व्याख्याने । अत्र विज्ञानेश्वरोऽपि (ए.-९० पं. १६-१७)- "यतु भातृणामेकजातानामिति सालववचनं तद्पि भातृपुत्रस्य पुत्रीकरणसंभवे अन्येषां पुत्रीकरणनिषेधार्थन पुनः पुत्रत्वप्रतिपादनायः" इति । कालावद्रेरांऽपि- "अपुत्रेः भाता भातृपुत्रसंभवे तेनैव पुत्रीकुर्याज्ञान्येनेति 'भातृणामेकजातानामिति भनुवचनस्यार्थः । अन्यथा 'पत्नी दृहितर' इति न्यायस्थासामंजस्य । प्रसंगादिति । यतु
 - " गोत्रांतरप्रविष्टानां दाय आशौचमेव च । ज्ञातित्वं च निवर्त्तते तत्कुले सर्वमिष्यत " ॥ इति यद्पि मनुवचनम् (९।१४१-१४२)—
- " उपपन्नो गुणैः सर्वैः पुत्रो यस्य तु द्त्रिमः । स हरेतैव तदिक्थं संप्राप्तोऽप्यन्यगोत्रतः ॥ "गोत्रस्थि जनयितुर्न हरेद्दिनः सुतः। गोत्रस्थिगनुगः पिंडो व्यपैति द्द्तः स्वधाय " ॥ इति । यदपि स्मृत्यंतरम्—

१ रव+स्वीकार्विषयः।

" गोत्रांतरप्रविष्टास्तु संस्कार्यास्तत्कुले न तु। जननेनैव पितरो दानेनैव निवर्तिताः॥ " दत्तस्य परिवेतृत्वमाशौचं दायमेव च। श्रितगोत्रा तु संग्राह्यं श्रौतं स्मार्ते तथेव च "॥ इति एतत्सर्वं स्वगोत्रजालाभविषयम्। तथा च स्मर्यते—

" वंशजानामभावे तु प्रशस्तो मातृवंशिजः । तदभावे सुतो दत्तो विहितो विधिनेतरः ॥ "ज्ञातीनां कुळजातानामुत्तमः परिकीर्तितः। मध्यमा मातृकुळजा अधमाः परगोत्रजाः ॥

" स्वकल्पोक्तविधानेन दत्तपुत्रप्रतिग्रहः " ॥ इति । अत्र कात्यायनः— " दत्तानूढा च कन्या या पतित्वं सप्तमे पदे । तथैव दत्तपुत्रस्य पुत्रत्वं जातकादिभिः ॥

"यः प्रदत्तोऽपि पुत्रार्थं जातकर्मादिवर्जितः। नासौ गच्छति पुत्रत्वं कथं वा रिक्थभाग् भवेत्"॥ प्रजापतिः—

" पुत्रं गृहीत्वा संस्कृत्य वयोवस्थाश्रितं पिता। नामगोत्राद्दि तत्सर्वे कुर्याद्दौरसवत्ततः ॥ ५ " पंचमे सप्तमे वर्षे अष्टमे नवमे तथा । द्यातां पितरौ पुत्रं गृह्णीयातां च दंपती " ॥ इति संग्रहे च—

"उत्तमं द्वादशाहेषु दत्तस्य ग्रहणं शिशोः । आचौलान्मध्यमं हीनमूर्ध्वमा मौंजिबंधनात् ॥ " क्वतोद्वाहस्य पुत्रत्वं कुरुक्षयकरं भवेत् " ॥ इति । स्मृत्यंतरेऽपि—

" साश्रमं नैव द्यातु द्यादापयनाश्रमम् । आपयापि च द्यातां द्वितीयं ब्रह्मचारिणम् "॥ इति । ५५ " भर्तुरूर्ध्व तु या नारी पुत्रं दातुं न साऽर्हिति । यहीतुं वाऽयजं नातो बोधायनवचो यथा " ॥ दक्षः—

"आपद्यपि च कष्टायां न द्याद्यजं सुतम् । भर्तृहीना तथा पत्नी द्याचेन्नरकं वजेत् ॥ "अप्रजा विधिवा नारी पितृष्ठातायनुज्ञया। पुत्रं तु प्रतिगृत्जीयादन्यथा नरकं वजेत् ''॥ इति। तथा " आपद्यनयजं द्यात् ब्रह्मचर्याश्रमं सुतम् । द्वाद्शाब्दं धर्मपत्नी शुनःशेफवदेव वा " ॥ इति । २०

यतु " दानं कयश्च धमंश्चापत्यस्य न विद्यते " इति आपस्तंत्रस्मरणम् (२।१३।१०)
यद्पि "स्वकुटुंबाविरोधेन देयं दारसुताहते " इति याज्ञवरूक्यवचनं (व्य. १७५)
तंज्ज्येष्ठपुत्रविषयं एकपुत्रविषयं च । तथा च विसष्ठः (१५।३-६)— "न ज्येष्ठं पुत्रं द्यात्प्रितगृह्णीयाद्वा । न चैकं पुत्रं स हि संतानाय पूर्वेषाम् । न श्वी पुत्रं द्यात् प्रतिगृह्णीयाद्वाऽन्यत्रानुज्ञानाद्भर्तुः । पुत्रं प्रतिगृह्णीयात्" इति । चह्वच ब्राह्मणेऽपि शुनःशेपाख्याने " ज्येष्ठं पुत्रं
न प्रयच्छेत् " इति । शौनकोऽपि—

"नैकपुत्रेण कर्त्तव्यं पुत्रदानं कदाचन । बहुपुत्रेण कर्त्तव्यं पुत्रदानं प्रयत्नतः "॥ इति । बोधायनः— " शौणितशुक्रसंभवो मातृपितृनिमित्तम् । तस्य प्रदानपरित्यागविक्रियेषु माता-पितरौ प्रभवतः । न त्वेकं पुत्रं द्यात्प्रितिगृह्णीयाद्वा । स हि संतानाय पूर्वेषाम् । न तु स्त्री पुत्रं द्या- ३ • त्प्रितिगृह्णीयाद्वाऽन्यत्रानुज्ञानाद्भतुः " इति । "एवं कृते औरस उत्पचेत यदि स तुर्यभाक् भवति" इति च । पुत्रपरिग्रहकल्पस्तु शौनकवोधायनादिभिरभिहितः । पुत्रपरिग्रहफलं दर्शयित जावालिः—

" पुत्रस्वीकारमात्रेण पितरं त्रायते सुतः । दत्तः पुत्रत्वमाप्नोति ग्रहीता मुच्यते ऋणात् " इति । तथा च मंत्रिंगमि " धर्माय त्वा गृह्णामि संतत्यै त्वा गृह्णामि " इति । यतु वचनं =

- " स्वकुलं पृष्ठतः कृत्वा यो वे परकुलं त्रजेत् । तेन दुश्चिरितेनासौ काण्डपृष्ठ इति स्मृतः ॥ " त्यक्तं पितृकुलं यस्मादनहः सर्वकर्मसु " इति । तत्स्वयंदत्तविषं विवाहानंतर-दत्तविषयं वा । अथ गुर्वादिनिरूपणम्— तत्र मनुः (२।१४२)—
- ५ " निषेकादीनि कर्माणि यः करोति यथाविधि । संभावयति चान्नेन स विष्रो गुरुरुच्यते " ॥ निषेको गर्भाधानम् । निषेक्ष्यकृणाङ्क्ष्यहणाः पितैवायस् । स ध्व (२११४०१४१)— " उपनीय तु यः कि्ष्यं देद्वय्यापयेत् द्विजः । सकृत्यं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते ॥ " एकदेशं तु वेदस्य वेद्वांगान्यपि वा पुनः । योऽध्यापयति वृत्त्यर्थसुपाध्यायः स उच्यते ॥ "उपाध्यायादशाचार्यं आचार्याणां शतं पिता । सहस्रं तु पितुर्माता गौरवेणातिरिच्यते"॥ (१४५)
- १९ याज्ञवल्क्यः (आ. २४-३५)—
 - " स गुरुर्यः कियाः कृत्वा वेदमस्मै प्रयच्छति । उपनीय द्द्देदमाचार्यः स उदाहृतः ॥
 - " एकदेशमुपाध्याय ऋत्विण्यञ्ञङ्कदुच्यते । एते मान्या यथापूर्वमभ्यो माता गरीयसी " ॥ इति । पितुरेव मुख्यमुपनयनादिकर्त्तृत्वं तद्भावे पितृसमत्वाज्येष्ठस्य तयोर्द्वयोरभावे अयोग्यतायां वा अन्यस्योपनयादिकर्तृत्वम् । यदाह बृहस्पतिः—
- १५ " एवं दंडादिभिर्युक्तं संस्कृत्य तनयं पिता । वेदमध्यापयेवत्नाच्छास्त्रं मन्वादिकं तथा " ॥ इति । ज्येष्ठस्य पितृसमत्वं मनुना समर्यते (९।१०८)—
 - '' पितृवत्पालयेत्पुत्रान् ज्येष्ठो भ्राता यदीयसः । पुत्रवच्चापि वर्त्तेरन्ज्येष्ठे भ्राति धर्मतः ''॥ इति । पितृरयोग्यतायां **यसः**—
- " नाध्यापयित नाधीते पतनीयेषु वर्त्तते । इत्येतैर्लक्षणेर्युक्तः कर्तव्यो न पिता गुरुः " ॥ इति । २० गुरुरत्रोपनेता । आपस्तंबः (१।१।१४-१५)— " यस्माद्धर्मानाचिनोति स आचार्यस्तस्मे न दुह्यंत्कदाचन " इति । शंखः—" भृतकाध्यापको यस्तु स उपाध्याय उच्यते " ॥ विष्णु-रिप (२९।२)— " यस्त्वेनं मूल्येनाध्यापयेत्तत उपाध्यायः " इति । सन्तुः (२।१४२)— "अग्न्याधेयं पाकयज्ञानिष्ठिद्योमादिकान् मस्तान्। यः करोति वृतो यस्य स तत्यर्त्विगिहोच्यते"॥ वेवलः—
- २५ " उपाध्यायः पिता ज्येष्ठो भाता चैव महीपतिः । मातुलः श्वशुरस्त्राता मातामहपितामहौ ॥ " वर्णज्येष्ठः पितृत्यश्च पुंज्येते गुग्वः स्ट्वताः॥
 - " माता मातामही गुर्वी पितुर्मातुञ्च लोद्याः । श्वश्र्ः पितामही ज्येष्ठा धात्री च गुरवस्त्रियाम् ॥ " इत्युक्तो गुरुवर्गीऽयं मातृतः पितृतो दिया । गुरुणामपि सर्वेषां पूज्याः पंच विशेषतः ॥
 - "यो भावयति यः स्ते यन विधोपदिङ्यते । ज्येष्ठो श्राता च भर्त्ता च पंचैते गुरवः स्प्वताः ॥ "तेषामाचास्त्रयः श्रेष्टास्तेषां माना सुपूजिता "॥ इति । स्मृतिरत्ने-—
- "पिता माता तथाऽऽचार्यस्तज्जाया चायजस्तथा । पितामहश्च तत्पत्नी गुरवः प्रथमा मताः ॥ "ऋचं वा यदि वाऽर्धर्चं पादं वा यदि वाऽक्षरम्। सकाशायस्य गृह्णीयान्नियतं तत्र गौरवम् "॥ व्यासोपि—
 - " मातामहो मातुरुश्च पितृब्यः श्वशुरो गुरुः । पूर्वजः स्नातकश्चर्त्विक् मान्यास्ते गुरवस्तथा ॥

" मातृष्वसा मातुरुानी स्वसा धात्री पितृष्वसा । पितामही पितृब्यश्ची गुरुश्ची मातृवच्चरेत् " ॥ मनुः (२।१३३)—

" पितुर्भगिन्यां मातुश्व ज्यायस्यां च स्वसर्यपि । मातृबद्भृत्तिमातिष्ठेन्माता ताभ्यो गरीयसी " ॥ माता पूज्यतमेत्यत्र हेतुमाह ट्यासः—

"मासान् द्शोद्रस्थे या धृत्वा ज्हैः समाकुळा। वेद्नाविविधेर्दुःसैः प्रसूयेत विमृर्च्छिता॥ "प्राणैरपि प्रियान्पुत्रान्मन्यते पृतवत्सळा। कस्तस्या निष्कृतिं कर्त्तुं शक्तो वर्षशतैरपि"॥ निष्कृतिः आवृण्यं तत्र शंखः—"न पुत्रः पितुर्मुच्येतान्यत्र सौत्रामणियागाज्जीवन्नृणान्मातुः"॥ इति । यत्तु पौराणिकं वचनम्—

"द्दौ गुरू पुरुषस्येह पिता माता च धर्मतः। तयोरिप पिता श्रेयान्वीजप्राधान्यद्र्शनात्॥ "अभावे बीजिनो माता तद्भावे तु पूर्वजः॥" इति तन्बहागुरुविषयम्। तथा च समर्थते— १० "उत्पाद पुत्रं संस्कृत्य वेदमध्याप्य यः पिता। कुर्याद्वृत्तिं च स महान्गुरुः पूज्यतमः स्मृतः"॥ इति अथ ब्रह्मचारिणां जनकमात्रपेक्षयाऽऽचार्यो गरीयानित्याह भनुः (२।१४६-१४८)— " उत्पादकब्रह्मदात्रोगिरीयान्बद्भदः पिता। ब्रह्मजन्म हि विषस्य भेत्य चेह च शाश्वतम्॥

"कामान्माता पिता चैनं यदुत्पाद्यतो मिथः। संभूतिं तस्य तां विद्यावचीनावधिजायते ॥ "आचार्यस्त्वस्य यां जातिं विधिवद्देदपारगः। उत्पादयति साविज्या सा सत्या साऽजरामरा "॥ १५ जातिं जन्म । आचार्यगरीयस्त्वमेव प्रकारांतरेण प्रतिपादयति—

"अल्पं वा बहु वा यस्य श्रुतस्योपकरोति यः। तमर्पाह गुरुं विद्याच्छूतोपिकियया तया (१४९)॥ अल्पविद्याप्रदमिप गुरुं विद्याद्वहुविद्यापदं किं पुनिरिति सनोरिभिप्रायः। गौतसः (२।५६)— "आचार्यः श्रेष्ठो गुरूणां मातेत्येक "इति । यस्तु वालो वृद्धमध्यापयित सोऽपि तस्य गरीया- नित्याह विष्णुः— "बाले समानवयिस वाऽध्यापके गुरुवद्वर्त्तत " इति इममेवार्थमितिहास- २० पूर्वमाह मनुः—(२।१५०-१५६)

" ब्राह्मस्य जन्मनः कर्त्ता स्वधर्मस्य च शासिता । बालोऽपि विशे वृद्धस्य पिता भवति मंत्रदः ॥

" अध्यापयामास पितृन्छिशुरांगिरसः कविः । पुत्रका इति होवाच ज्ञानेन परिगृह्य तान् ॥

'' ते तमर्थमपुच्छंत देवानागतमन्यवः । देवाश्चैतान्समेत्योचुन्याय्यं वः शिशुरुकवान् ॥

'' अज्ञो भवति वै बालः पिता भवति मंत्रदः । अज्ञं हि बालमित्याहुः पितेत्येय च मंत्रदम् ॥ 🤏

" न हायनैर्न पितितैर्न वित्तैर्न च बन्धुभिः । ऋषयश्विकरे धर्म योनूचानः स नो महान् ॥

'' न तेन स्थिविरो भवति येनास्य पिछतं शिरः। यो वै युवाऽप्यधीयानस्तं देवाः स्थिविरं विदुः॥

" आचार्यस्य पिता चैव माता भ्राता च पूर्वजः। नार्चेनाप्यवमंतव्या ब्राह्मणेन विशेषतः (२२५) ॥

" आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः पिता मूर्तिः प्रजापतेः। माता पृथिन्या मूर्तिस्तु आता स्वा मूर्तिरात्मनः

(२२६) ॥ 🖜 " यन्मातापितरौँ क्केशं सहेते संभवे चृणाम् । न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्त्तुं वर्षशतैरपि (२२७)။

"तयोर्नित्यं प्रियं कुर्यादाचार्यस्य च सर्वदा । तेषु हि त्रिषु तुष्टेषु तपः सर्व समाप्यते (२२८)॥

" एवां त्रयाणां शुश्रूषा परमं तप उच्यते । न तैरनभ्यनुज्ञातो धर्ममन्यं समाचरेत् (२२९) ॥

" त एव हि त्रयो छोकास्त एव त्रय आश्रमाः। त एव च त्रयो वेदास्त एवोक्ताश्चयो अपयः (२३०)॥

- " त्रिष्वप्रमायन्नेतेषु त्रीन्लोकान्विजयेद् गृही । द्वियमानश्च वपुषा देवविद्ध विरोचते " (२३२) ॥ न केवलमयं ब्रह्मचारिणां धर्मः किंतूत्तरेषामपीति प्रदर्शितो गृहीति । स पव (२।२३३-२३७)—
- "इमं लोकं मातृभक्तचा पितृभक्तचा तु मध्यमर । गुरुशुश्रूषया त्वेव ब्रह्मलोकं समश्चते ॥
- " सर्वे तस्याहता धर्मा यस्येते त्रय ाहतः । अनाहतास्तु यस्येते सर्वास्तस्याफलाः कियाः ॥
- ५ " यावत्रयस्ते जीवेयस्तावन्नान्यं समाचरेत् । तेष्वेत्र नित्यं शुश्रूषां कुर्यात्प्रियहिते रतः ॥
 - " त्रिष्वेते। धिह कृत्यं हि पुरुषस्य समान्यते । एष धर्मः परः साक्षाद्वपधर्मोऽन्य उच्यते" ॥ इति । ध्यासोऽपि—" उपाध्यायं पितरं मातः वाथे द्वुद्यन्ति मनसा कर्मणा वा ॥
 - " तेषां पापं भ्रुणहत्याविशिष्टं नान्यस्तेभ्यः पापकृद्स्ति लोके " ॥ देवलः—
- " यावित्यता च माता च द्वावेतौ निर्विकारिणौ । तावत्सर्व परित्यज्य पुत्रः स्यात्तत्परायणः ॥

 " माता पिता च सुप्रीतौ स्यातां पुत्रगुणैर्यदि । स पुत्रः सक्छं धर्म प्राप्नुयात्तेन कर्मणा "॥
 विकारो मरणम् । स एव—
 - " नास्ति मावृत्तमं दैवं नास्ति पित्रा समो गुरुः। तयोः प्रत्युपकारोऽपि न कथंचन वियते"॥ इति । व्यासः—
 - "परित्यजंति ये रागादुषाध्यायं गुरुं तथा न मानयंति मोहाद्वा ते यांति नरकान्बहून् ॥
- ९५ " यो श्रातरं पितृसमं ज्येष्ठं मूर्खो विमन्यते । तेन दोषेण संप्रेत्य निरयं घोरमृच्छति ॥ " इति । मनुः (४।१६२)—
 - " आचार्यं च प्रवक्तारं पितरं मातरं गुरुष् । न हिंस्याङ्काद्मणं गां च सर्वीश्चैव तपस्विनः " ॥ न हिंस्यान्न कुप्यात् । अत्रापवाद्माहं स एव—
- " गुरोरप्यविक्तस्य कार्याकार्यमजानतः । उत्पर्थं प्रतिपन्नस्य परित्यागो विधीयते " ॥ २० दोषयुक्तोऽपि पिता न त्याज्य इत्याह् यमः—
 - " अशुद्धौ तु पश्त्यामः पातकेऽयाज्ययाजने । उपाध्यायेऽथ याज्ये वा न पितुस्त्याम **इष्यते"** ॥ मनुः (२।२०८)—
 - " बालः समानजन्मा वा शिष्यो वा ज्ञानकर्मणि । अध्यापयनगुरुसुतो गुरुवन्मानमर्हति " ॥ व्यासः—
- २५ " गुरुरमिद्विंजातीनां वर्णानां बाह्मणे गुरुः । पतिरेव गुरुः ख्रीणां सर्वस्याभ्यागतो गुरुः " ॥

 मनुः (२।१३५)—
 - " ब्राह्मणं दशवर्षं च शतवर्षं च भूमियव । पितापुत्रौ विज्ञानीयात्तयोस्तु ब्राह्मणः पिता"॥ इति गुर्वादिनिरूपणम् । अथान्योन्यं वान्यतानिष्ठीतान्याह् याज्ञवल्क्यः (आ. ११६)—
- "वियाकर्मवयोवंधुवित्तेमिन्या ययाक्रमस् । एतः प्रभूतेः शूद्रोऽपि वार्धके मानमहिति" ॥ ३० विद्या श्रुतिस्मृती । कर्म यज्ञादि । वयः आत्मनोऽतिरिक्तम् । बंधुत्वं स्वजनसंपत्तिः । वित्तं धनस् । एतेर्युक्ताः क्रमेण मान्याः पूजनीयाः । एतेः कर्मवंधुवित्तैः प्रभूतैः प्रबुद्धैर्युक्तः श्रूद्रोऽपि वार्धके नवतेरूर्ध्वं मानमहितीत्यर्थः । मनुरिष (२।१३६-१३७)—
 - " वित्तं बंधुर्वयः कर्म विद्या भवति पंचनी । एतानि मान्यस्थानानि गरीयो यद्यदुत्तरम् ॥
- " पंचानां त्रिषु वर्णेषु भूयांसि गुणवन्ति च। यत्र स्युः सोऽत्र मानार्हः शूद्रोऽपि दशमीं गतः"॥ अप भावप्रधानो निर्देशः । पंचानां वित्तादीनां मध्ये त्रिषु वर्णेषु यस्मिन्भ्यांसि विद्यादीनि यस्मिन्स

गुणवंति श्रेष्ठानि विद्यादीनि स्युः स मानार्हः इति च । वर्षशतस्यांतिमो दशमो भागो दशमींगतः नवतिहायनातीत इत्यर्थः । गौतमोपि (७१८-२०)— "वित्तवंधुजातिकर्म-विद्यावयांसि मान्यानि परवलीयांसि । श्रुतं तु सर्वेभ्यो गरीयस्तन्मूल्रत्वाद्धर्मस्य " इति ॥ इति मान्यतानिमित्तम् । अथ मार्गप्रदानार्होनाह ननुः (२।१३८-१३९)—

" चिक्रणो दशमीस्थस्य रोगिणो भारिणः स्त्रियाः । स्नातकस्य च राज्ञश्च पंथा देयो वरस्य च ॥ ५
"तेषां तु समवेतानां मान्यौ स्नातकपार्थिवौ । राजस्नातकयोरेव स्नातको नृपमानभाक्"॥
चक्रं अनोरथाद्युप उक्षणम् । तेन यो गच्छिति स चक्री । तस्य निर्गुणस्यापि पंथा देयः ।
एवं दशमीस्थस्य वृद्धतरस्य । भारिणः भारवाहकस्य । स्नातकस्य गृहस्थस्य ब्राह्मणस्य । वरस्य
श्रेष्ठस्य विवाहोद्युक्तस्य । विद्याव्रतस्नातस्य इति विज्ञानेश्वरः (पृ. ३३) । समवेतानां मार्गे
संगतानां मान्यौ मार्गदानेन । नृपमानभाक् नृपदत्तमार्गभागित्यर्थः । याज्ञवल्क्योऽपि (आ.११७)— १०

" वृद्धभारिनृपस्नातस्त्रीरोगिवरचिक्रणाम्। पंथा देयो नृपस्तेषां मान्यः स्नातश्च भूपतेः" ॥ इांखः——" बालवृद्धमत्तोन्मत्ते।पहतदेहभाराक्रांतस्त्रीनृपस्नातकप्रवित्तेभ्योऽथ बाह्मणायामे पंथा राज्ञ इत्येके तच्चानिष्टं गुरुज्येष्ठश्च बाह्मणो राजानमितिशेते तस्मै पंथा देयः" इति । तेषां परस्परसमवाये विद्यादिभिविशेषो द्रष्टव्यः । ट्यासः—

" पंथा देयो ब्राह्मणाय स्त्रियै राज्ञे ह्यचश्चषे । वृद्धाय भावहीनाय रोगिणे दुर्बकाय च" ॥ १५ स्त्री चात्र गार्भणी वेदितव्या । तथा च बोधायनः—

"पंथा देयो ब्राह्मणाय गवे राज्ञे ह्यचक्षुषे। वृद्धाय भारतप्ताय गर्भिण्ये दुर्बहाय च "॥ इति । गौतमः (७।२१-२२) - " चिकदर्शमीस्थानुग्राह्मवधूस्नातकराजभ्यः पथो द्।नम् । राज्ञा तु श्रोत्रियाय " इति । अनुग्राह्मो रोगार्तः । वधूर्नवोद्धा । आपस्तंबः (२।११।५-९)—

"राज्ञः पंथा ब्राह्मणेनासमेत्य । समेत्य तु ब्राह्मणस्येव पंथाः । यानस्य भाराभिनिहतस्यातुरस्य १० स्त्रिया इति सर्वेर्द्मात्वयो वर्णज्यायसां चेतरेर्वर्णेरिशिष्टपतितमत्ते।न्मत्तानामात्मस्वस्त्ययनार्थेन सर्वेन्ते देव दातन्यः " इति । राजा ब्राह्मणेन यदि समेतो न भवति तस्य तदा पंथा देयः । समेतश्चेन्द्राह्मणस्येव पंथाः । यानं शकटरथगजादि । भाराभिहतः भाराकांतः । वर्णज्यायसामुत्कृष्टवर्णानां निकृष्टवर्णेः पंथा देयः । आत्मस्वस्त्ययनमात्मत्राणम् । तेन प्रयोजनेन तद्र्थं न त्वदृष्टार्थमित्यर्थः । अत्र कौटिल्येन देयस्य पथः प्रमाणमुवतम् (अर्थशास्त्रे २।२५) " पंचारितरथपथश्चत्वारो २५ हस्तिपथो द्वौ द्वौ पशुक्षुद्रमनुष्याणाम् " इति । इति सार्गदानिक्षपणम्—

अथाभिवादनम् । तत्र याज्ञवत्क्यः—(आ. २६) " ततोऽभिवादयेद्दुद्धानसावह-मिति बुवन् " । ततः अग्निकार्याद्नंतरमित्यर्थः । आशीर्वचनार्थो नमस्कारोऽभिवादनम् । मनुरिप (२।१२२१।१२४)—

" अभिवादात्परं विषो ज्यायांसमिभवाद्यन् । असौ नामाहमस्मीति स्वं नाम परिकीर्त्तयेत् ॥ ३० भोः शब्दं कीर्तयेदंते स्वस्य नाम्नोऽभिवादने । नाम्नः स्वरूपभावो हि भो भाव ऋषिभिः स्मृतः"॥इति । अभिवादात्परमिभवाद्य इति शब्दादुपरि देवदत्तनामाहमस्मीति स्वं नाम ब्रूयात् । अस्योपिर भो शब्दं कीर्त्तयेत् । अभिवायस्य नाम्ना संबोधयितुमयुक्तत्त्वात् भोशब्देन संबोधयेत् । भोभावः भोशब्दसत्तानामः स्वरूपभावः नाम्नः स्वरूपसत्ता समस्तनामधेयकार्यकारणसमर्थो भोशब्द इत्यर्थः । तथा चायं प्रयोगः— 'अभिवादये देवदत्तनामाहमस्मि भोः ' इति । ३५

१ कखग-नृप्ताय ।

अत्र गौतमः (६।५)- "स्वनाम प्रोच्याहमयमित्यभिवादो ज्ञसमवाये " इति । तद्याख्याता हर-वृत्तः। यः प्रत्यभिवादनविधिज्ञस्तेन संगमे स्वनाम च प्रोच्य उच्चेरुच्चार्याहं शब्दं चोक्त्वाऽय-मिति च ब्रूयात् । अयमिति प्रत्यक्षोपदेशः । अस्मि शब्दः प्रयोक्तव्य इत्याहुः । अंते च भोशब्दं प्रयुज्यते। अभिवादये हरदत्तोऽहमस्मि भो " इति प्रयोगः। 'हरदत्तनामाहम् ' इति केचित्। ५ 'हरदत्तरार्माहम् ' इत्यपरे ॥ 'हरदत्तरार्मा नामाहमस्मि भोः ' इति प्रयोग इत्यन्ये इति । गर्मान्तं ब्राह्मणस्येति वचनादत्र यथास्वकुलाचारं व्यवस्था । भरद्वाजः— " कंडूय पृष्ठतो गां तु कृत्वा चाश्वत्थवंदनम् । उपगम्य गुरून्सर्वान्विप्रांश्चेवाभिवाद्येत् " ॥

मनुः (२।११७)---

" हो दिकं वैदिकं वाऽपि तथाऽध्यात्मिकमेव वा। आदद्तित यतो ज्ञानं तं पूर्वमिमवाद्येत्"॥ इति।

अापस्तंबः—(१।५।१२-१६) " गुरोस्तिष्ठन्त्रातरिभवादमिभवादयीतासावहं भो इति । समान्यामे च वसतामन्येषामपि वृद्धतराणां प्राक् प्रातराज्ञात् । प्रोष्य च समागमे । स्वर्ग-मायुश्चेष्यन् । दक्षिणं बाहुं श्रोत्रसमं प्रसार्य बाह्मणोभिवाद्यीतोरःसमं राजन्यो मध्यसमं वैरुयो नीचैः शद्रः प्रांजलिम् े इति । विष्णुः—

"जन्मप्रभृति यत्किं चिच्चेतसा धर्ममाचरेत् । सर्वं तन्निष्फलं याति ह्येकहस्ताभिवादनात्"॥ इति ।

९५ एतद्विद्वद्विषयम् । यतः स एवाह—

"शिष्याणां चाशिषं द्यात्पादोपग्रहणं गुरोः। स्पृष्ट्वा कर्णों तु विदुषां मूर्खाणां चैकपाणिना"॥ इति। आश्वलायनः—

" वामं वामेन संस्पृहय दक्षिणेन तु दक्षिणम् । हस्तेन हस्तौ कर्णीभ्यां गुरूणामिभवादयेत्॥ " वामोपरि करं कृत्वा दक्षिणं नाम चोच्चरेत् । जानुप्रभृति पादांतमारुभ्य पदयोर्नमेत् " ॥

२० एतच्च प्रत्युत्थाय कर्तव्यम् । तदाहापस्तंबः--

" ऊर्ध्व प्राणा ह्युत्क्रामंति यूनः स्थविर आयति। प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तानप्रतिपद्यते "॥ स एव (१।१४।१४-२२)— " ज्ञायमाने वयोविशेषे वृद्धतरायाभिवायम् । विषमगता-यागुरवे नाभिवाद्यस् । अन्वारुह्य वाऽनिवाद्यीत । सर्वत्र तु प्रत्युत्थायाभिवादनम् । अप्रयतेन नाभिवाद्यम्। तथा प्रयताय अप्रयतश्च न प्रत्यभिवदेत् पतिवयसाश्चियः। न सोपानद्वेष्टितशिरा-२५ अवहितपाणिर्वाऽभिवाद्यीत े इति । अस्यार्थः । वयो विशेषे ज्ञायमाने पूर्वे वृद्धतरायाभिवादनं कर्त्तव्यम् । पश्चाद्वुद्धाय । विषमगताय उद्यस्थाने नीचैस्थाने वा स्थिताय गुरुव्यतिरिक्ताय नाभिवाद्यम्। गुरवे तु अभिवाद्यमेव। अन्वारुह्य वाभिवाद्यीत। एतद् गुरुविष्यम्। अन्वावरुह्येते-तद्पि दृष्टयम् । न्यायस्य तुल्यत्वातसर्वत्र गुरावगुरौ च पतिवयसश्चियः तेन तद्नुरोधेन ज्येष्ठ-भार्यादिष्वभिवादनमवहितपाणिः समित्कुशादिहस्त इति । अनुः (२।११९)—

"शय्यासनेऽध्याचिन्ति श्रेयसा न समाविशेत् । शय्यासनस्थश्रीवैनमवरुह्याभिवाद्येत्" ॥ श्रेथसा गुर्वादिनाचिरिते परिगृहीतयोः शय्यासनयोरधि उपरि समाचरेत्। न समुपविशेत्। स एव मनुः (२।१२१)—

"अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः। चत्वारि सम्यग्वर्धन्ते ह्यायुः प्रज्ञा यशो बलम्"॥इति। बोधायनः (१।२।३१-३४)-"नासीनो नासीनाय न शयानो न शयानाय नाप्रयतो नाप्रयताय

१ कख-कर्णी हस्ताभ्यां ।

शक्तिमद्विषये मुहूर्तमिष नाप्रयतः स्यात् । सिमद्धार्युद्कुंभपुष्पान्नहस्तो नाभिवाद्येत् । यच्चा-न्यद्प्येवं युक्तं न समवायेऽभिवादनमत्यंतशो भ्रातृपत्नीनां युवतीनां च गुरुपत्नीनां जातवीर्यः इति एवं युक्तमिष षितृदेवताद्यर्थे द्रव्ययुक्तमिष नाभिवाद्येत् । न समवायेत्यंतशः अत्यंतसमीषे स्थित्वेत्यर्थः । जातवीर्यो जातशुक्तः । चशद्धात्पितृव्यादिपत्नीनामिषि युवतीनां ग्रहणम् । शंखः— "नोद्कुंभहस्तोऽभिवाद्येन्न भैक्षं चरन्न पुष्पाज्यहस्तो नाशुचिर्नदेवितृकार्यं कुर्वन्नशयानः"इति । ५ आपस्तंबः—

- " समित्पुष्पकुशाज्यांबुमृदन्नाक्षतपाणिकम् । जपं होमं च कुर्वाणं नाभिवादयते द्विजम्" ॥ इति । मनुः (२।२१०)—
- " गुरुवत्प्रतिपूज्यास्तु सवर्णा गुरुयोषितः । असवर्णास्तु संपूज्याः प्रत्युत्थानाभिभाषणैः " ॥ " गुरुपत्नी तु युवती नाभिवाचेह पादयोः । पूर्णविशंतिवर्षेण गुणदोषो विजानता"(२१२)॥ १० स्मृत्यर्थसारे—
 - "उद्क्यां सूतिकां नारीं पतिन्नीं गर्भघातिनीम् । पाषंडं पतितं बात्यं महापातिकनं तथा ॥
 - " नास्तिकं कितवं स्तेनं कृत्वं नाभिवाद्येत् । मत्तं प्रमत्तमुनमत्तं धावंतमशुचिं नरम् ॥
 - " वमन्तं जूम्भमाणं च कुर्वतं दंतथावनम्। अभ्यक्तशिरसं स्नानं कुर्वतं नाभिवाद्येत् ॥
 - " जपयज्ञगणस्थांश्च समित्पुष्पऋुशानलान् । उद्गात्रार्घ्यभैक्षान्नं वहंतं नाभिवाद्येत् ॥ १५
 - " अभिवाद द्विजश्चेनानहोरात्रेण शुध्दाति ॥
 - " अभिवाद्यांधकारस्यं शय्यास्थं पादुकांघ्रिकम् । उच्छिष्टं जपहोमाचीरतं चोपवसेत्त्र्यहम् ॥
 - " दूरस्थं जलमध्यस्थं धावंतं धनगर्वितम् । रोगाकांतं मदोन्मत्तं षड्विप्रान्नाभिवादयेत् " ॥
- " क्षत्रियवैश्याभिवादने विप्रस्याहोरात्रं जूदाभिवादने त्रिरात्रं कुच्छ्रं तु रजकादिषु चंडालादिषु चांद्रं स्यात् " इति । शातातवः—
- " अभिवाद्यो नमस्कार्यः शिरसा वंद्य एव च । ब्राह्मणः क्षत्रियाद्येस्तु श्रीकामैः साद्रं सद् ॥
 - " नाभिवाद्यास्तु विष्रेण क्षत्रियाद्याः कथंचन । ज्ञानकर्मगुणापेता यद्यप्येते बहुश्रुताः ॥
 - ''क्षत्रं वेर्यं वार्रिभवाद्य प्रायश्वित्तं कथं भवेत्। ब्राह्मणानां द्शाष्टौ च अभिवाद्य विद्युध्यति॥
 - " अभिवाय द्विजः शूदं सचैलं स्नानमाचरेत्। ब्राह्मणानां शतं सम्यगभिवाय विशुध्यति॥
- "अर्चयेत्पुंडरीकाक्षं देवं चापि त्रिलोचनम् । ब्राह्मणं वा महाभागमभिवाय विशुध्यति"॥ ১५ ब्राह्मणेष्वपि कचिद्रपवादमाह विष्णुः—
 - " सभासु चैव सर्वासु यज्ञे राजगृहेषु च। नमस्कारं प्रकुर्वीत ब्राह्मणान्नाभिवाद्येत् ॥
- "विष्रोषद्र्शनात् क्षिप्रं क्षीयन्ते पापराशयः । वन्दनान्मङ्गळावातिः स्पर्शनाद्च्युतं पदम्"॥ स्मृतिरत्नावल्याम्—
- "वर्षेर्वयोऽधिकाशीतिस्तीर्त्वा मासचतुष्टयम्। यो जीवेत्स तु वन्यः स्यात् विष्णोरपि सुपूजितः"॥ ३० एतत्सवर्णावेषयम् । मनुः—
- " यस्य देशं न जानाति स्थानं त्रिपुरुषं कुलम्।कन्यादानं नमस्कारं श्राद्धं तस्य विवर्जयेत्"॥ चंद्रिकायाम्—
- "ज्यायानपि कनीयांसं संध्यायामभिवाद्येत् । विना पुत्रं च शिष्यं च दौहित्रं दुहितुः पतिस्"॥

स्मृतिभास्करे-

" सर्वे चापि नमस्कार्याः सर्वावस्थासु सर्वदा । आशीर्वाच्या नमस्कार्येर्वयस्यस्तु पुनर्नमेत् " ॥ वृद्धमनुः—

" अभिवादने तु सर्वत्र पादस्पर्शनमेव वा । विष्राणां प्रांजितिः कार्यो नमस्कारः स उच्यते "॥ ५ स्कृत्यर्थसारे- अभिवादने पदस्पर्शनं नास्ति कुर्योद्वा ।

" अभिवादे नमस्कारे तथा प्रत्यभिवादनम्। आशीर्वाच्या नमस्कार्यैर्वयस्यस्तु पुनर्नमेत्॥

" स्त्रियो नमस्या वृद्धाश्च वयसा पतिदेवताः । देवताप्रतिमां हृष्ट्वा यति चैव त्रिदंहिनम् ॥

" नमस्कारं न कुर्याच्चेदुपवासेन शुध्यति "॥ इति । स्मृतिरत्ने---

" स्रुक्पाणिकमनाज्ञातमशक्तं रिपुमातुरम् । योगिनं च तपःस्रकं कनिष्ठं नाभिवाद्येत् " ॥

५. मनुः (२।१३४)—

''दशाव्दाख्यं पौरसख्यं पंचाद्वाख्यं कलाभृताम्। ज्यब्दपूर्वे श्रोत्रियाणामल्पेनापि स्वयोनिषु''॥ समानपुरवासिनां दशभिवंषेंः पूर्वः सखा भवति । ततोऽधिको ज्यायान् । कलाभृतां गीतादि-विद्याभृतां पंचाब्दपूर्वः सखा श्रोत्रियाणां वेदाध्यायिनां ज्यब्दपूर्वः सखा स्वयोनिषु श्रातादिषु स्वल्पेनापि वयसा पूर्वः सखा भवति।ततोऽधिकोऽभिवाद्य इत्यर्थः।आपस्तंबः (१।१४।२६-२१)-

1५ "कुश्लमवरवयसं वयस्यं वा पृच्छेत्। अनामयं क्षत्रियम्। अनष्टं वैश्यम्। आरोग्यं शूद्रम्। नासंभाष्य श्रोत्रियं व्यतिव्रजेत्। अरण्ये च स्त्रियम् " इति । श्रोत्रियं पथिसंगतमसंभाष्य न व्यतिक्रामेत् । अरण्ये सहायरहितदेश स्त्रियमेकािकनीं हृष्ट्या असंभाष्य न व्यतिव्रजेत्। संभाषणं च मातृवद्भिगनी-वच्च भगिनी किं ते करवाणि न भेतव्यमिति । मनुरिष (२।१२७-२९)—

" ब्राह्मणं कुश्रुं पृच्छेत्क्षत्रबंधुमनामयम् । वैश्यं क्षेमं समागम्य शूद्रमारोग्यमेव च ॥

२० "परपत्नी च या स्त्री स्यादसंबंधा च योनितः । तां ब्रूयाद्भवतीत्येवं सुभगे भगिनीति वा "॥ यमः—
" स्वस्तीति बाह्मणो ब्रूयादायुष्मानिति भूमिपः । वर्धतामिति वैश्यस्तु श्रूद्रस्तु स्वागतं वदेत्"॥
तथा च भविष्यत्युराणे—" बाह्मणः सर्ववर्णानां स्वस्तिकुर्यादिति स्थितिः " ॥ स्वस्तिशब्दार्थमाह यहाः—

"वत्सुःवं त्रिषु होकेषु व्याधिव्यसनवर्जितम्। यस्मिन्सर्वे स्थिताः कामास्तत्स्वस्तीत्यभिसंज्ञितम्"॥ २५ ट्यासः—

" कदाचित्कवचं भेद्यं तोमरेणं हारेण वा । अपि वञ्चहाताधातैर्बाह्मणाशीर्न भिद्यते "॥ अनुः (২।१३०)----

"मातुलांश्च पितृव्यांश्च श्वरुपाचित्विजा गुरून्। असावहिमिति ब्रूयात्प्रत्युत्थाय यवीयसः"॥ असावहिमिति देवद्त्तमिति व्रूयालाभिवाद्येत्यर्थः । तथा स्मृतिरत्ने— " क्रत्विक्पितृव्य, श्वरुप्तमातुलानां यवीयसाम् प्रवयाः प्रथमं कुर्यात् प्रत्युत्थायाभिभाषणम् " इति । क्षेत्रायनः (१।२।४६)— " ऋत्विक्षितृव्यश्वरुप्तमातुलानां तु यवीयसां प्रत्युत्थायाभिभाषणम् " इति । गौतभोऽपि (६।९)— " ऋत्विक्श्वरुप्तितृव्यमातुलानां तु यवीयसाम्
प्रत्युत्थानमभिवाद्याः " इति । यत्तु विस्त्रिष्ठापस्तंबाभ्यास्रुक्तम् (१२।४१)— " क्रत्विक्श्वरुप्तपितृव्यमातुलानवरवयसः प्रत्युत्थायाभिवदेत् " इति तत् अभिवदेत् आभिमुख्येन वदेदित्यभि-

१ क्ष-नाराचेण ।

भाषणमात्राभिशायमिति समृतिचंद्रिकादौ व्याख्यातम् (पृ. ३८ पं. २)। हरद्त्तस्तु-"अवरवयसः ऋत्विगादयोऽपि अभिवादयंते तानभिवादयमानान्त्रत्युत्थायाभिवदेत् । नान्येष्विव यथासुखमासीन इति व्याकृतवान् । गुर्वादिविषये त्वभिवाद्ने विशेषमाह गौतमः (१।५३)-"गुरोः पादोपसंग्रहणं पातः" इति । समवायेन्बहमभिगम्य तु विप्रोज्य मातृपितृबद्धंधूनां पूर्वजानां विद्यागुरूणां तद्गुरूणां च संनिपाते परस्थेति च पित्राद्दीनां समावाये संगमे प्रतिदिनं ५ पादोपसंग्रहणं कुर्यात् । तेषां च युगपत्संनिपाते परस्योपसंग्रहणम् । आपस्तंबोऽपि (१।५।१८-१९)-"उदिते त्वादित्ये त्वाचार्यंग समेत्योपसंग्रहणस् । सदैवाभिवादनम् " इति । समावृत्तेन सर्वे गुरव उपसंग्राह्याः प्रोब्य च समागम इति च । स एव (१।८।१९-२०)-"आचार्यप्राचार्यसंनिपाते पाचार्यायोपसंग्राह्योपसंजिब्रक्षेदाचार्यम् प्रतिषेवेदितरः " इति । मनुरपि (२।२०५)— " गुरोर्गुरौ संनिहिते गुरुवदृत्तिमाचरेत् । न चातिसृष्टो गुरुणा स्वान्गुरूनभिवादयेत् " ॥ इति । (१।६।३५) — " यस्मिस्त्वनाचार्यसंबंधाद्गौरवं वृत्तिस्तासमन्नवकस्था-नीयोऽप्याचार्यस्य " इति । यस्मिस्तु पुरुषो शिष्याचार्यभावमंतरेणाधिविद्याचारित्रादिना लौकिकानां गौरवं भवति तस्मिन्नन्ववस्थानीयेऽप्याचार्ये या वृत्तिः स कर्तव्येत्यर्थः । उपसं-ग्रहणस्वरूमाह स एव (१।५।२१-२२)- दक्षिणेन पाणिना दक्षिणं पादमधस्ताद- ९६ भ्याधिमृश्य सकुष्टिकमुपसंगृह्णीयात् उभाभ्यामेवोभावभिपीडयत उपसंग्राह्यावित्येके " इति ॥ आत्मनः दक्षिणेन पाणिनाऽचार्यस्य दक्षिणं पादमधस्तादभयधिमृश्य अभिशब्द उपरि भावे अधस्ताच्चोपरिष्टाच्चाभिष्टश्य सकुष्टकं सगुल्फं सांगुष्टामित्यन्ये । उपसंगृह्णीयादिदम्पसंग्रहणं एतत्कुयांदुभाभ्यामेव पाणिभ्यामुभावे वाचार्थस्य पादावभिषीडयतो माणवकस्य उपसंग्राह्या-वित्येके मन्यंत इत्यर्थः । अत्र मनुः (२।७२)---" ब्यत्यस्तपाणिना कार्यमुपसंग्रहणं गुरोः । सब्येन सब्यः स्त्रष्टब्यो दक्षिणेन तु दक्षिणः"॥ इति । बोधायनः (१।२।२७-२८)-" श्रोत्रे संस्पृहय मनः समाधायाधस्ताज्जान्त्रोरा पभ्याम्" इत्युप-संग्रहणम् इति । एतच्च गुरुपत्नीनामपि कार्यम् । तथा च मनुः (२।२१०)— " गुरुवत्वतिपूज्याः स्युः सवर्णा गुरुयोषितः । " मातृष्वसा मातुलानी श्वश्रूरथ पितृष्वसा । संपूज्या गुरुपत्नीवत्समस्ता गुरुभार्यया ॥ (१३१) ६ 🤻 '' अातृभार्योपतंत्राह्या सवर्णाऽहन्यहन्यपि । विप्रोब्य तूपसंग्राह्या ज्ञातिसंबंधियोषितै: ॥ (१३२) " अवृद्धा गुरुपत्नी च नोपसंग्रहमर्हति " । स्मृत्यर्थसारे- " उपसंग्रहणं नाम अमुकगोत्रो देवदत्तरामी नामाहं भो अभिवादये इत्युक्त्वा कर्णी स्पृष्ट्वा दक्षिणोत्तानपाणिना गुरोर्द्क्षिणं पादं सब्येन सब्यं गृहीत्वा शिरोऽवनमनम्" इति। "अत्र गुरवो मातास्तन्यद्धात्री च पितामहादयो मातामहश्चान्नदाता भयत्राता चार्यश्चोपनेता मंत्रविद्योपदेष्टा तेषां पत्न्यश्चोपसंग्राह्याः समावृत्ते 👀 च बालेऽध्यापके समवयस्केऽध्यापके गुरुवच्चरेत् " इति । **इत्यभिवादननिरूपणम्** । अथ प्रत्यभिवादनम् । तत्र मनुः (२।१२५)---''आयुष्मान्भव सौम्येति वाच्यो विशोऽभिवादने। अकारश्चास्य नाम्नोऽते वाच्यः पूर्वाक्षरः प्लुतः"॥ अभिवादने कृते सति विष्रः द्विजः कनीयान्ज्यायसा वाच्यः। अस्य कनीयसो नाम्नोऽते पूर्वा-क्षरः प्लुतः । अक्षरशब्देन स्वर एव विवक्षितः । व्यंजनस्य प्लुतासंभवात् । यस्मादकारात्पूर्व- ३५

१ करवग- + परस्योपसंग्रहणं।

मक्षरं प्लुतं भवति स पूर्वाक्षरप्लुतः । अकारश्च वाच्यः । आयुष्मान्भव सौम्य देवदत्ता अ इति वाच्य इति यावदिति मानवे व्याख्याने । आयस्तंबोऽपि (१।५।१७)—

- " ष्ट्रावनं च नान्नोऽभिवाद्नप्रत्यभिवादने च पूर्वेषां वर्णानाम् " इति । अत्र हरहत्तः—
 अभिवाद्नस्य यत्प्रत्यभिवाद्नं तत्राभिवाद्वितुनाम्नः प्टावनं कर्त्तव्यं प्रुतः कर्त्तव्यः पूर्वेषां वर्णानां

 श्रूद्वार्जितानां अभिवाद्यमानानां ।" प्रत्यभिवादेऽज्यूद " इति पाणिनीयस्मृतिः (८।२।८३)।
 तत्र वाक्यस्य टेरित्यनुवृत्तेः प्रत्यभिवाद्वाक्यस्यांते नामप्रयोगः । तस्य टेः प्लुतः । आयुष्मान्भव
 सौम्यति वाच्यो विप्र इति स्मृत्यंतरवज्ञान्नान्नश्च पश्चादकारः 'आयुष्मान्भव सौम्य देवद्त्ता अ'
 इति प्रयोगः । शंभुः विष्णुः पिनाकपाणिः चक्रपाणिः इत्यादि नाम्नां संबुद्धौ गुणे कृते एचोऽप्रमृह्यस्य दूराद्धृते पूर्वस्यार्धस्यादुत्तरस्येद्वतावित्ययमपि विधिर्भवति । अते अकारः तयोव्यी। विच संहितायामिति यकारवकारौ च भवतः । तथा च प्रयोगः । शंभाव विष्णाव पिनाकपाणाय चक्रपाणाय इति व्यंजनातेषु च । अग्निचिकद् इत्यादि प्रयोग इति । यसिष्ठोऽपि—
 "आमंत्रितो योऽत्यः स्वरः स प्हवतः" इति । एवं च अभिवादनक्रन्नामगतांतिमस्वरातिरिके
- चंद्रिकायां पराशरमाधवीये च मनुवचनमन्यथा व्याख्यातम्। तथा हि । पूर्वमक्षरं यस्यासौ

 पूर्वाक्षरः । पूर्वमक्षरं च सामर्थ्याद्यंजनं स्वराणां स्वरपूर्वकत्वात्संभवात् । अतश्चाभिवादकनामगता व्यंजननिष्ठांऽतिमस्वरः प्लावनीयः अकारेणांतिमस्वरमात्रमुपलक्ष्यते । अशेषनाम्नामकारांतत्वाभावात् । न त्वत्रापूर्वाकारो विधीयते । तथा च सत्येवं प्रयोगो भवति । आयुष्मान्भव
 सौम्य देवदत्ता इतीति । एतेषां मते पूर्वाक्षर इति पृथव्यदं द्रष्टव्यम् । अत्रातिरिक्ताकारपक्ष एव

पूर्वोकारः पठितव्यः । अंतिमस्वरश्च प्राविधतव्य इति हरद्तादीनां बहुनामभिमतम् । स्मृति-

शिष्टाचारानुगुणः । मनुः (२।१२६)—

- ३. "यो न वेच्यभिवादस्य विप्रः प्रत्यभिवादनम् । नाभिवाद्यः स विदुषा यथा शूद्रस्तथैव सः ॥ "नामधेयस्य ये केचिद्रभिवादं न जानते ।तान् प्राज्ञोऽहमिति ब्रूयात्स्त्रियः सर्वास्तथैव च"॥(१२३)इति। पतं जिल्हाः—
 - ''अविद्वांसः प्रत्यभिवादे नाम्नो येन प्लुतिं विदुः। कामं तेषु च विष्रोष्य स्त्रिष्विव।यमहं वदेत्''॥इति । अहं वदेत् । अहमिति वदेदित्यर्थः । यमः—
- १५ " यो न वेन्यभिवादस्य विप्रः प्रत्यभिवादनम्। आशिषं वा कुरुश्रेष्ठ स याति नरकं ध्रुवम् ॥ " अभिवादे कृते यस्तु तं विष्रं नाभिवाद्येन्। इमशाने जायते वृक्षो गृधकाकोपसेवितः ॥ " अभिवादे तु यः पूर्वमाशिषं न प्रयच्छाति। यद् दुष्कृतं भवेत्तस्य तस्माद्भागं प्रचक्षते ॥ " तस्मात्पूर्वाभिभाषी स्याचंडालस्यापि धर्मवित्। सुरां पिबेतिवक्तव्यमेवं धर्मो न हीयते"॥ इति। मनुः (२।१२६)—
- "न वाच्यो दीक्षितो नाम्ना यवीयानिष यो भवेत्। मो भवत्पूर्वकं चैवमिभाषेत धर्मवित् "। संनिधौ मोशब्दः। यथा भो यजमानेति। असंनिधौ भवछब्दः। यथा तत्र भवान्यजमान इति । स्मृतिरत्ने—
- "आचार्य चैव तत्पुत्रं तद्भार्यो दीक्षितं गुरुम्। पितरं च पितृंश्चैव मातरं मातुलं तथा ॥ " हितैषिणं च विद्वांसं श्वशुरं यतिभेव च । व ब्र्यान्नामतो विद्वान्मातुश्च भगिनीं तथा" इति ॥ ३५ इति प्रत्यभिवादननिरूपणम् । अत्र ब्रह्मचारिश्वमः । संबन्धः—

14

34

```
" ततोऽधीयीत वेदं तु वीक्षमाणो गुरोर्मुखम्। सायं प्रातश्च भिक्षेत ब्रह्मचारी समाहितः॥
" निवेच गुरवेऽश्लीयात्प्राङ्मुखो वाग्यतः शुचिः"॥ दक्षः—
```

" प्रातर्माध्यान्हयोः स्नानं वानप्रस्थगृहस्थयोः । यतेश्चिषवणं प्रोक्तं सक्कृतु ब्रह्मचारिणः" ॥ अत्र विशेषमाह विष्णुः— "दंडवन्मज्जनम् " इति । अनेनाङ्गनैर्मल्यं न कार्यमित्युक्तम् । अत प्रवाहापस्तंबः (१।२।३०) " नाप्तु श्लाघमानः स्नायात् " इति । चंदिकायाम्—

" मेखलामजिनं दंडमुपवीतं च नित्यशः । कौपीनं किटस्त्रं च ब्रह्मचारी तु धारयेत् "। यमः—

"दंडं कमंडलुं वेदं मोंजीं च रहानां तथा। धारयेद्बह्मचर्यं च भिक्षान्नाही गुरौ वसन् " ॥ वेदो दर्भमुष्टिः । गुरौ गुरुगृह इत्यर्थः । याज्ञवल्क्यः (आ. २६)—

" गुर्ह चैवाप्युपासीत स्वाध्यायार्थ समाहितः । आहूतश्चाप्यधीयीत रुब्धं चास्मै निवेदयेत् "॥ ১० मनुः (२।७४)—

" ब्रह्मणः प्रणत्रं कुर्यादादावंते च सर्वदा । स्रवत्यनोंकृतं पूर्व परस्ताच विशीर्यते " ॥ " ब्रह्मारंभेऽवसाने च पादौ ग्राह्मौ गुरोः सदा " (७१) । अंगिराः—

" प्राप्ते वेदानुवचने निसर्गे चान्वहं गुरोः । उपसंग्रहणं कार्यं विप्रोष्य त्वागतेन च "॥ मनुः (२।१९१-१९३)—

" चोदितो गुरुणा नित्यमप्रचोदित एव वा । कुर्याद्ध्ययने योगमाचार्थस्य हितेषु च ॥ " शरीरं चैव वाचं च बुर्द्वीदियमनांसि च । नियम्य प्रांजलिस्तिष्ठेद्वीक्षमाणो गुरोर्मुसम्॥

"िनित्यमुद्भृतपाणिः स्यात्साध्वाचारः समाहितः। आस्यतामिति चोक्तः सन्नासीताभिमुखे गुरोः"॥ उद्भृतपाणिः वस्त्रादिभिरप्रच्छादितपाणिः ॥

"हीनान्नवस्त्रवेषः स्यात्सर्वदा गुरुसंनिधौ। उत्तिष्ठेत्प्रथमं चास्य चरमं चैव संविशेत्॥ (१९४) २० "प्रतिश्रवणसंभाषे शयानो न समाचरेत्। नासीनो न च भुं जानो न तिष्ठन्न पराङ्गुसः"॥ (१९५)
प्रतिश्रवणमात्मानं प्रति गुरुणा प्रयुज्यमानस्य वाक्यस्य श्रवणं प्रतिसंभाषा।गुरुं प्रति स्ववाक्यस्
प्रतिश्रवणसंभाषे कथं कुर्यादित्याकांक्षायामाह स एव (१।१९६-१९७)—

" आसीनस्य स्थितः कुर्यादभिगच्छंस्तु गच्छतः । प्रत्युद्गम्यन्या वजतः पश्चाद्धावश्च धावतः ॥ " पराङ्गमुखस्याभिमुखो दूरस्थस्यैत्य चांतिकम् । प्रणम्य तु शयानस्य विदेशे चैव तिष्ठतः "॥ ६५ प्रणम्य प्रणतो भूत्वा । विदेशे विनते देशेऽश्वभ्रादौ ।

"नीचं शय्यासनं चास्य नित्यं स्याद् गुरु संनिधो। गुरोश्च चश्चविषये न यथेष्टासनो भवेत्"॥(१९८) नित्यमुत्तराश्रमेष्विष ।

"न व्याहरेद्स्य नाम परोक्षमपि केवलम् । न चैवास्यानुकुर्वीत गतिभाषितचेष्टितम्" ॥ (१९९) केवलं तत्र भवदादिशब्दरहितम् ।

"गुरोर्थत्र परीवादो निंदा वाऽपि प्रयुज्यते। कर्णौ तत्र पिधातव्यौ गंतव्यं वा ततोऽन्यतः॥(२००) "परीवादी खरोभवति श्वा वै भवति निंदकः। परिभोक्ता कृमिर्भवति कीटो भवति मत्सरी॥ (२०१) परिभोक्ता गुरोर्भोगादधिकभागी ।

"दूरस्थे नाव्हयेदेनं न कुद्धो नांतिके श्चियाः । यानासनस्थक्षेवेनमवरुद्धाभिवादयेत्" ॥(२०२) अंतिके श्चिया रहसि पत्नीसहितमित्यर्थः । "प्रतिवातेऽनुवाते च नासीत गुरुणा सह। असंश्रवे चैव गुरौ न किंचिदिप कीर्त्तयेत् (२०३)॥ प्रतिवाते पुरतो नासीत। अनुवाते पृष्ठतः पार्श्ववातयोरप्युपलक्षणम्। यथा स्वक्षरीरस्पृष्टो वातो नेनं स्पृक्षेत्रथासीतेति । असंश्रवे सुखसंश्रवणायोग्यदेशे

" गोश्वोष्ट्रयानप्रासादस्वास्तरेषु कटेषु च । आसीत गुरुणा सार्ध शिलाफलकनौषु च (२०४) ॥ ५ गोश्वोष्ट्रयक्तं यानं गोश्वोष्ट्रयानन् । स्वास्तरः तृगादिसमूहः ।

"बारुः समानजन्मा वा शिष्यो वा यज्ञकर्माणि। अध्यापयन् गुरुसुतो गुरुवन्मानमहैति"॥(२०८) यज्ञकर्मणि आचार्ये यज्ञादिकर्मपरवज्ञ इत्यर्थः । गुरुपुत्रे गुरुवृत्तीनां प्राप्तानामपवाद्माह स एव (२।२०९)—

" उच्छादनं च गात्राणां स्तापनोच्छिष्टभोजने । न कुर्याद्वरुपुत्रस्य पादयोश्चावनेजनम् ॥

) • "अभ्यंजनं स्नापनं च गात्रोच्छादनमेव च। गुरुपत्न्या न कार्याणि गात्राणां च प्रसाधनम् (२११)॥ प्रसाधनं अलंकारः ।

"अन्दिंसमलं के चिद्धिंसमपि वा पुनः। प्रमदा ह्युत्पथं नेतुं कामकोधवशानुगम् (२१४) ॥ " मंत्रां स्वस्ना दृहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत्। बलवानिद्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥ (२१५) "अहिंसचैव भूतानां कार्यश्रेयोऽनुशासनम्। वाक्चैव मधुरा श्लक्ष्णा प्रयोज्या धर्ममीप्सिता॥ (१५९) १५ "यस्य वाङ्मनसी शुद्धे सत्ये गुप्ते च सर्वदा। स वै सर्वमवाप्नोति वेदांतोपगतं फलम् ॥ (१६०) सर्वदा आश्रमांतरेऽपि।

"नारुंतुदः स्यादातांऽपि न परद्रोहकर्मधीः। यया चोद्दिजते वाचा नालोक्यां तामुद्दीरयेत्॥(१६१)
" सवेतेमांस्तु नियमान्ब्रह्मचारी गुरौ वसन् । संनियम्थेन्द्रियमामं तपोवृध्धर्थमात्मनः ॥ (१७५)
"नित्यं स्नात्वा शुचिः कुर्याद्देवविंपितृतर्पणम् । देवताभ्यर्चनं चैव समिद्राधानमेव च ॥ (१७६)
र जिथेनमधुमांसानि गंधमात्यरसान्श्रियः । शुक्तानि चैव सर्वाणि प्राणिनां चैव हिंसनम् ॥(१७७)
"अभ्यंगमंजनं चाक्ष्णोरुपानच्छत्रधारणम् । कामं क्रोधं चलोभं च नर्तनं गीतवाद्दनम् ॥(१७८)
"चूतं च जनवादं च परिवादं तथाऽनृतम् । स्रीणां च प्रेषणालंभमुष्यातं परस्य च"॥ इति (१७९)।
याज्ञवरुक्यः (आ. ६६)—

" मधुनांसां जनो व्छिष्टशुक्त स्त्रीयाणि तिसनम् । भास्कराठीकनाश्वीलपरिवादादि वर्जयेत् "॥ २५ मधु क्षेत्रमन्छिष्टमगुरो: । तथा च विस्तिः (१४।२०) । " उच्छिष्टमगुरोरभोज्यम् " इति । " स चेब्याधीयीत कामं गुरोक्चिछं भेषज्यार्थं सर्व प्राश्लीयात्" (२३।९) इति च । व्याधीयीत व्याधिमनुभवतीत्यर्थः । माधवीये—

"नादर्श चेव विक्षित नाचि हंतथावनम्। गुरू विछष्टं भैषजार्थ प्रयुं जीत न कामतः"॥ इति। आपस्तंवः (१।४।०१)—"पितु ज्येष्ठस्य च भ्रातु रुच्छिष्टं भोक्तव्यम् " इति । गुरो रुच्छिष्टस्य अभेज्यत्वादेव तद्धार्यापुत्रेषु चेविमिति गुरुधमातिदेशेन प्राप्तस्योचिष्ठष्टभोजनस्यापवादमाह् गौतमः (२।२८)—" नो चिष्ठष्टा शनस्नापनप्रसाधनपादप्रक्षाळनो नमर्दनो पसंग्रहणानि " इति । स एव (२।१९-२१)—" वर्जये नम्युमां सर्गधमाल्यदिवास्वप्रां जनाम्यं जनयानो पान-त्छत्रकामको धळो भमोहवाद्वाद्वस्नानं देशावनह ष्वत्वत्यगीतपरिवादभयानि । गुरुद्शेने कर्ण-प्रावृतावसिक्थकापाश्रयणपादप्रसारणानि निष्ठीवनह सितविज्ञं भितावस्को टनानि " इति । अभ मनुः (२।२१९)—

१ 'कण्ठ ' इति पाठः

```
" मुंडो वा जिटलो वा स्याद्थ वा स्याच्छिलाजटी " इति । कात्यायनः—" सिशिलं
वपनं कार्यमास्नानाद्वस्नचारिणः " इति । एतच्छंदोगाभिषायम् । सुमंतुः---
" ब्रह्मचर्य तपो भैक्ष्यं संध्ययोरग्निकर्म च । स्वाध्यायो गुरुवृत्तिश्च चर्ययं ब्रह्मचारिणः ॥
" यच शिष्येण कर्तन्यं यच दासेन वा पुनः। कृतमित्येव तत्सर्वे कृत्वा तिष्ठेतु पार्श्वतः॥
" किंकरः सर्वकारी च सर्वकर्मसु कोविदः ।
"न स्नानेन न होमेन नैवाग्निपरिवर्यया । ब्रह्मचारी दिवं याति स याति गुरुप्जनात् "॥
यम:--
" गुर्वधीनोऽस्वतंत्रः स्यात्पूर्वोत्थायी गुरोगृहे । सदा जवन्यसंवेशी जितशिक्षो जितोदरः ॥
" जितनिद्रो जितालस्यो जितकोधो जितार्थवान् । गंधमाल्यं चित्रवस्रं वर्जयेईतधावनम् ॥
" सर्वे पर्युषितं वर्ज्यं घृतं च लवणं तथा । मलापकर्षणस्नानं जूदायैरपि भाषणम् ॥
" गुरोरवज्ञां च तथा ब्रह्मचारी विवर्जयेत् " ॥ दयासः—
"अभुक्तवति नाश्चीयाद्पीतवति नो पिवेत्। न तिष्ठति तथासीत नासुप्ते प्रस्वपेत्तथा ॥
" नास्य निर्मालयशयनं पादुकोपानहावि । आकामेदासनं नास्य च्छायादीन्वै कदाचन ॥
" यथाकालमधीयीत यावन्न विमना गुरुः । आसीत न गुरोः कूर्चे पीठके वा समाहितः ॥
" आसने शयने चैव नैव तिष्ठेतकथंचन " ॥ संवर्तः-
"दिवा स्वपिति चेत्स्वस्थो ब्रह्मचारी तु पर्वणि । स्नात्वा सूर्य समभ्यर्च गायव्यष्टशतं जपेत् ॥
"भिक्षाटनमङ्कत्वा तु स्वस्थोऽप्येकान्नमञ्जते । अस्नात्वा चैव यो भुङ्के गायव्यष्टशतं जपेतु ॥
" ग्रासस्य नियमो नास्ति प्रथमाश्रमवासिनः । इतरेषां क्रमेणैव द्वात्रिंगृत्वोडशाष्ट्र च ॥
"आपोशनमक्कत्वातु यो भुंकेऽनापदि द्विजः । भुं जानस्य यदा ब्रूयात् गायञ्यष्टशतं जपेत्"॥इति ।
हारीत:-
```

"उपनीतो माणवको वसेद्वुरुकुलेष्वथ । गुरोः कुले प्रियं यत्स्यात्कर्मणाः मनसा गिरा ॥
" ब्रह्मचर्यमधःशय्या तथा वन्हेरुपासनम् । उद्कुंभानगुरोर्द्याद्गोप्रासं चेंधनानि च ॥
" कुर्याद्ध्ययनं चैव ब्रह्मचारी यथाविधि । विधिं त्यक्त्वा प्रकुर्वाणो न स्वाध्यायफलं लभेत्॥
"यः कश्चित्कुरुते धर्म विधिं हित्वा दुरात्मवान् । न तत्फलमवाष्नोति कुर्वाणोऽपि विधिच्युतः॥

- " तस्माद्देदवृतानीह चरेत्स्वाध्यायसिद्धये । शौचाचारमशेषं तु शिक्षयेद्धरुसंनिधौ ॥
- " शयनात्पूर्वमृत्थाय द्रभमृइंतधावनम् । वस्त्रादिकमथान्यच गुरवे प्रतिपादयेत् ॥
- " स्नाने कृते ततः पश्चात्स्नानं कुर्वीत दंडवत् " ॥ इति । नारदः---

" अविद्याग्रहणाच्छिष्यः ग्रुश्र्वेत्प्रयतो गुरुम् । तद्वृत्तिर्गुरुद्दारेषु गुरुपुत्रे तथैव च " ॥ हारीतः—" हयरथग अचैत्यवृक्षवृष्ठभारोहणमहानदीप्रतरणमहासाहसविरुद्धानि वर्जयेत्" इति । आपस्तंबः (११२१९–२४)— "आचार्याधीनः स्यादन्यत्र पतनीयेभ्यः । हितकारी गुरोर- ३० प्रतिलोमयन्वाचा । अधासनशायी । नानुदेश्यं भंजीत । तथा क्षारलवणमधुमांसानि । अदिवा स्वापी" इति (११३१९–२१)। "अवृत्तद्शीं । सभाः समाजांश्चागंता । अजनवादशीलः । रहः-शिलः । गुरोरुद्वाचारेष्वकर्ता स्वैरिकर्माणि । स्त्रिभियीवद्र्थसंभाषी । मृदः शांतो दांतो -हीमान् हर्ष्युतिः " इति च । शंखः—"न वेदमनधीत्यान्यां विद्यामधीयीतान्यत्र वेद्रांगेभ्यः " इति । ह्यारीतोडिपे—"वेत्रे विद्या बद्धाणस्य तत्रिरज्ञानार्थमंगानि" इति । लघुक्यासः—

- " वेद्रयाध्ययनं सर्वे धर्मशास्त्रस्य चापि यत् । अजानतोऽर्थं तत्सर्वे तुषाणां संडनं यथा ॥
- " यथा पशुर्भारहारी न तस्य भजते फलम् । द्विजस्तथार्थानिभिज्ञो न वेदफलमञ्जते ॥
- " ज्ञानं कर्म च संयुक्तमुक्त्यर्थ कथितं यथा । अधीतं श्रुतसंयुक्तं तथा श्रेष्ठं न केवलम् ॥ "समुचितं स्तोकमपि श्रुताधीतं विशिष्यते । चतुर्णामपि वेदानां केवलाध्ययनात् द्विजः"॥ इति ।

५ चंद्रिकायाम्--

" धर्मशास्त्रं तु विज्ञेयं शब्दशास्त्रं तथैव च। पुराणानी तिहासांश्च तथाख्यानानि यानि च॥ " महात्मनां च चरितं श्रोतब्यं नित्यमेव च "। इति । वसिष्ठः—

"यच्छाक्रीयेस्तु संस्कारैः संस्क्वतो ब्राह्मणो भवेत्। तच्छाखाध्ययनं कुर्यात् त्यक्त्वा तत्पतितो भवेत्॥ " न जातु पारशाक्षोक्तं बुधः कर्म समाचरेत्। आचरन्परशाखोक्तं शाखारंडः प्रकीतिंतः"॥ इति ।

१० विद्याधिगमीपायमाह नारदः—

" योऽहेरिव गणाद्गीतः सौहित्यान्नरकादिव । राक्षसीभ्य इव स्त्रीभ्य: स विद्यामिधगच्छित ॥

" यत्कीटैः पांसुभिः श्वक्षेत्रेल्मीकः क्रियते महान् । न तत्र बलसामर्थ्यादुद्योगस्तत्र कारणस् ॥

" रानैर्विद्या रानैरध्वा आरोहेत्पर्वतं रानैः " ॥ सौहित्यं तृप्तिः । तथा विष्नहेतूनिप स एवाह—

" धूतं पुराणशुश्रूषा नाटकासक्तिरेव च । स्त्रियस्तंद्री च निद्रा च विद्याविद्राकराणि षट् ॥

१५ " गुरेशुश्रृषया विद्या पुष्कलेन धनेन वा । अथवा विद्या विद्या चतुर्थ नोपलभ्यते "॥ अध्यापने च नियमिवशेषानाह यमः—

" सततं प्रातरुखाय दंतधावनपूर्वकम् । स्नात्वा हुत्वा च शिष्येभ्यः कुर्याद्ध्यापनं नरः " ॥
गौतमः (२१४८)— " शिष्यशिष्टिः वधेन " । इति । शिष्टिः शासनम् । अवधेन ताडनमकृत्वेत्यर्थः । निर्भर्तसेनेन साधियतुमशक्तौ स एवाह (२१४९)— " अशक्तौ रज्जुवेणुद्रहाभ्यां २६ तनुभ्याम् " इति । मनुरपि (८१२००-२०१)—

"भार्या पुत्रश्च दासश्च शिष्यो श्राता च सोदरः। प्राप्तापराधास्ताङ्याः स्यू रज्ज्वावेणुद्रलेन वा ॥ "पृष्ठतस्तु शरीरस्य नोत्तमांगे कथंचन। अतोऽन्यथा तु प्रहरन्प्राप्तः स्याच्चोरिकिल्बिषम्"॥ यमः— " संवत्सरोषिते शिष्ये गुरुर्ज्ञानमनिर्दिशन्। हरते दुष्कृतं तस्य शिष्यस्य वसतो गुरुः"॥ मनुः (१२।१२४)—

"तपो विद्या पवित्रस्य निःश्रेयसकरं परम् । तपसा कल्मषं हंति विद्ययाऽमृतमश्चते " ॥
"अनेन क्रमयोगेन संस्कृताःमा द्विजः शने। गुगौ वसन्संचिनुयाद्वसाधिगिमिकं तपः॥ (२१६४)
"तपोविशेषविविधेन्नतेश्च विधिचोदितेः। वेदः कृत्स्नोऽधिगंतव्यः सरहस्यो द्विजन्मना"॥(१६५)
वतेः प्राजापत्यादिभिः। कृत्सनः सांगः। अत्रापस्तंवः। (१।५११-४)— "नियमेषु तपःशब्दः।
तद्तिक्रमे विद्याकर्म निस्नवति ब्रह्म सहापःयादेतस्मात्। कर्तपत्यमनायष्यं च। तस्माद्वषयोवरेषु
क न जायंते नियमातिकमात् हिता अस्मिन्ब्रह्मचारिधर्मप्रकरणे ये नियमा निर्दिष्टास्तेषु तपः
शब्दो द्रष्टव्यः। तेषां नियमानामतिक्रमे विद्याग्रहणं तत्कर्म ब्रह्म एतस्मान्नियमातिक्रमिणाध्येतुः
पुरुषाद्यप्रयसिहतान्निस्रवति ब्रह्मयज्ञादिष्प्युज्यमानमप्यिकिचित्कर्मित्येषोऽथौ विवक्षितः।
न केवलमिकिचित्करम् प्रत्युतानर्थकारीत्याह । कर्तपत्यमनायुष्यं च इति। श्वश्चामिधायी नरको
लक्ष्यते। पतत्यनेनेति पत्यम्। नरकपतनहेतुर्भवति। अनायुष्करं च तस्मान्नियमातिक्रमाद्वरेप ष्वर्वाचिनेषु कलियुगवर्तिषु कषयो मंत्रदशो न भवंति। अनियमस्येदानीमवर्जनीयत्वादिष्यर्थः।

अथ वेदब्रतानि । स एव- " छन्द्रसां साधनार्थं हि वतानीह चरेद्रबुधः " इति । वतानि च तेनेवोक्तानि " प्राजापत्यं सौम्यमाग्रेयं वैश्वदेवं च " इति । भरद्वाजः— " अथातो वतादेश-विसर्जने व्याख्यास्यामः। पर्वण्युद्गयन आपूर्यमाणपक्षे पुण्यनक्षत्रे होतृव्वतमुपनिषद्धतं शुक्तियं गोदानम् " इति । तथा बोधायनोऽपि— "चत्वारि वेदवतानि होतारः शुक्तियाण्युपनिषद् आरणान्युद्गयन आपूर्यमाणपक्षे पुण्ये नक्षत्रे शुक्तियारंभो गोदानं षोडशे वर्षे " इति । अश्वख्यायनोऽपि— " चत्वारि वेदवतानि महानाम्निमहावतमुपनिषदो गोदानमिति । उद्गयन आपूर्यमाणपक्षे कल्याणे नक्षत्रे गोदानं षोडशे वर्षे कर्त्तव्यम् " इति । गर्गः— " वतं कुर्यात्तु सावित्रं विधिनारण्यकवतम् । वेदवतानि कुर्वीत ततो वेदान् समभ्यसेत् ॥ "उत्तरायणगे सूर्ये शुक्ते पक्षे शुभे दिने । स्वाध्यायदिवसे कुर्यात्रक्षत्राण्यत्र चौठवत्"॥ मरद्वाजः— " उत्तरायण आपूर्यमाणपक्षे च पर्वणि । वेदवतानि चत्वारि कुर्यात्पूर्वाह्ण एव च ॥ " विश्वणे त्वयने वाऽपि श्रावणस्य तु पर्वणि । सौम्यं वेदवतं कुर्यात्प्राजापत्यादि चात्र हि "॥ क्तात्रेयः—

"वेदवतानि चत्वारि कुर्यात्कालस्तु चौलवत् । उपाकर्मवदिच्छंति वतेष्वन्येषु चैव हि "॥ इति । आपस्तंबः—

" सौम्यवतं प्रकुर्वीत यथावच्छुकियवतम् । प्राजापत्यादि चत्वारि भवेयुस्तिहिनेऽपि वा ॥ " प्राजापत्यवतं कृत्वा तद्घीत्य विमृज्य च । सौम्यवतमुपार्कृत्य विमृज्याग्नेयमाचरेत् ॥ " उत्मृज्य वैश्यदेवास्यमुपकम्य समुत्मृजेत् " इति । स्मृत्यर्थसारे—" उपनयनाग्नुपाकमीतं सावित्रीवतं ततो वेदवतारण्यकवतानि प्रतिवतमुपैनयनमेतेषां छोपे त्रीन्वा षड्वा द्वादश् वा कृच्छान् चरित्वा पुनर्वतं कुर्यात् " । इति ब्रह्मचारिधमीनिक्षपणम् । अथ पुनरुपनयमम् । अत्रापस्तंबः—

"अजिनं मेखलादंडं भैक्षाचर्यं च यस्त्यजेत्। पुनःसंस्कारमहें तु विधिद्दष्टेन कर्मणा "। इति। पराहारः (१२।३)—

" अजिनं मेखलादंढं मैक्षाचर्यवतानि च । यदि मध्ये निवर्त्तरन्पुनः संस्कारमहीते " ॥ इति । व्यासः—

" सिंधुसौवीरसौराष्ट्रानः तथा प्रत्यंतवासिनः। अङ्गवङ्गकर्तिगांश्च गत्वा संस्कारमहिति ?॥ ६५ प्रत्यंतोऽन्त्यदेशः।

"हिमवत्कोशिको विंध्यं पारंपर्यस्य पश्चिमम् । तीर्थयात्रां विना गत्वा पुनः संस्कारमहीति" ॥ आदित्यपुराणे—

" सौराष्ट्रसिंघुसौवीरानवंतीद्क्षिणापथम् । एतान्देशान्द्विजो गत्वा पुनः संस्कारमर्हति"॥
बोधायनः—'' अथोपनीतस्य वात्यवतानि भवंति । नान्यस्योच्छिष्टं मुंजीतान्यत्र पितृज्येष्ठाभ्यां > विश्वया सह मुंजीत मधुमांसं श्राद्धं सूतकान्नमद्शाहक्षीरं छत्राकं निर्यासं विलयनं गणान्नं शृद्धान्नमित्येतेषूपयुक्तेषु पूर्वकृतसंस्कारो न तिष्ठति" इति । अतः पुनरुपनयनं कर्तव्यमित्यर्थः । स एव—

"अमस्या वारुणीं पीत्वा प्रारूय म्त्रपुरीषके । ब्राह्मणः क्षत्रियो वैरुयः पुनः संस्कारमहेति''॥ इति ।

१ क्य-दिचत्। १ क्य-पकम्य । १ ख्रान-तं वर्षनं । ४ क्य-स्काधिकं । ५ क्य-स्वीः।

"ब्रह्मचारिणः शवकर्मणा वतानिवृत्तिरन्यत्र मातापित्रोराचार्याच" इति । मनुः--

"अज्ञानात्प्राइय विष्मूत्रं सुरासंसृष्टमेव च। पुनः संस्कारमर्हित त्रयो वर्णा द्विजातयः"॥ पराहारः—

"विष्मूत्रभक्ष्यशुध्यर्थं प्राजापत्यं समाचरेत्। पंचगव्यं च कुर्वति स्नात्वा पीत्वा च शुध्यति"। प् एतच संस्कारात्प्रामेवेति वेदितव्यम् । तथा च विष्णुः (५१।२-५)- " विद्वराह्यामकुक्कुट-गोमांसभक्षणेषु च सर्वेष्वेतेषु द्विजातीनां प्रायाश्चित्तांते पुनःसंस्कारं कुर्यात् " इति । यसः " भूसुरो मद्यपाने च कृते गोभक्षणेऽपि च । तक्षकृच्छ्रपरिक्किष्टो मौजीहोमेन शुध्यति " ॥ शातातपः—

" रुशुनं गृंजनं जग्ध्वा पर्लांडुं च तथा द्विजः। उष्ट्रमानुषकेभाश्वरासमक्षीरभोजनात्॥ " उपायनं पुनः कुर्यात्तप्तकुच्छुं चरेन्मुहुः"। संग्रहे—

"चंडालानं दिजो भुक्तां सम्यक् चांद्रायणं चरेत्। बुद्धिपूर्वे तु कुच्छ्राब्दं पुनः संस्कारमहीति"॥ कुतोर्ध्वदेहिकविषये

"जीवन्यदि समागच्छेद् घृतकुंभे निमज्ज्य च। उद्धृत्य स्नापायित्वाध्य जातकर्मादि कारयेत्॥इति।" गृद्धारत्ने— " अंगवंगकालिंगसौवीरसौराष्ट्रावंतिमात्स्यादिदेशगमने द्विजस्य पुनःसंस्कारः ।

९५ तीर्थयात्रायां न दोषः । विण्मूत्रप्राशने मद्यपाने सिंधुतरणे च पुनःसंस्कारः । पितृमातामहा-चार्योपाध्यायमातुरुव्यितिरेक्तप्रेतकार्ये पितृज्येष्ठश्राताचार्यव्यतिरिक्तोच्छिष्टभोजने मधुमांस-प्रेतासशौचासगणिकासशूद्रासभोजने ब्रह्मचारिणः पुनरुपनयनं कार्यम् । ज्येष्ठे पश्चात्कृतोपनयने पूर्वोपनीतः कनिष्ठः पुनरुपनेयः "॥

"पतनीयानि यान्येव कर्माण्याहुर्महर्षयैः । तानि कृत्वा द्विजो मोहात्पुनःसंस्कारमहीते "॥
९ पुनरुपनयने वर्ज्यान्याह मनुः (२१।१५१)—

"वपनं मेसला दंढो भैक्षाचर्या वतानि च। निवर्त्तन्ते द्विजातीनां पुनःसंस्कारकर्मणि॥
"कालश्वेव वसंतादिने निरिक्ष्यः कथंचन" इति । संस्कारमंजर्या— " अथ पुनःसंस्कारं व्याख्यास्यामः । समिदाधाने विशेषः । पुनस्त्वादित्या इतिसमिदाधानम् । अथ वात्यप्रायश्चित्तं जुहोति । 'यन्म आत्मनः' 'पुनराग्निश्चश्चरदात् ' इति द्वाभ्यामथ पक्कानं जुहोति "सप्त ते अग्ने समिधः सप्तजिव्हा" इति । स्वष्टकृत्प्रभृतिसिद्धमा घेनुवरप्रदानात् इति । अथापरः कल्पः । गुरो-किछष्टं वा भुंजीत । दक्षिणादानं मेसलादेनिंवृत्तिः । अन्यत्सर्वं स्वग्रद्धोक्तं कर्तव्यमिति । अपरः कल्पः । आ परिधानात्कृत्वा पालाशीं समिधाय वात्यप्रायश्चित्तं करोति इति । अथापरः कल्पः । बाह्मणवचनात्सावित्या शतकृत्वो घृतमभिमंत्र्य प्राश्य कृतप्रायश्चित्तो भवति इति । एतेषु पक्षेषु गुकलपुनिमित्तापेक्षया व्यवस्था दष्टव्या" । इति पुनरुपनयननिकृषणम् ।

अथ ब्रह्मचर्यकालाविधः । अध्येतृसामर्थ्यानुरूपमाह मनुः (३।१)—
 "षट्त्रिंशदाब्दिकं चर्यं गुरौ त्रैवेदिकं त्रतम् । तद्धिकं पादिकं वा ग्रहणांतिकमेव च " ॥ षट्टित्रिंशतोऽब्दानां समाहारः षट्त्रिंशद्ब्दी । तत्र भवं षट्त्रिंशद्ब्दिकम् । एवं त्रैवेदिकम् । तद्धीकं मष्टादशाब्दाः । तयुक्तं तद्धिकं एवं पादिकं ग्रहणान्तिकं च । यमोऽपि—

"वसेत् द्वादश वर्षाणि चतुर्विंशतिमेव वा । षट्टिंशतं वा वर्षाणि प्रैतिवेदं वतं चरेत्" ॥ अभ याज्ञवल्क्यः (अ. ३६)—

१ क्ष-मईति । २ खुम-मनीपिणः । ३ क्ष-वती ।

"प्रतिवेदं बहाचर्य द्वाद्शाब्दानि पंच वा। ग्रहणातकामस्यके केशांतश्चेत षोढशे "॥ केशांतो नाम गोदानाख्यं कर्म। तत्तु षोढशे वर्षे कार्यमित्यर्थः। बोधायनोऽपि (११२१८६)—
"अष्टाचत्वारिशद्वर्षाणि वेदबहाचर्य चरेचतुर्विशितं वा द्वादश वा प्रतिवेद्म्। संवत्सरावैमं वा। प्रतिकांढं ग्रहणांतं वा। जीवितस्यास्थिरत्वात् 'कृष्णकेशोऽप्रीनाद्यीतेति'श्रुतिरिपे"। प्रतिकांढं प्राजापत्यादीनां पंचानां कांडानामेकैकस्मिन्कांडे संवत्सरावमित्यर्थः। ग्रहणांतपक्ष एव युक्त भ् इत्यत्र हेतुः। जीवितस्येति। आपस्तंवः (११२११८-१६)— "उपेतस्याचार्यकुले बहाचारिवासा अष्टाचत्वारिशाद्द्याणि पादूनम् अर्धेन त्रिभिर्वा द्वादशावराध्यम्"इति। एतदशक्तविषयम्। तथा च वेवलः—

"अतः परमष्टाचत्वारिंशदार्षिंक वेदवतचर्यामातिष्ठेदशकश्चेचतुर्वेशितवार्षिकी वा " इति । गौतमः (२।५१–५२)—

"द्वाद्शवर्षीण्येकवेदे ब्रह्मचर्य चरेत्। प्रतिद्वाद्श वा। सर्वेषु यहगांतं वा " इति। भारद्वाजः— " अष्टाचत्वारिशद्वर्षाणि पुराणं वेद् ब्रह्मचर्यं संप्रतिशक्त्वा वेदाध्ययनादित्येक आहुरागोदान-कर्मण इत्येके " इति। दक्षः——

"स्वीकरोति यदा वेदं चरेहेदबतानि च । ब्रह्मचारी भवेत्ताबद्वध्वं स्नातो गृही भवेत्"॥ व्यासः—

" अधीत्य विधिवद्वेदं वेदार्थमधिगम्य च । नतानि क्रमशः क्रुत्वा समावर्तनमाचरेत्॥

" वेदमेकं समभ्यस्य कुत्वा वेदव्रतानि च। गुरवे दक्षिणां दत्त्वाऽप्यशकस्तदनुज्ञ्या ॥

" समावृत्योद्देतकन्यां संन्यासमथवा वजेत्"॥ अथ गोदाननिक्षपणम्। गर्गः— " जन्मनः षोडशे वर्षे पूर्णमास्यामुद्यवौ । चौरोक्तविधिवारेषु गोदानाख्यवतं चरेत् ॥ "यदि चेत्षोडशाद्वीग्वेदगरंगतो भवेत् । गौदानिकवतं कृत्वा समावर्त्तनमाचरेत्"॥ प्रचेताः— २० "गोदानं षोडशे वर्षे अवीग्वा कश्चिदिष्यते । यस्मिन् कस्मिन् वासरे वा गोदानं स्नानतः पुरा"॥ भरद्वाजः— " षोडशे वर्षेऽस्य गोदानं कुर्वन्ति संवत्सरं कृतगोदानां बह्मचर्य चरत्यिमगोदानो वा भवति " इति ॥ आपस्तंवः—" एवं गोदानमन्यस्मिन्नपि नक्षत्रे षोडशे वर्षेऽग्निगोदानो वा स्यात् " इति । अस्मिन्नग्निरेव देवतेत्यर्थः । स्रष्टुद्यासः—

"ऋगादिकमधीत्यातो न्यायतस्तु तद्र्थवित् । सम्यग्वतानि संसेव्य समावर्त्तनमर्हति"॥ ६५ पतत्सर्वं समुच्चयसंपादनसमर्थविषयम् । अन्यथा तु वतमात्रसमाप्ताविष स्नानं भवत्येव। तथा च याज्ञवल्क्यः (आ. ५१)—

" गुरवे तु वरं दत्वा स्नायीत तद्नुज्ञया। वेद्वतानि वा पारं नीत्वाऽण्युभयमेव वा "॥ इति । एतेन स्नातक्ष्रीविध्यं प्रतिपादितं भवति। यथाह हारीतः— " त्रयः स्नातका भवंति । विद्या-स्नातको विद्यावतस्नातकः " इति । "यः समाप्य वेद्मसमाप्य वेद्वतानि समा- ३० वर्षते स विद्यास्नातकः । यस्तु समाप्य वतानि असमाप्य वेदं स व्रतस्नातकः । यः पुनरुभयं स विद्यावतस्नातकः " इति । एवं च वतस्नातकस्य परिणयनोत्तरकाठमध्ययनं समापनं तद्र्थज्ञानं चेति मंतव्यमिति समृतिचंदिकायाम् । अत्र गर्गः—

" षट्टिंशदाद्धिकं वाऽपि गुरोस्रेवेदिकं वजेत् । यद्दा द्वादशवर्षाणि षट्टाऽथ त्रीणि वा भवेत् ॥

१ स्न-रुया। २ क्ष-चेंविद्यसिष्यर्थं।

" संवत्सेरं वत्सरार्धे त्रिमासमथ वा भवेत् । मोंजीवंघाद्वादशाहं त्रिरात्रं वा चरेद्वतम्॥

"गोदानिकवतं कृत्वा समावर्त्तनमाचरत्" इति॥ अथ स्नातकविधिः। व्यासः— "गुरुज्ञुश्रूषया विद्यां संप्राप्य विधिवद्विजः। स्नायीत तदनुज्ञातो दत्वाऽस्मै दक्षिणां हि गाम्"॥इति। एतत् गोदानं प्रीतिसाधनद्रव्योपलक्षणार्थम् । अत एव मनुः (२।२४६)—

" क्षेत्रं हिरण्यं गामश्वं छत्रं वोपानहं ततः । धान्यं वासांसि शाकं वा गुरवे प्रीतिमाहरेत् ॥

"न पूर्व गुरवे किंचिदुपकुर्वीत धर्मवित्। स्नास्यंस्तु गुरुणाऽऽज्ञप्तः शक्त्या गुर्वर्थमाहरेत्"॥ (२४५) लघुहारितः--

" एकमप्यक्षरं यस्तु गुरुः शिष्यं निवेदयेत् । पृथिव्यां नास्ति तद्भव्यं यहत्वा त्वचणो भवेत्" ॥ एतच दक्षिणादानमाश्रमांतरप्रवेशेऽपि वेदितव्यम्। "गुरवे दक्षिणां दत्वा स यमिच्छेत्तमावसेत् " 1 • इति स्मरणात् । दक्षिणादानसामर्थ्याभावे तद्नुज्ञया स्नानमाह गौतमः (३।५४-५५)--"विद्यांते गुरुरर्थेन निमंज्यः। ततः कृतै नुज्ञातस्य स्नानम्" इति । इति ब्रह्मचर्यकालनिरूपणम् । अथ नैष्ठिकधर्माः । तत्र दक्षः--

" द्विविधो ब्रह्मचारी तु दक्षशास्त्रे प्रयद्यते । उपकुर्वाणकः पूर्वी द्वितीयो नैष्ठिकः स्मृतः"॥ तत्रोपकुर्वाणधर्मोऽभिहितः । नैष्ठिकस्य धर्ममाह याज्ञवल्क्यः (आ. ४९-५०)--

" नैष्ठिको ब्रह्मचारी तु वसेदाचार्यसंनिधौ । तद्भावेऽस्य तनये पत्न्यां वैश्वानरेऽपि वा ॥ 94 " अनेन विधिना देहं साधयान्वाजितेंद्रियः । ब्रह्मलोकमवामोति न चेहा जायते पुनः" ॥ एवमुक्तप्रकारेणात्मानं निष्ठामुक्तांतिकालं नयतीति नैष्ठिकः । स यावज्जीवं स्वातंत्रयं विना आचार्यादिसमीपे वसेत् । अनेनोक्तविधिना देहं साधयन्क्षपयन्त्रितेंद्रियः ब्रह्मचारी ब्रह्मलोक-ममृत्वमाप्नोतीत्यर्थः । तथा च मनुः (२।२४३-२४४)--

२० " यदि त्वात्यंतिकं वासं रोचयेत गुरोः कुले । युक्तः परिचरेदेनमा श्रारीरविमोक्षणात् ॥ " आ समाप्तेः शरीरस्य यस्तु शुश्रुषते गुरुम् । स गच्छत्यंजसा विष्रो ब्रह्मगः सद्म शाश्वतम् " ॥ " आचार्ये तु खलु प्रेते गुरुपुत्रे गुणान्विते । गुरुद्दारे सिपेंडे वा गुरुवद्वृत्तिमाचरेत्॥(२४७) " एषु त्वविद्यमानेषु स्थानासनविहारवान् । प्रयुंजानोऽग्निज्ञुश्रूषां साधयेद्देहमात्मनः"॥ (२४८)-''एवं चरति यो विष्रो ब्रह्मचर्यमविष्छुतः। स गच्छत्युत्तमं स्थानं न चेहाजायते पुनः''॥ (२४९)इति।

२५ हारीतः--

" यस्थैतानि सुगुप्तानि जिन्होपस्थोद्रं करः । संन्याससमयं कृत्वा बाह्मणो ब्रह्मचर्यया ॥ " तस्मिन्नेव नयेत्कालमाचार्ये यावदायुषम् । तद्भावे च तत्पुत्रे तच्छिष्ये वाऽथदा कुले ॥ "न विवाहो न संन्यासो नैष्ठिकस्य विधीयते ॥

" इमं यो विधिमास्थाय त्यजेद्देहमतंद्रितः । नेह भूयोऽभिजायेत ब्रह्मचारी हढवतः ॥

"यो ब्रह्मचारी विधिना समाहितश्चरेत्पृथिवयां गुरुसेवने रतः ॥

' संप्राप्य विद्यामतिदुर्लभां शुभां फलं च तस्याः सुलभं तु विंदति "॥ बृहस्पतिः— ''संध्याऽग्निकार्यस्वाध्यायं भैक्षाधःशयनं द्याम्।आ मृत्योनैष्ठिकः कुर्वन्बह्मलोकमवाप्नुयात्"॥इति। वसिष्ठः (७७-१७)—" संयतवाक् । चतुर्थवष्ठाष्टकाले भैक्ष्यभोजी । गुर्वधीनः । जटिलः । शिसा-जदो वा । गुरुं गञ्छंतमनुगञ्छेदासीनं च तिष्ठेच्छयानं चासीन उपासीत । आहूतस्वाध्यायी ।

१ क्ष-वत्सरं वत्सरादृष्वं । २ क्ष-गी। ३ क्ष-कृत्वा ।

सर्वे रुब्धं निवेश तद्मुज्ञया भुंजीत । खट्टाशयनदंतप्रक्षारुनांजनाभ्यंजनच्छत्रवर्जी । स्थानासन-शीरुश्चिरन्होऽभ्युपेयाद् ए इति " । त्रिरन्ह इति त्रिषवणस्नायी स्यादित्यर्थः । यमः— " आ निपाताच्छरीरस्य ये चरंत्यूर्ध्वरेतसः । ते यान्ति ब्रह्मणः स्थानं जायंते न पुनर्भुवि " ॥ हारीतः—

"मृत्योः परस्तादमृतो भवंति ये ब्रह्मणा ब्रह्मचर्य चरंति" इति । एतङ्क्रमनिष्ठविषयस् । ५ " सर्व एते पुण्यश्लोका भवंति ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति " इति श्रुतेः । सर्व एते चत्वारो ह्याश्र-मिणः पुण्यश्लोका भवंति पुण्यलोकभाजो भवन्ति । यः पुतरेषां मध्ये ब्रह्मसंस्थो ब्रह्मनिष्ठः सोऽ-मृतत्वमपुनरावृत्तिलक्षणं फलमेतीत्यर्थः । एतच्च नेष्ठिकत्वं कुटजादीनः नित्यमित्याह विष्णुः-

" कुटजवामनजात्यंथक्कीवपंग्वार्तरोगिणाम्। वतत्त्रयि भवेत्तेषां यावज्जीवं न संशयः "॥

चंद्रिकायाम्--

" पंग्वादीनामनंगत्वादसामर्थ्याच्च शास्त्रतः । नियतं नैष्ठिकत्वं स्यात्कर्मस्वनधिकारतः"॥ इति । नन्वेवं कुब्जादीनामेवं नैष्ठिकत्वमस्तु नेतरेषाम् । मैवम् ।

" गार्हस्थमिच्छन्वतिकः कुर्योद्वारपरिग्रहम् । ब्रह्मचर्येण वा कालं नयेत्संकल्पपूर्वकम् ॥ "वैसानसो वाऽपि भवेत्परिवाद्धथवेच्छया" इति पाक्षिकत्वप्रतिगादक**ट्यासारि**वचनविरोधात् । न हि कुब्जादीनां नैष्टिकत्वं पाक्षिकमस्ति । न च यदितरेषां नैष्टिकत्वं तर्हिं ' यावज्जीवमग्नि- १५ होत्रं जुहोतीति ' गृहस्थधमीविधायकश्चातिर्वाध्येतेति वाच्यम् । नष्टिकत्वस्य पाक्षिकत्वेन विषयांतरसंभवात् । ये हि भार्यादिरागवज्ञाद्वाहर्स्थ्यं कामयंते तद्विषया यावज्जीवश्रतिरित्य-विरोधः । तथा च जाबालिः-"यदि गृहमेव कामयेत तदा यावज्जीवमग्निहे।त्रं जुहुयात्" इति । ननु स्मार्त्तनैष्ठिकत्वस्य श्रीताग्रिहोत्रादीनां बाध एदास्तु । मैवस् । तस्यापि " ब्रह्मचार्याचार्य-कुलवासी द्वितीयो ऽत्यंतमात्मानमाचार्यकुलेव सादयेत्" इतिश्रुतिमूलत्वाविशेषात् । न च ब्रह्म- २० चारिद्वैविध्ये चत्वार आश्रमा इत्याप स्तंबादिवचनं बाध्येतेति शङ्कनीयम्। संकल्पभेदमात्रेण नित्यकाम्य।ब्रिहोत्रवदनयोर्भेदोपपत्तेः । अत एव तु तद्धर्मातिदेशमाह आपस्तंबः (२।२१।६)-" यथा विद्यार्थस्य नियम एतेनैवांतमनूषसीदत आचार्यकुले शरीरन्यासो बह्मचारिणः"। यथा विद्यार्थस्यौपकुर्वाणस्यामीन्धनादिनियम उक्तः। अनेन नियमेन शरीरन्यासः परित्यागः। ब्रह्म-चारिणो नैष्ठिकस्येत्यर्थः । गौतमः (३।४-८)—" तत्रोक्तं ब्रह्मचारिणः । आचार्याधीनत्व- २५ मान्तम्। गुरोः कर्मशेषेण जपेत् । गुर्वभावे तत्पत्न्यै वृत्तिः । तद्भावे तद्पत्यवृत्तिस्तद्भावे वृद्धे सबह्मचारिण्यमौ वा। एवंवृत्तो बह्मलोकमवामौति जितेंद्रियः" इति। तत्रोपकुर्वाणप्रकरणे यदुक्तमग्रींधनभैक्षाचरणादि तन्नेष्ठिकस्यापि भवतीत्यर्थः । कर्मशेषेण गुरुश्रुषातिरिक्ते काले वेदं जपेत्। एवं वृत्तं यस्य सः एवंवृत्तो । ब्रह्महोकमवाप्नोति स चेज्जितेद्रियः । स च मनुना दर्शितः (२।९८)—

''हुत्वा स्प्रष्ट्वा च द्रष्ट्वा च श्रुत्वा घात्वा च यो नरः।न हृष्याति ग्लायति वा स विज्ञेयो जिर्तेद्रियः''॥इति। स एव (२।१८१)—

"स्वमे सिक्त्वा ब्रह्मचारी द्विजः शुक्रैमकामतः। स्नात्वाऽर्कमर्चियत्वा त्रिःपुनमामित्यृचं जपेत्॥ "एकः शयीत सर्वत्र न रेतः स्कंदयेत्कचित्। कामाद्धि स्कंद्यौन्रेतो हिनस्ति व्रतमेव तत्॥ (१८०) "एकाद्शेदियाण्याहुर्यानि पूर्वे मनीषिणः। तानि सम्यवप्रवक्ष्यामि यथावद्नुपूर्वशः॥ (८९) अप्

१ **स-**सिक्ता। २ क्ष-क्ल। ३ क्ष-येद्रे।

"श्रोत्रंत्वक् चक्षुवी जिव्हा नासिका चैव पंचमी । पायूपस्थौ हस्तपादौ वाक्चैव द्शमी स्मृता॥(९०)

" बुद्धीदियाणि पंचेषां श्रोत्रादीन्यनुपूर्वज्ञः । इमीदियाणि पंचेव पाय्वादीनि प्रचक्षते॥ (९१)

" एक। दशं मनो ज्ञेयं स्वगुलेनो भयात्मक्य। यस्मिन् जिते जितावेतौ भवतः पंचकौ गणौ॥ (९२)

" इंद्रियाणां ^१हि चरतां विषयेष्वपहारिषु । संयमे यत्नमातिष्ठेद्विद्वान्यंतेव वाजिनाम् ॥ (८८)

५ ''इंद्रियाणां प्रसंगेन दोषमुच्छत्यसंइ। संनियन्य तु तान्येव ततः सिद्धिं निगच्छति"॥(९३)इति। संवर्त्तः—

"ब्रह्मचारी तु यः स्कंदेत्कामतः शुक्कमात्मनः । अवकीर्णिवतं कुर्यात्स्नात्वा शुद्धेद्कामतः " ॥ कामतः बुद्धिपूर्वकिमित्यर्थः । बोधायनः (२।२।२९-३२)——" यो ब्रह्मचारी स्त्रियमुपे-यात्सोऽवकीर्णी । स गर्दभं पशुमालभेत । नैर्ऋतः पशुः पुरोडाशश्च रक्षोदेवतो यमदेवतो वा । शिश्वा-

१० त्याशित्रमप्त्ववद्गनेश्वरतीति विज्ञायते" इति । नैकत इति पशुः पुरोडाशश्च निर्कतिदेवतः रक्षोवेदवतः। यमदेवतो वा। यहैवत्यः पशुस्तहैवत्यः पुरोडाश इति पिरभाषासिद्धस्यानुवादः। प्राशित्रं शिश्रावयवाद्गात्वयं हृदयायवयवमप्तु प्रचरितव्यं अन्यक्षौकिकेऽग्नौ कर्तव्यमित्यर्थः। विसिष्ठस्तु— (२६१८-२) " ब्रह्मचारी चेत्हित्रयमुपेयाद्रणये चतुष्पथे लौकिकेऽग्नौ रक्षोदैवैत्यं गर्दभम्मालभेत्। तेन नैक्ततं वा चर्रं निर्वपेत् इति । आपस्तंवः (११२६१८-९)—"गर्द्भेनावकीणीं १५ निर्कतं पाक्यश्चेन यजेत। तस्य शृदः प्राश्नीयात्" इति । पाक्यश्चेन स्थालीपाकविधानेन । तस्य

१५ निकेत पाक्यज्ञन यजत । तस्य ज्रूडः प्राक्षीयात्" इति । पाक्यज्ञन स्थालीपाकविधानेन । तस्य गर्दभस्य । सैर्पियं हविरुच्छिष्टं ज्रूडः प्राक्षीयात्तेन सिर्पिष्मता बाह्मणं भोजयेदित्यस्यापवादः । अत्र मनुः (२१:११८)—

" अवकीणीं तु काणेन गर्दभेन चतुष्पथे। पाकयज्ञविधानेन यजेत निर्कतिं निशि " ॥ इति । हारीतः — अवकीणीं निर्कत्ये चतुष्पथे गर्दभं पशुमालभेत पाकयज्ञेन धर्मेण भूमौ पशु-

३० पुरोडाशश्रपणमवदानैः प्रचर्याज्यस्य जुहोति कामावकीणोंऽस्मि कामकामाय स्वाहेति "। गौतमस्तु (२२१९७-१९)—"गर्दभेनायकीणों निर्कतिं चतुष्पये यजेत्। तस्याजिनमूर्ध्ववालं परिधाय लोहितपात्रः सत गृहानमैशं चरेत्कमीऽऽचञ्चाणः। संवत्सरेण शुध्येत् " इति। तस्यैव गर्दभस्याजिनमूर्ध्ववालमुपरिलोम वसित्वा पाँकेन लोहितं मृन्मयं पात्रं हस्ते गृहीत्वा अवकीणिने महां भिक्षां देहीति स्वकर्माऽऽचञ्चाणः सप्तमु गृहेषु भैक्षं चरेत्संवत्सरमेतद्वतं २५ चरन्द्वद्धो भवतीत्यर्थः। तथा च मनुः (११।१२३)—

"तेभ्यो ठब्धेन भैक्षेण वर्त्तपश्चेक शास्त्रिकम् । उपसृश्तां स्त्रिषवणमब्देनैकेन शुध्यति "॥ संवर्त्तोऽपि—

" ब्रह्मचारी तु यो गच्छेत्स्त्रियं कामप्रपीडितः । प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रमेकमव्दं समाहितः ॥ " निर्वपेच पुरोडाञ् ब्रह्मचारी तु पर्वणि । मंत्रैः शाकलहोमीर्थेरग्रावाज्यं च होमयेत्"॥ इति । ३. शांडिल्यः—

"अवकीणीं दिजो राजा वैश्यश्वापि खरेण तु। इष्ट्रा भैक्षासनो नित्यं शुध्यत्यब्दात्समाहितः"॥इति। इदं च वार्षिकं वेश्यागमनविषयस्। यदाहतुः शंखांळाखितौ— "गुप्तायां वेश्यायामवकीणीः संवत्सरं त्रिषवणमनुतिष्ठेत्क्षत्रियायां दे वर्षे ब्रह्मण्यां त्रीणि वर्षाणि " इति। शिष्टं ब्रह्मचारिन्यमातिक्रमशयश्चित्तं तत्प्रकरणे वक्ष्यते। इति नैष्टिकधर्मादिनिक्षणणम् ॥

अथ स्नातकधर्माः । तत्र मनुः (४।३३-३६)—

34

१ विचरतामिति मुद्भितपाठः । २ क्स-देवतं । ३ खाग-सर्वं मिश्रितं । ४ क्स-सिका। ५ ख-यावके । ६ ख-वै ।

```
"राजतो धनमन्विच्छेत्संसीदन् स्नातकः श्रुघा। याज्यांतेवासिनोर्वोऽपि न त्वन्यत इति स्थितिः॥
" न सीदेत्स्नातको विप्रः क्षुधा शक्तः कथंचन । न जीर्णमलबद्दासा भदेच्च विभवे सित ॥
" क्कत्तकेशनखश्मश्रुर्धीतशुक्कांबरः शुन्तिः । स्वाध्याये चैव युक्तः स्यान्नित्यमात्महितेषु च ॥
"वैणवीं धारयेयष्टिं सोदकं च कमंडलुन्। यज्ञोपवीतं वेदं च शुमे राक्ष्मे च कुंडले "॥ इति।
वेदो दर्भपुंजः। व्यासः--
" वैणवीं धारयेद्यष्टिमंतर्वासस्तथोत्तरम् । थज्ञोपवीतद्वितयं सोद्कं च कमंडलुष् ॥
" छत्रं चे ष्णीषममलं पाहुके चाप्युपानही । रौक्मे च कुंडले वेदं कुत्तकेशनसः शुचिः॥
" स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद्वहिर्माल्यं च धारयेत् । शुक्कांबरधरो नित्यं सुगंधः प्रियदर्शनः"॥
स्मृतिरत्ने-
       " घौतवस्त्रेमीधपुष्पैः आलनेर्दतधावनैः । श्रीकामी भूषणादैश्व स्वराक्तचा भूषयेत्तनुम्" ॥ ९०
वोधायनः ( १।२।२-६ )-" अंतर्वास्युत्तरीयं वैणवं दंडं धारयेत्सोदकं च कमंडलुं द्वियज्ञो-
पवीत्युष्णीषमजिनं कृतोपानहाँ छत्रं च " इति । गौतमः ( ९।२-३ )-" स्नातकः । नित्यं
शुचिः सुगंधिः स्नानशीलः " इति । सुगंधत्वविधानादेव निर्मधमाल्यनिषेधः । तथा च
गोभिलः-" नागंधां स्रजं धारयेदन्यत्र हिरण्यस्रजः " इति । वृद्धवसिष्ठः-
" चौलवत्सकलं याह्यं स्नातकर्मणि भूपते । शुभे षष्ठे वासरं च चरेतु स्नातकव्रतम्॥
                                                                                          94
" समिद्भिर्यज्ञवृक्षोत्थैर्यद्वा वीहियवादिभिः। अग्निं यजेबाहितिभिर्यद्वा मंत्रेस्तु ज्ञाक्छैः॥
" तीर्थसेवी मिताहारी त्यजेद्षांगमैथुनम् । स्मरणं कीर्तनं केश्विभ्रशां गृह्यभाषणम् ॥
" संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रिया निर्वृत्तिरेव च । एतन्मेथुनमष्टांगं प्रवदंति मनीषिणः " ॥ इति ।
काठकगृह्ये---
" विवाहदिवत्सापूर्वे तिहने स्नानमाचरेत् । विवाहदिवसायस्ताद्भवेतु स्नातकव्रतम् ॥
                                                                                          २०
" विवाह दिवसे कुर्वन्नै कुर्यातीर्थसेवनम् । न च शाक छहोमो अस्ति तदा नक्षत्र इर्शनात् ॥
" रात्रावेवोद्वहेत्कन्यां न स्नानं दिवसे दिवा " इति । संग्रहे—
"स्नातस्तुपयमाद्वीङ्मृतो याति न सद्गतिम् । तस्मादासञ्जववाद्यः स्नातकर्म समाचरेत् "॥
दक्ष:- "अनाश्रमी न तिष्ठेत दिनमेकै अपि द्विजः। आश्रमेण विना तिष्ठन्प्रायश्चित्तीयते हि सः "॥
इति । स्नातकधर्माः ॥
                                                                                          २५
       अथ विवाहः । अत्र विष्णुः---
       " वेदानधीत्य यत्नेन पाठतो ज्ञानतस्तथा । समावर्तनपूर्व तु लक्षण्यां स्त्रियमुद्धहेत् "॥
मनुः (३।४)---
"गुरुणाऽनुमतः स्नात्वा समावृत्तो यथाविधि । उद्दहेत द्विजो भार्यी सवर्णी लक्षणान्विताम्" ॥
अथ कन्यालक्षणम्।
"नोद्वहेत्कपिलां कन्यां नाधिकांगीं न रोगिणीम्।नालोमिकां नातिलोमां न वाचालां न पिंगलाम्॥(८)
कपिलां केशाक्षिभ्यां पिंगलां त्वचा ।
" नर्क्षव्रक्षनदीनाम्नी नान्त्यपर्वतनामिकाम् । न पश्यिहिप्रेष्यनाम्नी न बिभीषणनामिकाम् ॥ (९)
```

"अञ्यंगांगीं सौम्यन।म्नीं हंसवारणगामिनीम् । तनुरोमकेशद्शनां मृद्वंगीमुद्वहेत्स्त्रियम् (१०)"॥

यमः---

१ क्ष-र्या । २ कग-क्षणमात्र ।

"इस्वा दीर्घा कुशा स्थूला पिंगाक्षी गौरपांडरा। न पूज्या न च सेव्या सा पतिमृत्युकरी यतः"॥ नारदः—

" दीर्चकुत्सितरोगार्त्ता व्यंगा संस्पृष्टमैथुना । धृष्ठाऽन्यगतभावा च कन्यादोषाः प्रकीर्तिताः" ॥ व्यासः—

- ५ ''न श्मश्रुव्यंजनवर्ती न चैव पुरुषाकृतिम्। न घर्घरस्वरां शामां तथा काकस्वरां न च ॥
 '' नानिबद्धेक्षणां तद्दद्ताक्षीं नोद्देद्द्यः ॥
 - " यस्याश्च रोमशे जंघे गुल्फौ यस्यास्तथोन्नता । गंडयोः कूर्पकौ यस्या हसंत्यास्तां च नोद्दहेत्॥ " नातिरूक्षैच्छविं पांडुकरजामरुणेक्षणाम् । आ पीनहस्तपादां च न कन्यामुद्दहेद्वधः ॥
 - " न वामनां नातिदीर्घां नोद्दहेत्संहतभ्रुवम् । न चातिच्छिद्रद्शनां न करालमुखीं नरः ॥
- १० " पार्ष्णिस्थूलां रोमशीलां यमलां श्यावदंतिनीम् । सन्नतभूलतां चैव पिंगलाक्षीं च नोद्वहेत् ॥ "बंधुहीना च या कन्या या कन्या चैव जन्मतः। रोगिणी वंशहीना च तां कन्यां परिवर्जयत् ॥ "नातिकेशामकेशां वा नातिकृष्णां च पिंगलाम्। निसर्गतोऽधिकांगां वा न्यूनांगां वाऽपि नोद्वहेत् ॥ "नाविशुद्धां सरोमां वा कुञ्जां वाऽपि न रोगिणीम्। न दुष्टां दुष्टवाक्यां वा विहीनां पितृमातृतः"॥ इति शातातपः—
- 9५ " हंसस्वरां मेघवर्णा मधुर्पिगललोचनाम् । तादृशीं वरयेत्कन्यां गृहस्थः स्वयमेघते" ॥ सवर्णोदृाहे नियममाह **मतुः** (२।५)—
 - " असिपण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः । सा द्विजानां प्रशस्ता स्त्री दारकर्मण्यमैथुनी " ॥ अमैथुनी अक्षतयोनिः । असिपण्डा समान एकः पिण्डो देहो यस्याः सा सिपण्डा । न सिपण्डा असिपण्डा । सिपण्डा । स
- २० वयवान्वयेन पित्रा सह सपिण्डतः । एवं पितामहादिभिरपि पित्रादिद्वारेण एकश्ररीरावयवान्वयात्। एवं मातृशरीरावयवान्वयेन मात्रा । एवं मात्रामहादिभिरपि मात्रादिद्वारेण । तथा मातृ-ष्वसृमातुलादिभिः पितृव्यपितृष्वस्नादिभिरपि एकश्ररीरावयवान्वयात् । तथा पत्युः सह पतन्या एकश्ररीरारम्भकतया। एवं भ्रातृभार्याणामपि परस्परभेकश्ररीरारब्धेः सहैकश्ररीरारम्भकत्वेन । एवं यत्र यत्र सपिण्डशब्दस्तत्रतत्र साक्षात्यरंपरया वा एकश्ररीरान्वयो वेदितव्यः । एकश्ररीरान्वयश्च
- ें श्रुतितोऽवगम्ये "आत्मा हि जज्ञ आत्मन " इति ' प्रजामनुप्रजायसे " इति च । तथा गर्भोपनिपदि-"एतत्वाट्कोशिकं शरीरं। त्रीणि पितृतस्त्रीणि मातृतः। अस्थिस्नायुमज्जानः पितृतः। एवं त्वङ्गांसरुधिगणि मातृतः" इति । " अङ्गादङ्गात्संभवासि प्रजायस्व प्रजया। तत्रायं जायते स्वयम्" इति च । आपस्तम्बः (२।२४।२)—"स एवायं विरुद्धः पृथक्प्रत्यक्षेणोपलभ्यते" इति ।

निर्वाप्य पिण्डान्वयेन तृ सापिण्डचे मातृसंताने श्रातृपितृव्यादिषु च सापिण्डचे क न स्यात् । समुदायशक्तचार्ङ्गाकारेण रूढिपरिमहे अवयवशक्तिस्तव तत्रावगम्यमाना परित्यका स्यात् " इति । विज्ञानेश्वरीये (पृ. ६२ पं २१-३०; पृ १३; पं १-५) । स्मृतिचंदिकायां तु (पृ. ६७ प.११) "एकस्यां पिण्डदानिकयायां दातृत्वेन पिण्डभाक्त्वेन हेपभाक्त्वेन वाऽनुप्रविष्टानां भवति सापिण्डचम

"लेपभाजश्चतुर्थां **याः पित्रायाः पिण्डभागिनः। पिण्डदः सप्तमस्तेषां** सापिण्डचं सप्तपूरूषम्"॥ इति

स्मृतेः । न च निर्वाप्य पिण्डापेक्षया सापिण्डचवर्णने अतृपितृव्यादिषु सापिण्डचं न स्यादिति शङ्कनीयम्। एकोद्देश्यावछेदेनैकिकियान्ववित्वसंभवात् " इत्यभिहितम्। अत्र सार्वभौमः—

"एकोहेक्यावच्छेदेन एकिकयान्वयिनःसपिण्डा इत्यभिवानेन आतृपितृव्यादिसापिण्ड्य-सिद्धावपि स्वसृद्धहितृमातृष्वसृमातुरुतद्गृहितॄणामेकिकियान्वयित्वाभावेन सापिण्ड्यं न स्यात् । ततश्च पञ्चमात्सप्तमादित्यादिवचननिचयस्य वैयर्थ्यं स्यात् । अतो लेपभाजश्चतुर्थाद्या ५ इत्युक्तं सापिण्ड्यम् ।

" अनन्तरः सिपंडो यस्तस्य तस्य धन भवेत् " "पुत्राभावे सिपण्डा मातृसिपण्डाः शिष्याश्च द्युः" । इति मनुगौतमायुक्तद्।यभावता ध्वदेविककर्तृत्विविषयमिति एकश्ररीरावयवान्वयद्वारेण साक्षात्पारंपर्येण वा सापिंड्यवर्णने सर्वत्र सर्वस्य यथाक्रथंचिद्नादेश संसारे तत्संभवादिति योऽतिप्रसंगः संभवित स दोबो मन्बादिवचनैः परिहर्तव्यः । तथा च मनुः (५१६०)— १

" सपिण्डता तु पुरुषे सप्तमे विनिवर्तते"। गौतमः (४।१।३)—''गृहस्थः सद्दर्शो भार्यी विदेतानन्यपूर्वी यवीयसीम् । अस्पानप्रवरैर्विवाहः । ऊर्ध्व सप्तमात्पितृवंधुभ्यो बीजिनश्च मातृ-बन्धुभ्यः पश्चमात् " इति ।

शङ्खश्च-" दारानाहरेत्सदृशानसमानार्षेयानसंबंधानसप्तमात्पितृमातृबन्धुभ्यः " इति ॥

वसिष्ठश्च (८।१-२)- "असमानार्षेयामस्पृष्टमेथुनामवरवयसी भार्यी विदेत । पश्चमी १५ मातृबन्धुभ्यः सप्तमी पितृबंधुभ्यः" इति । अतीत्येति होषः ।

यदाह पेठीनसिः—" असमानार्षेयां कन्यां पंच मातृतः परिहरेत्सप्त पितृतः" इति । विष्णुरिप (२४।९-१०)" असमोत्रामसमानप्रवरां भार्यो विन्देत । मातृतः पश्चमादूर्ध्वं पितृतः सप्तमात्" इति । याज्ञवल्क्यः (आ. ५२-५३)—

"अविष्कुनब्रह्मचर्यो रुक्षण्यां स्त्रियमुद्दहेत्। अनन्यपूर्विकां कान्तामसपिँडो यवीयसीम् ॥ ३६ "अरोगिणीं आतृमतीमसमानार्षगोत्रजाम्। पञ्चमात्सप्तमादूर्ध्व मातृतः पितृतस्तथा"॥इति । अनन्यपूर्विकां पुरुषान्तरापरिगृहीताम् । कान्तां कमनीयाम् । बादुः मनोनयनेष्टकारि-णीम् । "यस्यां मनश्चश्चषोर्निबन्धस्तस्यामृद्धिः" इति आपस्तंबस्मरणात् (गृ. सू. १।२।२०) । यवीयवसीं वयसा प्रमाणतश्च न्यूनाम् । इति कन्यास्रक्षणम् ।

अथ वधूवरयोर्वयःप्रमाणम् । अत्र बृहस्पतिः—
" त्रिंशद्वर्षो दशाब्दां तु भायी विदेत मानवः । एकविंशतिवर्षो वा सप्तवर्षामवाप्नुयात् " ॥
अङ्गिराः—
" कोशिकां वोष्णविक्तित्र वार्षा प्रकेतवः । प्रकारितियाविकारी कार्षा स्वयोग्य

" वयोधिकां नोषयच्छेद्दीर्घा कन्यां स्वदेहतः । स्ववर्षाद्वित्रिणचादिन्यूनां कन्यां समुद्देहेत् " ॥ विष्णुः—

"वर्षेरेकगुणां भार्यामुद्धहेत् त्रिगुणो वरः । ज्यष्टवर्षो उष्टवर्षा वा वयोमात्रावरा च या "॥ ३० वयोमात्रावरा च येत्युक्तेर्द्धिंज्यादिकतिपयमासैकता नोद्दाह्या । नारदैः—
"हीनाङ्गामधिकाङ्गां च वराद्दीर्घां वयोधिकाम् । नोपेयाद्रोगिणीं नारीं दीर्घमायुर्जिजीविषः"॥ इति । अरोगिणीं "वातगुल्मारुमरीकुष्ठमहौद्रभगंद्रगः । अर्शिस ग्रहिणीत्यष्टौ महारोगाः प्रकीर्तिताः" इत्युक्तमहारोगरहिताम् । भ्रातृमर्ता पुत्रिकाकरणभयात् । यदाह मनुः (२।११)—

१ आ. ९ १ळो. १८७ । र आ. १५ सू. ११ । ३ क-व्यासः । ४ क्स-गर्भिणी ।

"यस्यास्तु न भवेद्धाता न विज्ञायेत वा पिता। नोषयच्छेत तां कन्यां पुत्रिकाधर्मशंकया "॥ अनेन न पितुः संकल्पमात्राद्यपि पुत्रिका भवतीति गम्यते। अत एव गौतमः (२८।१७)— "अभिसन्धिमात्रात्पुत्रिकेत्येके" इति। सा च कथं पुत्रिका भवतीत्यपेक्षिते मनुराह (९।१२७)— "अपुत्रोऽनेन विधिना सुतां कुर्वीत पुत्रिकाम्। यद्पत्यं भवेद्स्यां तन्मम स्यात्स्वधाकरम्"॥इति। ५ वसिष्ठोपि (१७।१७)—

"अश्रातृकां प्रदास्यामि तुभ्यं कन्यामलंकृताम् । अस्यां यो जायते पुत्रः स मे पुत्रो भवेदिति"॥ इयमेव मे पुत्र इति वा । एतच्चाग्रे वक्ष्यते । असमानार्षगोत्रजाम् । आर्षः प्रवरः गोत्रं प्रसिद्धम् ! समानता नामतो वेदितव्या । गोत्रप्रवरो पृथवपृथवपर्युदासे निमित्तम् । समानार्ष-जामसमानगोत्रजामिति । "परिणीय सगोत्रां तु समानप्रवरां तथेति " च भेदेन स्मरणात् ।

१० बोधायनः—

" एक एव ऋषिर्यावत्प्रवरेष्वनुवर्त्तते । तावत्समानगोत्रत्वमन्यत्राङ्गिरसो भृगोः " ॥ समानगोत्रत्वं समानप्रवरत्वम् । भृग्वंगिरोगणेषु विशेषमाह स्त एव—

" झार्षेयसंनिपाते अविवाहस्र्यार्षेयाणां ज्यार्षेयसंनिपाते पञ्चार्षेयाणाम् " इति ।

" अत्र चासपिण्डामित्यनेन पितृष्वसृमातृष्वसृमातुलादिद्विहितृनिषेधः। असगोत्रामित्यने-१५ नासपिंडाया अपि भिन्नसन्तानजायाः समानगोत्राया निषेधः । असमानप्रवरामित्यनेन अस-पिंडजाया असगोत्राया अपि समानप्रवराया निषेधः । यथा यास्कवाधूलमौनमोकानां गोत्रभेदेऽपि तेषां भार्गवदीतहृष्यसावेदसेति समानप्रवरत्वम् ।

" पंचमात्सतमादृध्वीमिति मातृतः मातृसंताने पंचमादृध्वी पितृतः पितृसंताने सप्तमादृध्वी सापिण्ड्यं निवर्तते" इति शेषः । अतश्चायं सापिण्डशब्दोऽवयवशक्तया वर्तमानः पङ्कजादि२० शब्दविश्यतविषय एव । तथा च पित्राद्यः षद् सापिण्डाः । पुत्राद्यश्च षद् आत्मा च सप्तमः । संतानभेदेऽपि यतः संतानभेद्स्तमादाय गणयेत् । यावत्सप्तम इति सर्वत्र योजनीयम् । सिपिण्डसमानगोत्रसमानप्रवरासु सुभार्यात्वमेव नोत्पचते । रोगिण्यादिषु तु उत्पन्नेऽपि भार्यात्वे हृष्टविरोध एवेति विज्ञानेश्वरेणोक्तम् (ए. १३ पं. २५–२६) । "अप्रतानां तु स्त्रीणां सापिण्डचं त्रिपुरुषं विज्ञायत " इति (४।१८) वसिष्ठवचनमाशौचे विषयमिति विज्ञाने२५ श्वरादिभिर्निर्णीतम् (प्रा. ए. १८१) मातृगोत्रजामपि अपरिणेयां केचिदिच्छान्ति

"मातुरुस्य सुतामूद्वा मातृगोत्रां तथैव च । समानप्रवरां चैव गत्वा चान्द्रायणं चरेत् "॥ इति शातातप्रस्मरणात् । " सगोत्रां मातुरप्येके नेच्छन्त्युद्दाहकर्माणि " इति व्यास्तरणाचिति । मातृगोत्रामिति गोत्रमहणं सपिण्डपर्मित्यन्ये । अखण्डादर्शे— "कूटस्थमंतराले स्थाप्य तमादायान्योन्यगणने सित पितृपक्षे सप्तपुरुषानतीत्य या कन्या विवाहेच्छोः पुरुषस्याष्टमी भवति । सा विवाह्या । तथा मातृपक्षे कूटस्थमारभ्यान्योन्यगणने सित पञ्चपुरुषानतीत्य विवाहेच्छोः पुरुषस्य षष्टी भवति सैव विवाह्याऽस्य " इति । एवं च बहुस्मृतिसंमतत्त्वात्पञ्चमात्सप्तादूर्ध्वमेव विवाहः न ततोऽर्वागिति स्थितम् । तथा च नारदः (१२।७)—

"पञ्चमात्सप्तमादर्शक् बन्धुभ्यः पितृमातृतः । अविवाह्या सगोत्रा च समानप्रवरा तथा" ॥विष्णुः"पञ्चमात्सप्तमाद्धीनां यः कन्यामुद्दहेद् द्विजः । गुरुतल्पी स विज्ञेयः सगोत्रां चैवमुद्दहन्"॥इति।
34 यत्तु-"पञ्चमीं मातृपक्षातु पितृपक्षातु सप्तमीम्। गृहस्थ उद्दहेत्कन्यां न्याय्येन विधिनोत्तमाम्"॥

इति ट्यासवचनं तत् पञ्चमीं सप्तमीमतीत्योपरितनामुद्दहेदित्येवं परम् । अत एव मरीचिः-"पञ्चमे सप्तमे चैव येषां वैवाहिकी किया। क्रियापरा अपि हि ते पतिताः जूदतां गताः"॥इति। मनुः (११।१७१-१७२)—

"पैतृष्वसेयीं भगिनीं स्वस्रीयां मातुरेव च । मातुश्च भ्रातुराप्तस्य गत्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥ "एतास्तिस्रस्तु भार्यार्थे नोपयच्छेत बुद्धिमान् । ज्ञातित्वेनानुपेयास्ता पतितो ह्यपयन्नरः"॥ ५ ट्यासः ()—

" जन्मनाम्नोरिवज्ञान उद्देहद्विशंकितः। मातुः सिपण्डा यत्नेन वर्जनीया द्विजातिभिः॥ "तृतीयां मातृतः कन्यां तृतीयां पितृतस्तथा। शुल्केन चोद्दहिष्यन्ति विप्राः पापविमोहिताः"॥इति। मातृतः मातृपक्षे तृतीयां मातुलसुतां पितृतः पितृपक्षे तृतीयां पेतृष्वसेयीमित्यर्थः। शातातपः— " समानप्रवरां कन्यामेकगात्रामथापि वा। विवाहयति यो मूढस्तस्य वक्ष्यामि निष्कृतिम्॥ १० "उत्मुज्य तां ततो भार्यां मातृवत्परिपालयेत्। कृत्वा तस्याः समुत्सर्गमतिकृच्छ्रं विशोधनम्"॥इति। "गायत्रीं यस्य यो द्यायो वा द्यादिमां द्विजः। तद्गोत्रे तत्कुले वाऽपि विवाहं नैव कारयेत्"॥ आपस्तंवः—

'' समानप्रवरां कन्यां सगोत्रामुपगम्य च । तस्यामुत्पाद्य चण्डालं ब्राह्मण्यादेव हीयते''॥ इति । कल्पसारे—

"अमत्योढा सगोत्रा चेन्मातृबद्धिभृयातु ताम्। चान्द्रायणं चरित्वाऽन्यामुपयच्छेत कन्यकाम् ॥

" कुच्छ्राब्दपादं कुर्वीत प्रजाता यदि सा भवेत् । भिन्दाहुती द्वे जुहुयात्तस्यान्ते चिरतवतः ॥

" तस्यां प्रसूते निर्दोषः काश्यपो गोत्रतः स्पृतः । ऊढा चेत् बुद्धिपूर्वं स्याद्धुरुतल्पसमं चरेत् ॥

" तस्यां प्रसूतश्चण्डातः सर्वकर्मबहिष्कृतः ॥ " इति । स्मृत्यर्थसारे—

" यदि कश्चित् ज्ञानतस्तां कन्यामूद्वोपगच्छति। गुरुतत्पवताच्छद्धो गर्भस्तज्ञोऽन्त्यतां वजेत् ॥ ३० " भोगतस्तां पित्यज्य पालयेजजननीमिव। अज्ञानाचेदैन्दवेन शुध्येद्गर्भस्तु कारुयपः"॥इति। आपस्तंबैः (२।१९१५-१६)-"सगोवाय दुहितरं न प्रयच्छेन्मातुश्च योनिसंबन्धेभ्यः"॥इति। कात्यायनः " प्रवरैरेषामविवाहः " इति । माधवीये पराहारोऽपि—

" पितुः पितृष्वसः पुत्राः पितुर्मातृष्वसः सुताः । पितुर्मातुरुपुत्राश्च विज्ञेयाः पितृत्रान्थवाः ॥ " मातुः पितृष्वसः पुत्राः मातुर्मातृष्वसः सुताः । मातुर्मातुरुपुत्राश्च विज्ञेया मातृवान्धवाः ॥ २५ " विवाहो नैष्यते तत्र पितुर्मातुश्च बन्धुषु "॥

सुमन्तुः—" पितृष्वसृसुतां मातृष्वसृसुतां मातृलसुतां मातृसगोत्रामुद्दाह्य चान्द्रायणं चरेत्। परिष्वज्येनां विभृयात् " इति ।

पैठीनसिः— ''पितृमातृष्वसृद्धहितरो मातुलसुता धर्मतो भगिन्यस्तां वर्जयेत् '' । स एव— ''उद्दहेत सगोत्रां तु तनयां मातुलस्य च। ऋषिभिश्चेव तुल्योऽपि स तु चान्द्रायणं चरेत्''॥ इति । ३०

गौतमः (२१।१-२)-"ब्रह्महा सुरापी गुरुतल्पगो मातृपितृयौनिसंबन्धागस्तेननास्तिक-निंदितकर्माभ्यासिपतितात्याग्यपतितत्यागिनः पतिताः। पातकीसंयोजकाश्च " इति ।

चान्द्रिकायाम् (आ. ६७२ पं. १८)—

"स्त्रीसंतितस्तथा पुंसां न विवाह्य उभे मते । स्त्रीपुंसोस्तु विवाह्या स्यात्पश्चमात्सप्तमात्परम्॥" इति ।

१ स- शंसः।

'चतुर्थीमुद्धहेत्' इत्यादीनि अर्वाग्विवाहपराणि वचनानि विजातीयविषयाणि । यथाह राङ्खः—

"यद्येकजाता बहवःपृथक्क्षेत्राः पृथक्जनाः। एकपिण्डाः पृथक्शौचाः पिण्डस्त्वावर्त्तते त्रिषु॥"इति। एकस्माद्याह्मणादेर्जाताः पृथक्क्षेत्राः भिन्नजातीयासु स्त्रीषु जाता ते पृथक्जनाः । समान-प् जातीयासु भिन्नासु स्त्रीषु जातास्ते एकपिण्डाः सपिंडाः। किंतु पृथक् शौचाः शौचप्रकरणे वश्यते । पिण्डस्त्वावर्त्तते त्रिष्विति त्रिपुरुषमेव सापिण्डचमित्यर्थः । तथैव चतुर्थीविवाहः क्षत्रियविषय इति व्यक्तमुक्तवान् । अस्वण्डाद्रश्वारः—

" त्रीनतीत्य मातृतः पंचातीत्य पितृतः" इति **पैठनसिवचनं** क्षत्रियाविषयमिति व्याख्येयम् इति ।

९० "तृतीयात्क्षित्रयो मातुः पश्चमात्पितृतः पराम् । समुद्दहेत्सवर्णी तु पश्चमात्सप्तमात्पराम्'॥ इति कण्ववचनवलात् 'त्रीनतीत्य मातृतः ' इति **पैठीनसि**वचनं क्षत्रियादिविषयमिति वरदराजीये निर्णीतम् । विज्ञानेश्वरीयेऽपि (ए. १४ पं. ७५) यदपि वसिष्ठेनोक्तम्—

"पञ्चमीं सप्तभी चैव मातृतः पितृतस्तथेति " यद्पि " त्रीनतीत्य मातृतः पञ्चातीत्य पितृतः"इति पेठीनसिनाऽपि अर्वाङ्किषेधार्थं न पुनस्तत्प्रात्त्यर्थमिति सर्वस्मृतीनामितिरेधः। एतच्च १५ पंचमात्सप्तमाद्रुर्ध्वं मातृतःपितृतस्तथेति वचनं समान जातीये द्रष्टव्यम्। विजातीये तु "यद्येकजाता बहव" इति दाङ्खवचनात् त्रिपूरुषमेव सापिण्डचिमिति सार्वभौमीये। चतुर्थ्यादिविवाहे प्रवर्त्त-मानस्य छोकस्य आन्तिरेव मूलम्। विजातीयविषयस्य चतुर्थीमुद्दहेदित्यादेः सजातीयविषय-त्वावगमात्। अन्धपरंपरा वा नान्यत्विं चित्रमूलम्। यदि कथंचित्विं चिद्वचनं कृच्छूल्ब्धं तथापि "मन्वर्थविपरीता तु या स्मृतिः सा न इत्यते। एकतः सर्वमुनयो याज्ञवल्क्यस्तथैकतः॥

२० " यहुक्तवान्धर्मशास्त्रं तत्प्रमाणं प्रमीयताम् " इति मनुयाज्ञवल्क्यादिप्रवलस्मृतिविरोधेन तदेव त्याज्यम् । एवं शास्त्रविरोधे लोकाचारश्च त्याज्यः । तथा कात्यायनः— " स्मृतेवेदविगोधे तु परित्यागो यथा भवेत् । तथैव लौकिकाचारं स्मृतिबाधात्परित्यं नेत्॥ "

विसिष्ठोऽपि (१।४-५)—" श्रुतिस्मृतिविहितो धर्मस्तद्लाभे शिष्टाचारः प्रमाणम् " इति । शास्त्रविरोधे शिष्टाचारो न प्रमाणमित्यर्थः । तथा गौतमः (११।२०)—

२५ " देशजातिकुलधर्मा आम्नायैरिविरुद्धाः प्रमाणम्" इति । तदेवमुसवर्णासु नारीषु विवाहश्च द्विजानितिरिति कलावसवर्णाविवाहिनिषेधान्मनुयाज्ञवल्कयादिभिः पञ्चमात्सप्तमादूर्ध्वमेव विवाहनिषेधान्मनुयाज्ञवल्कयादिभिः पञ्चमात्सप्तमादूर्ध्वमेव विवाहनिष्यानात्तद्वीववातित्यादिप्रत्यवायस्मरणाच्च पञ्चमात्सप्तमाद्वीग्विवाहो निन्दितः । सपत्नीमातुः मातुः मातुत्विनरूपणम् । एवमाऽपञ्चमात्सपत्नीमातृबन्धुवर्गोऽपि परिहार्यः। तत्रैकशरीरावयवान्वयलक्षणसापिङ्याभावेऽपि अतिदेशे न सापिण्ड्यासिन्देः । तथा सुमन्तुः—" पितृपत्न्यः । सर्वा मातरस्तद्भातरो मातुलास्तत्स्वता मातुलसुतास्तत्स्वसारश्च मातृष्वसारस्तत्सुता मातृस्वसृसुता-

स्तद्दुहितरश्च भगिन्यस्तद्पत्यानि भागिनेयानि तस्मात्ता नोपयन्तव्याः । अन्यथा संकरकारिकाः स्युः" इति । स्मर्यते चापि सापिण्डचम् । "एकत्वं सा गता भर्त्तुः पिंढे गोत्रे च सूतके" इति ।

" भर्तुः पत्न्या सहैकशरीरोत्पादकलक्षणसापिण्डचसद्भावाच्च पुत्रादीनां पितृ-शरीरावयावान्वयद्वारेण सपत्नीमातृतत्सपिण्डैः सह भवति सापिण्डचम् । अत्र एव हि भातृतः पितृतस्तथा मातृबन्धुभ्यः पश्चमीं मातृपक्षाच्च इत्यादिषु सामान्येन मातृशब्दाः प्रयुक्तास्तस्मा-ज्जननीवन्धुवर्गवत्सपत्नीमातृयोनिसंबन्धो बन्धुवर्गश्च परिहार्य एव । स्मृत्यन्तरे— "श्रातुस्तु पत्नीभगिनीं तत्सुतां चेव वर्जयेत् । पितुस्तु पत्नी भगिनीं तत्सुतां चेव वर्भयेत्"।इति । एवं सामान्येन पितृशब्दप्रयोगाज्जनकव्यतिरिक्तपितृकुळमपि सप्तमावधि परिहार्यम् । तथा गौतमः (४।२-३)—"असमानप्रवेरिविंशह ऊर्ध्व सप्तमात्पितृबन्धुभ्यो वीजिनश्च" ॥इति । प्रपरक्षेत्रे नियोगाद्वत्पन्नः पुत्र उभयोरपि भवति ।

"अपुत्रेण परक्षेत्रे नियोगोत्पादितः सुतः । उभयोरप्यसी रिक्थी पिण्डदाता च संमतः" ॥ इति याज्ञवरुक्य (वयः ११७) स्मरणात् । " बीजिनः क्षेत्रिगश्चैत ब्यामुण्यायणको हि सः " इति स्मृत्यक्तराच्च । तथा दत्तादीनां ब्यामुण्यायणत्वेन गोत्रद्वयं परिहार्यम् ।

" गोत्ररिक्थे जनयितुर्न भजेइत्रिमः सुतः । जनकस्य तु गोत्रेण द्धुपनीतो द्विगोत्रकः ॥ १०

"उपनेतुर्भजेद्गोत्रमसंप्रज्ञातगोत्रवान् । प्रज्ञातगोत्रस्तु भवेद्गभयं दत्तपुत्रवत् "॥ इति समरणात् स एव उपनयनानन्तरमिति पूर्णसंग्रहे । एतच्चोपनयनानन्तरं दत्तपुत्र-विषयम् । तथा पैठीनसिः "अथ दत्तक्रीतक्वित्रमपुत्रिकापुत्राः परिग्रहेणार्षेण जातास्ते संहता गोत्राद्यामुख्यायणा भवन्ति " इति । अत उभयत्र पञ्चमात्सप्तमाद्वध्वमेव विवाह इति विज्ञानेश्वरीय—(पृ. १४१) अखण्डाद्शीवरद्राजीयादिषु निर्णीतम् । अपरे १५ तु चन्द्रिकाकाराद्य आहुरेकोद्देशावच्छेदेनैकक्रियान्वयित एव सपिण्डता । तथा च मार्कण्डेयः—

" पिता पितामहश्चेव तथेव प्रपितामहः। पिण्डसंवंन्धिनो ह्येते विज्ञेयाः पुरुषास्त्रयः॥
" लेपसंबन्धिनश्चान्ये पितामहपितामहात्। प्रभृत्युक्तास्त्रयस्तेषां यजमानस्तु सप्तमः॥
" इत्येष मुनिभिः प्रोक्तः संबंधः सप्तपूरुषः " इति । एवं च सित मातुलसुतादीनामेकपिंड- २०
क्रियानुप्रवेशाभावेनासपिंडत्वात्तद्दिशहोऽभिमतः । एव 'पंचमानमातृतः ' 'सगोत्रानमातुरप्येके
नेच्छंति' इत्यादिवचनजातं पुत्रिकाकरणविषयम् । आसुरादिविवाहोद्धासंतातिविषयं च। अनयथा
मातुः पितगोत्रत्वेन गोत्रांतराभ।वान्न च भूतपूर्वगत्या मातृसगोत्रत्वं वर्त्तमाने संभवति भूतपूर्वगतेरन्यायत्वात् । पितगोत्रत्वं च

" स्वगोत्राद्धश्यते नारी विवाहात्सतमे पदे । एकत्वं सा गता भर्तुः पिँडे गोत्रेऽथ सूतके " ॥ २५ इत्यादिस्सृतिभ्योऽवगम्यते । पुत्रिकापुत्रस्य मातृगोत्रत्वमाह लोगाक्षिः—

" मातामहस्य गोत्रेण मातुः पिंडोद्किकिया । कुर्वीत पुत्रिकापुत्र एवमाह प्रजापतिः "॥ इति । आसुरादिविवाहविषये **मार्केडयः**—

" ब्राह्मादिषु विवाहेषु याऽनूढा कन्यका भवेत् । धर्तृगोत्रेण कर्तव्या तस्याः पिंडोद् कक्रियाः॥ "आसुराद्विवराहेषु पितृगोत्रेण धर्मवित्"॥ मातृपितृगोत्रेणेत्यर्थः । एवं च पुत्रिकाकरणे आसुराद्दि— ३० विवाहेषु "होमपूर्व तु यो दत्तः स एव जनकस्य च । गोत्रेण विवहेत्तस्य पुत्रादौ न निषेधकृत् ॥

'' दातृगोत्रसमुद्भतां गृहीतृकुळगोत्रजः । उद्दहेदशमाद्व्यं नोद्दहेद्देति **गौतप्रः** ॥

"गायत्रीं यस्य यो द्वाद्यो वा द्वादिमां द्विजः"। तद्गोत्रे तत्कुले वाऽपि च उद्क-पूर्वदानाभावेन स्वितृसापिंड्यस्य सगोत्रत्वस्य च निवृत्तेर्मातुः स्विपत्र।दिसापिंड्यसद्भा-वात्। "असपिंडा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः" इत्यादीनि वचनानि तद्विषयाणि वेदित- ३५

व्यानि । न तु पुत्रस्य मातृसपिंडत्वाचा मातुः सपिंडा सा पुत्रस्यापीति । किमर्थ मातृग्रहणम् । उच्यते । यदा तु पुत्रिकासुतस्यैव मातामहाभ्यां परित्यागस्तदा तत्सापिंडचानिवृत्त्या तत्स-पिंडाया विश्वहपाता तन्मा भूदिति मातृग्रहणम् । एवं दत्तपुत्रादेस्त्यागेनैव पितृगोत्रनिवृत्त्या तत्सगोत्राया विवाहप्राप्तो तन्मा प्रसांक्षीदिति पितृग्रहणमिति त्राह्मादिभिविवाहो निवृत्तपितृ-५ सापिंडचायाः पुत्रस्य मातुलसुतादीनां पञ्चमात्सप्तमाद्वीचीनानामपि परिणयन अभिमतमेव । मःतुरुसतादिविवाहनिषेधवचनानि सर्वाणि आसुरादिविवाहोढापुत्रविषयाणि पुत्रविषयाणि च । मातुरुसुताविवाहानुग्रहकराणि तु ब्राह्मादिविवाहोढाविषयाणीति व्यवस्था । मातुलसुतोद्वाहविषयः। तत्र नारदः—

" तृतीयां मातृपक्षाच्च पंचमीं पितृतस्तथा । विवाहं तु कचि**देशे संकोच्याऽपि सपिंडताम्** ॥ चतुर्थीमुद्देहत्कन्यां चतुर्थः पंचमीमिप । षष्ठीं तु ने।द्दिहत्कन्यां पंचमो न तु पंचमीम् ॥ " वृतीयो वरयेत्कन्यां चतुर्थौ पंचमीं तथा " ॥

षट्त्रिंशन्मते—

- " वृतीयां मातृतः कन्यां तृतीयां पिवृतस्तथा । विवाहयेन्मनुः प्राह पाराशयौँऽगिरा यमः "॥ चतुर्विंशतिमते-
- ९५ " तृतीयां वा चतुर्थीं वा पक्षयोरुभयोरपि। विवाहयेन्मनुः प्राह पाराशर्यों अगिरा यमः" ॥ स्मृतिसारे—
 - " मातुलस्य सुतां केचित्पैतृष्वसृसुतादिकम् । विरहंति कचि**देशे संकोच्याऽपि सपिंडता** ॥ "चतुर्यः पंचमीं कन्यां पंचमीं षष्ठ उद्देत्। चतुर्थीमुद्दहेत्कन्यां पंचमो न तु पंचमीम्॥ " पंचनः पंचमीं कन्यां नोद्दहेदिति यत्स्मृतम् । पितृपक्षे निषेधोऽयं मातृपक्षे न तद्भवेत् " ॥

२० स्मृतिरत्ने —

- " अबद्मचारिदारायैः सार्धभोजनकर्म च । मातुलादिसुतायां च विवाहः शिष्टसंमतः ॥
- '' इत्येते दाक्षिणात्यानामपि गीता उदाहृताः ।
- " समुद्रयानं मांसस्य भक्षणं शस्त्रजीविका ।
- " शीधुपानमुदीच्यानामविगीतानि धर्मतः ''॥

२५ बृहस्यतिः--

- " उद्दः ह्वते दाक्षिणात्यैर्मातु उस्य सुना द्विजैः । मध्यदेशे कर्मकराः शिल्पिनश्च गवाशिनः ॥
- " महस्यादाश्च नराः सर्वे व्यभिचाररताः स्त्रियः। उत्तरे मद्यपा नार्यः स्पृष्ट्या नूणां रजस्वलाः॥
- " अप्रजातां प्रमुद्धांति भावभायामभर्त्त्राम्।।
- " देश जातिकुळाचारधर्माः सत्त्वप्रवर्तिताः। तथैव ते पाळनीयाः प्रजाः प्रक्षुम्यते अन्यथा ॥
- ३० " विरुद्धाः प्रतिदृश्येते दाक्षिणात्येषु संप्रति । स्वमातुलसुतोद्दाहो मातृबंधुत्वदूषिताः ॥
 - " अभर्त्तृकभातृभार्याग्रहणं चातिदूषिते । कुले कन्याप्रदानं च देशेष्वन्येषु हर्यते ॥
 - " इत्थं विरुद्धानाचारान्प्रभूतान्न निवर्त्तयेत् । तथा आत्रीविवाहोऽपि पारसीकेषु दृश्यते ॥
 - " तथैकादशरात्रादौ श्राद्धे भुक्तं तयोद्धिंजैः । तेभ्यः श्राद्धे पुनर्दानं केचिन्नेच्छंति देहिनः ॥
 - " दत्वा धान्यं वसंतेऽन्यैः शरिद द्विगुणं पुनः। भुज्यते बंधकक्षेत्रं प्रविष्टे द्विगुणे धने ॥
- " भज्यते ऽन्यैरप्रविष्टमूल्यं तच्च विरुध्यते ॥

ч

" देशजात्यादिधर्मस्य प्रामाण्याद्विरोधिनः। शास्त्रेणातो नृपः सर्व शास्त्रं दृष्टुा प्रवर्त्तयेत्"॥इति। अतो ब्राह्मादिविवाहेषु निवृत्तसिंद्धभावाया मातुरसिंदिद्धनान्मातुलसुता परिणेया। एवं पेतृष्वः सीय्यपि च। न च तथाविधा मातृष्वसा तद्दुहिता च किमिति न परिणेयेति वाच्यम्। शास्त्रा विरोधेऽपि लोकविरुद्धत्वात् धर्म्यमिषि लोकविद्विष्टं तन्नानुष्ठेयम्। तदुक्तं मनुना—

" अस्वर्ग्य लोकविद्धिष्टं धर्म्यमप्याचरेन्न तु " इति । वराहमिहिरोऽपि—

" देशाचारस्तावदादों विचिंत्यो देशे देशे या स्थितिः सेंव कार्या ।

" लोकविद्विष्टं पंडिता वर्जयांति देवज्ञोऽतो लोकमार्गेण यायात् "॥ इति । दाक्षिणा त्यानां मध्ये आंध्रेषु त्रैवियवृद्धा वेदार्थानुष्ठातारः शिष्टा अपि मातुलादिदृहितृपरिणयनमाचरंति । द्रविडेषु तथाविधाः शिष्टाः चतुर्थ्यादिविवाहमाचरंति । मातृष्यमृदृहित्रादिविवाहं सर्वत्र वर्ज-यंति । उक्तं च तथाचारस्य प्रामाण्यं मनुना "शिष्टाचारस्मृतिवेदास्त्रिविधं धर्मलक्षणम्" इति । ५० " सद्भिराचिरतं यस्माद्धार्मिकैस्तु द्विजातिभिः । तद्देशकुलजातीनामविक्दं प्रकल्पयेत्"॥ इति । आपस्तेवः—

" येषां परंपराप्राप्ताः पूर्वजैरप्यनुष्ठिताः । त एव तैर्न दुष्येयुराचारा नेतरे पुनः " ॥ देवलः—

"यस्मिन्देशे य आचारो न्यायदृष्टस्तु कल्पितः। स तस्मिन्नेव कर्तव्यो देशाचारः स्मृतो भूगोः भा १५

" येषु देशेषु ये देवा येषु देशेषु ये द्विजाः । येषु देशेषु यत्तीयं या च यत्रैव मृतिका ॥

" येषु देशेषु यच्छीचं धर्माचारश्च यादृशः । तत्र तान्नावमन्येत धर्मस्तत्रेव तादृशः ॥ " यस्मिन्देशे पुरे गामे त्रैविचे नगरेऽपि वा । यो यत्र विहितो धर्मस्तद्धर्म न विचालयेत् " ॥ बोधायनः (१।५।१७-२२)- पंचधा विप्रतिपत्तिईक्षिणतस्तथे।त्तरतः। यानि दक्षिणतस्तानि व्याख्यास्यामः । यथैतद्नुपेतेन सह भोजनं श्चिया सह भोजनं पर्युषितभे।जनं मातुल-२० पितृष्वसु इहितृगमनमिति । अथोत्तरत ऊर्णाविकयः शीधुपानमुभयतोदद्भिर्व्यवहार आयुर्धा-यकं । समुद्रसंयानमिति । इतरदितरसमिन् कुर्वन दुष्यति इतरदितरस्मिस्तत्र तत्र देशे प्रामाण्य-मेव स्यात् '' इति । अथमर्थः । दक्षिणतः । दक्षिणेन नर्मदामुत्तरेण कन्यातीर्थम् । अथोत्तरतः । दक्षिणेन हिमवंतमुत्तरेण विंध्यम् । एतद्देशे प्रसूतानां शिष्टानां परस्परं पंचधा विप्रतिपत्तिः विसंवादः । मातुलिपितृष्वसृदुहितृगमनं परिणयनं उर्णायास्तिद्विकारस्य च कंबलादेविंकयः । ३५ उभयतोदतः अश्वादयः । व्यवहारो विकयादि । आयुर्धीयकं शस्त्रधारणम् । समुद्रसंयानं नावा द्वीपांतरगमनम् । इतरद्नुपेतसहभोजनादि इतरस्मिन्नुत्तरापथे कुर्वत् दुष्यति । एवमूर्णाविक्रया-दीनि इतरत्र दक्षिणापथे कुर्वन् दुष्यति। तत्र देशप्रामाण्यमेव स्यादिति। एवं व्यवस्थित-विषयैव मूलश्रुतिः कल्पते । तस्माद्यवस्थितमेवानुष्ठानं तद्दर्जनं चेति । यतु अनन्तरमव बोधायनोक्तं (१।१।२३-२४)— " मिथ्यैतिदिति गौतमः। उभयं चैतन्नाद्रियेत । हष्टस्मृति- ३० विरोधद्र्शनादिते " तन्न । पूर्वीक्तनिराकरणार्थं गौतमग्रहणात् । किंतु दृष्टस्मृतिविरोधद्र्शना-द्गौतमस्य मातृशिषंडापरिणयनमभिप्रेतमिति दर्शयितुमिति चंद्रिकायां व्याख्यातम् । यद्याप्यापस्तंबवचनम् (१।१२।१०-१२) "यत्र तु प्रीत्यपरुब्धितः प्रवृत्तिर्न तत्र शास्त्रमस्ति । तद्तुवर्तमानो नरकाय राध्यति " इति । तद्पि मातृसपिंडामातुलसुतापरिणयनादिविषयं वेदि-तब्यम् । यदिदमपि वसिष्ठस्मरणम्(१।१७) " देशकुलधर्मा आम्नायैरविरुद्धाः प्रमाणम् " इति । ३५

१ **क्षकख**-संधनिकमिति ।

तद्यत्राम्नायिवरेशिभावादनुक् रुमेवानुक् एव चाम्नाथे श्रूयंते "आयाहीन्द्र पिथिभिरीिठिने तिभिर्यज्ञमिमं नो भागधेयं जुषस्व । तृतां जुहुर्मातु रुस्येव योषा भागस्ते वैतृष्वसेयीवपाम् " इति । एहींद्र पिथिभिर्मार्गेरीिठितेभिः प्रशस्तैनीः अस्माकं इमं यज्ञमायाहि आगच्छ । आगत्य च इदमस्माभिः दीयमानं भागधेयं जुषस्व सेवस्व । अतः एते यज्ञमानाः तृप्तामाज्यादिना ५ संस्कृतां पक्षां वपां त्वामुद्दिश्य जुहुः त्यक्तवंतः । अत्र दृष्टांतद्वयम् । यथा मातुरुस्य योषा दृहिता दौहित्रस्य भागः भजनीया परिणेतुं योग्या यथा च पैतृष्वसेयी पौत्रस्य तथाऽयं तव भागो वपाख्य इति मंत्रार्थः । तेन श्रुतितः स्मृतितः आचाराद्यि सिद्धं मातुरुसुतादिपरिणयनमिति स्मृतिचंद्रिकाकारेण देवणभट्टोपाध्यायरन्येरि स्वदेशाचारानुसारिभिर्बुद्धिमद्धिः सम्थितं मातुरुसुतादिपरिणयनम्" । इति । इति मातुरुसुताविवाहविषयकिक्षपणम् ।

१॰ अथ विवाहे वर्जनीयानि कुलान्याह मनुः (३१६-७)—

" महांत्यिप समृद्धानि गो जाविधनधान्यतः । स्त्रीसंबंधे दशैतानि कुलानि परिवर्जयेत् ॥ " हीनिक्रियं निष्पुरुषं निश्छं होरोमशार्शसम् । क्षय्यामयाव्यपस्मारिश्वित्रिकृष्टिकुलानि च "॥ हीनिक्रियं श्रीतस्मार्त्ताचारहीनम् । निष्पुरुषं स्त्रीशेषं । तद्वर्जयेत् । कुतः संतत्यभावानुसारिभयात् । निश्छंदो निरध्ययनम् । रोमशं रोमबहुलं निर्कतिरूपत्वात् । तथा हि श्रुतिः—

^{१५} "निर्ऋत्ये विकृतक्षपं देहं रोमशमालभेत । सा ह्यस्या स्वः तनुः" इति । अश्योऽस्यास्तीत्यर्शसः क्षयी । क्षयरोग उक्तं आमयो महोद्रादि। तशुक्तशामयाविव्याधिसंकातिभयादेतानि वर्जयेत् । याज्ञवल्क्योऽपि (आ. ५७)—

"दशपूरुषविख्याता श्रोत्रियाणां महाकुलात्। स्फीताद्रपि न संचारीरागदीषसमन्वितात्"॥ पुरुष एव पूरुषः। द्शभिः पुरुषैः मातृतः पितृतश्च पंचभिर्विख्यातं यत्कुलं महत्कुलं पुत्रपौत्रपज्ञु-

२॰ दासीमानिदसमृद्धं तस्मात्कन्या आहर्त्तव्या । तत्रापवादः । स्फीतादपीति संचारिरोगाः कुष्टापस्मारादयः । एतैः समन्वितातपूर्वोक्तान्महाकुठादपि नाहर्त्तव्येत्यर्थः । यमः—

" कुलानीमान्यपि सदा अविवाह्यानि निर्दिशेत् । अनार्षेयं बाह्मगानामृत्विजां चैव वर्जयेत् ॥

'' हीनांगमतिरिक्तांगमामय।विकुलानि च । तथाश्वित्रिकुलादीनां कुर्याद्विपरिवर्जनम् ॥

" सदा कामीकुलं वर्ज रोमशानां च यत्कुलम्। अवस्मारिकुलं यच यच पांडुकुलं भवेत् ॥

२५ " अत्युचमतिनीचं च अतिवर्ण च वर्जयेत्"। अनार्षेयमविज्ञातप्रवरम् । मनुः (४।२४७)—

" उत्तमहत्तमैनिंत्यं संबंधानाचरेत्सह । निनीषुः कुळमुत्कर्षनधमानधमांस्त्यजेत् ॥

" विशुद्धाः कर्मभिश्चैव श्रुतिस्मृतिनिद्दिर्शिताः । अविष्ठुतब्रह्मचर्या महाकुलसमन्विताः ॥

" महाकुळे च संबंधो महत्वे च व्यवस्थिताः । संतुष्टाः सज्जनहिताः साधवः समदर्शिनः ॥

'' अक्रोधनाः सुप्रसादाः कार्याः संबंधिनः सद्गा ।ये स्तेनाः पिज्ञनाः क्लीबा ये च नास्तिकवृत्तयः॥

🧚 भ विकर्मणा च जीवंतो विकृताकृतयस्तथा । प्रबद्धवैराः शूरैर्थे राजिकिलिबिणस्तथा ॥

" बहास्वादाननित्याश्व कदर्याश्च विगहिंताः । अप्रचायेषु वंशेषु स्त्रीप्रजापसवांस्तथा ॥

" पतिर्थत्र स चाऽन्यत्र ताश्च यत्नेन वर्जयेत् ॥

" पितुर्वा भजते रूपं मातुर्वोभयमेव वा । न कथंचन दुर्थोनिः प्रकृतिं स्वां विमुंचिति " ॥ हारीतः—

🦫 " मातुलान्भजते पुत्रः कन्यका भजते पितृन् । यथाशीला भवेनमाता तथाशीलो भवेन्नरः " ॥

१ कख-शीलं !

90

विष्णु:—

"अश्वं पित्रा परीक्षेत मात्रा कन्यां परीक्षयेत् । तृणाद्भूमिं परीक्षेत आचारेण कुळं तथा"॥इति । विवाहे वर्ज्यकुळिनिरूपणम् । अथासवर्णोद्वाहः । सवर्णोद्वाहिनयमेन प्रातिषिद्धमसवर्णोन् द्वाहम विकारिविशेषोऽनुजानाति मनुः (२।१२-१३)—

"सवर्णामे द्विजातीनां प्रशस्ता दारकमीण । कामतस्तु प्रवृत्तःनामिमाः स्युः कमशोऽवराः॥ "गृद्धैव भार्या शूद्धस्य सा च स्वा च विशः स्मृतः। ते च स्वा चैव राज्ञः स्युस्ताश्च स्वा चाम्रजनमतः"॥ प्रथमतः सवर्णेव वोढव्या । तद्नुभोगेच्छायां असवर्णा अपि कमेण वोढव्यः । बाह्मणस्य चतसः क्षत्रियस्य तिस्रः वैश्यस्य दे शूद्धस्य सवर्णेकेवेत्यर्थः । अथ बाह्मणक्षत्रियाभ्यां सवर्णायां प्रथममुद्दोदुमशक्तायामसवर्णाऽपि वोढव्या । न कदाचिद्पि प्रथमं शृद्देत्याह स एव (श्रिष्ठ)—

"न ब्राह्मणक्षत्रिययोरापयपि हि तिष्ठतोः। न कस्निश्चित्तु वृत्तांत्ते शृद्धा भार्योपिद्दिश्यते"॥ वृत्तं धर्मः। अंतो निर्णयः। धर्मशास्त्रिमित्यर्थः। भार्या नोपिद्दिश्यते भार्यात्वेन नोपिद्दिश्यते। किं तु काम्यत्वेनेत्यर्थः। शृद्धां प्रथमं भार्यात्वेन उद्वहतः प्रत्यवायमाह स एव (२११५)— "हीनजातिं स्त्रियं मोहाद्वद्वहंतो द्विजातयः। कुलान्येन नयंत्याशु ससंतानानि शृद्दताम्"॥ केवलशूद्रभार्यात्वं तद्पत्यत्वं च ब्राह्मणस्य दोषावहामित्याह स एव (२१९७-१८)— १५ शृद्धां शयनमारोप्य ब्राह्मणो यात्यधोगितिम्। जनियत्वा सुतं तस्यां ब्राह्मणयादेव हीयते॥ "द्विपित्रातिथयानि तत्प्रधानानि तस्य तु। निन्दन्ति पितृदेवास्तं न च स्वर्गं स गच्छिति "॥ मतांतराण्युपन्यस्य स्वमतं सिद्धांतयित (२१६)—

" शूद्रांवेदी पतत्यत्रेरुचध्यतनयस्य च । शौनकस्य सुतोत्पच्या तद्यत्यतया भृगोः" ॥ शूद्रांवेदी शुद्रां भार्यात्वेन विंद्तीति शूद्रांवेदी । अत्रेः उचध्यतनयस्य गौतमस्य शूद्रायां २० सुतोत्पाद्रनेन न पुनस्तस्यागमनेनेति शौनकस्य मतम् । शूद्रामूहवानिष तस्यां सुतोत्पित्तभया- हतौ तां नोपेयादित्यर्थः । तद्पत्यतया तस्यां शूद्रायामेवापत्यं यस्य तद्पत्यतया पततीति भृगोर्मतम् । भृगुमुखेन मन्वादिशास्त्रस्य प्रोच्यमानत्वादिति मानवानीमानि वचनानि टीका- कृतैवं व्याख्यातानि । याज्ञवल्क्यः (आ. ५७)—

"तिस्रो वर्णानुषूर्व्येण दे तथैका यथाक्रमम् । ब्राह्मणक्षित्रियविशां भार्या स्वा शूद्रजन्मनः ॥ २५ "यदुच्यते द्विजातीनां शूद्राद्दारोपसंग्रहः । न तन्मम मतं यस्मात्तत्राऽयं जायते स्वयम्"॥इति(५६) मानवेन समानार्थमिति चंद्रिकायाम् । पैठीनासिः—

"अलाभे विप्रकन्यायाःस्त्रियोऽन्यास्तिस्र एव तु। ज्ञूद्रायाः प्रतिलोम्येन तथान्ये पतयस्रयः"॥इति। जातूकार्णः—

"अलाभे कन्यायाः स्नातकवतं चरेदिव वा क्षात्रियायां पुत्रानुत्पाद्यीत वैश्यायां वा"॥इति । ३० नारदः (१२।५-६)—

" ब्राह्मणस्यानुरुम्येन स्त्रियोऽन्यास्तिस्र एव तु । ज्यूदायाः प्रतिरुम्येन तथाऽन्यपतयस्त्रयः ॥ "द्दे भार्ये क्षत्रियस्थान्ये वैरुयस्यैका प्रकीर्तिता। वैरुयाया द्वौ पती ज्ञेयावेकोऽन्यः क्षत्रियापतिः"॥ विष्णुः (२६।५)—

"द्विजस्य भार्या ज्ञूदा तु धर्मार्थ न भवेत्कचित्। रत्यर्थमव सा तस्य रागांधस्य प्रक्रीर्तिता"॥ ३५

व्यासः--

" जूद्रायोनौ पतद्भीजं हाहाशब्दं द्विजन्मनः । कृत्वा पुरीषगत्तेषु पतितोऽस्मीति दुःखितः ॥ " मामधः पातथेदेष पापात्मा काममोहितः । अधोगतिं वजेत्क्षिप्रमिति शप्त्वा पतेतु तत् " ॥ विसिष्ठोपि (१,२५–२७)– " जूद्रामप्येके मंत्रवर्ज्जं तद्दत् । तया न कुर्यात् । अतो हि ध्रुवः ५ कुलापकर्षः प्रत्य चास्वर्गः " इति । मनुः (२।१९)—

" वृषर्छीफेनपीतस्य निःश्वासोपहतस्य च । तस्यां चैव प्रसूतस्य निष्कृतिर्न विधीयते ॥

" शिल्पेन व्यवहारेण ज्ञूदापत्येश्च केवलें: । गोभिरश्वेश्च यानैश्च कृष्या राजोपसेवया ॥ (६४) "अयाज्ययाजनैश्चेव नास्तिक्येन च कर्मणा । कुलान्यकुलतां यांति यानि हीनानि मंत्रतः"॥(६६) इति । गोभिरश्वेर्विकीयमाणैरित्यर्थः । अयं चासवर्णाविवाहः युगांतरविषयः । " असवर्णासु १० कन्यासु विवाहश्च द्विजातिभिः" इति कलौ निषेधत्वात् ।

इत्यसवर्णाविवाहनिह्नपणम् । अथ वरलक्षणम् । मनुः (९।८८)—

"उत्कृष्टायाभिरूपाय वराय सहशाय च। अप्राप्तसमयां तस्मै कन्यां द्वाद्विचक्षणः" ॥ यमोऽपि—

" कुलं च शीलं च वपुर्वयश्च विद्यां च वित्तं च सनाथतां च ॥

" एतान्गुणान्सप्त परीक्ष्य देया कन्या बुधैः शेषमित्तितीयम्" ॥ यतु विष्णुनोक्तम्—
"बाह्मणस्य कुछं ग्राह्मं न वेदाः संपदः कमात्। कन्यादाने तथा श्राद्धे न विद्यात्तत्र कारणम्" ॥
इति तत्कुळस्य प्राधान्यप्रतिपादनपरम् । न पुनर्विद्यानिराकरणार्थम् । अत एवाश्वळायनः—
"कुळममे परीक्षेत " इति । आपस्तंत्रः (२।११।१७) " वपुर्शीळळक्षणसंपन्नश्रुतवानरोग इति
वरसंपत् " इति । गौतमः (४।४)—"विद्याचारित्रवंधुशीळसंपन्नाय द्यात्" इति । शातातपः—
"वर्गे वर्गित्रस्योद्धीं कळ्यीळसमन्तितः । क्यवान्यदितः पान्नो स्वा शिक्समन्तितः"॥

"वरो वर्रितव्योऽर्थी कुलशीलसमन्वितः। रूपवान्पंडितः प्राज्ञो युवा शीलसमन्वितः"॥ याज्ञवल्क्यः (आ. ५५)—

"एतैरेव गुणैर्युक्तः सवर्णः श्रोत्रियो वरः। यत्नात्परीक्षितः पुंस्त्वे युवा धीमान् जनप्रियः"॥ इति। कात्यायनोऽपि—

''अपत्यार्थ स्त्रियः सृष्टा स्त्री क्षेत्रं बीजिना नराः। क्षेत्रं बीजवते देयमतो बीजं परीक्षयेत्''॥इति। २५ बीजं वीर्यमित्यर्थः । तत्परीक्षोप।यमाह नारदः (१३।१०–१३)—

" यस्याप्तु प्रक्ते वीजं व्हादि मूत्रं च फेनिलम् । पुमान् स्याह्यक्षणैरेतैर्विपरातस्तुषं ढकः " ॥ हादि शब्दवत् ।

''चतुर्दशविधः शास्त्रे षंढो दृष्टो मनीषिभिः । चिकित्स्यश्चाचिकित्स्यश्च तेषामुक्तो विधिः कमात्॥ '' निसर्गषंढोऽमुष्कश्च पक्षपंढस्तथैव च । अभिशापाद्गुरो रोगादेवकोधात्तथैव च ॥

े॰ '' ईर्ह्याषंद्रश्च सेव्यश्च वातरता मुखेभगः । आक्षिप्तो मोवबीजश्च शालीनोऽन्यापितस्तथा '' ॥ एतेषां लक्षणानि । निसर्गषंद्रः स्वभावतो लिंगवृषणहीनः । अमुष्कः भिन्नवृषणः । पंचद्श-दिनानि श्चियमनासेव्य सङ्घ्रोगक्षमः पक्षषंद्धः । गुरुशापषंद्वाद्यश्चयः स्पष्टाः । ईर्ष्यया पुंस्त्व-मृत्पावते यस्य स ईर्ष्यापंद्धः । स्र्युपचारविशेषणपुंस्त्वशक्तिर्यस्य स सेव्यषंद्धः । वातोपहतरेतस्के। वातरेताः । मुख एव पुंस्त्वशक्तिने योनो यस्य स मुखेभगः । रेतोनिरोधात्षंद्धीभूतः आक्षिप्तषंद्धः । अप्रगत्भतया श्लोभाद्वा नष्टपुंस्त्वः शालीनः । यस्य भार्या-व्यितरेकेणान्यासु पुरुषभावः सोऽन्यापितः ।

१ क्स-धान्येश्व । २ क्स-बद्ध्य । ३ क्स-बद्धः छिन्नमुष्कः ।

"तत्राद्यावप्रतिकारो पक्षषंदं च वर्जयेत्। अनुक्रमातु यस्यास्य कालः संवत्सरः स्मृतः॥ (१४)
"ईर्व्याषंदादयो येऽन्ये चत्वारः समुदाहृताः। त्यक्तव्यास्ते पतितवत्क्षतयोन्याऽपि च स्त्रियः॥(१५)
"आक्षिप्तमोषवीजाभ्यां कृतेऽपि पतिकर्मणि। पतिरन्यः स्मृतो नार्या वत्सरार्थं प्रतीक्ष्य तु॥(१६)
"शालीनस्यापि दृष्टस्त्रीसंयोगादृश्यते ध्वजः। तं हीनवेषमंतः स्त्रीवाला रहसि बोधयेत्॥ (१७)
"अन्यस्यां यो मनुष्यः स्याद्मनुष्यः स्वयोषिति। त्रभते साऽन्यभर्त्तारमेतद्वावयं प्रजापतेः" इति।१८ ५
भर्ततरपरिष्रहोऽयं युगांतरविषयः। " कदायाः पुनरुद्वाहः " इति कलौ निषेधस्मरणात्। परंतु
कलावपि वालयावावयमिदं परं प्रयोक्तव्यमःश्चितवीर्यस्य तत्कालं धर्याद्याद्वा रागविशेषाद्वा स्याद्पि वीर्योत्पत्तिः। कात्यायनः—

- " उन्मत्तः पतितः कुष्टी तथा षंदः स्वगोत्रजः । चश्चश्रोत्रविहीनश्च तथाऽपस्मारदूषितः ॥
- " वरदोषाः स्मृतास्त्वेते कन्यादोषाश्च कीर्तिताः । दूरस्थानामविद्यानां मोक्षमार्गानुसारिणाम् ॥ ५०
- " जूराणां निर्हृतांनां च न देया कन्यका बुधेः "॥ इति । अपरार्के—
- " अनार्यता निष्ठुरता क्र्रता निष्क्रियात्मता । पुरुषं व्यंजयंतीह लोके कलुषयोनिजम् " ॥ इति वरलक्षणनिरूपणम् । अथ कन्यकादानकालः । तत्र बोधायनः (४।१।१२)— " दद्याद्गुणवते कन्यां नाम्निकां ब्रह्मचारिणे । अपि वा गुणहीनाय नोपरुंध्याद्रजस्वलाम् "॥ निम्निका अनागतार्त्तवा । विसिष्ठः (१७७०)—

''प्रयच्छेन्नग्निकां कन्यामृतुकालभयात्पिता । ऋतुमत्यां हि तिष्ठंत्या दोषः पितरमृछति''॥ नग्निकालक्षणं स एवाह—

- " यावन्न लज्जयांऽगानि कन्या पुरुषसंनिधौ । योन्यादीन्युपगूहेत तावद्भवति निम्नका ॥ " यावचेलं न गृह्णाति यावत्क्रीडिति पांसुभिः । यावद्दोषं न जानाति तावद्भवति निम्नका "॥ संवर्त्तः—
- " यावन्न लज्जते कन्या यावत्कीडित पांसुषु । यावत्तिष्ठति गोमार्गे तावःकन्यां विवाहयेत् ॥ " अष्टवर्षा भवेद्गौरी नववर्षा तु रोहिणी । दशवर्षा भवेत्कन्या अत ऊर्ध्व रजस्वला "॥ अत ऊर्ध्व रजस्वलेत्येतत्काचित्काभिप्रायं तदा रजसो नियमेनासंभवात् । यतः स एवाह—
- " प्राप्ते तु द्वादशे वषयः कन्यां न प्रयच्छति।मासि मासि रजस्तस्याः पिता पिवति शोणितम् ॥ " माता चैव पिता चैव ज्येष्ठो भ्राता तथैव च । त्रयस्ते नरकं यांति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम् ॥२५
- " गौरीं ददन्नाकपृष्ठं वैकुंठं याति रोहिणीम् । कन्यां ददद्बह्मलोकं रोरवं तु रजस्यलाम् ॥
- " तस्माद्विवाहयेत्कन्यां यावन्नर्तुमती भवेत्। विवाहस्त्वष्टवर्षायाः कन्यायास्तु प्रशस्यते ॥
- " रोमकाठे तु संप्राप्ते सोमो भुंके तु कन्यकाम् । रजो दृष्ट्वा तु गंधर्वः कुचौ दृष्ट्वा तु पावकः"॥ इति
- "अष्टमे तु भवेद्गौरी नवमे निमिका भवेत्। दशमे कन्यका प्रोक्ता द्वादशे वृषली तथा "॥३० वृषली रजस्वला।
- "वंध्या तु वृषठी ज्ञेया वृषठी च मृतप्रजा। अपरा वृषठी ज्ञेया कुमारी या रजस्वठा "॥ इति देवलस्मरणात्। आपस्तंबः—
 - " अष्टवर्षा भवेद्गौरी नववर्षा तु रोहिणी। दशवर्षा भवेत्कन्या अत अर्ध्व रजस्वछा॥

"संप्राप्ते द्वाद्शे वर्षे रजः श्वीणा प्रस्तवेते" ॥ इति । एतच्च प्रायिकाभिष्रायं न पुनर्दाद्श एव रजस्वला भवतीति कासांचिद्र्वीयपि रजीद्र्शनसंभवात् । अत एव यससंवर्त्ती—

- "द्शवर्षा भवेत्वन्या अत ऊर्ध्व रजस्वला" इति । एवं च यावत् रजोद्र्शनं न भवति तावत्कन्यात्वमुक्तं भवति । अत एव यमः—" तस्मादुद्वाहयेत्कन्या यावन्नर्तुमती भवेत् "॥ ५ मनुरपि (९१४)—
 - " त्रिंशद्वों वहेत् कन्यां ह्यां दादशवार्षिकीस् " इति । एतद्रजीद्र्शनाभावे वेदितव्यम् । अत एव वृहस्पातिः—
 - " पितुर्गृहे तु या कन्या रजः पर्यत्यसंस्कृता । भ्रूणहत्या पितुस्तस्याः सा नारी वृषली स्पृता ॥ " यस्तां विवादयेतकन्यां ब्रह्मणो मद्योहितः । असंभाष्यो ह्यपांक्तेयः स विष्रो वृषलीपतिः ॥
- १, "वृष्णीसंग्रहीता यो ब्राह्मणो मद्मोहितः । सततं सूतकं तस्य ब्रह्महत्या दिने दिने ॥ "यः करोत्येकरात्रेण वृष्णिसेवनं द्विजः । तद्भैश्लभुग्जपित्यं त्रिभिवेषैद्यंपोहिति ॥ "वृष्णीगमनं चेव मासमेकं निरंतरमः इन जन्मनि शूद्रत्वं मृतः श्वा चैव जायते"॥ नारदः (१२१६)— "यावंतश्चर्तवस्तर्याः समतीयुः पतिं विना। तावत्यो श्रूणहत्यास्युस्तस्य यो न द्दाति ताम्" ॥ याज्ञवत्क्योऽपि (आ. ६४)—" अप्रयच्छन्समामोति श्रूणहत्यामृतावृतौ " ॥ इति । १५ द्याभ्रपादः—
 - " उपायनोदितः कारुः स्त्रीणामुदाहकर्मणि । स्त्रीणामुपनयस्थाने विवाहं मनुरब्रवीत् ''॥ यमः—
- " विवाहं चोषनयनं स्त्रीणामाह पितामहः । तस्माद्गमीष्टमः श्रेष्ठो जन्मतो वाऽष्टवत्सरः ॥ " देश इंट्यादिवैषम्याद्धमीद्दाहसंशये । सद्दशे संभवे कन्यां निश्चकामपि दापयेत् ॥ २० "वालिशा या भवेत्कन्या गुणाट्यो यदि सम्यते । द्याद्पाप्तकालेऽपि देशकालभयान्नरः "॥ इति । वालिशाविवाहमंगीकृत्य संस्कारविशेषमाह प्रजापतिः—
 - " द्विवर्षात्राग्विवाहश्चेत्कन्यकामरणं यदि । खननं नैव कर्त्तव्यं संत्रसंस्कारमाचरेत् " ॥ इति । यत्तु मनुनोक्तम् (९।८९)—
- " काममा मरणात्तिष्ठेद्गृहे कन्यर्तुमत्यि। न त्वेवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कहिंचित्"॥
 २५ इति तद्वुणवित संभवित गुणहीनाय न द्यादित्येवंपरं न पुनर्गुणहीननिषेधार्थम् । यदाह तु
 यमबोधायनौ (४।१।१२)—
 - " दबाहुणवते कन्यां नशिकानेव शक्तिः। अपि वा गुणहीनाय नोपरंध्याद मस्वलाम् "॥ इति । यदा प्रौहामपि पितादिः तां न प्रयच्छति तदा कन्यैव सहशं भ्रतारं वरयेदित्याह यमः— "कन्या द्वादशमे वर्षे या त्वद्त्ता गृहे वसेत्।भृणहत्या पितुस्तस्याः सा कन्या वरयेत्स्वयम्"॥ इति । एतच वरणं ऋतुप्रभृतिवर्षत्रयादूध्वै वेदितव्यम्। बोधायनः (४।१।१३–१६)—
- " त्रीणि वर्षाण्यृतुमतीं यः कन्यां न यच्छति । स तुल्यं भ्रूणहत्याया दोषमृच्छत्यसं शयम् ॥
 " न याचते चेदेवं स्याद्याचते चेत्पृथक्पृथक् । एकैकास्मिनृतौ दोषं पातकं मनुरब्रवीत् ॥
 - " त्रीणि वर्षाण्युतुमती कांक्षेत पितृशासनम् । ततश्चतुर्थे वर्षे तु विंदेत सहशं पतिम ॥
 - " अविद्यमाने सहशे गुणहीनमपि श्रयेत् " ॥ इति । मनुरपि (९।९०)—
 - " कि क्रांस्ट्राचीन क्रांसिनमती मती। ऊर्ध्व त कालादेतस्माद्विन्देत सहशं पतिम् ॥

" अद्यमाना भर्तारमधिगच्छेयदि स्वयम् ः नैनः किंन्दिद्वामेति न च यं साऽधिगच्छिति ॥
" अलंकारं नाददीत पित्र्यं कन्या स्वयं वरा । मातृकं भातृद्तं वा स्तेयं स्याद्यदि तं हरेत् ॥
" पित्रे न द्याच्छुल्कं तु कन्यामृतुमति हरन् । स च स्थाम्यादितकामेद्दत्नां प्रतिरोधकः "॥इति ।
हित कन्यादानकालः । विवाहमध्ये रजोद्द्रीने । विवाहकाले रजाद्द्रीने कर्त्तव्यमाह अतिः—
" विवाहे वितते यत्ते होमकाल उपस्थिते । कन्यामृतुमती दृष्ट्वा कथं कुर्वति याज्ञिकाः ॥
" स्नापियत्वा तु तां कन्यामर्चयित्वा हुताञ्चन् । युंजानमाहुति हुत्वा ततः कर्म प्रयोजयेत्॥
" प्रधानहोमे निर्वृत्ते कुमारी यदि सार्त्तवा । विरावेऽपगते पश्चाच्छेषं कार्यं समापयेत् " ॥
स्मृतिमास्करेऽपि—
" विवाहहोमे प्रकाते यदि कन्या रजस्वला । विरावं दंपती स्यातां पृथक् शय्यासनाञ्चौ ॥
"चतुर्थेऽहिन संस्नातौ तस्मिन्नमौ यथाविधि । विवाहहोमं कुर्यातामित्यादि स्वृतिसंग्रहे"॥ इति। ९०
यस्तु कन्यां प्रदाय पुनस्तामपहरित स राज्ञा दंख्य इत्याह याज्ञवल्क्यः (आ. ६५)—
" सक्वत्पदीयते कन्या हरंस्तां चोरदंढभाक् " ॥ मनुरिप (९।४०)—
" सक्वत्पदीयते कन्या हरंस्तां चोरदंढभाक् " ॥ मनुरिप (९।४०)—
" सक्वत्वा कस्याचित्कन्यां पुनर्द्यादिचक्षणः। दत्वा पुनः प्रयच्छेषः प्रामोति पुरुषादृतम् "॥०१इति।
"न दत्वा कस्याचित्कन्यां पुनर्द्यादिचक्षणः। दत्वा पुनः प्रयच्छेषः प्रामोति पुरुषादृत्वम् "॥०१इति।

" शतमश्वानृते हंति सहस्रं पुरुषानृतः" इत्युक्तदोषमाप्नोतीत्यर्थः । काश्यपः— " सप्त पौनर्भवाः कन्या वर्जनीयाः कुलाधमाः । वाचा दत्ता मनोदत्ता कृतकौतुकमंगला ॥ " उदकं स्पर्शिता या च या च पाणिगृहीतिका । अग्निं परिगता या च पुनर्भूः प्रसवा च या ॥

" इत्येताः काश्यपेनोका दहंति कुलमशिवत् ॥

" प्ररोहत्यक्षिना दग्धः पादपः सुचिरादिष । न च पौनर्भवा दग्धं कुलं कािष प्ररोहित "॥ मनुः (९।९९)—

" एतत्तु न परे चक्रुर्नापरे जातु साधवः । यदन्यस्मै प्रतिश्वत्य गदन्यस्मै प्रदीयते "॥ बोधायनः – " वाग्दत्ता मनोदत्ताऽप्तिं परिगता सप्तमपदं नीता भुक्ता गृहीतगर्भा प्रसूता चिति सप्तविधा पुनर्भूः । तां गृहीत्वा न प्रजां न धर्म विंदत " इति । आपस्तंबः —(१।३।१२)—

"दत्तां गुप्तां योतामृषभां शरभां विनतां विकटां मुंडां मंडूबिकार सांकारिकार रातां पालीं मित्रार स्वनुकां वर्षकारीं च वर्षयेत्"। इति । दत्ता अन्यस्मै वाचा प्रतिश्चता २५ उदकपूर्वे वा प्रतिपादिता। गुप्ता कंचुकायावृता। योता बश्चकेशी। ऋषभा वृष्यातिः । शरभा शीर्ण-द्मितः । विकटा विकटां विकटां वा अपगतकेशा। मंडूबिका अल्पकाया। सांका-रिका कुळांतरस्य दुहितृत्वं गता। राता ऋतुस्नाता। पाली क्षेत्रादिपालिका। मित्रा सखी। शोभ-नोऽनु जा यस्याः सा स्वनुजा। वरजन्मसंवत्सर एव पश्चाज्जाता वर्षकारी । अधिकवयस्केत्यर्थः । सर्वाणीमानि दत्तादिविषयाणि वचनानि अदुष्टवराभिप्रायाणि। यदाह नारदः (१२१२) ३० "दत्वा नयायेन यः कन्यां वराय न ददाति ताम्। अदुष्टश्चेद्दरो राज्ञा स दंड्यस्तत्र चोरवत्"॥ गौतमोऽपि (५१२१)— "प्रतिश्चत्याप्यधर्मभ्यंयुक्ताय न द्यात् "॥ इति । याज्ञवल्कयोऽपि (आ.६५)—

" दत्तामि हरेत्कन्यां श्रेयांश्चेद्वर आवजेत् " ॥ इति । आवजेत् आगच्छेदित्यर्थः । काश्यपः— " कुल्ज्ञीलविहीनस्य षंढादेः पतितस्य च । अपस्मारिविकर्मस्थरोगिणां वेषधारिणाम् ॥ " दत्तामपि हरेत्कन्यां सगोत्रोढां तथैव च । मंत्रसंस्काररहिता देयाऽन्यस्मै वराय तु ॥

" अन्यथा तृ हरन् दंड्यो व्ययं द्याच्च सोद्यम् " ॥ शातातपः—

" वरश्चेत्कुलशीलाभ्यां न युज्येत कथंचन । पुनर्गुणवते द्यादिति शातातपोऽब्रवीत् ॥ " हीनस्य कुलशीलाभ्यां हरन्कन्यां न दोषभाक् " ॥ कात्यायनः——

" स तु यद्यन्यजातीयः पतितः क्रीव एव वा। विकर्मस्थः सगोत्री वा दासो दीर्घामयोऽपि वा॥ " दत्तापि देया साऽन्यसमै सप्रावरणभूषणाम्।

"विधिवत्प्रतिगृह्यापि त्यजेत्कन्यां विगर्हिताम् । व्याधितां विष्रकृष्टां वा छन्नना चोपपादिताम्"॥ नारदः (१२।२१)—

५० "नादुष्टां दूषयेत्कन्यां नादुष्टं दूषयेद्वरम्।दोषे सित न दोषःस्यादनयोन्यं त्यज्यतो द्वयोः"॥इति। एतानि सप्तमपदादर्वाग्वेदितव्यानि । अत्र चंद्रिकायां वाग्दानप्रभृति सप्तमपदादर्वाग्दोषद्शीने मरणादौ दा कन्यामन्यसमै द्वान्नोर्ध्वमिति । तथा च मनुः (८।२२८)—

"पाणिश्रह्णिका मंत्रा नियतं दारलक्षणम् । तेषां निष्ठा तु विज्ञेया विद्वद्भिः सप्तमे पदे "॥ निष्ठा प्रमावधिः। कन्यावरयोद्धिवद्र्शनेऽपि सप्तमपदादृध्वं न परित्याग इत्यर्थः॥ अत्र यमः—

14 "नोद्रकेन न बाचा वा कन्यायाः पतिरुच्यते । पाणिग्रहणसंस्कारात्पातित्वं सप्तमे पदे"॥ वसिष्ठः—

" स्त्रीपुंसयोस्तु संबंधे वरणं प्राग्विधीयते । वरणाब्रहणं पाणेः संस्कारो हि विलक्षणः ॥ " तयोरिनियतं प्राहुर्वरणं दोषद्र्ञानात् " इति । स्त्रीपुंससंबंधे विवाहे पूर्वे वरणम् । तद्नु तद्भिलक्षणः पाणिग्रहणाख्यः संस्कारः । तयोर्मध्ये दोषद्र्शने सति वरणमनियतम् । ३० दानमात्रेण पतित्वानुत्पत्तेरित्यर्थः । तथा द्रयासः—

"कन्याऽन्यस्मे प्रदातव्या वाग्दाने तु कृते वरे। मृतेऽन्यस्मे प्रदातव्या मृते सप्तपदात्पुरा ॥
"दत्तामि हरेत्कन्यां सगोत्रोद्धां तथैव च । मंत्रसंस्काररिहता देयाऽन्यस्मे वराय तु "॥
एवं च सप्तमपदादविक्परिणेतुर्भरणेऽपि न विधवात्विमित्युक्तं भवति।तथा च विसवः (१७७२)—
"अद्भिर्वाचा च दत्ता या भ्रियेताद्ये वरो यदि । न च मंत्रोपनीता स्यात्कुमारी पितुरेव सा"॥
२५ सा पितुरेव न प्रतिग्रहीतुरित्यर्थः । कात्यायनोऽपि—

" वरियत्वा तु यः कश्चित्प्रणश्येतपुरुषो यदा । रक्तागमांस्त्रीनतीत्य कन्याउन्यं वर्योद्वरम् " ॥ रक्तागमो रजोद्शेनम् । नारदः (१३।२४)—

" प्रतिगृह्य तु यः कन्यां वरो देशांतरं वजेत् । त्रीन्टतूनसमितकम्य कन्याऽ<mark>न्यं वरयेद्वरम् " ॥</mark> द्युल्कदाने विशेषसाह मनुः (९।९७)—

30 "कन्यायां दत्तशुल्कायां श्रियते यदि शुल्कदः । देवराय प्रदातव्या यदि कन्याऽनुमन्यते ॥ "प्रदाय शुल्कं गच्छेदाः कन्यायाः स्रीधनं तथा । धार्या सा वर्षमेकं तु देयाऽन्यस्मै विधानतः॥ "यस्या श्रियेत कन्याया वाचा सत्ये कृते पतिः।तामनेन विधानेन निजो विंदेत देवरः"॥(६९) इति। कात्यायनः—

" पूर्वदत्ता तु या कन्या वृताऽन्येन यदा भवेत्। असंस्कृता प्रदेया स्यायस्मै पूर्व प्रतिश्रुता"॥
34 चेद्गुणवत्तर इति शेषः।

| "अनेकेभ्यो हि दत्तायामनूढायां तु तत्र वै।वरागमश्च सर्वेषां वहते चान्तिमस्तु ताम् ॥ | |
|-----------------------------------------------------------------------------------------------|------------|
| " अथागच्छेयुरूढायां दत्तं पूर्वं धनं हरेत् " ॥ यत्तु पाणिग्रहणादुपर्यन्यसमै दानमाह | |
| यसिष्ठः (१७७४)— | |
| " पाणियाहे कृते कन्या केवलं मंत्रसंस्कृता । सा चेद्क्षतयो।निः स्यात्पुनः संस्कारमहीति " ॥ | |
| यद्पि स्मृत्यंतरम्— | ч |
| " बन्याऽन्यस्मै प्रदातव्या मृते सप्तपदात्पुरा । पुरा पुरुषसंयोगान्मृते देयेति केचन ॥ | |
| '' ऋतौ च दृष्टे कन्यैव मृतौ देयेति चापरे। आ गर्भधारणात्कन्या पुनर्देयेति केचन''॥ इति । | |
| नारदः— | |
| "उद्घाहिताऽपि या कन्या न चेत्संप्राप्तमेथुना । पुनः संस्कारमहेत यथा कन्या तथैव सा"॥इति । | |
| यद्पि बोधायनः (४।१।१८३) | i • |
| "निसृष्टायां हुते वाऽपि यस्या भर्त्ता ब्रियेत सः । सा चेदक्षतयोनिः स्याद्रगतप्रत्यागता सित ॥ | |
| " पौनर्भवेन विधिना पुनः संस्कारमर्हति " ॥ इति यदिष मनुराह (नारदः १२।९७)— | |
| " नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतिते पतौ । पंचस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते "॥ इति । | |
| सप्तपदादृर्ध्वमि पुनर्विवाहपराण्येतानि वचनानि युगांतरविषयाणि । यदाह द्यासः- | |
| '' ऊढायाः पुनस्दाहं ज्येष्ठांशं गोवधं तथा । कलौ पँच न कुर्वीत भ्रातृजायां कमंडलुम् "॥ इति। | 94 |
| कतुः | |
| "देवराज सुतोत्पत्तिः दत्ता कन्या न दीयते । न यज्ञे गोवधः कार्यः कलौ न च कमंडलुः "॥ | |
| बोधायनः— | |
| ''विधिर्योऽनुष्टितः पूर्व क्रियते नैव सांप्रतम्। पुराकल्पः स यद्वच्च विधवाया नियोजनम्''॥इति। | |
| चंद्रिकायाम्पि | ₹• |
| "देवरेण सुतोत्पत्तिं गोमेथं च कंमडलुम् । अक्षतां पौरुषं मेथं कलौ पंच विवर्जयेत् "॥ इति । | |
| "अपुत्रां गुर्वनुज्ञातो देवरः पुत्रकाम्यया । सपिँडो वाऽसगोत्रो वा घृताभ्यको ऋतावियात् ॥ | |
| "आ गर्भसंभवं गच्छेत्पतितस्त्वन्यथा भवेत्। अनेन विधिना जातः क्षेत्रजः स भवेत्सुतः"॥ इति। | |
| याज्ञवल्क्यादिभिरुक्ता देवरसुतोत्पत्तिः कलौ वर्जनीया । गोमधो गवालंभनम् । कमंडलुं | |
| | २५ |
| "कमंडलुर्द्धिजातीनां शौचार्थ विहितः पुरा। ब्राह्मणैः मुनिमुरुयैश्च तस्मात्तं धारयेत्सदा"॥ इति | |
| बोधायनादिभिरुक्तम् । अक्षता अक्षतयोनिः । पुरुषमेधः ऋतुविशेषः । एतानि कलौ वर्जये- | |
| दित्यर्थः । अक्षताया वर्ज्यत्वमाह नारदोऽपि (१२।४६)— | |
| " कन्या चाक्षतयोनिर्या पाणिग्रहणदूषिता । पुनर्भूः प्रथमा प्रोक्ता पुनःसंस्कारकर्मणि "॥ | |
| याज्ञवल्क्योऽपि (आ. ६७)- "अक्षता च क्षता चैव पुनर्भूः संस्कृता पुनः " इति । यस्तु | 3 0 |
| कन्या दोषमनभिधाय प्रयच्छाति स राज्ञा दंडच इत्याह नारदः (१२।३३) | |
| " यस्तु दोषवर्ती कन्यामनारुयाय प्रयच्छति । तस्य कुर्यान्तृपो दंढं पूर्वसाहसचोदितम् "॥ | |
| पणशतद्वयं सप्तत्यधिकं पूर्वसाहसम् । यत्तु याज्ञवल्क्येनोक्तं (आ. ६६)— | |
| "अनाख्याय द्दहोषं दंड्य उत्तमसाहसम्। अदुष्टां तु त्यजन दंड्यो दूषयंस्तु मृषा शतम्"॥इति। | |
| तद्दोषभूयस्त्वाभिप्रायमिति चंद्रिकायाम् । | 34 |

- " साशीतिपणसाहस्रं भवेदुत्तमसाहसम् " नारदः (१२।२५)— " प्रतिग्रह्म तु यः कन्यामदुष्टामुत्सुजेन्नरः । विनेयः सोऽप्यकामोऽपि कन्यां तामेव चोद्दहेत् "॥ विनेयो दण्ड्य इत्यर्थः । इति विवाहकाले रजोदर्शनादिप्रायश्चित्तम् ॥ अथ कन्यादातृनिर्णयः । तत्र याज्ञवल्क्यः (आ. ६३–६४)—
- ५ " पिता पितामहो भ्राता सकुल्यो जननी तथा। कन्याप्रदः पूर्वनाशे प्रकृतिस्थः परः परः ॥
 "अप्रयच्छन्नवाप्नोति भ्रूणहत्यामृतावृतौ । गम्यं त्वभावे दातणां कन्या कुर्योत्स्वयंवरम्॥"इति ।
 पित्रादीनां पूर्वपूर्वाभावे परः परः कन्याप्रदः । पूर्वनाशे प्रकृतिस्थश्चेत्ययुन्मादादिदोषवान्न
 भवति यस्याधिकारः सोऽपयच्छन्भ्रूणहत्यामृतावृतावामोतीति यदा पुनर्दातृणामभावस्तदा
 कन्येव गम्यं गमनार्हमुक्तलक्षणं स्वयमेव वरयेदित्यर्थः । नारदः (१२।२०–२३)—
- " पिता द्यात्स्वयं कन्यां भ्राता वाऽनुमतः पितुः । मातामहो मातुळश्च सकुल्यो बांधवस्तथा ॥ "माता त्वभावे सर्वेषां प्रकृतौ यदि वर्तते । तस्यामप्रकृतिस्थायां कन्यां द्युः स्वजातयः ॥ "यदा तु नैव कश्चित्स्यात्कन्या राजानमावजेत् । अनुज्ञया तस्य वरं प्रतीतं वरयेत्स्वयम् ॥ "सवर्णमनुरूपं च कुळशीळवळश्रुतैः । सह्यमं चरेत्तेन पुत्रांश्चोत्पाद्येत्ततः ॥ "स्वतंत्रोऽपि हि यदकार्यं कुर्याद्यकृतिं गतः । तद्प्यकृतमेव स्याद्स्वतंत्रत्वहेतुतः " ॥ इति । अमनुः (५१९५०)—
 - " यस्मै द्यात्पिता कन्यां भ्राता वाऽनुमतो ।पितुः । तं शुश्रूषेत जीवंतं स्वर्धातं च न लंघयेत्"॥ इति । एतयोः प्राधानयप्रतिपादनार्थं न पुनरन्यनिषेधाय । इति कन्यादातृनिर्णयः ॥ अथ विवाहभेदाः । तत्र मनुः (२।२०–२१)—
- " आच्छाय चार्चियत्वा च श्रुतशीलवते स्वयम्। आहूय दानं कन्याया बाह्मो धर्मः प्रकीर्तितः"॥ धर्मसाधनत्वाद्विवाह एव धर्मशब्देन प्रतिपायते । ब्रह्मशब्दे धर्मवचनः । धर्मातिशय-३५ युक्तत्वाद्वाद्वात्वम् ।
 - " यज्ञे तु वितते सम्यगृत्विजे कर्म कुर्वते । अलंकुत्य सुतादानं दैवं धर्म प्रचक्षते " ॥ (२८) दैवकार्याधिकृताय दानादैवत्वम् ।
 - " एकं गोमिथुनं दे वा वरादादाय धर्मतः । कन्याप्रदानं विधिवदार्धो धर्मः स उच्यते ॥ (२९) धर्मत आदाय धर्मार्थमादाय न धनार्थं यत्कन्याप्रदानं स आर्थो धर्मः । विकयदोषभया-
- इषिभिरनुक्तवेतनैरेव विद्या दीयते । शुश्रृषादिकं शिष्यतः किंचिदादीयते च । आर्षेऽपि कन्या दीयते वरात्किंचिदादीयते च । तेन दानादानसामान्येनार्षत्वम्—
- "सहोभो चरतां धर्ममिति वाचाऽनुभाष्य तु।कन्याप्रदानमभ्यच्यं प्राजापत्यो विधिःस्मृतः"॥(३०) उभौ युवां सह धर्मचरतं न पृथगिति वाचानुभाष्य अहं गृहाश्रमस्थ एव धर्म चरिष्यामि नान्याश्रमस्थ इति वरं प्रतिश्राव्येत्यर्थः । प्राजापत्यो विधीयत इति विधिः विवाहः । ३५ गार्ड्यस्थ्यप्राधान्यनिवंधनं प्राजापत्यत्वं गार्ह्यस्थप्रधानो हि प्रजापतिः ।

34

"ज्ञातिभ्यो द्रविणं दत्वा कन्यायै वाऽिष शक्तितः।कन्याप्रदानं स्वाच्छंबादासुरो धर्म उच्यते॥(३१) कन्याया ज्ञातिभ्यः स्वशक्तितः वरस्य शक्तितोऽधिकं दत्वा दापियत्वा स्वाच्छंबाहो।कशास्त्र-मर्यादातिलंघनेन यत्कन्यादानं स आसुरः।परस्वापहारस्वाच्छंबिनवंधनम।सुरत्वम् । असुरा हि स्वाच्छंबेन परवित्तमपहरंति इति ।

"इच्छयाऽन्योन्यसंयोगः कन्यायाश्च वरस्य च ।गांधर्वः स विधिर्ज्ञेयो मैथुन्यः कामसंभवः"॥ (३२) ५ मैथुन्यः मैथुनपर्यत अन्योन्यसंयोगः कामसंभवो गांधर्वः । गंधर्वत्वं कामपरत्विनवंधनम् । गंधर्वा हि कामपराः । "स्त्रीकामा वै गंधर्वा " इति श्रुतेः । स्मरित च भगवान्यात्मीिकः "तीक्ष्णकामास्तु गंधर्वास्तीक्षणकोपा भुजंगमाः " इति ।

"हत्वा छित्वा च भित्वा च कोशंतीं रुद्तीं गृहात्। प्रसह्य कन्याहरणं राक्षसो विधिरुच्यते"॥(२२) विवाहविरोधकान्हत्वा च्छित्वा भित्वा च कन्यां परिभूय यद्धरणं स राक्षसः । हिंसाप्राधान्या- १० द्राक्षसत्वस् । हिंसाप्रधाना हि राक्षसाः ।

"सुप्तां मत्तां प्रमत्तां वा रहो यत्रोपगच्छति । स पापिष्ठो विवाहानां पैशाचः प्रथितोऽष्टमः"॥ (३४) सुप्तमत्तप्रमत्तकन्य।भोगनिबंधनं पैशाचत्वम् । पिशाचा हि सुप्तमत्तप्रमात्तानाविर्शति । ब्राह्मादीनां फलमाह स एव (३।३७–३८)—

" दश पूर्वीप्ररान्वंश्यानात्मानं चैकविंशकम् । ब्राह्मीपुत्रः मुक्कतङ्कन्मोचयेदेनसः पितृत् ॥ १ " दैवोढायाः सुतश्चैव सप्तसप्तप्रावरान् । आर्षोढायाः सुतर्स्वीस्त्रीन्षद् षद् कायोढजः सुतः " ॥ प्राजापत्येनोढायाः सुतः विभक्तिव्यत्ययः । चतुर्षु विवाहेष्वामुष्मिकं फलं प्रत्येकमुक्त्वा ऐहिकं च समुद्राये फलं श्लोकद्वयेनाह (२।२९-४२)—

" ब्राह्मादिषु विवाहेषु चतुर्ध्वेवानुपूर्वेशः । ब्रह्मवर्चस्विनः पुत्रा जायंते शिष्टसंमताः ॥ " रूपसत्वगुणोपेता धनवंतो यशस्विनः । पर्याप्तभोगा धर्मिष्ठा जीवंति च शतं समाः" ॥ २० आसुरादिषु चतुर्षु जातपुत्रगुणमाह—

" इतरेषु तु शिष्टेषु नृशंसानृतवादिनः । जायंते दुर्विवाहेषु ब्रह्मधर्मदिषः सुताः " ॥ '' अनिंदितैः स्त्रीविवाहेरिनिंदा भवति प्रजा । निंदितानिंदिता नृणां तस्मासिंद्यानि वर्जयेत् " ॥ अननुज्ञातिववाहविषयेयं निंदा इतरथा हि क्षत्रियादिषु गांधर्वराक्षसाद्युपदेशानर्थक्यप्रसंगात् । याज्ञवल्क्योऽपि (आ. ५८–६१)—

" ब्राह्मो विवाह आहूय दीयते शक्त्यलंकृता । तज्जः पुनात्युभयतः पुरुषानेकविंशतिम् ॥ " यज्ञस्थ ऋत्विजे देव आदायार्षस्तु गोयुगम् । चतुर्दश प्रथमजः पुनात्युत्तरजस्तु षट् ॥ " इत्युक्त्वा चरतां धर्म सह या दीयतेऽथिंने । स कायः पावयेत्तज्जः षट्षड्वंश्यान् सहात्मनाम् ॥ " आसुरो द्रविणादानात् गांधर्वः समयान्मिथः । राक्षसो युद्धहरणात्पैशाचः कन्यकाछलात्" ॥ मनुः (श२२–२४)—

"षडानुपूर्व्या विप्रस्य क्षत्रस्य चतुरो वरान् । विट्यूद्रयोस्तु तानेव विद्याद्धर्म्यानराश्चसात्॥ "चतुरो ब्राह्मणस्याद्यान्प्रशस्तान्कवयो विद्यः। राक्षसं क्षत्रियस्यैकमासुरं वैश्यज्ञूद्रयोः"॥ मतांतरमाह स एव (२।२५)--

" पंचानां तु त्रयो धर्म्या द्वावधर्म्यों स्मृताविव । पैशाचश्वासुरश्चेष न कर्त्तव्यौ कथंचन "॥

पाश्चात्यानां पंचानां प्राजापत्यादीनां मध्ये त्रयो धर्म्याः । पैशाचश्चासुरश्च द्वावधर्यौ न कर्त्तव्यौ । कर्तृविशेषानिर्देशादस्य मतस्य सर्वसाधारणत्वं गर्म्यते । चंद्रिकायाम्— " चत्वारो ब्राह्मणस्याद्याः शस्ता गांधर्वराक्षसौ । राज्ञस्तथासुरो वैश्ये शूद्रे चान्त्यस्तु गर्हितः"॥ गर्हितः न कस्यापि प्रशस्त इत्यर्थः । विवाहांतरालाभे पैशाचमाह वत्सः—

५ " सर्वोपायैरसाध्यः स्यात्सुकन्या पुरुषस्य वा । चौर्येणापि विवाहेन सा विवाह्या रहः स्थिता"॥ आपस्तंबः (२।५।१२।३-४)— "तेषां त्रय आद्याः प्रशस्ताः । पूर्वः श्रेयान् । यथा युक्तो विवाहस्तथा युक्ता प्रजा भवति "इति । **बोधायनो**ऽपि (१।११११-१७)—" अष्टौ विवाहाः । श्रुतशीले विज्ञाय ब्रह्मचारिणे ऽथिने दीयते स ब्राह्मः । आच्छाबालंकृत्यैषा सह धर्म-श्चर्यतामिति प्राजापत्यः । पूर्वी लाजाहृतिं हुत्वा गोमिथुनं कन्यावते द्यात्स आर्षः । दक्षिणासु १ - नीयमानास्वंतर्वेदि ऋत्विजे स देवः । सकाभेन सकामायां मिथः संयोगः स गांधर्वो धनेनोप-तोष्यासुरः । प्रसह्य हरणाद्राक्षसः । सुप्तां मत्तां यमत्तां वोषयच्छेदिति पैशाचः । तेषां चत्वारः पूर्वे बाह्मणस्य ।तेष्वपि पूर्वः पूर्वः श्रेयान्। उत्तरेषामृत्तरोत्तरः पापीयान् । तत्रापि षष्ठसप्तमौ क्षत्रधर्मा-नुगतौ तत्प्रत्ययत्वात्क्षेत्रस्य पंचमाष्टमौ वैइयज्ञृदाणाम् । अयन्त्रित इछत्रा हि वैइवज्ञृदा भवंति। कर्षणशुश्रुषाधिक्कतत्वात् गांधर्वमध्येके प्रशंसंति । सर्वेषां स्नेहानुगतत्वात् यथा युक्तो विवाह-१५ स्तथा युक्ता प्रजा भवतीति विज्ञायते'' इति । पूर्वी लाजाहुतिमिति वैवाहिकीनां लाजाहुतीनां प्रथमाहुत्यनंतरं कन्यास्वामिने गोमिथुनं वरः कन्यावते प्रदाय तस्या एव पुनर्प्रहणमार्षो नाम विवाहः। दक्षिणास्विति ऋत्विग्वरणवेलायामेव वरसंपयुक्तम् । कंचिद्यत्विक्तेन वृत्वा दक्षिणाकाले तदीयभागेन सह कन्यां तस्मै द्यात्स च तां प्रतिगृह्य समाप्ते यज्ञे शुभनक्षत्रे विवाहं क्यात्स दैवः। उत्तरेषां क्षत्रियादीनां वर्णानां तःप्रत्ययत्वाद्धनेबलप्रधानत्वात्क्षत्रियस्य । अयंन्त्रितकलत्राः । २० अयंत्रितमनियतं कलत्रं येषां ते तथा दारेष्वत्यंतानियमस्तेषां भवति । निक्रष्टक्रिषश्रषा-यिकृतत्वात्तयोर्विवाहोऽपि तादृश् एवेत्यर्थः। इति गोविंद्स्वामी। गौतमोऽपि (४।४-१३)-" बाह्मो विद्याचारित्रबंधुशीलसंपन्नाय द्यादाच्छाद्यालंकृताम् । संयोगमंत्रः प्राजापत्ये सह धर्मश्चर्यतामित्यार्षे गोभिथुनंकन्यावते द्वादंतर्वेद्यत्विजे दानं दैवे।ऽलंकृत्येच्छन्त्या स्वयं संयोगो गांधवां वित्तेनानतिः स्त्रीमतामासुरः । प्रसह्यादानाद्राक्षसोऽसंविज्ञातोपसंगमात्पैशाचश्चत्वारो २५ थर्म्याः प्रथमाः षडित्येके" इति । प्राजापत्ये विवाहे सह धर्मश्चर्यतामिति एष संयोगमंत्रः प्रदान-मंत्र इत्यर्थः। आर्षमपि केचित् प्रशस्तं नेच्छंति। तत्रादिशुल्कग्रहणात्। तथा च मनुः (३।५३)-''आर्ष गोमिथुनं शुल्कं केचिदाहुर्मृषेव तत् । अल्पो वाऽपि महान्वाऽपि विकयस्तावतैःसह" । गोमिथुनं शुल्कमाहुः । अनुजानते तन्पृषा तद्युक्तम्। अल्पो वा महान्वा द्रव्यलोभादादीयमानं शुल्कं विकय एवेत्यर्थः । केचिद्वं व्याचक्षते । आर्षे विवाहे गे।मिश्रुनं शुल्कमिति वदंति । तन्मिथ्या । विक्रयः क्रयसाधनं मूल्यदेशकालायपेक्षयाऽल्पं महद्वा भवति । आर्षे तु गोमिथुनं

"पूर्वे विवाहाश्वत्वारो धर्म्यास्तोयप्रदानकाः। अज्ञुल्का ब्राह्मणार्हाश्च तारयंति द्वयोः कुलम्"॥इति। तथा चापस्तंबः (२।१३।११)—"विवाहे दुहितृमते दानं काम्यं धर्मार्थं" श्रूयते— "तस्मादु-हितृमतेऽधिरथं ज्ञतं देयं तन्मिथुयाकुर्यादिति तस्यां क्रयज्ञब्दः संस्तुतिमात्रं धर्माद्धि-३५ संबंधः" इति । आर्षे विवाहे दुहितृमते दानं क्वचिद्देदे श्रूयते । तामेव श्रुतिमुदाहराति

परिमाणस्य नियतत्वान कयकीतेत्यर्थ इति । तथा च देवलः—

तस्माद्द्वितृमत इति दुहितृमते रथेनाधिकां गवां शतं देयम्। तच शतं दुहितृमान् मिथुयाक्यां-न्मिथ्याकुर्यादित्यर्थः । कन्याये वराय च क्षेत्रालंकरादिप्रत्यर्पणेन तहुव्यादानसाम्यगतकर्यवृत्तिं वितथीकुर्यादित्यर्थः । यद्वा मिथुया मिथुनं वरदत्तद्रव्यं मिथुनस्य कुर्यादित्यर्थः । मिथ्यार्थत्वं मिथुनार्थत्वं च मिथुया शब्दस्य श्रुयते (आथर्व सं. ४।३९।९)। " मा देवानां मिथुया कर्मभागधेयं आपो वा अग्नोमिंथुयाः मिथुनवान्भवतीति "। तिदृदं द्वानं काम्यं काम- ५ निमित्तं यथा युक्तो विवाह स्तथायुक्ता प्रजा भवंतीति (१।१२।८) ऋषितुल्याः पुत्रा यथा स्यरिति ततश्च धर्मार्थं न क्रयार्थम् । अयज्ञो वा एष योऽपत्नीक " इत्यादिकश्चतेः पाणि-ग्रहणाद्रधिग्रहमेधि नोर्वतमिति सपत्नीकस्यैव धर्माधिकारस्मरणाच्च विवाहस्य धर्मार्थत्वेन तदर्थं दानमपि धर्मार्थमेव यस्तस्यां विवाहिकियायां ऋयशब्दः किचत्समृतौ दृश्यते स संस्तृतिमात्रं द्रव्यप्रदानसाम्यात् । न मुख्यकर्मत्वप्रतिपादनार्थ । कुतः । हि यस्माद्धर्मादेव १० हेतोः संबंधो दंपत्योरित्यर्थः । एवं च धर्मार्थं दानविधानात् " सर्वाण्युद्कपूर्वाणि दानानि अह्ष्टार्थानि " इति स्मरणात् " दुहितृमते च स्वदेयमुद्कपूर्वमेव द्याद्हितृमांश्च कन्याम् अद्भिरव द्विजातीनां विवाहस्तु प्रशस्यते " इति स्मरणात् उदकपूर्वमेव द्यात् " दुहितृमतेऽ-धिरथं शतं देयं तन्मिथुयाकुर्यादिति " श्रुत्या गोमिथुनाद्धिकमप्यादाय वरयोषिभ्यां गृह-क्षेत्रभूषणादिद्वारप्रत्यर्पणे सति स विवाहो धर्म्य एवेति गर्म्यते। न चैवम् "आसुरो द्रविणादानात्" १५ इति स्मरणादासुरत्वं शंकनीयं कन्यावतो भोगार्थं द्रव्यादाने तथोक्तत्वात्। तथा च गौतमः (४।९) " वित्तेनानतिः स्त्रीमतामासुरः" इति । आनतिः कन्यादानं "प्रत्यानुगुण्यं स्त्रीमतम् " इति वचनात्कन्यायै गृहक्षेत्रादि दत्वा विवाहेऽपि नासुरत्वमिति हरदत्तः । कन्याया भूषणावर्थ छादनाद्यर्थं वराद्धनाद्।नं न दोषावहमित्याह मनुरपि (२।५४)—

" यासां न ददते शुन्कं ज्ञातयो न स विकयः। अर्हणं तत्कुमारीणामानृशंस्यं च केवलम् "॥२० यासां कन्यानां न ददते नोपजीवंति केवलं निश्चितम् । एतदेवाष्टभिः श्लोकैः समर्थयिति स एव (२।५५–६२)

" पितृभिर्मातृभिश्चेताः पितभिर्दवैरस्तथा । पूज्या भूषियतव्याश्च बहुङ्ल्याणमीष्सुभिः ॥ " यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमंते तत्र देवताः । यत्रैतास्तु न पूज्यंते सर्वास्तस्याफुठाः क्रियाः ॥ " शोचंति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम् । न शोचंति तु यत्रैता वर्धते तिद्ध सर्वदा ॥ २५ " जामयो यानि गेहानि श्पंत्यप्रतिपूजिताः । तानि द्वत्याहतानीव विनश्यंति समंततः" ॥ जामयः स्वसारः । क्वत्या अभिचारिकयाः ।

"तस्मादेताः समभ्यच्यां भूषणाच्छाद्नाशनैः । भूतिकामैर्नशैनिंत्यं सत्कारेणोत्सवेषु च ॥
"संतुष्टो भार्यया भर्ता भर्ता भार्या तथैव च । यस्मिन्नेव कुळे नित्यं कल्याणं तत्र वे ध्रुवम् ॥
"यदि हि स्त्री न रोचेत पुमांसं न प्रमोद्येत् । अप्रभोदात्पुनः पुंसः प्रजनं न प्रवर्त्तते ॥
"स्त्रियां तु रोचमानायां सर्व तद्रोचेत कुळम् । अस्यां त्वरोचमानायां सर्वभेव न रोचेते"॥
यत एवं कन्या भूषियतव्या । अतो ज्ञातिभिर्वराङ्भूषणार्थं धनादानं न दोषावहिमित्यर्थः ।
स्वोपभोगार्थद्रव्यग्रहणे पित्रादीनां दोषमाह स एव (२।५१-५२)——

"न कन्यायाः पिता विद्वान्गृह्णीयात् शुल्कमण्वपि। गृह्णन् हि शुल्कं लोभेन स्यान्नरोऽपत्यविक्रयी॥ " स्त्रीधनानि तु ये मोहादुपजीवंति बांधवाः। नारीयानानि वस्त्रं वा ते पापा यांत्यधोगितम्"॥ ३५ नारी शुल्कगृहीता पापीत्याह स एव (९।९८–१००)—

१ क्ष- प्रशंसंति ।

- " आददीत न शूदोऽपि शुल्कं दुहितरं ददत् । शुल्कं हि गृह्धन्कुरुते च्छनं दुहितृविक्रयम् ॥ " नानुशृश्रूम जात्वेतत्पूर्वेष्विप हि जन्मसु। शुल्कसंज्ञेन मूल्येन च्छनं दुहितृविक्रयम्"॥ संवर्तः—
- "कन्याविक्रियणो मूर्सा महापापस्य कारकाः। पताति नरके घोरे यावदा भूतसंप्रुवम् ॥ ५ "क्रयक्रीता तु या कन्या न सा पत्नी विधीयते। सा तु दैवे च पित्रये च दासी स्यान च साश्रिता॥ "यस्तां विवाहयेत्कन्यां ब्राह्मणो मद्गोहितः। असंभाष्यस्त्वपांक्तेयः स विष्रो वृष्ठीपतिः"॥ इति। यमः—
- "यो मनुष्यां हि विकीय यिकिविद्धनमृष्छिति । तस्या मूत्रं पुरीषं च स परत्रोपजीविति ॥ "कन्याविक्रयिणो मूर्का इह किल्विषकारकाः । पताति नरके घोरे दहंत्या सप्तमम् कुलम् ॥ १० "कन्यां तु जीवनार्थाय यः शुल्केन प्रयच्छिति । उपभुक्ते पुरीषं च मूत्रं तस्याः परस्य च"॥ इति । ननु च
 - " शुल्कं प्रदाय कन्यायाः प्रत्यादानविधानतः । वित्तहेतुर्विवाहोऽयमासुरः षष्ठ उच्यते" इति देवल्लस्मरणेन शुल्कनिवंधन आसुरो विवाहः । ननु आसुरविवाहः कथं धर्म्यत्वेन मन्वादि-भिराश्रित इति चेन्न । पूर्वतनविवाहाऽसंभवे आपद्धर्मत्वेन तस्याप्याश्रयणात् । तथा च

१५ नारदः--

- " विवाहास्त्वष्टघा भिन्ना बाह्माद्या मुनिसत्तमाः । पूर्वः पूर्वः परो ज्ञेयः पूर्वाभावे परः परः"॥ इति । चंद्रिकायामपि—
- "क्रीता द्रव्येण या नारी न सा पत्नी विधीयते।तथा दैवे च विष्यये च दासीं तां काश्यपोऽव्रवीत्''॥इति। यत्काश्यपवचनम्—
- २० " कुविवाहैः क्रियालोपेर्वेदानध्ययनेन च । कुलान्यकुलतां यांति बाह्मणातिक्रमेण च" ॥ इति । यद्पि मनुवचनं तत्प्रशस्तविवाहसंभवविषयमिति । अत्र केचिदाहुः— " भूमित्रीहियवाजाश्ववृषभधेन्वनहुहश्चेति स्थावरे विक्रयो नास्ति " इति । च गौतमादिभिः
- (अ. ८ सू. १५)—प्रातिषिद्धेऽपि भूमिविकये

 "भूमिं यः प्रतिगृह्णाति यश्च भूमिं प्रयच्छति । तावुभौ पुण्यकर्माणौ नियतं स्वर्गकामिनौ॥"
 २५ इति भूदानप्रशंसादर्शनाच्च विकयोऽपि कर्त्तव्यो "हिरण्योदकदानेन षड्भिर्गच्छिति मेदिनी"
 - इति स्मरणात् सिहरण्योद्कं दत्वा दानरूपेण स्थावरिवकयं कुर्यादिति विज्ञानेश्वरेणोक्तम् । तद्दीत्याऽत्रापि— "कन्याविक्रियणो मूर्जाः । पैशाचश्चासुरश्चेव न कर्त्तव्यौ कथंचन " इति कन्याविक्रयनिषेधात् ।
- " नामिचिन्नर कं याति न कन्यादो यतः स्मृतः। विश्वजित्संमितो यन्नः कन्यादानं महाफलम् ॥
 ३० " ज्योतिधोमातिरात्राणां रातं रातगुणं कृतम्। प्राप्नोति कन्यकां दत्वा होममंत्रेस्तु संस्कृताम् ॥
 " कनकाश्च तिला नागा दासीगृहमहीरथाः। कन्यका कपिला चैव महादानानि वै द्शः॥
 "द्शानां तु सहस्राणां युक्तानां धुर्यवाहिनाम्। सुपात्रे विनियुक्तानां कन्यां विद्याच तत्समम्॥
 "अन्नविद्यावधूत्राणगोभूरुक्माश्वहस्तिनाम्। दानान्युक्तमदानानि ह्युक्तमद्रव्यदानतः"॥ इत्यादिभिः
 कन्यादानप्रशंसादर्शनाच द्व्यदानमन्तरेण 'कन्यानधिगमे पाणिग्रहणाद्धि सहत्वं कर्मसु ' इति
 ३५ पाणिग्रहणमारम्यैव विवाहसिध्याभिहोत्रादिश्रौतस्मार्तकर्माधिकारस्मरणात्तदन्ष्ठानाथावरुय-

कर्तन्ये च विवाहे "अद्भिरेव दि जातीनां विवाहस्तु प्रशस्यते "इति स्मरणाद्धदकपूर्वमेव द्रन्यं दातन्यं द्रत्वा सहिरण्योदकपूर्वमेव कन्या ऽप्यादातन्येति न चासुरादि विवाहेषु सप्तमपदातिक्रमणाभावेन पतित्वभायीत्वयोरनुत्पत्तिरिति शंकनीयम् । तत्रापि स्वीकारानंतरमेव संस्कारिवयः नात् । वेवलः —

"गांधवीदिविवाहेषु पुनर्वेवाहिको विधिः । कर्त्तव्यश्च त्रिभिवेणैंः समयेनाग्निसाक्षिकस्"॥ ५ गृह्यपरिशिष्टेऽपि—

"गांधर्वा सुरपैशाचिववाहो राक्षसश्च यः । पूर्व परिश्रयस्तेषां पश्चाद्धे मो विधीयते " ॥ पिश्रयः स्वीकारः । अत एव न बलाद्पहारमात्रेग भार्यात्विभित्याह वसिष्ठः (१७७३)— "बलतश्चेद्धृता कन्या मंत्रैर्यादे न संस्कृता। अन्यस्मै विधिवद्देया यथा कन्या तथेव सा ॥ इति। अथ विवाहांगविदेषमाह मतुः (२।४२–४४)—

" पाणिग्रहणसंस्कारः सवर्णासूपदिश्यते । असवर्णास्वयं ज्ञेयो विधिरुद्वाहकर्माणे ॥

"शरः क्षत्रियया धार्यः प्रतोदो वैश्यकन्यया । वासोदशा शूद्रया तु वर्णोत्कृष्टस्य वेदने"॥ करेण करस्य ग्रहणं पाणिग्रहणमेव संस्कारः पाणिग्रहणसंस्कारः । उत्कृष्टवेदने सवर्णादुत्तरस्य वर्णस्य लामे विवाह इति यावत् ।

अथ शोभनद्वयसंनिपाते संग्रहकारः—
"एकोदराणां पुंसां स्याद्विवाहो नैकवत्सरे । भिन्नोदराणां कुर्वीत स्त्रीणां चैव न संश्वयः । ॥
बराहमिहिरः—

" एकोद्रप्रसूतानामेकस्मिन्नेव वत्सरे । विवाहों नेव कर्त्तव्यो गर्गस्य वचनं यथा " ॥ एतहतुत्रयाद्वीग्विषयम् । यथाह गर्गः---

"एकमातृत्रस्तानामेकस्मिन्वत्सरे यदि । विवाहो नैव कर्तव्यो निर्गते तु ऋतुत्रये ॥ " ग्रामांतरे तु कर्तव्यः कर्तव्यो नैकवेइमनि " ॥ अंगिराः——

" एकमातृप्रसूतानां शुभद्दयमृतुत्रये । न कुर्याद्वभिदे तु त्रिमासाङ्क्वमाचरेत् ॥

" फाल्गुने चैत्रमासे च पुत्रोद्दाहोपनायने । भेदे त्वदस्य कुर्वीत नर्तुत्रयिवलंबनम् ॥

" न पुंविवाहोध्वीमृतुत्रेयण विवाहकार्य दुवितुः प्रकल्पयेत्।

" न भंडनाचापि हि मुंडनं च स्यान्मुडनान्मंडनमन्वगेव"॥ भंडनं विवाहः । मुंडनमुपन- २५ यनस् । शातातपः—-

" मंडनं मुंडनं चैव न कुर्यादेकवत्सरे । मुंडनं प्रथमं कुर्यान्मंडनं तु ततः परम्" ॥ श्रीधरीये-

" पुत्रस्य पाणिग्रहणात्परस्तान्न मासषट्कात्तनयाविवाहः ।

" तद्वद्विवाहादपि नोपनीतिस्तथोपनीतेः परतश्च चौठम्" ॥ गर्मः--

" एकमातृप्रसूनां कन्यकापुत्रयोर्द्योः । सहोद्वाहो न कर्तव्यः तथा नैवोपनायनम् " ॥ ३ • स्मृतिरत्ने—

" एकस्मिन्छोभने वृत्ते दिशुभं न तु कारयेत् । यदि कुर्योत्प्रमादेन तत्र स्यादशुभं हुनस् " ॥ पुत्रीविषये विशेषमाहांगिराः—

" उद्दाह्य पुत्रीं न पिता विद्धयात्पुत्र्यंतरस्योद्दहनं न जातु ।

" यावञ्चतुर्थीदिनसंग्रहस्य समापनं तावहतो विद्ध्यात्" ॥ मर्भः--

- " पुत्रीपरिणयाद्भःवै याविह्नचतुष्टयम् । पुत्र्यंतरस्य कुर्वीत नोद्वाहिमिति सूरयः ॥ " एकस्मिस्तु गृहे कुर्यादेकामेव शुभक्तियाम् । अनेकांस्तु प्रकुर्वाणः स नाशमधिगच्छति ॥
 - " दिशे भनं त्वेकगृहेषु नेष्टं शुभं तु कुर्यान्नवतो पुरस्तात् ।
 - " अविइयके शोभन उत्सुक्क्षेदा वार्यभेदेन तथैव कुर्यात् " ॥ नारदः--
- ५ " शुभकु-पु त्रि शेदाहात्पश्चातपुत्रकरग्रहः । एकतिथ्यामपि प्राह भागेवो भिन्नवेलया ॥
 - " एकोदरे द्भवसुतासुतयो विवाहं मासां तरे मनुविशाखराशायाः ।
 - " इच्छंति मंगरमथासु वदंति गर्गाः केचित्तथैकदिवसेऽस्यानयप्रभेदे ॥
 - "एक्टरनेऽपि भिन्नांशे वित्वज्ञात्रियराशराः । द्वयोर्विवाहमिच्छंति पृथग्मामेऽथ मडपे"॥

बृहस्पातः--

- १० "ए हिस्सिन्द्र से त्वेकलग्ने निम्नां शके तथा। एकगर्भोत्थयोशीयौदीवाहः शुभक्कद्भवेत् ॥ "देशभेदात्कु अचारादिमे धर्माः प्रकृतिताः। एकलभे द्विरुग्ने वा गृहे यत्र दिशोभनम् "॥
 - " इयोरन्यद्विनहे स्याहर्ततेऽन्यदिति स्थितिः ॥
 - " एकमातृप्रसूतानामेक स्मिनेव वत्सरे । एक एव न कुर्वीत विवाहं वतवंषनम् ॥ "एकः कर्ता सुभं कुर्यान पुत्र्योः पुत्रयोरिष । षण्मासे वा चतुर्मासे पूर्णे वर्षे सुभावहस्"॥

१५ शातातपः-

- " एकमावृष्ठसूतानां नारिनकार्यद्वयं भवेत्। भिन्नोद्रप्रसूतानां नेति शातातपोऽबवीत्" ॥ "यत्रोपयमनादृष्वं षणमासाभ्यंतरेऽ पि वा। गुञ्युद्वाहं न कुवीत विवाहाद्वतवंधनम् "। उपयमनं विवाहः । विवाहाद्वतवंधनं विवाहादृष्वं षणमासाभ्यंतरे वतवंधनमुपनयनं न सुवीत । एतानि वचनानि यमरुव्यतिरिक्तविषयाणि । कास्त्रदृषि यमरुविषये विशेषो द्शितः—
- २० " श्रांतृद्धये स्वसृयुगे स्वसृश्रातृयुगे तथा । समानाऽपि क्रिया कार्या मातृभेदे तथैव च " ॥ श्रातृद्धये यमल इत्यर्थः । अत्र प्रथमज एव ज्येष्टः ।

यमलयोज्येष्टचनिह्नपणम् । तथा च मनुः (९।१२५-१२६)-

- " सदृश्लीषु जातानां पुत्राणामिवशेषतः । न मातृतो ज्यैष्ठचमस्ति जनमतो ज्यैष्ठचमुच्यते ॥ " जनमज्येष्ठचेन चाव्हानं सुब्रह्मण्यास्विप स्मृतम्। यमयोश्चैकगर्भेऽपि जनमतो ज्येष्ठता स्मृता"॥ २५ संब्रहेऽपि—
 - " यमयोजीतयोज्यैष्ठचं जन्मतः प्रोच्यते बुधैः । गर्भस्य कस्यचिष्ठोके चिराज्जननदर्शनात् ॥
 " यमयोजीननाज्ज्यैष्ठचमाधानं चेष्यते बुधैः " इति । यतु
 - "यमलौ चैकगभें तु स्त्री वाऽपि पुरुषोऽपि वा। कनिष्ठ आद्यजातः स्यात्पश्चाज्जातोऽग्रजः स्यृतः"॥ इति स्यर्णं तत्समभागस्थगभेव्यतिरिक्तोपर्यधोभागस्थविषयम् ।
- ३० " पार्श्वयोः संस्थितो गर्भो तयोर्थः पूर्वजः स तु । ज्येष्ठ इत्युच्यते सद्भिर्जातकादिषु कर्मसु"॥ इति वादरायणीयस्मरणात् । दत्तविषये विशेषः स्मृत्यंतरेऽभिहितः—
 - " औरसे तु समुत्पन्ने दत्तो ज्येष्ठो न चेब्यते।" औरसः कनिष्ठोऽपि दत्तविवाहात्पूर्वे विवहेदित्यर्थः।
- " होमपूर्व तु यो दत्तः स एव जनकस्य च । गोत्रेण विवहेत्कन्यां पुत्रादौ न निषेधकृत्॥ >५ "दातृगोत्रसमुद्धतां गृहीतृकुरुसंभवः । उद्दहेदशमादृध्वं नोद्दहेदिति गौलमः"॥ इति सपस्वी-

पुत्रयोस्तु पितुर्जीवनदशायां जन्मज्येष्ठक्रमेण विवाहः पितृमरणानंतरं तृ विवाहे न क्रमनियम इति केचित्। अथ पुंसवनसंस्कृतस्य जन्ममासज्येष्ठमासयोहत्सवनिषेधमाहांगिराः—

" मौंजीनिवंधवतकर्मणी च चूडाकृतिश्च प्रथमो विवाह: ।

" स्नानं च पुंसः प्रथमस्य नेष्टं ज्येष्ठाख्यमासेऽपि च जनममासे" ॥ कालाद्शेंऽपि — आयगर्भोऽत्थयोज्येष्ठमासीनोद्दाहमाचरेत् । प्रथमगर्भप्रसूतयोद्धीपुंसयोज्येष्ठमासि उद्दाहकर्म ५ नाचरेदित्यर्थः । रत्नमालायामपि —

" जन्ममासि न च जन्मभे तथा नेव जन्मदिवसे च कारयेत्।

" आद्यगर्भद्वहितुः सुतस्य वा ज्येष्टमासि न तु पाणिपीडनम् "॥ अत्रिः— " जन्मभे जन्मदिवसे जन्ममासे शुभं त्यजेत् । ज्येष्टमासाद्य गर्भस्य शुभं वर्ज्यं स्त्रिया अपि "॥ मौज्युद्वाहप्रतिष्ठादीनकेचित्तत्रापि कुर्वते । नारदः—

" जन्ममासे च जन्मर्क्षे न च जन्मिदिने तथा । आद्यगर्भसु तस्याय दुहितुर्वा करग्रहः॥ " नैवाद्वाहो ज्येष्ठमासे दंपत्योस्तु परस्परम् । ज्येष्ठमासे तयोरेकज्येष्ठः श्रेष्ठस्तु नान्यथा"॥ गर्गः— ज्येष्ठस्य ज्येष्ठक्रन्यया विवाहो न प्रशस्यते । द्वो ज्येष्ठो मध्यमौ प्रोक्तो ज्येष्ठमेकं शुभावहम् ॥

" ज्येष्ठत्रयं न कुर्वीत विवाहं बहुसंमतम् । आषादः प्रौष्ठपन्माघो मार्गर्शार्षस्त्रथैव च ॥ " चत्वारो दूषिता मासा वर्णसंस्कारकर्मणि" । सिंहस्थे गुरौ गुरुशुक्र शौड्यादो च विवाहनिषेधः । ১५ मत्स्यः—

" सिंहस्थिते सुरगुराविधमासके च ज्येष्ठे तथाऽवतनयस्य तु शुक्रगुर्वीः ।

" मौड्ये तथा स्थिविरबालकयोश्च कुर्याज्जनमस्थिते सुरगुरौ न हि मंगलानि" ॥ गर्मः—
" गुरौ सिंहस्थिते चैव सूर्ये च धनुषि स्थिते । विवाहमि नेच्छंति मुनयः काइयपादयः" ॥
धनुर्गितेकैं विवाहनिषेधः द्वितीयविवाहनिषेधपरः । यतः प्रथमस्य तत्र दक्षिणायनत्वेन निषेधो २०
विहितः । गुरौ सिंहस्थित इत्यशप्ययमेव न्यायः । नारदः—
" गुरौ तु सिंहराशिस्थे भागे भाग्यवती भवेत् । पैत्रेर्यमर्श्ने सा नारी विवाहे विधवा भवेत्" ॥
एतक्रमदोत्तरविषयम् । यदाह ट्यासः—

" नर्म रोत्तरदेशे तु सिंहस्थे देवमंत्रिणि । विवाहं नैव कुर्वीत निषेधो नास्ति दक्षिणे" ॥
एवं च द्वितीयविवाहकर्तुर्न दोष इतिपर्यवसन्नम् । श्रीधरिथे—
" नर्मदोत्तरभागेषु सिंहस्थेऽमरपूजिते । विवाहादि न कुर्वीत नायं दोषोऽस्ति दक्षिणे ॥
" सिंहराशौ सिंहमागे यावत्तिष्ठति वाक्पतिः । नर्मदायाम्यकोणेषु न दोषो दक्षिणापथे " ॥
अर्णले—

" अन्नप्राशनवैवाहे पुंसो जन्मर्श एव च । जन्ममासे च वर्ज्य स्यान्नर्मदातीर उत्तरे ॥ " नर्मदाद्क्षिणे भागे विवाहादिषु मंगलम् । जन्ममासे शुभं प्रोक्तं बहूनां संमतं कृतन्"॥ इति ॥ ३० व्यासः—

" अन्नप्राज्ञनमातिथ्यं विवाहो वास्तुकर्म च । रात्रावहनि वा कुर्योच्छेषाण्यहनि कारयेत् ॥

" आषाढ: प्रोष्ठपन्माची मार्गर्शार्षस्तथैव च। चत्वारो दूषिता मासा वर्णसंस्कारकर्माण ॥

" मीने धनुषि सिंहे च स्थिते सप्ततुरंगमे । क्षीरमन्नं न कुर्वीत विवाहं मोंजिबंधनम् ॥

" माचफाल्गुनवैशाखज्येष्ठमासाः शुभावहाः। मध्यमाः कार्तिको मार्गशीर्षको निदिताः परे ॥

" न कदाचिइशर्भेषु भानोराद्रीप्रवेशनात् । पौषे चैत्रे शुनौ मार्गे नेति प्राह बृहस्पतिः ॥ "श्रावणं केचिदिन्छंति नेच्छंत्यन्ये महर्षयः।कन्याकुंभकुठीरस्थे रवौ क्षौरं विवर्जयेत्॥

"आषाढादिचतुर्मासांश्चान्द्रान्योषं च वर्जभेत्। सार्वकालिकमिच्छंति विवाहं गौतमाद्यः"॥ आपस्तंदः (१।२।१२)—" सर्वतंवो विवाहस्य शैक्षिरौ मासौ परिहाण्योत्तमं च नैदाषम् " इति। शैशिरौ माघकाल्गुनौ निदाबस्य ग्रीष्मस्य यश्चोत्तमोंऽत्य आषाढस्तानेतानश्चीन्मासान्परिहाण्य वर्जियत्वा सर्वतंवो विवाहस्य काल इत्यर्थः । आश्वलायनश्च—"सार्वकालिकमेके विवाहमिच्छंति " इति । संग्रहे—

" कार्तिकाश्वयुजो मासावुदाहे दक्षिणायने । शंसंति श्रवणं चान्ये मासास्त्वन्ये विगर्हिताः "॥ अत्र व्यवस्थामाह। व्यासः—''अधम्यां ये विवाहास्ते संमताः सार्वकारिकाः" इति । दक्षः—

" राक्षसासुरगांधर्वपैशाचा ब्राह्मणस्य तु । निषिद्धे तिथिमासेऽपि संमता इति निश्चयः"॥
गृह्मपरिशिष्टे "धर्म्येष्वेव विवाहेषु कालप्रतीक्षणं नाधर्म्येषु " इति ॥
वोधायनः—

''यस्मिन्काले विरोधोऽस्ति ज्यौतिषोक्तागमोक्तयोः। ज्योतिषोक्तं विहायैव स्मृतिचोद्तिमाचरेत्"॥ व्यासः—

१५ '' विष्णोः प्रस्थापनोत्थानमध्येनैवोपनायनम् । विवाहं नैव कुर्वीत नैव कुर्यान्महोत्सवम् " ॥ स्मृत्यर्थसारे—

"अंघः श्वित्री च कुनली हीनांगः पंगुरेव च । कालप्रदी भवेषत्र कुलक्षयकरं हि तत्" ॥ कालप्रदः मुहूर्तविधाता । देवलः—

"देवोत्सवे प्रवृत्ते तु न मनुष्योत्सवो मतः । तस्मिन्यामे न कुर्वीत कुर्याच्चेत् स विनञ्यति "॥

२० इति गोभनद्रयस्तियातादिनिक्ष्यणम्॥ऋद्धिरिक्षामाह आपस्तं दः—(गृ.सू.११३१५-१८)

" शाक्तिविषये द्रव्याणि प्रतिच्छन्नान्युपनिधाय वृयाद्वपस्प्रशेति । नानाबीजानि संसृष्टानि वेद्याः
पार्थसून्क्षेत्राह्नोष्ठर शकुच्छामशानहोष्ठनिति।पूर्वेवामुपस्पर्शने यथाहिंगमृद्धिकत्तमं पिरचक्षते"॥इति।
नानाबीजानि वीहियवादिवीजानि संमृष्टान्येकस्तिनदृत्यिं हे क्षिताान प्रतिच्छन्नानि कृत्वा
स्थापितः वेद्याहृतान् पार्थसून् क्षेत्रात्सस्यसंपन्नादाहृतं होष्ठं शकुच्छिपशानहोष्ठं च पृथक्

२५ पिंडेषु निक्षित्य प्रतिच्छन्नानि एकस्तिनभाजने निधाय कृत्यां व्रूयात् एषां पिंडानामेकमुपस्पृशेति
पूर्वेवां तृर्णामुपस्पर्शने यथायोग्यष्टाद्धः । नानाबीजानामुपस्पर्शने प्रजासमृद्धः वेद्याः पार्थसूनां
यज्ञसमृद्धः । क्षेत्रलेष्ठस्य सस्यसमृद्धः । शकुतश्च पशुवृद्धः । उत्तमं स्मशानलोष्ठं परिचक्षते
गर्हन्ते शिद्या इत्यर्थः । आश्वलायनः (११५४-६) "अष्टौ पिंडान्गृशित्वा ऋतमश्चे प्रथमं
अज्ञ ऋते सत्यं प्रतिष्ठितं यदियं कुमार्यभिजाता तदिश्वित प्रतिप्वतां यत्सत्यं तहस्यतामिति

३० पिंडानभिमंत्र्य कुमारीं ब्रूयादेषामेकं ग्रहाणेति । क्षेत्राच्चेद्वभयतः सस्याद्गृत्वीयात्अन्नवत्यस्याः प्रजा भविष्यतीति विद्यत् । गोष्ठात्यग्रुपती वेदिपुरीवादुब्रह्मवर्चस्विन्यविदासिनो

"प्रत्युद्दाहो नैव कार्यो नैकस्प्रै दुहिनुद्वयम् । न चैकजातयोः पुंसोः प्रयच्छेदुहिनुद्वयम्"॥ इति । अप "पितुः स्वसारं मातुश्च मातुलानीं स्नुषामपि । मातुः सपत्नीं भगिनीमाचार्यतनयां तथा॥

इमशानपिंडस्पर्शने तस्या एव वैधव्यं भविष्यतीत्यर्थः । हारीतः—

ह्रदात्सर्वसंपन्ना देवनात्कितवी चतुष्पशाद्विप्रवाजिनीरिणाद्धन्या इमशानात्पतिष्टनी "॥ इति

आचार्यपत्नीं स्वमुतां गच्छंस्तु गुहतल्पगः ''। इति दोवस्मरणात्साक्षात्परंपरया वा "श्वश्रूः पूर्वजपत्नी च मावृतुल्याः प्रकीर्त्तिताः" "पिवृपत्न्यः सर्वा मातरः '' इत्यतिदेशेन वा ताहशी नोद्वाह्येत्यर्थः । कन्यादानका छनियमकमः संग्रहकारः—

"भुक्तां समुद्दहेत्कन्यां सावित्रीयहणं तथा । उपोषितः स वै द्वादर्चिताय द्विजातयः "॥ इति भुक्तोद्दाहस्मरणमयर्मविवाहविषयम् । तदाह ट्यासः—

" गांधर्वासुरयोरेव भुक्ता तु परिणीयते । ब्राह्मादिषु विवाहेषु भोजनं नेति काश्यपः॥

" ब्राह्मादिषु विवाहेषु पूर्व होमः प्रशस्यते । कन्यास्वीकरणं पश्चात् अत्ययस्वासुरादिषु ॥

" स्वग्रह्योक्तविधानेन पौर्वापर्यःयवस्थितिः " ॥ व्यासः—

" द्यात्पूर्वमुखः कन्यां गृह्णीयादुत्तरामुखः । दंपत्योर्वर्धते चायुर्दातुश्चैव विवर्धते "॥ स्कंदोऽपि—

" नामगोत्रे समुच्चार्य प्राङ्मुखो वारिपूर्वकम् । उदङ्मुखाय व द्यात्कन्यां चैव यवीयसीम् "॥ वसिष्ठस्तु विशेषमाह

" प्राक्प्रत्यङ्मुखयोश्चैव दातृबाह्कयोः स्थितिः । उद्दाहे चेव गोदानादानयोरवमेव हि॥ आग्नेयपुराणे—

" द्यातु प्राङ्मुखस्तस्मै वरः प्रत्यङ्मुखो वधूम् । गृहीत्वा शोभने लग्ने ईक्षेदापाद्मस्तकम् "॥ १५ आश्वलायनः—

''वरस्योदक्स्थितां कन्यां प्राङ्मुखीं प्राङ्मुखायताम्। समभ्यच्यी पिता द्वात्तत्पाणौ मंत्रवज्जले॥ ''द्वात्प्रत्यङ्मुखः स्थित्वा गृहीत्वा प्राङ्मुखोंजिलिम्''॥ **वोधायनगद्यो**— अत्र स्मृतीनां विरोधे विकल्पो द्रष्टव्यः। **ट्यासः**—

" आच्छाबालंकुतां कन्यां गृह्णच् वामकरेण तु । गोत्रमादो तु संकीत्र्यं प्रितामहपूर्वकम् ॥

" प्रपितामहपूर्वीय फलमुद्दिश्य दापयेत् । नांदीमुले विवाहे च प्रपितामहपूर्वकम् ॥

"नामसंक्रीत्तेयेदिद्वानन्यत्र पितृपूर्वकम्" ॥ दृक्षः— "नामगोत्रे समुच्चार्य प्रपितामहपूर्वकम् " इति । जमदृक्षिः— "कन्यां वामकरे धृत्वा प्रपितामहपूर्वकम् " इति ॥ देवीपु राणेऽपि— "गोत्रं नाम तु संकीर्त्यं कीर्त्तयेत्प्रपितामहम् । पितामहं च पितरं कन्यामेत्रं वराय च॥

''आसीनायाश्चियास्तिष्ठन् गृह्णामीत्यद्भिरंततः।गृह्णीयात्पाणिमुत्तानं सांगुष्ठांगुलिदक्षिणाम्''॥इति। २५ औपासनात्पूर्वमग्निनाञ् पुनर्विवाहः । संयहे—

"पूर्वमौपासनारंभादाग्निनाशो यदा भवेत्। पुनर्विवाहः कर्त्तव्यः परतस्तु न विवते" ॥ "ऋग्वे-दिनां प्रवेशहोमात्पूर्वं यजुर्वेदिनामौपासनारंभात्सामवेदिनां लेखाहोमात्पूर्वमग्निनाशे पुनर्विवाहः" इति बोधायनः – " अथ चेदौपासनारंभात्प्राक् ज्वलनस्य नाशः पुनर्विवाहं कुर्वीत " इति । पुनर्विवाहकल्पोऽपि तेनैव व्याख्यातः —

" अङ्कुरं च प्रतिसरं वरणं च प्रतिग्रहम् । वाससा परिधानं च कर्माण्येतानि वर्जयेत् "॥ इति । उपनयनविवाहजातकर्मश्मशानाग्निनाशे प्रायिश्वत्तमाह बोधायनः — " अथ यद्युपनयनाग्नि- विवाहाग्निजीतकर्माग्निः स्मशानाग्निरा चनुर्थादा द्वादशाहादा संचयाद्वा तस्मात्सर्व तत्यक्षतेति प्रोश्य स्थंदिलमञ्चरणग्निमपसमाधाय संपरिस्तीयं प्रायिश्चनं जहोत्ययाक्ष्मग्ने पंच

होता ब्राह्मण एक होता मनस्वतीमिदाहुती महाव्याहृतिव्याहृतयश्च प्रायाश्चेत्तं जुहुयात् " इति वोधायनगृह्ये—

- " औष।सनारंभकालभाइ आपस्तंबः (যূ. মূ. হাডাংৎ)—
- " सायं प्रातरत ऊर्ध्व हस्तेनेते आहुती तं हुलैयवेर्वा जुहुयात् " इति । अत ऊर्ध्व-५ माग्नेयस्थालीपाकांतादिवाहाद्वर्ध्वं रात्रावीपासनस्यारंभः। यदि नव नाढ्यो नातीताः। अतीताश्चेद-परेद्यः सायमेवाभिहोत्रवेलायामिति गृद्यतात्पर्यद्शेने । स्मृतिरत्ने—
 - " बेधा कुत्रा यामिनीं पूर्वभागे स्थालीपाकी नित्ययुक्ती द्वितीये—
 - "स्थालीपाको नैव युक्तस्वर्तीये नैव स्थाली नेव नित्यो विवाहे"॥ नित्य औपासनहोमः। व्यासः—
- ५० "रात्रों विवाह उत्पन्ने वन्हिं परिचरेचदा । रात्रावर्तातकालश्चेत् श्वः सायं तद्रुपक्रमेत् ॥ "प्रातहोंमः संगवांते काले त्वनुद्ति तथा । सायमस्तमिते होमकालस्तु नवनाडिका "॥ इति ।
 अथ रूआलीपाकोपक्रयः । तत्रापस्तंदः (२।७१७-१८)-" एवमत ऊर्ध्व दक्षिणावर्जमुपोषिताभ्यां पर्वमु कार्यः । पूर्णपात्रस्तु दक्षिणेत्येके " इति । अत ऊर्ध्वमाग्नेयस्थालीपाकात् परमित्येवं वर्वताग्नेयस्थालीपाकानंतरं शेषहोमात्पूर्वं पर्वसंभवेऽपि आग्नेयस्थालीपाकः
- १५ कार्य इत्युक्तं भवति । यथाहुः—
 " विवाहशेषमध्ये तु पर्वण्युत्पितिते सित । तस्मिन्निष च कर्त्तव्यः स्थालीपाको यथाविधि ॥
 "तत्र यद्यप्यमावास्या विवाहात्स्यादनंतरम् । यदि वा पोर्णमासी स्यात् स्थालीपाकिक्रयामिति"॥
 इति । अत्रामावास्यायामिष स्थालीपाकस्मरणमागामिपोर्णिमास्यां मौढ्यादिदोषदृष्टत्वे द्रष्टव्यम् ।
 - तदाह गौतमः—
- २० "पाकयज्ञस्य चारंभमन्वारंभणसेव च। पौर्णमास्यां यजेत्पृर्व दशेंनैव कथंचन ॥
 "मौद्धादि दोषमासे तु पौर्णमास्यां यजेत्कथम्। दशें वाऽपि यजेत्पूर्व पौर्णमासीममामिष ॥
 "अिकालांतरारंभो यजमानस्य पापकृत्। आयुः भ्रियं यशो हन्यात् तस्मातौ न व्यतिक्रमेत्"॥
 यावद्शं पौर्णमासस्य कालत्वाद्शित् पूर्वमेव पंचम्यादौ दितीयां चतुर्द्शीं सप्तद्शीं विनैव
 त्विति निषेधात् पौर्णमासस्थालीपाकं कृत्वा स्वकाले त्वमामिष यजेत्। न तु प्रतिपदि पौर्ण३५ मासमिष सह यजेवित्यर्थः। यन्
 - " मौड्ये वाऽप्यधिमासे वा घहणे चंद्रसूर्ययोः । अन्वारंभं प्रकुर्वीत समनंतरपर्वाणि "॥ इति स्मरणम् । यदणि—
 - " आषाढेऽप्यधिमासे वा संकांतौ ग्रहणेऽपि वा। अन्वारंभं प्रकुर्वीत समनंतरपर्वणि " ॥ इति तत्समनंतरपर्वण्यवस्यकर्तव्यताप्रतिपादनपरम् । मोद्यादौ तु दोषःमरणात् । यथाहुः—
- "आधानानंतरा पौर्णमासी चेन्मलमासगा। तत्रारंभणीया स्यादिति वृद्धेन भाषितम्"॥
 स्मृत्यर्थसारे च—' वसंतकालेऽपि मलमासादिकं चेत् कर्मान्वारंभो नास्ति अन्वारंभणादिकं
 न कर्त्तव्यम्" इति । अत्रान्वारंभणं स्थालीपाकः ।
 - " उपरागोऽधिमासो वा यदि प्रथमपर्वणि । नाहरेत्यथमामिष्टिं मौद्ध्ये च गुरुशुक्रयो:॥
 - " स्थालीपाककिया कुर्यादिवाहादुत्तरायणे । पितृमासचतुष्केषु यदि कुर्यादिनश्यति ॥
 - " आरंभं दर्शपूर्णध्यारिमहोत्रस्य चादिमम् । प्रतिष्ठामपि कर्मांचं मलमासे विवर्जयेत् ॥

" प्रारब्धे तु तृतीयादौँ प्रोक्तदोषो न विद्यते। ऋतुत्रयमितकम्य स्थाहीपाकं विना कृतम्॥ " अजसं हाँकिकं विद्यान्मासत्रयमथापि वा "॥ इदं देशांतरगमनविषयम् ।

" ऋतुमेकमतिक्रम्य स्थालीपाकं विना कृतम् । अजस्रं लौकिकं विद्यादिति वेदविदो विदुः " ॥ इति स्मरणात्।इति स्थालीपाकोपक्रमनिरूपणम् । अथाधिवेधनम् । तत्र मनुः (९।८०-८२) " मद्यपाऽसद्यवृत्ता च प्रतिकृला च या भवेत् । व्याधिता चाधिवेत्तव्या हिंसाऽर्थग्री च सर्वदा ॥ ५

" वंध्याऽष्टमेधिवेदाद्वे द्रामे तु मृतप्रजा । एकाद्र्शे स्त्रीजननी सद्यस्त्वप्रियवादिनी ॥ "या रोगिणी स्यानु हिता संपन्ना चैव शीलतः । सानुज्ञाप्याऽधिवेत्तव्या नावमान्या च कर्हिचित्॥

"अधिविन्ना तु या नारी निर्गच्छेद्रोषिता गृहात्।सा सद्यः संनिरोद्धन्या त्याज्या वा कुलसिन्नधौरा। त्यागः जनककुले प्रेषणम् । याज्ञवल्कयः (आ. ७३)—

" सुरापी व्याधिता धृत्ती वंध्याऽर्थघन्यप्रियंवदाः स्त्री प्रमुखाधिवेत्तव्या पुरुषद्देषिणी तथा " ॥ ा । यस्यां हि विद्यमानायां भार्यातरपरिग्रहः साऽधिवेत्तव्येत्यर्थः ।

" अधिविन्ना तु भर्त्तव्या महदेनोऽन्यथा भवेत् । यत्रानुकूल्यं दंपत्योस्त्रिवर्गस्तत्र वर्धते (७४)॥ "आज्ञासंपादिनीं दक्षां वीरसूं प्रियवादिनीम्।त्यजनदाप्यस्वृतीयांशमद्रव्यो भरणं स्त्रियाः"॥(७६)

"त्यजन्निधिविन्दन् स्वस्य धनस्य वृतीयांशं दाष्यः । निर्धनस्तु श्विया भरणं प्रासाच्छादनादि दाष्यः इत्यर्थः । पराशरमाधवीये—

" धर्मविष्नकरीं भार्यामसतीं चातिकोपिनीम् । त्यजेद्धर्मस्य रक्षार्थं तथैवात्रियवादिनीम् " ॥ त्यजेद्धिविन्देत् । दृक्षः—

'' प्रथमा धर्मपत्नी स्याद्वितीया रतिवर्धिनी । दृष्टमात्रफलं तस्यामदृष्टं नीपलभ्यते ॥ '' धर्मपत्नी समाख्याता निर्दोषा यदि सा भवेत् । दोषेष्ट्यपि न दोषः स्यादन्योद्वाहे विजानतः''॥

े धर्मपत्नी समाख्याता निदाषा यदि सा भवत्। द्षिष्टिपेन दावः स्यादन्योद्वाहे विजानतः ॥
स्मृतिरत्ने—

" एकामुत्क्रम्य कामार्थमन्यां लब्धुं य इच्छति । समर्थस्तोषयित्वार्थैः पूर्वोद्वामपरां वहेत् " ॥ बोधायनः (२।२।५९)—

"अप्रजां दशमे वर्षे स्वीप्रजां द्वाद्शे त्यजेत्। मृतप्रजां पंचद्शे सबस्त्विप्रयवादिनीम् "॥ दशम इत्याद्यार्तवानंतरं वेदितव्यं न तु पाणिग्रहणात् । आपस्तंवः (२।२१।१२-१३)-— "धमप्रजासंपन्ने दारे नान्यां कुर्वीतान्यतराभावे कार्या। प्रागग्न्याधेयात्" इति । श्रौतेषु स्मार्तेषु च २५ कर्मसु श्रद्धाभक्तिश्च धर्मसंपत्तिः पुत्रवत्वं प्रजासंपत्तिः एतद्युक्ते द्रारे सति अन्यां भार्या नोद्दहेत् । धर्मप्रजयोरन्यतरस्याभावे कार्या उद्दाह्या । अत्र दारे सतीति वचनान्मृते तस्मिन्प्रागृध्वे चाधाना- त्सत्यामिष्र पुत्रसंपत्तौ धर्मसंपत्त्यर्थं दारग्रहणं भवत्येव ।

"दारशब्दस्यैकवचनस्यौगश्चछांदसः। शातातपः—
"मद्यपानप्रवृत्ता च दीर्घरोगा च या भवेत्। प्रतारिकाऽनपत्या स्त्री प्रसूः परुषभाषिणी ॥
"अर्थन्नी च पितद्वेषी स्त्री तिष्ठत्यि चोद्वहेत् "। पादेन वाऽक्षरिप्रयोगो भवत्यार्षः। रामायणदेवीमहात्म्ययोस्तथादर्शनात्। स्मृत्यंतरे—
"व्याधितां स्त्रीप्रजां वन्ध्यामुन्मत्तां विगतार्त्तवाम्। अदुष्टाऽर्हति इत्यकुं तीर्थतो न तु धर्मतः"।
तीर्थ योनिः। गर्गः—

१ भ्रा-स्मधु ।

- '' गृही स्यादेकपत्नीकः सकामी चेद्रहेत्पराम् । तृतीयां नोद्रहेत्कन्यां चतुर्थीमपि चोद्रहेत् '' ॥ अर्कविवाहः ।
- " वृतीयामुद्दहेत्क्रन्यां मोहाद्ज्ञानतोऽपि यः । धनधान्यायुषां हानिः रोगी स्याद्यदि जीवति॥
- " वृतीयोदाहसिध्यर्थमर्कवृक्षं सप्टद्दहेत् । ग्रामात्प्राचीमुदीचीं वा गच्छेचत्रैव तिष्ठति ॥
- प "यथाई शोभनं कृत्वा कृत्वा भूमिं च शोभिताम् । वस्त्रेण तंतुना वेष्ट्य ब्राह्मणस्तं परिश्रयेत् ॥ "स्वशाखोक्तविधानेन होमान्तेऽग्निं स्व आत्मिनि।आरोप्यैव वरो धीरो ब्रह्मचर्य चरेत् व्यहम् ॥ "एकाहमपि वा कन्यामुद्दहेदविशंकितः" । अयं च द्वितीयादिविवाहः प्रजासंपत्त्यभावे मृतायां वा दृष्टव्यः । श्रुतिः—"जायमानो वै ब्राह्मणस्त्रिभिर्म्नणवा जायते ब्रह्मचर्येणिषिभ्यो यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्यः । तस्मादेको द्वे जाये विंदते तस्मादेको बव्हीर्जाया विंदत " इत्यादि श्रुतितो धर्मप्रजार्थमनेकभार्यापरिग्रहावगमात् ।

द्वितीयविवाहकालः । गार्ग्यः---

" भार्यातरिववाहः स्याद्युग्मे वत्सरे शुभः। युग्मे भर्त्तृविनाज्ञाय गार्ग्यस्य वचनं यथा "॥ वसिष्ठः

" भार्याहीनस्तु वैवाहं कुर्यात्तस्मिस्तु वत्सरे । वत्सरांतरिते कुर्यादयनांतरितेऽपि वा " ॥ .५ युग्मेऽप्यैयुग्ममासे वा शौनको मुनिरव्रवीत्" ॥

अथ परिवेदनम् । गर्गः---

"सोद्यें तिष्ठति ज्येष्ठे न कुर्याद्दारसंब्रहः। आवसथ्यं तथाऽऽधानं पतितस्त्वन्यथा भवत्"॥ आवसथ्यमावसथ्याधानम् । आधानं गार्हपत्याद्याधानम् । यमः—

" पितृब्यपुत्रान्सापत्नान्परपुत्रांस्तथैव च । दाराग्निहोत्रधम्येषु नाधर्मः परिविंदतः" ॥
२० परपुत्रा दत्तकीतादयः । शातातपः—

"क्कींबे देशांतरस्थे च पतिते भिश्चकेऽपि वा । योगशास्त्राभियुक्ते च न दोषः परिवेदनं"॥ कात्यायनः—

- " देशांतरस्थक्कीबेकवृषणानसहोदरान् । वेश्यातिसक्तपतितशूद्रतुल्यातिरोगिणः ॥
- " जडमूकांधबधिरकुब्जवामनखेटकात् । अतिवृद्धानभायाश्चि क्वषिसक्तांश्च कामतः ॥
- १५ " धनवृद्धिप्रसक्तांश्च कामतःकारिणस्तथा । कुहकोन्मत्तचोरांश्च परिविन्दन्न दुष्यिति"॥

 स्वेटकः भग्नदोःपादद्वयः। अभार्या नैष्ठिकब्रह्मचारिणः। कामतः कारिणः स्वेच्छयैव विवाहान्निवृत्ताः।

 तेषामपि परिविन्नत्वं नास्तीति प्रतिभाति । यद्यपि जडमूकादीनामपि विवाहोऽस्ति तथापि

 परिविदेन्न दुष्यिति । पराज्ञारः
- "दादशेव तु वर्षाणि ज्यायां धर्मार्थयोर्गतः। न्याय्यः प्रतीक्षितुं भ्रात्रा श्रूयमाणः पुनः पुनः ॥

 , धर्मार्थयोः धर्मार्थमर्थार्थ च देशांतरं गतः । जीवतीति पुनः पुनः श्रूयमाणः द्वादशवर्षाणि
 प्रतीक्ष्य इत्यर्थः। विसिष्ठोपि— "अष्टो दशद्वादशवर्षाणि ज्येष्ठभ्रातरमनिविष्टमप्रतीक्षमाणः
 प्रायश्चित्तीभवति " इति । अनिविष्टमकृतविवाहाग्निहोत्रम् । कार्यान्तरार्थं देशांतरगतविषये
 अष्टो दश वेति पक्षद्वयम् । धर्मार्थमर्थार्थं वा गतविषये द्वादशवर्षाणीति विवेकः। विद्याग्रहणार्थं गतविषयेऽपि गौतमः (अ. १८ सू. १७-१८)—" विद्यासंबन्धे भ्राति चैवं ज्यायिस

 पदीयान् कन्याग्न्युपयमेष्विति " । शंखः—

" ज्येष्ठे तिष्ठत्यमूढे वा अभिहोत्राधिकारिणि ! अनुज्ञया विनाऽधानं विवाहं नैव कारयेत् "॥ संमहे—

" देशांतरगते ज्येष्ठे द्वादशाब्दं निरीक्ष्य तु । पश्चात्किनिष्ठो विधिवत्कुर्योद्वे दारसंग्रहम्" ॥ एवं प्रतीक्षणमुन्मत्तादिब्यतिरिक्तविषयस् ।

उन्मत्तादीनां विवाहनिराहारणम् । तथा चंद्रिकायाद-

" उन्मत्तः किल्विषी कुठी पतितः क्कीव एव दा । राजयक्ष्मात्रयादी च न न्याय्यः स्यात्प्रतीक्षितुस्॥ "मन्तोन्मत्तजडक्कीदपतितातां द्विजन्यनाम् । नोट्वाहो नव संस्कारो नाशोचं ने(दक्किया॥

"रंभाविवाहः कर्त्तव्यस्तद्छाक्षेऽर्कदााखयः । विवाहं मनुष्ठाः कुर्युरित्येतन्मनुरब्रवीत् े ॥ मनुशातातरौ (२१९७१)—

" दारामिहोत्रसंयोगं कुरुते योऽबजे स्थिते। परिवेचा स विज्ञेयः परिविक्तिस्तु पूर्वजः'॥ ५० पराज्ञारः (४।५०)—

" परिवित्तिः परिवेत्ता यया च परिविद्यते । सर्वे ते नरकं योति दातृयाजकपंचसाः ॥

" कुब्जवामनषंदेषु महत्रेषु जडेषु च । जात्यंधे विधिरे मूके न दोषः परिवेदने (२३)॥

" पितृव्यपुत्रः सापत्नः परनारीसुतस्तथा। दाराघिहोत्रसंथोत न दोषः परिवेदने (२४)॥ "परिवेत्तर्न चामिस्तु न वेदा न तपांसि च। न च श्राख्टं कनिष्ठस्य या च काउन्या विकिषिता"॥ १५ विवाहाधिकारण्यां ज्येष्टायां सत्यां कनिष्ठाया उदाहो न कार्यः । विकिषितायां तु ज्येष्टाया-मनूढायामपि कनिष्ठायां उदाहो न दोषायेति ।

" ज्येष्टायां यखनूद्वायामुह्यते त्वनुजा भवेत्। सैवाग्रेदिधिषूज्ञेया पूर्वा तु दिधिषूः स्वृताः"॥ बोधायनोऽपि (२।१।३९)—

" पश्वित्तिः पश्वित्ता च या चैनं पश्विद्दिति। सर्वे ते नरकं यांति दातृयाजकपंचमाः ॥ २० कन्यायाः पातित्ये सति कृतप्रायश्चित्ताया एव विवाह इत्याह यनः—

" स्त्री यदा बालभावेन महापापं करोति हि। प्रायश्चित्तवतस्यार्थे पित्रा तु वतचारिणीम् ॥ " उद्दहेदभिरूषां तामन्यथा पतितस्तु सः"॥

पतितादीनां धर्मनिक्षपणज् फितितेः सह योनिसंबंधे पातित्यमाह दशालः—
" संवत्सरेण पतित संसर्गः कुरुते तु यः । यानशय्यासनैर्नित्यं जानन्वे पतितो भवेत् ॥ द्रवः
" याजनं योनिसंबंधं तथैवाध्यापनं दिजः । कृत्वा सद्यः पतेत् ज्ञानात्सहभोजनमेव वा " ॥
देवलः—"याजनं योनिसंबंधं स्वाध्यायं सह भोजनव् । कृत्वा सद्यः पतत्येव पतितेन न संश्यः ॥
आपस्तंबः (१।२१।५)—

"न पतितैः संव्यवहारो विद्यते '' इति । कृतप्रायश्चित्तेरिप पतितैरुत्पदितानां पुत्राणामिप पातित्यमस्तीति पूर्वपक्षपूर्वकं प्रतिपाद्यित स एव (११२९/८-१८)—" अथा- ३० भिशस्ताः समवसाय चरेयुर्धार्म्यमिति सांशित्येतरेतरयाजका इतरेतराध्यापका मिथो विवह मानाः । पुत्रान्संनिष्पाद्य बृयुर्विप्रवजतास्मदेवं ह्यस्मत्स्वार्याः संप्रत्यपत्स्यन्तत्यथापि न संद्रियः पताति । तदेतेन वेदितव्यमंग्रहीनो हि सांगं जनयति । मिथ्यैतदिति हारीतः । द्रिधानीसधर्मा स्त्री भवति । यो हि द्धियान्यामप्रयतं पय आतच्य मंयति न तेन धर्मकृत्यं क्रियते । एवमशुनि शुद्धं यिववर्त्तते न तेन सह संप्रयोगो विद्यते' इति । अभिशस्ताः पतिताः समवसाय चरेयुः । अवसानं ३५ ग्रहम् समित्येकीभावे । ग्रामाद्वहरेक्रिसन्प्रदेशे ग्रहाणि कृत्वा चरेयुः । धार्म्यं धर्म्यं वक्ष्यमाणं

वृत्तमिति सांशित्य संशितां तीक्ष्णां बुद्धं कृत्वा निश्चित्येत्यर्थः । इतरेतरं याजयंत इतरेतरमध्यापयंतः परस्परं विवाहसंत्रंथं कुर्वतश्चरेयुर्वतेरिकिति । अथ ते पुत्रान् संनिष्पाध ब्र्युः ।
हे पुत्राः अस्मद्स्मनः विप्रवजत विषयं प्रकर्षण च क्रोइमुत्तृज्य्यार्थसभीपं गच्छत । एवं ह्यस्मत्सु
अस्मासु आर्थाः शिष्टाः संप्रतिपत्त्यते संप्रतिपत्तिं करिष्यंति । आर्थाणामप्येतद्गिप्रेतं भविष्यति
पस्माद्स्मामिरंव पतनीयं कर्मानृष्ठितं न च भवद्भिनं च पतितेनोत्पादितस्य पातित्ये मन्यत्वात् । एतदेवोपपाद्यति । अथापि न संद्रियः पति । न हि पतितो भविष्वंद्रियेण सह पति ।
पुरुष एव पति नेदियं शुक्कृतितः तद्नंतरोक्तर्यक्षिप्यतेन वक्ष्यमाणेन निद्र्शनेन वेदितव्यं ।
पातित्यम् । चक्षुराधंगर्हानोऽपि सांगं चक्षुरादिनंतं जनयति । एवमधिकारिकेष्ठः साधिकारं जनयिष्यति । स्त्रिया अपि कारणन्वात्तस्याश्च दोषाभावात् । दृष्यति मिथ्येतदिति । एतद्नंतरोक्तं

1 स्थाति । स्था अपि कारणन्वात्तस्याश्च दोषाभावात् । दृष्यति मिथ्येतदिति । एतद्नंतरोक्तं

1 स्थाती । तया सर्था सहशी श्ची भवति । ततः किं । यो हि पुरुषो दिधान्यां स्थाल्यामप्रयतं श्वाद्यपहतं पय आत्व्य तक्राद्यातंच तेन संकृत्य । संधिति न तेन तद्वत्यममृतादिना धर्मकृत्यं
यागादिकं क्रियते । एवं पतितसंवद्धेनाशुचि शुक्कं श्चियां निषिक्तं शोणितेनाक्तं यिन्नर्वर्तते येन

स्थिण निष्यवते न तेन सह संप्रयोगो विद्यते शिष्टानामित्यर्थः ।

१५ वोधायनः (२।१।६२)—"संवत्सरेण पतित पतितेन समाचरन् । याजनाध्यापनाद्यौनात्सद्यः" इति । स एव (२।१।४९-५१)—" अथ पतिताः समवसाय धर्माश्चरेयुरितरेतरयाजका इतरेतराध्यापका मिथो विवाहमानाः पुत्रान्संनिष्पाद्य ब्रूयुर्विप्रवजतास्मत्त एवमार्थानिषि । संप्रतिपत्स्यथेत्थापि न संद्रियः पति तदेतेन वेदितव्यमंग्रहीनोऽपि सांगं जनयेन्मिथ्यैतदिति हारीतः । दिधिधानीसधर्माः स्त्रियः स्युर्यो हि दिधिधान्यामप्रयतं पय आतच्य मंथित न तिच्छिष्टा २० धर्मकृत्येषूपयोजयत्येवमशुन्विशुक्ते यन्निर्वतेते न तेन सहसंप्रयोगो विवते अशुन्दिशुक्तोत्पन्नानां तेषामिच्छतां प्रायश्चित्तः । पतनीयानां तृतीयोंऽशस्त्रीणामंशस्तृतीयः इति ॥ समानायामप्युत्पन्नौ पुत्र एव पति न दृहिता । तथा च ।वासिष्ठः (१०।५१-५३)—"पतिनोत्पन्नाः पतितो भवंत्यन्यत्र स्त्रियाः सा हि परगामिनी । तामशुक्तः मुपेयात्र दिति । अशुक्तां कृतप्रायश्चित्तामुपेयादित्यर्थः ।तथा च याज्ञवरुक्यः (प्रा. २६१)—" कन्यां समुदृहेदेषां सोपहारामिक्तिचनाम् देति । एषां बह्महादी २५ नामिक्विचनामशुक्तास् । हारीतेः अषि " तस्य तु कुमारीमहोराजोपितां प्रातः शुद्धामहतन वाससाऽऽच्छादितां नाहमेतेषां मम नेते इति विक्रच्चेरभिधानां तीर्थे स्वगृहे वोद्दहेत् " इति । दारसंग्रहस्य फल्सिह । याज्ञवरुक्यः (आ. ७८)—-

" लोकानंत्यं दिवः प्राप्तः पुत्रपोत्रप्रयोत्रकेः। यस्मात्तस्मात्स्त्रियः सेव्याः कर्त्तव्याश्च सुरक्षिताः"॥ पुत्रादिभिः लोक आनंत्यं वंज्ञस्याविच्छदः अग्निहोत्रादिभिश्च स्वर्गप्राप्तिरेतहृयं यस्मात् स्त्रीभ्य एव ३० भवति तस्मात्स्त्रियः सेव्याः उपभोग्याः प्रजार्थं रक्षितव्याश्च धर्मार्थमित्यर्थः।

स्त्रीरक्षणक्रमः। अनुः (९।२-१७)--

" अस्वतन्त्राः स्त्रियः कार्याः पुरुषेः रवेदिंवानिशम् । विषये सज्जमानाश्च संस्थाप्या ह्यात्मनो वशे ॥ "पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति योवने । पुत्रस्तु स्थिविरे भावे न स्त्री स्वातंत्र्यमहिति" ॥ इति । 'पुत्रस्तु स्थिविरीभाव ' इत्यनेन सत्यि भर्त्ति पुत्रेणेव पाठनं कार्यमिति प्रतीयते । " वृद्धो च अभ मातापितरौ " इत्यादिना तस्यैव पाठनाधिकारविधानात्स्वातंत्र्यं च स्वरक्षन्त्रयोग्यकारविधा-यिनीत्वम् ।

```
" सूक्षेभ्योऽपि प्रसंगेभ्यः स्त्रियो रक्ष्या विशेषतः । द्वयोहिं कुरुयोः शोकमावहेयुररक्षिताः॥ ( ५ )
" इमं हि सर्ववर्णानां परुयंतो धर्ममुत्तमय । यतेते रक्षितुं भार्यो भर्तारो दुर्वछा अपि ॥ ( ६ )
" स्वां प्रसूतिं चरित्रं च कुलमात्मानमेव च । स्वं च धर्म प्रजाश्चेव जायां रञ्जनिह रञ्जति ॥ (७)
" पतिर्भार्यी प्रविरुय स्वां गर्भो भूत्वेह जायते । जाययास्तिद्धि जायात्वं यदस्यां जायते पुनः ॥
" यादृशं भजते हि स्त्री सुतं सूते तथावियम् । तस्मात्प्रजाविशुध्यर्थं स्त्रिया रक्षेत्त्रयत्नतः ॥
" न कश्चिचोपितः शक्तः प्रसद्य परिरक्षितुम् । एतैरपाययोगैस्तु शक्याः स्युः परिरक्षितुम् ॥
" अर्थस्य संबहे चैनां व्यये चैव नियाजयेत्। ज्ञीचे धर्नेऽन्नयक्त्यां च पारिणञ्चस्य चेक्षणे॥
" अरक्षिता गृहे रुद्धाः पुरुषेराप्तकारिभिः । आत्मानमात्मनः चाल्तु रक्षेत्रस्ताः सुरक्षिताः ॥
" पानं दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोऽटनम् । स्वप्नोऽन्यगेह्वासख्य नारीणां दूषणानि पर् ॥
" नैता रूपं प्रतीक्षेते नासां वयसि संस्थितिः । विरूपं रूपवंतं वा पुमानित्येव भुंजते ॥
" पौंश्रहयाच्चारुचित्याच्च नहनेह्याच्च स्वभावतः। रक्षिता यत्नते।ऽपीह भर्तृष्वेता विकृ्वेते ॥
'' एवं स्वनावं ज्ञात्वाऽऽसां प्रजापतिनिसर्गजम् । परमं यत्नमातिष्ठेतपुरुषो रक्षणं प्रति ॥
" शय्यासनमलंकारं कामं कोधमनार्जवम् । द्रोहभावं कुचर्या च श्विभ्यो मनुरकल्पयत् "॥
" याहरपुणेन भर्ता स्त्री संयुज्येत यथाविधि । ताहर्गुणा सा भवति सनुद्रेणेव निम्ननाः॥ (२२)
'' प्रजनार्था महाभागाः पूजाही बहदीप्तयः। श्चियाश्च यस्य गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन॥ (२६) १५
''प्रजनार्थं स्त्रियः सृष्टा संतानार्थं च मानवाः। तस्मात्साधारणो धर्मः श्रुतौ पत्न्या सहोद्दितः॥(९६)
" उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम् । प्रत्यहं लोकयात्रायाः प्रत्यक्षं स्त्रीनिवंधनम् ॥ (२५)
" अपत्यं धर्मकार्याणि शुश्रूषा रतिरुत्तमा । दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितृणानात्मनश्च हि॥(२८)
"विधाय वृत्तिं भार्यायाः प्रवसेत्कार्यवान्नरः। अवृत्तिक्रिश्तितः हि स्त्री प्रदुष्येत्स्थितिनत्यिषा। (৩४)
" विधाय प्रोषिते वृत्तिं जीवेश्वियममास्थिता । प्रायते त्वविधायैव जीवेच्छि स्परगर्हितः ॥ ( ৩५ ) ২०
''यदि स्वाखापराश्चैव विंदेरन्योषितो द्विजाः। तासां वर्णक्रमेण स्याजज्यैष्ठं पूजा च वरमनि॥(८५)
"भर्तु: शरीरशुश्रुवा धर्मकार्य च नैत्यकद् । स्वा चैव कुर्यात्सर्वेषां नात्वजातिः कथंचन॥ (८६)
'यस्तु तत्कारयेन्मोहात्स्वजात्या स्थितयाऽन्यया।यया बाह्मणचंडालः पूर्वहष्टस्तथैव सः॥(८७)
" तथा नित्यं यतेयातां स्त्रीपुंसां तु कृतिक्रिया । यथा नाति बेरतां ता नियुक्तावितरेतरम् ॥ (१०२)
दक्ष:---
                                                                                               २५
" ग्रहाश्रमात्परो नास्ति यदि सार्या वज्ञानुगा । तथा धर्नार्थकामारुयं त्रिवर्गफ्ठमश्रुते ॥
" आनुकूल्यं कलबस्य स्वर्गो भवति निश्चित्व । प्रातिकूल्यं कलबस्य नरको नात्र संशयः ॥
" स्वर्गेऽपि दुर्लमं ह्येतर्नुरागः परस्परम् । नक्तमेकं विरक्तं चेत्तस्मात्कष्टतरं तु किम् ॥
" <mark>प्रहाश्रमः सुसस्तस्य पत्नीमूळं हि त</mark>त्स्यस्य । सा पत्नी या वि<mark>धिज्ञा तु चित्तज्ञा वञ्चर्तिनी ॥</mark>
       " दुःखांतिकः कलिभेद्श्विनपीडापरस्परम् । प्रतिकूलकलत्रस्य द्विदारस्य विशेषतः॥
       " जलूकावत्स्त्रियः सर्वा धूपणाच्छादनाज्ञनः । सुपूजिता सुखाद्दाऽपि पुरुषं खपकर्षति ॥
       " जलूका रक्तमाद्ते केवलें सा तपस्विनी। इतरा तु थनं चित्तं मांसं वीर्यं तथा सुखम्॥
       '' सार्शका बालभावे तु योवने विषयोनमुखी। तृणवनमन्यते पश्चाङ्बृद्धभावे स्वकं पतिस्॥
        "अकार्यं वर्तमाना सा स्नेहेन न निवारिता। आवार्या तु भवेत्पश्चाद्यथाव्याधिरूपेक्षितः ॥
       " अनुकूला सदा हृष्टा दक्षा साध्वी प्रजापतिः । एभिरेव गुणैर्युक्ता श्रीरेव स्त्री न संश्य:॥ ३५
       ९ काम_गारीकंट्डे ।
```

'' प्रहृष्टमानसा नित्यं स्थानमानविचक्षणा। भर्तुः प्रियकरी या तु सा भार्या इतरा जरा ॥

" अदुष्टां विनतां भार्यी यौवने यः परित्यजेत् । सप्तजन्म भवेत्स्त्रीत्वं वैधव्यं च पुनः पुनः॥

" द्रिदं व्याधितं मूर्तं भक्तरं याऽवमन्यते। सा खता जायते स्त्री श्वा सूकरी च पुनः पुनः॥

"जीवे भर्त्तरि या नारी उपोष्य बतचारिणी । आयुष्यं हरते भर्तुः सा नारी नरकं वजेत् ॥

५ " जीवभार्या शिशुभातृमित्रदासतमाश्रिता । यस्यैतानि विनीतानि तस्य लोकेऽपि गौरवम् "॥ याज्ञवल्क्यः (आ. ৩५)—

" मृते जीवति वा पत्यौ या नान्यमुपगच्छति । सेह कीर्तिमग्रामोति मोद्ते चोमया सह ॥

" स्त्रिभिर्भर्तृत्वः कार्यमेष धर्मः परः श्चियाः। आ हुःद्धेः संप्रतीक्ष्यो हि महापातकदूषितः॥(७७) " भर्तृभातृपितृज्ञातिश्वज्ञुश्वहुरदेवरैः । वंयुभिश्च स्त्रियः पूज्या भूषणाच्छादनाज्ञानैः ॥ (८२)

े॰ " संयतोपस्करा दक्षा इष्टा व्ययपराङ्गुखी । कुर्याच्छुतुरयोः पाद्वंदनं भर्तृतत्परा" ॥ (८३) संयतोपस्कराः स्वस्थानावस्थापितहषदुपछोळुखळादिगृहोपकरणवर्गाः ।

मोपितभर्तृकस्त्रीवर्कः । प्रोविते भर्तृकया कर्तव्यमाह स एव (अ. ८४-८८)--

" क्रीडां शरीरसंस्कारं समाजोत्सबद्दीनम् । हास्यं परगृहे यानं त्यजेत्प्रोषितर्भतृका ॥

" रक्षेत्कन्यां पिता विश्वां पितः पुत्रस्तु वार्धके । अभावे ज्ञातयस्तेषां स्वातंत्र्यं न कचित्स्त्रियाः॥

१५ " पतिष्रियहिते युक्ता स्वाचारा विजितेंद्रिया । इह कीर्तिमवामोति प्रेत्य चानुत्तमां गितम् ॥ " सत्यामन्यां सवर्णायां धर्मकार्यं न कारयेत् । सवर्णासु विधो धर्म्यं ज्येष्ठया न विनेतरा " ॥ सत्यां सवर्णायामसवर्णा नैव धर्मकार्यं कारयेत् । सवर्णास्विपं बह्वीषु धर्म्यं विधो धर्मानुष्ठाने ज्येष्ठया विना ज्येष्ठां मुक्तस्वा इतरा मध्यमा किनेष्ठा वा न नियोक्तक्येत्यर्थः । शंखः—

" न(नुक्ता गृहािक्रिगेच्छेक्षानुत्तरीया न त्वरिता वजेक्ष परपुरुषमिभाषेतान्यत्र विणवप्र-२० विजतकृद्धवैद्यम्यो न नाभिं द्शेयेदा गुल्काद्वासः परिद्ध्याक्ष स्तनौ विवृतौ कुर्याक्ष हसेद्-पावृतं भर्तारं तद्वंधृन्वा न द्विष्याक्ष गणिकाधूर्ताऽभिसारिणीप्रविज्ञताप्रेक्षणिकामायामूल-कृहककािकाद्वःशीलादिभिः सहैकव तिष्ठेत्संसर्गेण हि चारिव्यं दुष्यिति" इति । प्रादारः

"दिरिद्रं व्याधितं सूर्खं भर्तारं याऽवमन्यते । सा शुनी जायते बृत्वा सूकरी च पुनः पुनः॥

"पत्यौ जीवति या नारी उपाष्ट्य वतमाचरेत् । आयुष्यं हरते भर्तुः सा नारी नरकं वजेत् ॥

२५ " अष्टष्ट्रवा चैव भर्तारं या नारी कुरुते वतम् । सर्वे तदाक्षसान् गच्छेदित्येवं मनुरब्रवीत् ॥

" नास्या जपतपोहोमदानवतमसाद्यः । स्त्रीणां पतिपराणां तु पत्यौ जीवति किंचन ॥

" तदाज्ञया तु कर्तव्यमकार्यमपि चेजया। भर्तुशप्यविक्षस्य कार्याकार्यमजानतः॥

" पत्न्याप्याज्ञा तु कर्तव्या पतितस्य तु सर्वदा " ॥ इति । आश्वलायनः —

" बांधवानां स्वजातीनां दुर्वृत्तं कुरुतं तु या । गर्भपातं च या कुर्याञ्च तां संभाषयेत् किचित् ॥

३० " यत्पापं बह्महत्यायां द्विगुणं गर्भपातने । प्रायश्चित्तं न तस्यास्ति तस्यास्त्यागो विधीयते ॥ " पतिव्रताधर्मः । शार्क्षद्वेयः—

"नारी खल्वननुज्ञाता पित्रा श्रात्रा सुतेन वा। निष्फलं तु भवेत्तस्या यत्करोति वतादिकम्"इति। कात्यायनः – " भार्या भर्तुर्मतेनैव वतादीनान्वरेत् " इति । महाभारतेऽपि पतिशुश्रूषापराया उत्तमां गतिमुक्त्वा वतादिपराया अन्यस्या भार्यायास्तदभावं ज्ञापयितुमुदाहृतम् —

🧦 भ " यमोऽथ लोकपालांस्तु बभाषे पुष्कलं वच:। मा शुचस्त्वं निवर्तस्व न लोकाः संति तेऽनधे॥

१ ख-वृतानां। २ क्ष-शुल्का।

" स्वधर्मविधुरा नित्यं कथं लोकान् गमिष्यसि । देवतं हि पतिर्नार्याः स्थापितः सर्वदेवतः ॥ " मोहेन त्वं वरारोहे न जानीषे स्वदैवतम् । पतिमत्या स्त्रिया लोके धर्मः पत्यर्पितस्त्विति "॥ मनुरिप (५।१५४)—

"नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न वर्तं नाष्युपोषणम् । पतिं शुश्रूवते यनु तेन स्वगं महीयते ॥ "अन्नतावृतुकाले च मंत्रसंस्कारकृत्पतिः । सुसस्य नित्यदातेह परलोके च योषितः ॥(१५२) ५ "अज्ञानादि पयः पथ्यं भर्जा यच्च विवर्जितम् । आत्मनश्च तया तत्स्याच्छयनं चासनं तथा॥ "अज्ञीलः कामवृत्तो वा गुणैर्वा परिवर्जितः। न स्त्रिया परिवर्ज्यः स्यात्सततं देववत्पतिः॥(१५२) "पाणियाहस्य साध्वी स्त्री जीवतो वा मृतस्य वा। पतिलोक्षमभीष्मन्ती नाचरेत्किं चिद्रप्रियम्॥(१५५) बालया वा युवत्या वा वृद्धया वापि योपिता । न स्वातंत्र्वयेण कर्तव्यं कार्यं किंचित्रुहेष्वपि॥(१४६) "बालये पितुर्वदो तिष्ठेत्पाणियाहस्य यौवने । पुत्राणां भर्तरि प्रेते न भज्ञेत स्वतंत्रता॥ (१४०) १० "पित्रा भर्जा सुतैर्वाऽपि नेच्छेदिरहमात्मनः। एषां हि विरहेण स्त्री हीने कुर्याद्वमे कुले॥ (१४८) "सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्ये च दक्षया। सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया"॥ (१४९) कात्यायनः—

" अग्निहोत्रादिशुश्रूषां बहुभार्यः सवर्णया । कारयेत्तद्बहुत्वे च ज्येष्ठया गर्हिता न चेत् ॥
" तथा वीरसुवामासामाज्ञासंपादिनी च या । दक्षा प्रियंवदा शुद्धा तामत्र विनियोजयेत् ॥ १५
" दिनक्रमेण वा कर्म यथाज्येष्ठमशक्तितः । विभज्य सहसा कुर्युर्ययथाज्ञानमशक्तितः "॥
धर्मसारे—

"यद्गृहे कलहो नास्ति पूज्यंते यद्गृहे स्थिताः । तद्गृहे वसते लक्ष्मीर्नित्यं पूर्णकलान्विता"॥ दयासः—

"कुरूपो वा कुवृत्तो वा दुःस्वभावोऽथ वा पतिः। रोगान्वितः पिशाचो वा मद्यपः क्रोथनोऽथ वा॥ ६० "वृद्धो वाऽथ विद्रग्धो वा मूकोंऽभो विधरोऽपि वा। रोदा वाऽथ द्रिदो वा कद्योंकुत्सितोऽथ वा॥ "कातरः कितवो वाऽपि ठलनालंपटोऽपि वा। सततं देववत्पूज्यः साध्या वाक्वायकर्मभिः॥ "अहंकारं विहायार्थं कामकोधो च सर्वदा। मनसो रंजनं पत्युः कार्यमन्यस्य वर्जनम्"॥ रत्नावल्याल् —

"न पिता नात्मजो नात्मा न माता न सुह्जजनाः। गतिर्भवति सत्स्त्रीणां पतिस्त्वेकः परा गतिः"॥ २५ इयासः——

"द्वारोपवेशनं नित्यं गवाक्षावेक्षणं तथा । असत्प्रठाणो हास्यं च दूषणं कुळयोषिताम् ॥ "सकामं वीक्षिताऽध्यन्यः प्रियेविवयः प्रळोभिता । स्पृष्टा वा जनसंमदं न विकारमुपैति या ॥ "पुरुषं सेवते नान्यं मनोवाक्कायकर्मभिः । ळोभिताऽपि परेणार्थेः सा सती ळोकभ्षणम् ॥ "दैन्येन प्रार्थिता वाऽपि वळेन विष्टताऽपि वा । वश्चादेवितिता वाऽपि नेवान्यं भजते सती ॥ ३० "वीक्षिता वीक्षते नान्यं हसिता न हसत्यपि । भाषिता भाषिते नेव सा साध्वी साधुळक्षणा ॥ "स्पयौवनयुक्ताऽपि गीतचल्येऽपि कोविदा । स्वानुरूपं नरं हष्ट्रा न याति विकृतिं सती ॥ "सुरूपं तरुणं रम्यं कामिनीनां च वल्लभय् । या नेच्छति परं कांतं विश्वया सा महासती ॥ "मुक्ते भुक्तेऽथ या पत्यौ दुःस्तिते दुःसिता च या । मुद्तिते मुद्तिताऽत्यर्थं प्रोषते मिळिनांवरा ॥ "सप्ते पक्षाञ्च या कोते पर्वमेव प्रवस्त्यते । स्वान्य काम्यते कार्यक्षा प्राप्ति विश्वता । अत्रिः---

4

- " भक्तिं श्वशुरयोः कुर्यात्पत्युश्चापि विशेषतः । धर्मकार्येऽनुकूलत्वमर्थकार्येषु संयमम् ॥ " प्रागल्भ्यं कामकार्येषु शुचित्वं निजविष्रहे । मंगलं संमतं पत्युः सततं प्रियभाषणम् ॥ "भाव्यं मंगलकारिण्या गृहमंडनशीलया । गृहोपस्करसंस्कारतज्ज्ञया प्रतिवासरम्॥ " क्षेत्राद्दनाद्दा ग्रामाद्दा गृहं भत्तरिमागतम् । प्रत्युत्थायाभिनंदेच्च स्वासनेनोद्केन च ॥ ५ " प्रसन्नभां ढमुष्टान्ना काले भोजनदायिनी । संयता गुप्तया ५ सा सुसंमुष्टिनिवेशना ॥ " गुरूणां पुत्रभित्राणां वंधूनां कर्मकारिणाम् । आहूतानां च भृत्यानां दासीदासजनस्य च ॥ " अतिथ्यभ्यागतानां च भिक्षुकाणां च ठिंगिनाम् । आसने भोजने दाने संमाने प्रियभाषणे ॥ "तत्तदुगुणानुसारेण प्राप्ते काले यथोचितस् । दक्षया सर्वदा भाव्यं भार्यया गृहम्ख्यया ॥ "ग्रह्ययाय यद् द्रव्यं दिशेत्पत्न्याः करे पतिः। निर्वर्त्यं गृहकार्यं सा किंचिद्बुध्याऽवशेषयेतु ॥ · ॰ " दानार्थमर्पिते द्रव्ये लोभात्किंचिन्न धारयेत् । भर्तुराज्ञां विना नैव स्वबंधुभ्यो दिशेद्धनम् ॥ " अत्यालापमसंतोषं परव्यापारसंगताम् । अतिहासातिरोषौ च क्रोधस्थानं च वर्जयेत् ॥ " यच्च भर्ता न पिवति यच्च भर्ता न खादति । यच्च भर्ता न चाश्नाति सर्वे तद्वर्जयेत्सती॥ " तैलाभ्यंगं तथा स्नानं शरीरोद्वर्तनक्रियाम् । मार्जनं चैव दंतानामलकानां च कर्त्तनम्॥ "भोजनं वमनं निद्रां परिधानं च वाससाम् । प्रारंभं मंडनानां च न कुर्यात्पश्यित प्रिये ॥ पु " आहूता या तु वै भर्जा स्त्री न याति त्वरान्विता। सा ध्वांक्षी जायते नूनं दशजन्मानि पंच च॥ " कामाद्रोषान्मत्सराद्वा भर्तारं याऽवमन्यते । सा सप्तजन्मकं यावन्नारकी स्यान्न संशयः"॥
 - " न वर्तेनोपवासेन धर्मेण विधिना न च। नारी स्वर्गदवाप्नोति प्रामोति पतिपूजनात्॥
 - " जीवितेनाथ वित्तेन भर्तारं वंचयेतु या । क्रिमियोनिशतं गत्वा पुल्कसी जायते ततः ॥
- . " जपस्तपस्तीर्थसेवा प्रवज्या मंत्रसाधनम्। देवताराधनं चैव स्त्री शूद्रपतनानि षट् "॥ व्यासः-
 - " हरिद्रां कुंकुमं चैव सिंदूरं कज्जलं तथा । कूर्पासकं च तांबूळं मंगल्याभरणं शुभम् ॥
 - " केशसंस्कारकवरीकरकण्ठविभूषणम् । भर्तुरायुष्यिविच्छंती दूषयेश्र पतिवता ॥
 - " प्रात:काले तु या नारी दद्याद्रव्ये विवस्वते। सत जन्मिन वैधव्यं सा नारी नैव पश्यित ॥
 - " क्रत्वा मंडलकं वाद्ये तूर्ष्णामेवाक्षतादिभिः । पृजयेत्सततं यावत्तस्यास्तुष्यंति देवताः ॥
- २५ " यद्गृहं राजते नित्यं मेंगल्येरनुलेपनैः। तद्गृहे वसते लक्ष्मीः नित्यं पूर्णकलान्विता॥
 - " न द्दाति तु या नारी ज्येष्टाये प्रत्यहं बिहम्। भोज्याद्वाखथाशक्ति सा प्रेत्य नरकं वजेत्॥
 - " अवस्यमेव नारीभिः ज्येष्ठायं बलिकर्मणा । प्रीणनं प्रत्यहं कार्यं पुत्रपौत्रधनेष्सुभिः " ॥ वाटमीकिः—
 - " न पिता नात्मांना नात्मा न माता न सखीजनः । इह प्रत्य च नारीणां पतिरेको गतिः सद्। ॥
- । "न कृतं न कुठं विद्यां न इतं नापि संग्रहम् । श्रीणां गृह्णाति हृदयमनित्यहृद्या हि ताः॥
 - " सार्ध्वानां तु स्थितानां हि शिले सत्ये श्रुते शमे । स्त्रीणां पवित्रं परमं पतिरेको विशिष्यते॥
 - " नातंत्री वाद्यते वीणा नाचक्रो वर्तते रथः । नापतिः सुखमेधेत या स्याद्यि शतात्मजा ॥
 - " नगरस्थो वनस्थो वा पापी वा यदि वा शुभः । यासां स्त्रीणां प्रियो भर्ता तासां होका महोद्याः॥
 - " दुःशीलः कामवृत्तो वा धनवान्यदि वाऽधनः । स्त्रीणामार्यस्वभावानां परमं दैवतं पतिः॥
 - " पतिशुश्रूषणं नार्यास्तपो नान्यद्विधीयते " ॥ ड्यासः—

" पतिव्रता तु या नारी भर्तृशुश्रूषणोत्सुखा । न तस्या विश्वते पापमिह लोके परत्र च ॥ "पतिवता धर्मरता कद्राण्येव न संशयः । तस्याः पराभवं कर्त्तुं शक्नोति न जनः क्वचित्"॥ बोधायनः—" भर्तृहिते यतमानाः स्वर्गठोकं जयेरन्" इति । इति । अय गर्भिणीधर्माः— **याज्ञवल्क्यः (** आ.७९)—" षोडहार्तुनिकाः स्त्रीणां तस्मिन्यग्मासु संविज्ञेत्" इति । पराश्चरः (४।१६-१४)--

" ऋतुस्नाता तु या नारी भर्तारं नोपसर्पति । सा मृता नरकं याति त्रियदा च पुनः पुनः ॥ "ऋतुस्नातां तु यो भार्यो संनिधो नोपगच्छति।घोरायां श्रूणहत्यायां युज्यते नात्र संशयः"॥ इति । पूर्वमेव गर्भाधानं सविस्तरमभिहितम्। सङ्कितंबिदिकायान् (

" नावस्करेषूपविशेन्मुसलोल्कलादिषु । जलं च नावगाहेत झून्यांगारं च वर्जयेत् ॥

" बल्मीके नाधितिष्ठेत न चोद्दिशमना भवेत् । विलिखेन्न नसिर्मुमिं नांगरिण न भस्मना ॥ ३०

" न श्यालुः सदा तिष्ठेद्यायामं च विवर्जयेत् । न तुप्रोगारमस्मास्थिकपालेषु समाविशेत् ॥

" वर्जयेत्कलहं लोके गात्रभंगं तथव च । न मुक्तकेशी तिष्ठेतु नाशुचिः स्यात्कदाचन ॥ " न शयीतोत्तरिशरा न चैवाधःशिरा कचित्। न वस्त्रहीना नोद्विमा न चार्द्रचरणा सती॥

" नामंगल्यं वदेद्वाक्यं न च हास्यादि किंचन । कुर्याच्छुशुरयोनिंत्यां पूजां मंगलतत्त्वरा ॥

" तिष्ठेत्प्रसन्नवद्ना भर्तुः प्रियहिते रता " ॥ स्मृतिरत्ने —

'' संध्ययोर्नेव भोक्तव्यं गर्भिण्या तु प्रयत्नतः । न स्नातव्यं न गंतव्यं वृक्षमूलेषु सर्वदा ॥ " न शयालुः सदा तिष्ठेत्खद्वाछायां विवर्जयेत् । सर्वेषधीभिः कोष्णेन वारिणा स्नानमाचरेत्॥

" क्वतरक्षा सुभूषा च वास्तुषूजनतत्परा । द्वानशीला तृतीया या पार्वत्या नक्तमाचरेत्॥

" इतिव्रता भवेनारी विशेषेण तु गार्भिणी । यस्तु तस्या भवेत्पुत्रः स्थिरायुर्वृद्धिसंयुतः ॥

" अन्यथा गर्भपतनमवाप्नोति न संशयः " ॥ **याज्ञवत्क्यः** (आ. ७९)—

''द्दौह्दस्याप्रदानेन गर्भो दोषमवाष्नुयात्। वैरूप्यं मरणं वाऽपि तस्मात्कार्य प्रियं स्त्रियाः''॥ सुभ्रतेऽपिः--- ' ततः प्रभृति व्यायामव्यवसायातितर्पणदिवास्वप्नरात्रिजागरणशोकभयारोहण वेगधारणकुक्कुटासनशोणितमोक्षणानि परिहरेत् । अभिरुषितं दत्वा वीर्यवंतं चिरायुषं पुत्रं जनयति " इति। ततः प्रभृति गर्भग्रहणप्रभृतीत्यर्थः । तद्ग्रहणं च श्रमादि हिंगैरवगंतव्यम् । अन्यान्यपि तत्रैवोक्तानि—" सद्यो गृहीतगर्भायां श्रमोऽग्लानिषिपासासिक्थस्पंदनं पुत्रं २५ जनयति शुक्रशोणितयोः संबंधे स्पुरणं च योन्याः " इति । बृहस्पतिरिप — '' सबो गृहीतगर्भायां श्रमः स्याबोऽभिजायते। पिपासा च ततो ग्लानिर्यान्यां तु स्फुरणं भवेत्"॥

काञ्यपः--

" गर्भघारणमारभ्य व्यायामव्यसनानि च । तत्क्षणं च दिवा स्वप्नं रात्री जागरणं तथा ॥ " गजाश्वारोहणं शोकं वेगं धारणमेव च । विरेचनं नैव कुर्यात्क्षारायन्नं च वर्जयेत् "॥ ३० गर्भोपनिषदि--" ऋतुकाले प्रयोग एकरात्रोषितं कलिउं भवति सप्तरात्रोषितं बुद्धदं भवत्य-र्धमासाभ्यंतरेण पिंडो भवति मासाभ्यंतरेण कठिनो भवति मासद्वयेन शिरः कुरुते मासत्रयेण पादप्रदेशो भवत्यथ चतुर्थे मासेंऽगुलजठरकटिप्रदेशो भवति पंचमे मासे पृष्ठवंशो भवति षष्टे मासे नासाक्षिश्रोत्राणि भवंति सप्तमे मासे जीवेन संयुक्तो भवत्यष्टमे मासे सर्वसंपूर्णो भवति पितृरेतोतिरिक्तात्पुरुषो भवति मातृरेतोतिरिक्तात्स्रियो भवत्युभयोर्वीर्यतुल्यत्वान्नपुंसको भवति ३५ 94

•याकुलितमनसाऽन्याः संजाः कुब्जा वामना भवंत्यन्योन्यवायुपीडितानां शुक्रद्वैथे स्त्रियो योन्या युग्माः प्रजायंतेऽथ नवमे मासि सर्वन्नक्षणसंपूर्णो भवति।पूर्वजातिस्मरो भवति कृताकृतं च कर्म भवति शुभाशुभं च कर्म विन्दति।

" नानायोनिसहस्त्राणि दृष्ट्या चैव ततो मया। आहारा विविधा भुक्ताः पीताश्च विविधाः स्तनाः॥ ५ " जातस्यैव मृतस्यैव जन्म चैव पुनः पुनः। अहो दुःखोदयौ मग्नो न पश्यामि प्रतिक्रियास् "॥

" यदि योन्याः प्रमुंचामि सांख्ययोगं समाश्रये । अञ्चाभक्षयकर्तारं फलप्रुक्तिप्रदायिनम्॥

" यदि योन्याः प्रमुंचामि तं प्रपद्ये महेश्वरम् । अशुमक्षयकर्तारं फलशक्तिप्रदायिनम् ॥

" यदि योन्याः प्रमुंचामि भजेन्नारायणं विभुम् ॥

" यन्मया परिजनस्यार्थे कृतं कर्म शुभाशुभस्। एकाकी तेन द्श्वामि गतास्ते फलभोगिनः॥
" एवं जंतुस्त्रियोनिशतं प्राप्य योनिद्दारियंत्रेणैव पीड्यमानो महता दुःखेन जातमात्रस्तु
वैष्णवेन वायुना संस्पृष्टस्तदानीं स्मरित जन्मभरेण न च कर्म शुभाशुभम् " इति।
याज्ञयल्क्यः (प्रा. ७५)

" प्रथमे मासि संक्लेद्रभूताया तु विमूर्च्छितः। मासे द्वितीये बुद्धुदस्तृतीये चेंद्रियैर्युतः॥
" आत्मा मृह्णात्यजः सर्वे तृतीये स्यंदते ततः। स्थैर्यं चतुर्थे त्वंगानां पंचमे शोणितोद्भवः॥

" षष्ठे बरुस्य वर्णस्य नखरोम्णां च संभवः । मनश्चेतन्ययुक्तोऽसौ नाडीस्नायुशिरायुतः ॥

" सप्तमे चाष्टमे चैव त्वङ्कांसस्मृतिमानि । पुनर्धात्रीं पुनर्गर्भमोजस्तस्य प्रधावति ॥

" अष्टमे मास्यतो गर्भो जातः प्राणैर्विम्युचते । नवमे दशमे वाऽपि प्रवर्ठैः सूतिमारुतैः ॥

" निःसार्थनेवाण इव यंत्रिष्टेरण सत्वरः "। इति । संक्केर्भूतः द्रवभूतः । बुद्धुदमीषत्किठिनम् ।

" हृदि तिष्ठति यच्छुद्धमीयद्रकं सपित्तक्ष । ओजः शरीरे संख्यातं तन्नाशान्नाशमृच्छिति " ॥ २० इति लक्षितमोजः । अष्टमे मासि चंचलतया मातरं गर्भ च पुनः पुनर्वजाति अतस्तत्र जातो स्त्रियत इत्यर्थः ।

अथ विधवाधर्माः। तत्र याज्ञवल्क्यः (आ. ८६)—

"पिवृमावृसुतभ्रावृश्वश्रूश्वशुरमातुलैः। हीना न स्याद्दिना भर्ता गर्हणीयाऽन्यथा भवेत्"॥ भर्त्रा विना भर्तृगहिता पित्रादिरहिता न स्यायस्मात्तद्रहिता गर्हणीया निंद्या भवेत्।

२५ आश्वलायनः---

" मृते भर्तृर्यपुत्रा तु वालपुत्रा च यांऽगना। बंधूनाश्रित्य सा जीवत्संयता जनकादिकान् " ॥ एतच्च ब्रह्मचर्यपक्षे। "भर्तिरि प्रेते ब्रह्मचर्य तद्दन्वारोहणक्" इति विष्णुरुभरणात्। व्यासः (अ. २५ सू. १५)—

" पत्यौ मृते या योषिद्रैषट्यं पालयेत्कचित्। सा पुनः प्राप्य भर्तारं स्वर्गभोगान्समश्रुते।।

" विधवाकवरीबंधो भर्त्तृवंधाय कल्पते । शिरसो वपनं तस्मात्कार्यं विधवया तया ॥

" एकाहारः सदा कार्यो न द्वितीयः कदाचन । त्रिरात्रं पंचरात्रं वा पक्षत्रतमथापि वा ॥

" मासोपवासं वा कुर्याच्चांद्रायणमथापि वा । कुर्यात्क्वच्छ्रं पराकं वा तप्तक्वच्छ्रमथापि वा ॥

" यवान्नैर्वा फलाहारैः शाकहारैः पयोवृतैः । प्राणयात्रां प्रकुर्वीत यावत्प्राणः स्वयं वजेत् ॥

" पर्यक्शायिनी नारी विधवा पातयेत्पतिम् । तस्माद्भृशयनं कार्ये पतिसौख्यसमीहया ॥

३५ " न चांगोद्दर्तनं कार्ये स्त्रिया विधवया क्वचित्। गंधद्रव्यस्य संभोगो नैव कार्यस्तथा क्वचित्॥

- "तर्पणं प्रत्यहं कार्य भर्नुः कुश्तिलाद्देः । तत्यतुस्तत्यतुश्वापि नामगात्राभिपूर्वेकम् ॥
- " विष्णोस्तु पूजनं कार्यं पतिबुद्धचा न चान्यथा । पतिभव सदा ध्यायेहिष्णुरूपधरं परम् ॥
- " एवं चर्यापरा नित्यं विधवाऽपि शुभा मता । एवं धर्मपरा युक्ता विधवाऽपि पतिवता ॥

आश्वलायनः-

- " जपेच्च रुद्रवत्सा तु नमेत्रविमथावनौ । दीर्ष च भर्तृचिता स्यान्नान्यस्या वा विश्वीयते ॥ ५ " जपश्च प्रणवस्त्स्य वैदिकस्तु विर्धायते " ॥ पराञ्चरः—
- " मृते भक्ति या नारी ब्रह्मचर्ये व्यवस्थिता । सा मृता ठभते स्वर्ग यथा ते ब्रह्मचारिणः " ॥ ब्रह्मचारिणः ते प्रसिद्धाः । मनुः (५।१५६)—–
- "कामं तु क्षपयेद्देहं पुष्पमूलफलें: शुभैः । न च नामापि युक्तियात्वरयो प्रेते वरस्य तु ॥ "मृते भर्तिर साध्वी स्त्री बह्मचर्ये व्यवस्थिता । स्वर्ग गच्छत्यपुत्र। च यथा ते बह्मचारिकाः "॥ इति । १ ॰ "तांबूलोऽभर्तृकस्त्रीणां यत्तानां ब्रह्मचारिकाम् । एकेकं मांसतुल्यं स्यात् मिलितं तु सुरासमम्" ॥ आपस्तंबः " यावज्जीवं प्रेतपत्नयुद्कोपस्पर्शनमेकभुक्तमधःशय्याः ब्रह्मचर्ये आग्लवणमधु-मांसवर्जनं च " इति । इति विधवाधर्माः ॥

अथानुगमनम् । तत्र विष्णुः (२५।१४)---

- " भर्तरि प्रेते ब्रह्मचर्ये तद्क्वारोहणमेव वा दिति। पैतृकं वा यत्र सैषा प्रदीयते । कुल्बयं १५ पुनात्येषा भर्तारं याऽनुगच्छति "॥ तत्र पराज्ञरः —
- "तिस्नः कोट्यर्थकोटी च यानि रोमाणि मानुषे । तावत्कालं वसेत्स्वर्धे अर्तारं याऽनुगच्छति"॥ तावत्कालं तावत्सहस्रं संवत्सरम् । तथा च हारीतः—
- **" मृते** भर्त्तरि या नारी धर्मशीला पैतिवता । अनुगच्छति भर्त्तारं शृणु तस्यास्तु यत्फलम् ॥
- " तिस्तः कोट्यर्थकोटी च यानि रोमाणि मानुषे । तावंत्यब्द्सहस्त्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥ ২৭
- " मातृकं पेतृकं चैव यत्र कन्या प्रदीयते । कुलत्रयं पुनात्येषा भर्तारं याऽनुगच्छति "॥ न केवलं स्वयमेवानुगमने स्वर्गे वसति किंतु स्वभर्तारं पापकलभोगाय नरकमार्गाभिमुख-मपि स्वकीयेन प्रवलसुक्कतेनोद्धरतीत्याह पराहारः—
 - " व्यालगाही यथा व्यालं बिलाइद्धरते बिलात्। एवं स्त्री पतिमुद्धत्य तेनैव सह मोदते"।।

त्रिकांडी—

314

- "आपे दुष्कृतकर्माणं समुद्भृत्य च तत्पतिम् । यावत्स्वलोमसंस्थाऽस्ति तावत्काद्ययुनानि च ॥ "भर्त्रो स्वर्गे सुस्तं भुंके रममाणा पतिवता । यमदूताः पलायेने पतिमालोक्य दूरतः"॥ इति । तथा च शंखांगिरसौ—
- " तिस्रः कोट्यर्धकोटी च यानि रोमाणि मानुषे । तावत्कालं वसेत्सर्गे भर्तारं याऽनुगच्छिति ॥
- " ब्यालगाही यथा व्यालं बलाइन्द्रगते बिलात् । तद्वइन्द्रत्य सा नारी सह तेनैव नादते ॥
- " तत्र सा भर्तृपरमा स्त्यमानाऽप्सरोगणैः । कीडते पतिना सार्धे यावदिंदाश्वतुर्दशः।
- " ब्रह्मन्नो वा कृतन्नो वा मित्रन्नो वा भवेत्पतिः । पुनात्यविधवा नारी तजाद्भय मृता तु या ॥
- " मृते भर्तरि या नारी समारोहेन्द्रताज्ञनम् । साऽहंधतीसमाचारा स्वर्ग्क्कोके महीयते ॥

- "यावच्चाम्रो मृते पत्यौ स्त्री नात्मानं पदाहयेत्। तावन्न मुच्यते साहि स्त्रीशरीरात्कथंचन"ो इति। अगिराः—
- " साध्वीनामेव नारीणामग्निप्रपतनाहते । नान्यो धर्मो हि विज्ञेयो मृते भर्तरि कर्हिचित् ॥ " आर्चाऽर्त्ते मुद्दिते हृष्टा प्रोषिते मिलना क्वजा। मृते भ्रियेत वा पत्यौसा स्नीज्ञेया पतिवता"॥

५ उपमन्युः---

"अनपत्या च या नारी ब्राह्मणा यदि वेतरा । तस्या नान्या गतिः प्रोक्ता सहानुगमनाहते" ॥ अत्र विद्वानेश्वरीये (ए. २३ पं. २७–२८) " अयं च सर्वासां स्त्रीणामबाळापत्यानामानचां डाळं साधारणो धर्मः । भर्तारं याऽनुगच्छति इत्यविशेषेणोपादानात्" इति । स्मृतिरत्नेऽपि— "धर्मोऽयं सर्वनारीणां पत्युश्चित्यपिगोहणम् । अन्यत्र गर्भिणीबाळाऽपत्ययुक्ताभ्य एव च"॥ इति । ३० और्वः

" बाल।पत्याञ्च गर्भिण्यो हाङ्ष्युःर्तन एव च । रजस्वला राजसुता नारोहंति चितांङ्काभे" ॥ स्मृत्यंतरे—

"वारु।पत्या तु या नारी भर्त्रा सह न मंबजेत। रजस्वकः तु गब्छेतु गंत्रिकक्षेतु गर्भिणीं"॥**अन्यत्र** तु— " सार्चवा सुनिका वाऽपि भर्त्रानुबरणोत्तुकः । स्वयः ब्राख्निपदापोति भर्तुः पाषापहारिणी ॥

- ५५ " बालापत्या तु या नारी सूर्तिको वा रजस्वला । सर्वासामपि च खीणामेष साधारणो विधिः॥"
 इति गर्भिण्या निषेप एव । बालापत्यार्दानां विकल्प इत्याहुः । पृथकचितिविषयमित्यन्ये । तत् क्रियोतारूयानव्याजेन दृर्शियति यद्यातः
- "पतिवता संप्रदीतं प्रविवेश हुताज्ञनम् । ततश्चित्रांगधरं भन्नीरं साउन्त्रणवतः" ॥
 "ततः स्वर्गे गतः पक्षी भार्यया सह संगतः। कर्मणा पूजितस्तत्र रमे च सह भार्ययाः"॥ इति ।
 ३० ननु बाह्मण्या अनुगमननिषेधोऽवि रुक्यते । तत्र पैठीनसिः---
 - " युतानुगमनं नास्ति ब्राह्मण्या ब्रह्मशासनात् । इतरेषां तु वर्णानां स्त्रीधमोंऽयं परः स्युतः " ॥ विराद्य---
 - " अनुवर्त्तत जीवंतं नानुयायान्मृतं पतिम् । जीव्य भर्तुहितं कुर्यान्मरणादात्मधातकी"॥ अंगिराः—
- २५ '' या स्त्री ब्राह्मणजाती<mark>या मृतं प</mark>तिमनुबजेत् । सा स्वर्गमात्मधातेन नात्मानं न पति **नयेत्**' ॥ व्याद्यपादः —
 - "न ब्रियेत समं भर्तां ब्राह्मणी शोकमोहिता। प्रवज्यागितमामोति मरणादात्मवातकी"॥इति ॥ एवमादीनि वचनानि प्रथक्चित्यथिरोहणविषयाणि इति विज्ञानेश्वरीये (ए. २४ पं.१८--२०) माधवीयस्युतिरत्नादिबु व्यवस्थापितानि । अत एयंशावाः —
- ुः, "पृथक्चितिं समारुह्य न विप्रां गंतुमर्हति । अन्यासां चैव नारीणां स्त्रीधर्माऽयं परः स्मृतः"॥इति । यत्त्वपरार्के—
 - " देशांतरमृते पत्यौ साध्वी तत्पादुकाद्यम् । निधायोरसि सश्रद्धा प्रविशेज्जातवेदसम् ॥
 - " द्यितं या अन्यदेशस्थं मृतं श्रुत्वा पतिवता । समारोहित दीते अग्रै तस्याः शक्तिं निबोधत ॥
 - " यदि प्रविद्यो नरकं बद्धः पाञ्चैः सुदारुणैः । संप्राप्तो यातनास्थानं गृहीतो यमिकिंकरैः ।
- ३५ " तिष्ठते विवशो दीनो वेष्ट्यमानः स्वकर्मभिः॥

34

"व्यालग्राही यथा सर्प विलाद्गृह्णात्यशंकितः। सा तं मर्तारमादाय दिवं याति सर्ती च या॥
"सा मर्तृपरमा स्वर्गे स्तृपमानाऽप्सरोगणेः। किंडते पतिना सार्धे याविद्रेदाश्चर्त्वश्ंणे॥
एतत्पृथक्चितिमरणं ब्राह्मणव्यतिरिक्तविषयम् । यत्तु " तस्माद्वह न पुराष्ट्रयः स्वर्गकामी प्रेयादिति " श्रुतिविरोधादनुगमनमयुक्तमिति तच " न स्वर्गकाम्यायुषः प्राष्ट्र न
प्रेयादिति " स्वर्गकलोद्देशेनायुषः प्रागायुर्व्ययो न कर्त्तव्यः मोक्षार्थिना । यस्मादायुषः कोषे ५
सति नित्यनेमित्तिककर्मानुष्ठानेन क्षितितांतःकरणकलंकस्य अवणमनननिदिष्यासनसंपत्तीः
सत्यामात्मज्ञानेन नित्यनिरितशयानंद्वद्यप्राप्तिलक्षणमोक्षसंभवस्तस्मादिनित्याल्पस्वर्गार्थनायुवर्षयो न कर्त्तव्यमित्यर्थः । अतथ्य मोक्षमितिच्छंत्या स्वर्गार्थिन्या अनुगमतं युक्तं इतीतरकाम्यानुष्ठानवदिति " विज्ञानेश्वरः (प. २४)। इदं चानुमरणं पतिवतयाऽनुष्ठितमुक्तित्याः
दंपत्योक्तमयोः श्रेयो हेतुः । पापीयस्यानुष्ठितं चेत्पापक्षयहेतुर्भवति । तथा च व्यासद्यातातपीन १०
" अवमत्य च या पूर्व पतिं दुष्टेन चेतसा । वर्तते याश्च सततं भर्तृगां प्रतिकूलतः ॥
"भर्वानुनरणं काले याः कुर्वति तथाविधाः।कामात्कोयाद्भयानमोहात्सर्वाः पूता भवंत्युत ॥
"आदिप्रभृति या साध्वी भर्तुः प्रियपरायणा । कर्ध्व गच्छाते सा तत्र भर्वानुनरणं गता"॥ इति ।
पुराणसारे— बाह्मणीं प्रति नारदः—

" पापं यदि कृतं भद्रे परपूरुषसेवनात् । तथाऽन्यस्यापि पापस्य नाशो वन्हिप्रवेशनात् ॥ 5५ " पतिव्रता धर्मपत्नी भर्तृशुश्रूषणे रता । याऽनुगच्छति भर्त्री सा स्वर्गे यात उभौ ध्रुवम् "॥ इति । गूउच्यभिचारिणीं प्रत्याह याज्ञवल्क्यः (आ. ७०)—

" इताधिकारां मिलनां पिंडमात्रोपजीविनीम् । परिभूतामधःशय्यां वासयेस्यभिचारिणीम् " ॥ पिंडमात्रजीविनीं प्राणयात्रामात्रभोजनमधःशय्यामास्तरणािः विहीनस्यलशाियनीं परिभूतां धिकारभर्त्सनकुत्सना वेश्मन्येव वासयेत् । मनुः (५।१६०)——

"अपत्यलोभाया तु स्त्री भर्तारमितलंबयेत् । सेह निद्यामबामोति परलोकाद्विहीयते ॥ "ब्यभिचारात्तु भर्तुः स्त्री लोके प्राभोति नियताम् । सृगाजयोनिं प्राभोति प परोगेश्व पीडचते॥(१६३) " पतिं हित्वाऽपक्वष्टं स्वमुत्कृष्टं योपसेबते । निथैव लोके भवति परपूर्वेति चोच्यते ॥ (१६२) "नान्योत्पन्ना प्रजा स्त्रीह नान्यस्यान्यपरिग्रहः। नाद्वितीयश्व साध्वीनां कचिद्धतींपदिक्यते"॥(१६१) श्रुतिश्पिन "तस्मान्नेका द्वौ पती विदेते " इति । याज्ञ शत्क्यः (आ. ७२)—

"व्यभिचाराहतौ शुद्धिर्गर्भ त्यातो विधीयते। गर्भमर्तृत्यादौ च तथा महति पातके ।॥ ऋतावृतौ शुद्धिरित्येतन्मानसव्यभिचाराभित्रायमः "रङ्गसा स्त्री मनोदुष्टा" इत्युकत्वातः 'गर्भे भ्याग ' इति शुद्धकृते गर्भे त्यागः।

"बाह्मणक्षत्रियविशां भार्याः शूद्रेण संगताः। अत्रजाता विशुध्यंति प्रायश्चित्तेन नेतराः"॥ इति मनुस्मरणात् । तथा गर्भवधे भर्वचे महापातके च आदिग्रहणाच्छिष्यादिगमने ३० च त्यागः।

" चतम्रस्तु परित्याज्याः शिष्यगा गुरुगा च या। पतिझीं च त्रिशेषेण जुंगितोपगता च या॥" इति । जुंगितः प्रतिलोमजः। प्रतिलोमसांकर्यं त्यागश्च उपभोगधर्मकार्ययोः। न तु सर्वथा तस्या 'विष्रदृष्टो स्चियं भर्ता निरुध्यादेकषेश्मनि " इति नियमात्। उशानाः—''व्यभिचारिणीं भार्या कु वेलपिंड-परिभूतां निवृत्ताधिकारां चःद्रायणप्रायश्चिनं प्राजापत्यं चाचारयेत्" इति ।

```
याज्ञवल्कयः-" यत्पुंसां परदारेषु तच्चेनां चारयेद् व्रतम् " इति । भृगुः---
  " अशीतिर्यस्य वर्षाणि बालो वा ऽप्यूनषोडशः। प्रायश्वितार्धमहैति स्त्रियो व्याधित एव वा।" इति।
   मनुः ( ११।१८९ )-- " कृतनिणेंजनां चैतां न जुगुप्सेत कर्हिंचित् ।
   "सोमः शौचं ददौ स्त्रीणां गंथविश्व शुभां गिरम्।" "पात्रकः सर्वमेध्यत्वं मेध्या वै योषितो हातः॥" इति।
५ कृतनिर्णेजनां चैतां कृतप्रायश्चितां परिणयनात्पूर्व सोमगंधवीग्नयः स्त्रियो यथाक्रमं तासां
   शौचमधुरवचनसर्वमेध्यत्वाद्विन द्तवंतस्तस्मात्श्वियः सर्वत्र स्पर्शनालिंगनादिषु मेध्यकरा
   इत्यर्थः । यस्त्वंतरेणैव निमित्तं दारान्परित्यजित या च भर्तारं परित्यजित । तयोर्निष्क्वति-
   माहापस्तंबः (१।२८।१९-२)-- " दारव्यतिकमी खराजिनं बहिर्हीम परिषाय "
   दारव्यतिक्रमिणे भिक्षाम् इति सप्तागाराणि चरेत्सा वृत्तिः षण्मासान् । स्त्रियास्त् भर्वव्यतिक्रमे

    कृच्छ्रदाद्शरात्राभ्यासस्तावंतं कालम् इति । इति स्त्रीधर्मः ॥

          गृहस्थधर्मानाह दक्षः— ( ३।१-१९ )
   "विधा नव गृहस्थैस्य ईषद्दानानि वै नव । नव कर्माणि तस्यैव विकर्माणि तथा नव ॥
   " प्रच्छन्नानि नवान्यानि प्रकाशानि पुनर्नत्र । सफलानि नवान्यानि निष्फलानि तथा नव ॥
   " अदेयानि नवान्यानि वस्तुजातानि सर्वदा । नवका नवनिर्दिष्टा गृहस्थोन्नतिकारकाः ॥
५ " विधावस्तूनि वक्ष्यामि विशिष्टे गृहसागते । मनश्चश्चमुति वाक्यं सौम्यं द्याच्चतुष्टयम् ॥
   " अभ्युत्थानमिहागच्छ पूर्ववादः प्रियंवदः । उपासनमनुत्रज्या कार्याण्येतानि यत्नतः ॥
   " ईषद्दानौनि चान्यानि भूम्युदकं तृणानि च। पादशौचं तथा स्नानमासनं शयनं तथा॥
   " किंचिद्देयं यथाशक्त्या नास्यानश्रन्गृहे वसेत् । स नलं चार्थिने देयमेतान्यपि सदा गृहे ॥
   " संध्या स्नानं जपो होमः स्वाध्यायो देवतार्चनम् । वैश्वदेवे क्षणातिथ्यमुद्भृत्यापि स्वराक्तितः॥
          " पितृदेवमनुष्याणां दीनानाथतपस्त्रिनाम् । गुरुमातृपितॄणां च संविभागो यथार्थतः ॥
         " एतानि नव कर्माणि विकर्माणि तथा पुनः । अनृतं परदाराश्च तथा भक्ष्यस्य भक्षणम्॥
         " अगम्यागमनापेयपानं स्नेयं च हिंसनम् । अश्रीतक्रमीचरणं मैत्रधर्मबहिष्कृतम् ॥
         " नवेतानि विकर्माणि तानि सर्वाणि वर्जयेत् ॥
         " पैज्ञून्यमनृतं मायां कामं कोधं तथाऽप्रियम् । द्वेषं संगंपरद्रोहं विकर्माणि विवर्जयेत्॥
         " चृत्यं गीतं कृषिः-सेवा वाणिज्यं लवणं कयः । मृतकर्मायुर्धीयं च न प्रशस्तानि कर्मसु ॥
         " आयुर्वित्तं गृहच्छिद्रं मंत्रमैथुनभेषजम् । आयं दानावमानं च नव गोप्यानि सर्वदा ॥
         " प्रायोग्यमृणजुद्धिश्च दायभागश्च विक्रयः। कन्यादानं वृषोत्सर्गो रहः पापमकुत्सनम् ॥
         " मातापित्रोर्गुरोर्मित्रे विनीते चोपकारिणि । दीनानाथिविशिष्टभ्यो दत्तं तु सफलं भवेत् ॥
         " धूर्न दंदिनि महे च कुवैधे कितवे शंधे । चादुचारणचोरेभ्यो दत्तं भवति निष्फलम् ॥
         " सामान्यं याचितं न्यासमाधिद्रिाश्च तद्धनम् । भयदानं च निक्षेपः सर्वस्वं चान्वये सित ॥
 '' आपत्स्विपि न देयानि नव वस्तूनि सर्वदा । यो ददाति स मूढात्मा प्रायश्चित्तीयते द्विजः ॥
         " नवकस्य च वेत्तारमन्ष्ठानः परं द्विजैस् । इह लोके परत्रापि श्रीश्चैनं न विमुचिति " ॥
         अथ गार्हस्थ्यप्रशंसा ।
```

तत्र मनुः (६।८९)--

१ क्ष-सन्यतानि नवेव च । २ सुधा इति मुद्धिनपाठः । ३ क्ष-द्ययानि । ४ क्ष-दुर्धनम् । ५ क्ष-परम् ।

```
" सर्वेषामेत्र चैतेषां वेद्श्रुतिविधानतः । गृहस्य उच्यते श्रेष्टः स त्रीनेतान्त्रिभर्ति हिं ॥
 वेदश्रुतिविधानतः वेदश्रुत्या प्रत्यक्षेण विधानतः । वैदिकानामाधानादीनां कर्मणां गृहस्थमधि-
 क्कृत्य विवानस्य प्रत्यक्षश्चतिमूलत्वादित्यर्थः । स एव ( ६।९० )—
 '' यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यांति संस्थितिम् । तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यांति संस्थितिम् ॥
 '' संन्यस्य सर्वकर्माणि कर्मदोषानपानुदन् । नियतो वेदमभ्यस्यन्पु बैश्वये सूतं वसेत् ॥ (९५)
 "पुत्राम्नो नरकायस्मात्पितरं त्रायते तु सः। तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयंभुवा ॥
 '' एवं संन्यस्य कर्माणि स्वकार्ये परमें (५६१६: । संन्यासेनापडन्त्येन: प्रामोति परमां गतिम ''॥(६६)
 अत्र संन्यासः काम्यकर्मत्यागः ! तथा चे तं भगवद्गीतासु (१८१२)---
 ''काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवशे विदुः। नियतस्य तु संन्यासः कर्मणो नोपपद्यते॥(१८।७)
 '' <mark>यज्ञो दानं तपश्चेव न त्या जं कार्यमेव तत्।यज्ञो दानं तपश्चेव पावनानि मनीविणाम्॥ (१८।५</mark>) ५०
 ''एत। न्यपि तु कर्माणि संगं त्यक्ता फलानि च। कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम्॥ (६)
 ''ब्रह्मण्याधाय कर्माणि संगंत्यक्त्व। करोति यः । लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमित्रांभसा ॥ (५।१०)
 ''कायेन मनसा बुध्या केवलैरिद्रियेरिप। योगिनः कर्म कुर्वति संगं त्यक्त्वाऽऽत्मकुद्धये॥(५।११)
 ''युक्तः कर्मफुळं त्यक्तवा ज्ञांतिमामोति नैष्ठिकीम्। अयुक्तः कामकारेण फुळे सक्तो निवध्यते ''॥इति।
 वक्षः ( पा१२ )--
                                                                                               ۾ پ
 '' गृहस्थो हि कियायुक्तो न गृहेण गृही भवेत्। न चापि पुत्रदारायैः स्वकर्मपरिवर्जितः ॥
'' देवैश्चैव मनुष्येश्च तिर्यग्भिश्चोपजीव्यते । गृहस्थः प्रत्यहं यस्मात्तस्माच्छ्रेयानगृहाश्रमी ॥
" यथा मातरमाश्रित्य सर्वे जीवंति जंतवः । तथा गृहस्थमाश्रित्य सर्वे जीवंति भिक्षवः ॥
" चतुर्णामाश्रमाणां तु गृहस्थो योनिरुच्यते । सीदमानेन तेनेह सीदंत्यन्येऽपि ते त्रयः ॥
'' मूलप्राणो भवेत्स्कंघः स्कंघाच्छालाः सप्तवाः । मूलेनवै विनष्टेन सर्वमेतद्दिन स्यति ॥
                                                                                               ৰ ০
"तस्मात्सर्वप्रयत्नेन रक्षणीयो गृहाश्रमी "॥ राज्ञेति शेषः
"राजा चान्यैस्त्रिभिः पूज्या रक्षणीयश्च सर्वदा ।
" द्या छज्जा क्षमा श्रद्धा प्रज्ञा त्यागः कृतज्ञता । एते यस्य गुणाः संति गृहस्थो मुख्य उच्यते "॥
व्यासः -
" नित्यं स्वाध्यायशीलः स्यान्नित्यं यज्ञोपवीतवान् । सत्यवादी जितकोधी बङ्गभूयाय कल्पते ॥ ३५
       " संध्यास्नानरतो नित्यं ब्रह्मयज्ञपरायणः । अनसूयुर्षृदुर्देति गृहस्थः प्रत्यवैर्धते ॥
       " <mark>वीतरागभयकोशो लोभमो</mark>हदिवर्जितः । सावित्री जप्यनिस्तः श्राद्धक्रनमुच्यते गृही ॥
       " मातापित्रोहिंते युक्तो गोबाह्मणहिते रतः । यज्ञा च देवभक्तश्च बह्मलोके महीयते ॥
       " त्रिवर्गसेवी सततं देवतानां च पूजनम् । कुर्यादहरहर्नित्यं नमस्थेत्सततं सुरान् ॥
       " विभागशीलः सततं क्षमायुक्तो दयालुकः । गृहस्थस्तु समाख्यातो न गृहेण गृही भवेत् ॥ ३०
       " यथाशक्ति चरेत्कर्म निंदितानि च वर्जयेत् । विध्य मोहकलिलं लब्धा योगमन्तमम् ॥
       " गृहस्थो मुच्यते वंधानात्र कार्या विचारणा "। इति । परादार:--
" निवापेन पितृनर्चन्यज्ञैर्देवांस्तथातिथीन् । अँग्लेर्मुनींश्च स्वाध्यायैरपत्येन प्रजापतिम् ॥
'' बलिकर्मणा च भृतानि वात्सल्येनाखिलं जगत् । प्राप्नोति लोकान्पुरुवो निजकर्मसमार्जितान् ॥
" भिक्षाभजस्त ये केचित्परिवाइबसचारिणः । तेऽप्यत्रैव प्रतिष्ठंते गाईस्थ्यं तेन वै परम् ॥ ३५
```

१ क−नच। २ क–अन्ये । ३ स्वग्र−नाचेते ।

[ं]यस्तु सम्यक्करोत्येतं गृहस्थः परमं विधिम् । स्वकर्मबंधमुक्तोऽसौ लोकान।प्नोत्यनुत्तमान्''॥इति । थाज्ञवल्क्यः (प्रा. १९०-१९३)-

" वेदानुवचनं यज्ञो ब्रह्मचर्यं तपो दमः । श्रान्द्वोपवासस्वातंत्र्यमात्मनो ज्ञानहेतवः ॥

" स ह्याश्रमैर्विजिज्ञास्यः समस्तेरेवमेव तु । दृष्टव्यस्त्वथ संतव्यः श्रोतव्यश्च द्विजातिभिः ॥

५ न एवमेनं विदंति ये चारण्यकमाश्रिताः । उपासते द्विजाः सत्यं श्रद्धया परया युताः ॥

" क्रमात्ते संभवंत्यर्चिरहः शुक्कं तथोत्तरम् । अयनं देवलोकं च सर्वितारं सर्वेद्युतम् ॥

" ततस्तान् पुरुषोऽभ्येत्य मानवो ब्रह्मछौकिकान् । करोति पुनरावृत्तिस्तेषामिह न विद्यते ॥ "यज्ञेन तपसा दानैंथे हि स्वर्गजितो नराः। धूमं निज्ञां कुष्णपक्षं दक्षिणायनमेव च ॥ (१९५)

" पितृलोकं चंद्रमसं वायुं वृत्तिं जलं महीम् । क्रमात्ते संभवंतीह पुनरेव वर्जाति च ॥ (१९६)

🐤 "न्यायागतधनस्तत्त्वज्ञाननिष्ठोऽतिथिप्रियः।श्राद्धकुत्सत्यवादी च गृहस्थोऽपि विमुच्यते॥(२०५)" इति । सर्वेषासाश्रमिणामात्मसाक्षात्कारे सति तत्प्रातिरूपासकानायाचिरादिगमनद्वारा तत्प्राप्तिः । कान्यकर्मानुष्टायिनां तु धूमादिमार्गेण स्वर्गावाप्तिः । कर्मक्षये पुनरा-वृत्तिः। न केवलं परिवाज एव मुक्तिः किंतु कर्मिणस्तत्त्वज्ञाननिष्ठस्य गृहस्थस्यापीत्यर्थः। भूयते च-" ब्रह्मवेद ब्रह्मवे भवति तय इत्थं विदुर्थे चेमेऽरण्ये श्रद्धातप इत्युपासते तेऽचिष-

१५ मभिसंभवंत्यर्चिषो हरेत आपूर्यभाणपक्षमापूर्यमाणपक्षाद्यान् षडुदंडिति भासास्तान्मासेभ्यः संवत्सरं संवत्सरादादित्यभादित्याच्चंद्रमसं चंद्रमसो विद्युतं तत्पुरुषोऽमानवः स एना-न्ब्रह्मगमयत्येष देवयानः पंथा इत्यथ य इमे माम इष्टापूर्त्ते दत्तमित्युपासते ते धूममभिसंभवंति धूमाद्रात्रीं रात्रेरपरपक्षप्रसपक्षायान् षट्दाक्षिणोति मासांस्तान्नैते संवत्सरमभिप्राप्नुवंति मासेभ्यः पितृहोकं पितृहोकादाकाशमाकाशाच्चंद्रमसमेष सोमो राजा तद्देवानामनं तद्देवा भक्षयंति

· वस्मिन्यावत्संपातमुवित्वाऽथैतमेवाध्वानं पुनिर्वितते यथैतमाकाशमाकाशाद्वायुं वायुर्भृत्वा धूमो भवति धूमो भूत्वा प्रें भवत्यभ्रं भूत्वा मेघो भवति भेघो भूत्वा प्रवर्षति त इह बीहियवा ओषधि-बनस्पतयस्तिलमाघा इति जायन्ते इतो वै खलु तैनिष्प्रपतनं यो यो ह्यन्नमित्त यो यो रेत: सिंचित तद्भय एव भवति तद्भ्य इह रमणीयचरणाभ्याशेन ह रमणीयां योनिमापचेरन्ब्राह्मण-योनिं वा श्रेत्रिययोनिं वा वैरुययोनिं वाऽथ य इह कपूयचरणाभ्याशो हयन्ते कपूयां योनि-

वय मापचेरन् श्वयोनि वा सुकरयोनि वा चण्डालयोनि वेति । उपासकाः क्रमाद्रन्याचिमानि-देवतास्थानेषु मुक्तिमार्गभृतेषु विश्रम्य तैः प्रस्थापिताः परं पदं प्राप्नुवंति" । आर्चिवन्हिर्विद्यतेजः । ये पुनर्विहितेर्यज्ञादिभिः स्वर्गफलभोकारः कमाखूमादिचंद्रपर्यंतपदार्थाभिमानिनीर्देवताः प्राप्य प्नरेवाकाशादिद्वारेण शुक्रुत्वमवाप्य संसारिणो योनिं वजंतीत्यर्थः । मनुः (२।९)—

"श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममनुतिष्ठन्हि मानवः । इह कीर्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमां गतिम्" ॥ इति ।

भगवानपि—

''बर्णाश्रमविधिं कृतस्नं कुर्वाणो भत्परायणः।तेनैव जन्मना ज्ञानं रुब्ध्वा याति शिवं पद्म्''॥इति। बोधायनः (२२११)—" नित्योद्की नित्ययज्ञोपवीती नित्यस्वाध्यायी वृषलानवर्जी ॥

" ऋतो च गच्छन्त्रिधिवच्च जुःहस्रबाह्मणश्च्यवते ब्रह्मलोकात् ॥ "आयुषा तपसा युक्तः स्वाध्यायेज्यापरायणः।प्रजामुत्पाद्ययुक्तः स्वे स्वे वर्णे जितेंद्रियः॥(२।९।३)

१ क्ष-दुर्निष्प्रपनन ।

"स्वाध्यायेन ऋषीन् पूज्या सोमेन च पुरंदरम्। प्रजया च पितृनपूर्वाननृणो दिवि मोदते ॥ (२।९।४)
"पुत्रेण लोकान्जयति पौत्रेणानंत्यमश्रुते। अथ पुत्रस्य पौत्रेण नाकमेवाधिगेहयेत्"॥इति। (२।९।४)
विज्ञायते च (२।९।७-११) – "जायमनो वै ब्राह्मणः त्रिभिः ऋणवा जायते पितृभ्ये इत्येवमृणसंयोगवेदो द्र्शयति। वंधमृणमोक्षं च प्रजायां चायनं पितृणां चानुकर्षणं प्रजायां द्र्शयति
अनुत्सन्धः प्रजावान्भवति यावदेनं प्रजासुगृह्णीते तावदेवाक्ष्ययान् लोकाञ्जनयति सत्युत्रमुत्पाध्य
आत्मानं तारयति सप्तावरान् सप्तपूर्वान् षडन्यानान् सप्तमाधः सत्युत्रमधिगच्छानस्तारयत्येनसः
भयात् तस्मात्प्रजासंतानमुत्याय फलमवाप्नोति तस्माद्यत्येवान्प्रजामुत्पाद्येदात्मना फललाभाय
तस्मात्पुत्रं चोत्पाद्यादामानमेवोत्पाद्येत् " इति ॥

विशायते—''आत्मा वै पुत्र नामासीत्येवं द्वितीय आत्मा जीवता द्रष्टव्या यः पुत्रमुत्पाद्यति''इति॥ वोभायनः (२।६।२९)—'' ऐकाश्रम्यं त्वाचार्या अग्रजनत्वादितरेषाम् '' इति ।

गौतमोऽपि (२।२)—"तेषां गृहस्थो यो निरप्रजनत्वादितरेषान् ं इति । ऐकाश्रम्थं चाचार्याः प्रत्यक्षविधानाद्वाईस्थ्यस्येतिच ं (४।२५) । तेषां चतुर्णामाश्रमाणां गृहस्थो योनिरुत्पत्तिस्थानम् गृहस्थेनैवोत्पादिताश्चतुर्भिराश्रमैरधिकियंते नेतरेस्तंषामप्रजनत्वात् । शास्त्रेण प्रजोत्पादनस्य निषिद्धत्वादतस्तरतिकांतिनिषेधैरुत्पादिता अपि आश्रमेष्वनाधिकाणि- श्रांढालाः प्रत्यवसिताः परिवाजकतापसास्तेषां जातापत्यानि चंडालेः सह वासयेत् इति भः शातात्वपस्मरणात् । ऐकाश्रममिति सर्वेषु वेदेषु धर्मशास्त्रेषु पुराणेष्टितिहासेषु गृहस्था एवाग्रि- होतिणः प्राचुर्येण विधीयन्ते स्तूयंते च । ततो गार्हस्थ्यस्य प्रत्यक्षविधानात्स एवेक आश्रमः । इतरे तृ तत्राशकानां विधीयंत इति बहव आचार्यो मन्यंते । तथा च गीता (२।२०)

" कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः " इति ।

आपस्तंबोऽपि (२।९।२३।१०-१२;२।९।२४।१-८)- "त्रैविचनुद्धानां तु वेदाः प्रमाणमिति २० निष्ठा । तत्र यानि श्रूयंते बीहियवपश्वाज्यपयः इपालपत्नीसंग्रंगान्यु नैनिनः कार्यमिति तैविंद् आचारोऽप्रमाणमिति मन्यंते । यतु समज्ञानमु च्यते नानाकर्मणामेषांऽते पुरुषसंस्कारो विधीयते । ततः परमनन्त्यं फलं स्वर्गज्ञाब्दः श्रूयते । अथाप्यस्य प्रजातिममृतमाम्नाय आह । प्रजामनु प्रजायसे तदु ते मर्त्यामृतामिति । अथापि स एवायं विरुद्धः पृथवप्रत्यक्षेणोपलभ्यते दृश्यते ऽपि च सारूप्यं देहत्वमेवान्यत् । शिष्टेषु कर्मसु वर्तमानाः पूर्वेषां सांपरायेणाकितिं स्वर्गं च २५ वर्धयत्येयमवरोवरः परेषामा भूतसंप्रवात्ते स्वर्गजितः पुनः सर्गं वीजार्था भवंतीति भविष्यत्पुराणे— "अथापि प्रजापतेर्वचनम् त्रयीं विद्यां ब्रह्मचर्यं प्रजातिं श्रद्धां तपो यज्ञमनुप्रदानम् । एतानि कृत्वेते तैरित्सह स्मो रजो भूत्वा ध्वंसतेऽन्यत् प्रशंसिन्निति"।

अयमर्थः । ज्यवयवा विद्या त्रयो वेदाः । तान्येव पाठतश्चार्थतश्च विंदति ते त्रैविद्यास्ते पक्षज्ञानास्त्रैविद्यवृद्धास्तेषां वेदा एव प्रमाणमतीदियेऽर्थ इति निष्ठा निर्णयः । यथाह भगवान् अक्षिनिः—(१११) "चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः" इति । ततश्च तत्र वेदेषु यानि कर्माणि श्रूयंते विद्यादिसबंधान्युर्ध्वकत्त्वा क्रियते उपांशुयजुषेत्यैवंप्रकाराणि तैर्विकद् आचारः प्रमाणं न भवतीति ते मन्यंते । एतदुक्तं भवति । सर्वेषु वेदेषु सर्वासु ज्यास्त्रासु चाग्निहोत्रादीनि कर्माण्येव तात्पर्यतो विधीयंते । अतो गार्हस्थ्यमेव श्रेष्ठं यदि वेदाः प्रमाणमिति । यत्तु गृहस्थानां श्मज्ञानं

१ क्ष-दामत्वा । २ क्ष-केचित्तु ।

श्र्यते इमज्ञानानि भेजिर इति स एष नानाकर्मणामग्निहोत्रादीनामंतं पितृमेधारूयपुरुषसंस्कारो विधीयते । न तु पिशाचा भूत्वा इमशानमेव सेवंत इति । कुत इत्यत आह ततः परम इति । इमज्ञानकर्मणोऽनंतरमपरिमितं स्वर्गशब्दवाच्यं फलं श्रूयते 'स एष यज्ञायुधी यजमानोंऽजसा स्वर्ग लोकमेति । अथापि अपि चास्य गृहस्थस्य प्रजातिप्रजासंतानममृतममरणमाम्नायो वेद ' आह ' प्रजामनुप्रजायस' इति । हे मर्त्य मरणधर्मन्त्रजां जायमानामनु त्वं प्रजायसे प्रजारूपेण जायते तदेव ते अमृतममरणिमिति न त्वं म्रियसे यतस्त्वं प्रजारूपेण वर्तसे । उपपन्नं चैतदित्याह 'अथापि स एवायम्' इति । अपि च स एवायं पृथग्विरूढ: प्रत्यक्षेणोपलभ्यते । स एव द्विधा भूत इति लक्ष्यते । दृश्यते हि सारूप्यं च इयोर्देहमात्रं तु भिन्नदेहत्वामिति । स्वार्थिकस्त्वप्रत्ययः । ते पुत्राः शिष्टेषु चोदितेषु कर्म-१९ स्ववस्थिताः पूर्वेषां पितृपितामहादीनां सांपरायेण परलोकेन संबद्धानां कीर्ति स्वर्ग च वर्ध-यंति । एवमवरोवरः परेषां कीर्तिं स्वर्गं च वर्धयति । भूतसंष्ठवो महाभूतप्रलयः । अतस्माने पुत्रिण: स्वर्गाजितो भवंति । प्रलयानंतरः सर्गः पुनः सर्गस्तत्र संसारबीजार्थाः प्रजा भवंतीति भविष्यत्पराणे पठ्यते । अथापि अपि च गार्ह्यस्थमेव वरिष्ठमित्यत्र प्रजापतेर्वाक्यमपि भवति । त्रयी विद्यां वेदानामध्ययनं ब्रह्मचर्यमनिषिद्धकाले स्त्रीसंगमनं प्रजाति प्रजीत्पादनं १५ श्रद्धामास्तिक्यं तप उपवासादि यज्ञमग्निहोत्रादीनि सोमयागांतानि कर्माण्यनुप्रदान-मंतर्वेदिदानमेतानि ये कुर्वते तैरित्सह स्मः। त एवास्माकं सहायाः अन्यदाश्रमांतरं प्रशंसन्युक्षो रजः पांसुर्भत्वा ध्वंसते नश्यतीति यथैवैते हि शिष्टेषु कर्मसु वर्त्तमानाः पुत्राः पूर्वेषां कीर्ति स्वर्गं च वर्धयंति तथा प्रतिषिद्धंषु वर्त्तमाना अकीर्तिनरकं च वर्धयेथ ।

तत्रापि स एव (२।२४।९-)-"तत्र ये पापकृतस्त एव ध्वंसंति यथा पर्ण वन-२० स्पतेर्न परान्हिंसंति । नास्यास्मिन्छोकं कर्मभिः संबद्धो विद्यते । तथा परस्थिनकर्मफलैस्तदेतेन वेदितब्यम् । प्रजापतेर्क्रषीणामिति सर्गोऽयम् । तत्र ये पुण्यकृतस्त्रषां प्रकृतयः परा ज्वलन्त्य उपलभ्यंत स्यानु कर्मावयवन तपसा वा कश्चित्सशरीरोऽतवंतं लोकं जयित संकल्पिसिद्धिश्च स्यात् न तु तज्ज्येष्ठश्चमाश्रमाणाम् " इति ।

"तत्र प्रजासंताने ये पापस्य कर्नारस्त एव ध्वंसंति न परान्पित्राद्दीन्हिंसंति यथा पर्ण वनस्पतेः क्रीटादिभिद्दिपतं तदेव पति न वनस्पतिं ज्ञासां वा पातयि । तद्दस्य पित्रादेः पूर्वपुरुषस्था- हिमन्लोके पृत्रकृतेः कर्मभः संवंधा न विद्यते । यथा पुत्रकृतेषु कर्मसु पित्रादेः कर्नृत्वं नास्ति तथा पर्शस्मन्लोके कर्मकलेरिप संवंधा नास्तित्यर्थः । तत्पापकृत एव ध्वंसन्तित्येतदर्थरूप- मतेन वश्यमाणहेतुना वेदितव्यम् । प्रजापतेहिरण्यगर्भस्य क्रषीणां च मरीच्यादीना- मयं सर्गः देवतादिस्तिर्यगतस्तं चाध्वस्ता एव स्वं स्वे पदे वर्तते । अत्रोदाहरणमाह । तत्र ये पुण्यकृतो विसष्ठाद्दयस्तेषां प्रकृतयः हारीगणि परा उत्कृष्टा ज्वलंत उपलभ्यते दिवि यथा सप्तर्षिमंडलम् । श्रूयते च "सुकृतां वा एतानि ज्योतिङ्षि यन्नक्षत्राणि" इति । इदं प्रमाणं न पुत्राणां ध्वंसे पूर्वेषां ध्वंस इति कर्मावयवेन पुण्यकर्मणामेकदेशेन भुक्तशेषेण तपसा वा तीवेण कश्चिदाश्रमांतरवर्ती सह हारीरेणांतवंतं लोकं जयतीति यत्ततस्यात्संभवेदिष संकल्पादेव सिद्धिश्व स्थान्न तत्राश्रमांतरस्य ज्येष्ठचं कारणमित्यर्थः । अनेन गार्हस्थ्यप्रशंसाः कतिति द्रष्टयम् । यतः स एवाह "तेष्ठ रश्चेणवेकाप्रकृत्यो र्जनायकः कर्न प्रमान विद्या । यतः स एवाह "तेष्ठ रश्चेष्ठाव्यक्ता र्जनायकः कर्न प्रस्था । यतः स एवाह "तेष्ठ रश्चेष्ठाव्यक्ता र्जनायकः कर्न प्रस्था । यतः स एवाह "तेष्ठ रश्चेष्ठाव्यक्ता र्जनायकः कर्न प्रस्था । यतः स एवाह "तेष्ठ रश्चेष्ठाव्यक्ता र्जनायकः कर्न प्रस्था । यतः स एवाह "तेष्ठ रश्चेष्ठाव्यक्ता र्जनायकः कर्न प्रस्था । यतः स एवाह "तेष्ठ रश्चेष्ठाव्यक्ता र्जनायका कर्न प्रस्था । यतः स एवाह "तेष्ठ रश्चेष्ठाव्यक्ता राजनायका विद्या । स्वः स एवाह "तेष्ठ रश्चेष्ठाव्यक्ता राजनायका विद्या । स्वः स एवाह "तेष्ठ रश्चेष्ठाव्यक्ता राजनायका ।

₹ :

3 0

तेष्वाश्रमेषु सर्वेषु यथाशास्त्रमध्ययः समाहितमना वर्तमानः क्षमममयं पदं भच्छतीत्यर्थः ॥ यसिष्टः—

" गृहस्थ एव यजते गृहस्थस्तप्यते तपः। चतुर्णामाश्रमाणां तु गृहस्थस्तु विशिष्यते "॥ इति । इति गृहस्थधर्माः। अथ वानप्रस्थधर्माः। मनुः (६।१)—

" एवं गृहाश्रमे स्थित्वा विधिवत्स्नातको द्विजः । वने वसेनु नियतो यथावद्विजितेद्वियः॥ ५

" संत्यज्य आम्यमाहारं सर्व चेव परिच्छद्व । पुत्रेषु भार्या निक्षिप्य वनं गच्छेत्सहैववा॥ (२)

" द्वितीयमायुषी भागमुषित्वा तु गृहे द्वितः । तृतीयमायुषी भागं गृहमेधी वने वसेत्॥

" उत्पाद्य धर्मतः पुत्रानिष्ट्वा यज्ञेश्व ज्ञक्तितः । हृष्ट्वापत्यस्य चापत्यं ब्राह्मणोऽरण्यमाविज्ञेत्" ॥ याज्ञयस्क्यः (प्रा. ४५)—

" सुतविन्यस्तपत्नीकस्तया वाऽनुगतो वनम् । वानप्रस्थो बह्मचारी साधिः सैँ।पासनो बजेत् "। १० संवर्तः—

" गच्छेदेवं वनं प्राज्ञः सभार्यो ह्येक एव वा । मृहीत्वा चामिहोत्रं तु होमं तत्र न हापयेत् ।

" कुर्याच्चरुपुरोडाशा वन्येर्वा मेध्यसेत्रिभिः। भिक्षां तु भिक्षवे दबाच्छाकमूलफलादिभिः॥

" वेद्दविद्यात्रतस्थांश्च श्रोत्रियान्वेदपारगान् । योजयेद्धव्यकव्येषु विपरीतास्तु वर्जयेत् ॥

" गायत्रीमात्रसारोऽपि वरो विष्ठ: सुयंत्रितः । नायंत्रितश्चतुर्वेदी सर्वाही सर्वविक्रयी॥

" कुर्याद्रध्ययनं नित्यमग्निहोत्रपरायणः । इष्टीः पर्वाग्रायणीयाः प्रकुर्यात्प्रतिपर्वसु " ॥

हारीतः--

" गृहस्थः पुत्रपौत्रादि दृष्ट्वा पिलतमात्मनः । भार्या पुत्रेषु संस्थाप्य सह वा प्रविशेद्दनम्॥

" जटाश्च विभृयात्रित्यं नसरोमाणि धारयेत् । अग्निहोत्रं च जुहुयात्पंचयज्ञान् समाचरेत् ॥

" वन्यान्नैर्विविधेर्मेध्येः शाकमूलफलेन वा । वीतरांगो भवेन्नित्यं स्नात्वा त्रिषवणं शुचिः ॥

" सर्वभूतानुकंपी स्यात्प्रतियहविवर्जितः "॥

मनुः (६।६-२३)---

" वसीत चर्मचीरं वा सायं स्नायात्प्रमे तथा । जटाश्च विभूयान्नित्यं स्मश्रुलोमनखानि च ॥

" यद्भक्षः स्यात्ततो द्याद्विं भिक्षां च शक्तितः । अम्मृलफलभक्षाभिरर्चयेदाश्रमागतम् ॥

" स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्यादांतो मैत्रः समाहितः । दाता नित्यमनादाता सर्वभूतानुकंपनः ॥ २५

" वैतानिकं च जुहुयादग्रिहोत्रं यथाविधि । दर्शमस्कन्द्यन्पर्व पौर्णमासं च योगतः ॥

" ऋक्षेष्टचाग्रयणे चैव चातुर्मास्यानि चाहरेत्। तुरायणं च क्रमशो द्श्वस्यायनमेव च"॥ क्रक्षेष्टिः नश्चत्रेष्टिः । तुरायणं संवत्सरसाध्यः ऋतुविशेषः । दाश्चायणं दश विकृतिः । ऋमश-स्तत्र तत्र काले।

" वासंतशारदैर्मेध्येर्मुन्यन्नैः स्वयमाहृतैः । पुरोडाशांश्वरं चैव विधिवन्निर्वपेत्पृथक् ॥

"देवताभ्यश्च तद्भुत्वा वन्यं मेध्यतरं हविः। शेषमात्मिन युंजीत छवणं च स्वयं कृतम्॥

" स्थलजोद्कशाकानि पुष्पमूलफलानि च । मेध्यवृक्षोद्भवानन्यान् स्नेहांश्च फलसंभवान् ॥

" त्यजेदाश्वयुजे मासे मुन्यत्रं पूर्वसंचितम् । जीर्णानि चैव वासांसि शाकमूलफलानि च ॥

" न फालकृष्टमश्रीयादुत्कृष्टमिष केनचित् । न ग्रामजातान्यार्ताऽपि पुष्पाणि च फलानि च॥

- " अग्निपकाशनो वा स्यात्कालपकभुगेव वा। अश्मकुड्डो भवेद्वाऽपि दंतोलूखिलकोऽपि वा "॥ फलादीन्यश्मनि निपीडच ये भक्षयंति ते अश्मकुड्डाः । दंतैरेवोलूखलकार्यं ये कुर्वति ते दंतोलूखलिकाः।
- " सद्यः प्रक्षालिको वा स्यान्माससंचियकोऽपिवा। षण्मासनिचयोवा स्यात्समानिचय एव वा"॥
- ५ प्रतिदिनं जीवनं संपाद्यं भुक्तवा अश्वस्तिनिको हस्तप्रक्षालनं यः करोति स सद्यः प्रक्षालिकः । " नक्तं वाऽन्नं समश्चीयाद्दिवा वाऽहृत्य शक्तितः। चतुर्थकालिको वा स्यात् स्यादा षष्ठाष्टमाशनः॥
 - " चांद्रायणविधानैवी कुह्हे कुण्णे च वर्त्तयेत् । पक्षांतयोवीऽप्यक्षीयाद्यवागूं कथितां सक्कत्॥
 - " पुष्पमूलफलेर्वाऽपि केवलेर्वर्त्तयत्सदा । कालपकेः स्वयं शीर्णेर्वेसानसमते स्थितः ॥ विसनसा शोक्तं तंत्रं वैसानसमतम् । तत्र हि वानग्रस्थधर्मस्य पूर्ण उपदेशः।
- १० "भूमो विपिरवर्त्तेत तिष्ठेद्दा प्रपदेदिंनम् । स्थानासनाम्यां विहरेत्सवनेषूपयन्नपः ॥ विपरिवर्त्तेत शयीत । प्रपदेः पादांगुल्याग्रैः । अप उपयन् त्रिषवणस्नायी । "ग्रीष्मे पंचतपास्तु स्याद्दर्षास्त्रआवकाशकः । आर्द्रवासास्तु हेमंते कमशो वर्धयंस्तपः "॥ व्यासः—
- " एकपादेन तिष्ठेत्तमरीचीः प्रिषवेत्तदा । पंचाबिर्धूमपो वा स्यादृष्मपः सोमपोऽथ वा " ॥

 ५५ " पयः पिवेच्छुक्कपक्षे कृष्णे पक्षे च गोमयम् । शीर्णपणीशनो वा स्यात्कृच्छ्रैवी वर्त्तयेत्सदा ॥

 " जितेंद्रियो जितकोधस्तत्त्वज्ञः निविचितकः । ब्रह्मचारी भवेन्नित्यं स्वपत्नीं प्रति संश्रयेत् ॥

 "यस्तु पत्न्या समं गत्वा मथुनं कामतश्चरेत् । तङ्चतं तस्य लुप्येत प्रायश्चितीयते द्विजः ॥

 "तस्यां यो जायते गर्भो न संस्पृह्यो द्विजातिभिः। न वेदेऽप्यधिकारोऽस्ति तद्वंशे योऽप्यजायते"॥

 विष्णुः (३२।६)——
- २० " त्रिविधं नरकस्येह द्वारं नाशनमात्मनः । कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्" ॥ एवं गृहस्थसमस्य धर्मा उक्ताः ।

अथ मिश्चसमस्य वानप्रस्थस्य धर्मानाह सनुः (६।२५-३०)---

- " अग्रीन्स्वात्मनि वैतानान्समारोप्य यथाविधि । अनिग्ररिनिकेतः स्यानमुनिर्मूलफलाशनः ॥
- " अप्रयत्नः सुखार्थेषु ब्रह्मचारी धराशयः। शरणे त्वममञ्जेव वृक्षमूळनिकेतनः ॥
- २५ " तापसेष्वेव विप्रेषु यात्रार्थ भेक्षमाचरेत् । गृहमेधिषु चान्येषु द्विजेषु वनवासिषु ॥
 - "ग्रामादाहृत्य वाऽश्वीयादृष्टौ ग्रासान्वने वसन् । प्रतिगृह्य पुटेनैव पाणिना शकलेन वा" ॥ शकलेन भिन्नभांडशकलेन ।

"एतांश्चान्यांश्च सेवेत दीक्षा विषो वने वसन् । विविधाश्चौपनिषदीरभ्यसेच्छु-द्वये द्विजः"॥ प्रकारांतरमाह स एव (६।३१–३२)

- अपराजितां वाऽप्यास्थाय व्रजेदिशमजिम्हगः । आ निपाताच्छरीरस्य युक्तो वार्यनिलाशनः"॥
 अपराजितां प्रागुदीचीष् ।
 - " आसां महर्षिचर्याणां त्यक्त्वाऽन्यतमया तनुम् । वीतशोकोऽभयो विप्रो ब्रह्मलोके महीयते" ॥ याज्ञवल्क्यः (प्रा. ५५)—" वायुभक्षः प्रागुदीचीं गच्छेदा वर्ष्मसंक्षयात् " व्यासः—

१ कखग−सूत्रं

यतिधर्मः ।

"महाप्रस्थानिकं वाऽयं कुर्यादन इनं तु वा । अग्निप्रवेशमन्यद्वा ब्रह्मार्पणविधौ समृतः"॥

" यस्तु सम्यगिमभाश्रमं शिवं संश्रयत्यशिवपुंजनाशनम् ॥

" तापहंत्रमलमेश्वरं पदं याति यत्र जगतोऽस्य संस्थितिः " ॥

हारीत:---

" अग्निं स्वात्मनि कृत्वा तु प्रवजेद्वत्तरं दिशम् । आ देहपातं वनगो मीनमास्थाय तापसः ॥

" स्मरन्नतींद्रियं बह्म बह्मलोके महीयते ॥

" तपो हि थोऽसावकरोद्दनस्यो वने वसन्सत्वसमाधियुक्तः।

ं विमुक्तपापो विमरुः प्रज्ञांतः स याति दिय्यं पुनषं पुनाणस् । इति । अयं च वानप्रस्थाश्रमः ' देवरेण सुतोत्पत्तिर्वानप्रस्थाश्रमण्डः ' इति कर्ला निषिद्धः ।

इति वानप्रस्थधर्पतिह्वपणस्।

अथ यतिभर्भः।

तत्र मञ्जः (६।३३।३४)---

" वनेषु तु विह्रत्यैवं तृतीयं भागमायुषः । चतुर्थमायुषो भागं त्यक्त्वा संगान् परिबजेत् ॥

"आश्रमादाश्रमं गत्वा हुतहोशे जितेंद्रियः। भिक्षाविष्ठिपरिश्रांतः प्रवजन्त्रेत्य वर्धते "॥ हुतहोमः कृतसमिदाधानाग्निहोत्रहोसः । भिक्षाविष्ठिपरिश्रांतः । भिक्षाचरणविश्वदेवविष्ठिहरणाभ्यां १५ परिश्रांतः। आश्रमादाश्रमं गत्वा बह्मचर्याश्रमाद्वाईस्थ्यं ततो वानप्रस्थाश्रमं गत्वेत्यर्थः। ब्रह्मचर्या गार्हस्थ्ये कृत्वा वानप्रस्थमकृत्वाऽपि संन्यासः कर्त्तव्यः । नान्यथेत्याह स एव (६१३५–३७) "कणानि त्रीण्यपाकृत्य सनो मोक्षे निवेशयेत् । अनपाकृत्य सोक्षं तु सेवमानो ब्रजत्यधः॥ "अधीत्य विधिवदेदान्पुत्रांश्चीत्याद्य धर्मतः । इष्ट्या च शक्तितो यज्ञैर्मनो मोक्षे निवेशयेत्॥ "अनधीत्य दिजो वेदाननुत्याद्य तथाऽऽत्मजान्। अनिष्ठा चैव यज्ञैस्तु मोक्षमिच्छन्त्रजत्यधः"॥ २० मोक्षं मोक्षसाधनं संन्यासाश्रमम् । अनेन पूर्वेक्ष्वतुराश्रमसमुचयपक्षः पाक्षिक इति द्योतयित । तथा च याज्ञवल्क्यः (प्रा. ५६–५७)—

" वनाद्गृहाद्दा कृत्वेष्टिं सार्ववेद्सदक्षिणाम् । प्राजापत्यां तद्देते तानग्रीनारोप्य चात्मिनि ॥ " अधीतवेदो जपकृत्पुत्रवानन्नद्गेऽग्निमान् । शक्त्या च यज्ञकृन्मोक्षे मनः कुर्यानु नान्यथा " ॥ व्यासः—

" एवं वनाश्रमे स्थित्वा तृतीयं भागमायुषः । चतुर्थमायुषो भागं संन्यासेन नयेत्क्रमात्॥ " प्राजापत्यां निरूप्येष्टिमाभ्रेयीमथ वा पुनः । दांतः पकक्षायोऽसौ ब्रह्माश्रममुपाश्रयेत्"॥

संवर्तः-

"उषित्वैवं वने सम्यग्विनृष्णः सर्ववस्तुषु । चतुर्थमाश्रमं गच्छेद्भुतहोमो जितेंद्रियः ॥ " संसेव्य चाश्रमान्सर्वान्जितकोधो जितेंद्रियः । बह्मलोकमवाप्नोति वेदशास्त्रार्थवित् द्विजः " ॥ ३० हारीतः —

" एवं वनाश्रमे तिष्ठंस्तपसा द्रग्धकिल्विषः । चतुर्थमाश्रमं गच्छेत्संन्यासिविधिना द्विजः ॥ " इष्टिं वैश्वानरीं कृत्वा प्राङ्मुखोद्ङ्मुखोऽपि वा । अग्निं स्वात्मिन संरोप्य मंत्रवत्प्रवजेत्पुनः" ॥ दृक्षः—

" सर्वेऽपि क्रमश्रहत्त्वेते यथाशास्त्रनिषेतिताः। यथोक्तकारिणं विप्रं नयंति परमां गतिम्॥ ३५

" त्रयाणामानुलोम्यं स्यात्प्रातिलोम्ये न विद्यते । प्रातिलोम्येन यो याति न तस्मात्पापक्कत्तमः"॥ आपस्तंबोपि (२।२१।२)—" तेषु सर्वेषु यथोपदेशमञ्यम्भो वर्त्तमानः क्षेमं गच्छति " इति ।

बोधायनस्तु विकल्पमाह (२।१०।२-७)-- "अत एव ब्रह्मचार्यवान्प्रव्रजती-त्येकेषामथ शालीनयायावराणामनपत्यानां विधुरो वा प्रजां स्वधर्मे प्रतिष्ठाप्य वा सत्पत्या ५ ऊर्ध्वं संन्यासमुपदिशंति वानप्रस्थस्य वा कर्मविरामे "इति ।

गौतमोऽपि (२११)— "तस्याश्रमविकल्पमेके बुवते " इति । विसिष्ठ:—— " चीर्णब्रह्मचर्यो यमिच्छेत्तमावसेदत् " इति । चतुर्णामाश्रमाणां मध्ये यमिच्छेत्तत्रैव निष्ठां यायादित्यर्थः । उज्ञनः—

" आचार्येणाभ्यनुज्ञातश्चतुर्णामेकमाश्रमम् । आविमोकाच्छरीरस्य सोऽनुतिष्ठेवथाविधि"॥ इति। १० अंगिराः—

" संन्यसेट्बह्मप्रचर्येण संन्यसेद्दा गृहाद्ि । वनाद्दा संन्यसेद्दिद्दानातुरो वा तु दुःखितः " ॥ यमः—

- " चीर्णवेदवतो विद्दान्बाह्मणो मोक्षमाश्रयेत् । समः सर्वेषु भूतेषु चरेषु स्थावरेषु च "॥
- " उत्पन्नज्ञानविज्ञानो वैराग्यं परमं गतः । प्रवजेदब्रह्मचर्यातु यदिच्छेत्परमां गतिम ॥
- ९५ " जातपुत्रो गृहस्थो वा विदितात्मा जितंद्रियः " ॥

कात्यायनः--

- " ब्रह्मचर्याद्गृहाद्दाऽपि वनाद्दा संन्यसिद्धैजः । पुत्रेषु भार्या निक्षिष्य मृतपत्नीक एव वा ॥ " ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थोऽथ वा पुनः। विरक्तः सर्वकामेभ्यः परिवज्यां समाश्रयेत् " ॥ विष्णुपुराणेऽभविष्यतपुराणेऽपि—
- "गृहीतिविद्यो गुरवे दत्वा च गुरुद्क्षिणाम् । गार्हस्थ्यमिच्छन्भूपाले कुर्याद्दारपिग्रहम् ॥
 " ब्रह्मचर्थेण वा कालं कुर्यात्संकल्पपूर्वकम् । वैखानसो वाऽपि भवेत्परिबाडथवेच्छया"॥
 महाभारतेऽपि—

"गृहस्थो ब्रह्मचारी वा वानप्रस्थोऽपि वा पुनः। य इच्छन्मोक्षमादातुमुत्तमां वृत्तिमाश्रयेत्"॥ इति।
आरण्यकोपनिषदि— "गृहस्थो ब्रह्मचारी वा वानप्रस्थो वा लोकाग्निमुदराग्नौ
२५ समारोपयेत् " इति । जाबालिश्रुतिस्तु चतुर्णा त्रयाणां द्वयोवां समुच्चयमाह—" ब्रह्मचर्य समाप्य गृही भवेत । गृही भृत्वा वनी भवेद्दनी भृत्वा प्रवजेयदि वेतरथा ब्रह्मचर्यादेव गृहाद्दा वनाद्दा इति । गाईस्थेनेतराश्रमबाधश्च गौतमबोधायनाभ्यां दर्शितः (२।३५)—" ऐकाश्रम्यं त्वाचार्याः प्रत्यक्षविधानात् गाईस्थ्यस्य " इति ।

अत्र विज्ञानेश्वरः (प्रा. १. १९९-२००)--" एषां च समुचयविकल्पबाधपक्षाणां के सर्वेषां श्रुतिस्मृतिमूलत्वादिच्छया विकल्पः । अता यत्केश्चित्पंडितंमन्येरुक्तं यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहोतीत्यादिप्रत्यक्षश्रुतिसिद्धगार्हस्थ्येनेतराश्रमचाधः गार्हस्थ्यानिधकृतपंग्वंधादिविषयमाश्रमां-तरमिति तत्स्वाध्यायाध्ययनवैधुर्यनिचंधनमित्युपेक्षणीयम् । किं च यथा विष्णुक्रमाज्यावेक्षणा- चक्षमतयांऽधपंग्वादीनां श्रौतेष्वनधिकारः तथोद्कुंभाहरणभिक्षाचर्याद्यक्षमत्वात्कथमंधपंग्वादि-विषयतयाऽश्रमांतरनिर्वाहः ।

ऋणानि त्रीण्यपकुष्येत्यादीनि वचनानि अनपाक्कतऋणत्रयस्वगृहस्थस्य प्रवज्याया-मनिधकार इत्येवंपराणि । यदा तु ब्रह्मचर्यात्ववज्ञाति तदा न प्रजोत्पादनादिनियमः । अक्कतदारपरिग्रहणस्य तत्रानिधकाराद्रागप्रयुक्तत्वाच्च विवाहस्य ।

" ननु जायमानो व ब्राह्मणित्रिभि० प्रजया पितृभ्य इति । जातमात्रस्येव प्रजोत्पादना-दीनि द्र्शयति नैवं न हि जातमात्रोऽकृतद्यापित्रहो यज्ञादिषु अधिक्रियते तस्माद्धिकारी ५ जायमानो ब्राह्मणादिर्यज्ञाद्गिननुतिष्ठेदिति तस्यार्थः । अतश्चोपनीतस्य वेद्याय्यनमेवावद्यकं-कर्मकृतद्यारपित्रहस्य प्रजोत्पादनादीति निस्वद्यमिति यस्य समुच्चयानुष्ठानसामर्थ्यं नास्ति तस्यायमाश्रमविकल्पः " इति ॥ स्कृतिचंद्रिकायाम् —

"अधीत्य विधिवद्देदान्पुत्रानुत्पाच धर्मतः" इत्यादीनि वचनानि यस्य ऐहिकामुष्मिक-भोगेष्वादावेव वैराग्यं न जायते तद्दिषयाणीति स्नृतिरुत्वाङ्गाविभिहितम् । अन्ये त्वध्ययनियोग- १० निवृत्त्युत्तरकालं यस्य पुरुषस्य यदा वैराग्यं जायते तस्याश्रमिणोऽनाश्रमिणो वा तदेव संन्यास इति वदंति । तथा च जाबालश्रुतिः—" अथ पुनरवती वती वा स्नातको वोत्सन्नाग्निराग्निर-नाग्निको वा यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रवजेत्तथायचातुरः स्थान्मनसा वाचा वा संन्यसेत्" इति । बृहस्पतिः—

" संसारमेव निःसारं हङ्घा सारिद्दहक्षया । प्रविज्ञेदक्कतोद्दाहः परं वैराग्यमाश्रितः " ॥ ७५ पराहारः

"परिवज्या तु वैराग्यात्कर्तव्या विधुरादिभिः। विधिनेव च कुर्वीत संन्यासमिह बुद्धिमान् "॥ अंगिराः—

" विरक्तः संन्यसेदिद्दानिष्ट्वाऽपि द्विजोत्तमः । प्रक्रतुमिथ शक्तोऽपि जुहोतियजतिक्रियाः ॥ "अधः पंगुर्द्रिदो वा विरक्तः सन्यसेद्विजः। सर्वेषामेव वैराग्यं संन्यासे तु विधीयते ॥ २ " पतेदेवाविरक्तो यः संन्यासं कर्त्तुभिच्छति । पुनर्दारिक्रयाभावे मृतभार्यः परिव्रजेत् " ॥ इति । अध्यपंत्रोः संन्यासविधानं विरक्तिप्रशंसार्थं न पुनस्तत्प्राप्त्यर्थम् ।

"आरूढपतितो बात्यः कुनसी स्यावदंतकः। क्षयी तथांऽगविकलो न तु संन्यासमर्हति"॥ दक्षस्मरणात् अंगिराः—–

" यदा मनिस संजातं वैतृष्णयं सर्ववस्तुषु । तदा संन्यासिक्छंति पतितः स्यादिपर्यये"॥ २५ हारीतः-

" विरक्तः प्रवजेद्धीमान्संरक्तस्तु गृहे वसेत्। सरागो नरकं याति प्रवजन्हि द्विजाधमः"॥ व्यासः-

" यस्यैतानि सुगुप्तानि जिव्होपस्थोदरं करः । संन्यसेद्कृतोद्वाहो ब्राह्मणो ब्रह्मचर्यवान् ॥

" परमात्मिन यो रक्तो विरक्तोऽपरमात्मिन । सर्वेषणाविनिर्धुक्तः स भैक्षं भोकुमर्हति ॥ 30

" पूजितो वंदितश्चैव सुप्रसन्नो यथा भवेत्। तथा चेत्ताङ्यमानस्तु तदा भवति भैक्षभुक्?"॥ कतुः-

" अहमेवाक्षरं बह्म वासुदेवाच्यमय्ययम् । इति भावो भवेचस्य तदा भवति मैक्ष्मुक् ॥

१ खग-रनुत्सन्नामिर्वा को ।

- " यस्मिन्क्षांतिः शमः शौचं सत्यं संतोष आर्जवम्। आर्किचिन्यमदंभश्च स कैवल्याश्रमे वसेत्॥
 " यदा न कुरुते भावं सर्वभूतेषु पावकम्। कर्मणा मनसा वाचा तदा भवति भैक्षभुक्"॥
 माधवीये पराशरे—
 - " परिभोगात्परिच्छेदात्परिपूर्णावलोकनात् ! परिपूर्णफलत्वाच्च परिवाजक उच्यते ॥ " परितो वजते नित्यं परं वा वजते पुनः । हित्वा चैवं परं जन्म परिवाजक उच्यते " ॥
- व्यासः
- " प्रवृत्तिलक्षणं कर्म ज्ञानं संन्यासलक्षणम् । तस्माज्ज्ञानं पुरस्कृत्य संन्यसेदिह बुद्धिमान् " ॥ मनुः (६।९४)—–
- " दशलक्षणकं धर्ममनुतिष्ठनसमाहितः । वेदांतान्त्रिधिवच्छुत्वा संन्यसेदन्रणो द्विजः ॥
- ९० "धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचिमिदियनिग्रहः। हीर्विद्या सत्यमकोधो द्शकं धर्मलक्षणम्"॥(९२) धृतिः स्वधर्मापरित्यागः । क्षमा अवमानसहत्वम् ॥ द्शः—" तस्मान्यक्तकषायेण कर्त्तव्यं दंडधारणम्। इतरस्तु न शकोति विषयेश्वाभिभूयते "॥ जावाल्टिः—
 - " संन्यासनिश्चयं कृत्व। पुनर्न च करोति यः । स कुर्यात्क्वच्छ्रमश्रांतः षण्मासान्वृत्यनंतरम् ॥
- ೨५ " सन्यासं पातयेद्यस्तु पतितं न्यासयेतु यः । संन्यासविद्यकर्ता च त्रीनेतान्पतितान्विदुः ॥
 - " संप्रत्यवसितानां च महापातिकनां तथा । बात्यानामिभीशस्तानां संन्यासं नैव कारयेत् ॥
 - " वतयज्ञतपोदानहोमस्वाध्यायवर्जितम् । सत्यशौ वपरिश्रष्टं संन्यासं नैव कारयेत् " ॥ बृहस्पतिः—
 - " अतीतास स्मरेद्धोगास तथाऽनागतानिष । प्राप्तांख नाभिनंदेयः स कैवल्याश्रमे वसेत् ॥
- २• "अन्तस्थानीन्द्रियाण्यन्तर्बिह्यान्त्रियान्त्रहिः । शक्नोति यः सद् कर्तुं स कैश्रुयाश्रमे वसेत्"॥ आतुरसंन्यासिविधिः । अंगिराः—
 - " उत्पन्ने संकटे घोरे चोरव्याबादिगाचरे । भयभीतस्य संन्यासमंगिरा मुनिरब्रवीत् " ॥ सुमंतुः—
 - ''आपत्काले तु संन्यासं कर्त्तव्य इति शिष्यते । जरयाऽभिपरीतेन श्रृत्वभिव्धीथेतेन च॥
- २५ "आतुराणां च संन्यासे न विधिनैव च किया । प्रेयमात्रं सधुच्चार्य संन्यासं तत्र पूरयेत् ॥
 - " संन्यस्ते। ऽहमिति ब्रूयात् सवनेषु त्रिषु ऋमात् । त्रीन्यारांस्तु त्रिलोकातमा शुभाशुभविशुद्धये॥
 - " यत्किदिबन्धकं कर्व इतस्यानतो मया । प्रमादालस्यदोषाँयत् तत्सर्वं संत्यजाम्यहस् ॥
 - " एवं संचित्य भृतेभ्यो द्याद्भयद्क्षिणाष्।
 - " पद्भ्यां कराभ्यां विरहन्नाहं वाकायमानसेः। करिष्ये प्राणिनां हिंसां प्राणिनः संतु निर्भयाः"॥

३० संग्रहे—

- "आतुराणां संन्यासे संकल्पसावित्रीविवेशनपाणिहोमधैषोच्चारणाभयदानानि विहितानि॥" इति । विष्णुः
- "संन्यस्तमिति यो ब्रूयात्प्राणैः कण्ठगतैरिप । न तत्ऋतुशतेनापि प्राप्नुं शक्नोति मानवः "॥ इति।

अंगिरा:—

- " आतुराणां विशेषोऽस्ति न विधिनेंव च किया । प्रेयमात्रस्तु संन्यास आतुराणां विधीयते " ॥ श्रुतिरपि— " यद्यातुरः स्यान्मनसा वाचा वा संन्यसेत" इति ::
- संन्यासफलनिज्ञपणम् । संन्याजफलराःः यहः—
- "ये च संतानजा दोषा ये च २युः ভর্ষর সহাঃ । धंन्या ६१ता व्यक्तिस्त्रवाद्वित्य कांचनम् ॥ ৬ मनुः (৭।१०७)---
- " मृत्तोयै: शुथ्यते शोध्यं नदी देशेत हुःयति । रजता ख्री मनी हुटा संन्यासेन दिजोत्तमः ॥ "यो दत्त्वा सर्वभृतेभ्यः प्रवादस्यभयं गृहात्।तस्य तेज्ञासया होका भवंति ब्रह्मदादिनः॥(६,३९)
- " यस्माद्गीह भूतानां भयं नोत्पवते क्रचित । तस्य देहाहिमुक्तस्य भयं नास्ति कृतश्वन ॥(४०)
- '' यदा भादेन भवति सर्वभावेन निस्हहः। तदा सुखनवाप्नोति प्रत्य चेह च शास्त्रतस्य। (८२) १० याज्ञवलक्योऽपि (प्रा. २२)—
- ''अकार्यकारिणां दानं वेगो नदाश्च गुद्धिकृत्। शोध्यस्य मृच्च तोयं च संन्यासोऽथ द्विजन्मनाम्''॥ पराशरः—
- " द्वाविमौ पुरुषो लोके सूर्यमंडलभेदिनो । परिबाट् योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखो हतः ॥
- " संन्यस्तं ब्राह्मणं हृष्ट्वा स्थानाच्चलति भास्करः । एष मे मंडलं भित्वा परं स्थानं प्रयास्यिति ॥ १५ व्यासः—
- " दे रूपे वासुदेवस्य चरं चाचरमेव च । चरं संन्यासिनां रूपमचरं प्रतिमादिकम्" ॥ विष्णु:—
- " एकरात्रोषितस्यापि यतेर्या गतिरुच्यते। न सा शक्या गृहस्थेन प्राप्तुं ऋतुक्तैरिपि " ॥ दक्षः—
- " त्रिंशत्परान् त्रिंशद्परान् त्रिंशच्च परतः परान्। सद्यः संन्यसनादेव नरकात्रायते पितृन् " ॥ अंगिराः—
- " षष्टिं कुळान्यतीतानि षष्टिमागामिकानि च । कुळान्युद्धरते प्राज्ञः संन्यस्तःविति यो वदेत्'॥ यमः—
- " ज्ञानेन मुच्यते भिश्चस्तपसा स्वर्गमाप्नुयात् । नरकं विषयासंगात्रयो मार्गास्तपस्त्रिनाम " ॥ २५ व्यासः—
- " दिव्यतेजोमयः श्रीमान्सूर्यचंद्राग्निमंडलम् । भित्वा प्रयाति संन्यासी स्वधर्मपरिपाङ्नात्"॥ इति । तथा च श्रुतिः—
- "त्याग एव हि सर्वेषां मोक्षसाधनमुत्तमम्। त्यजतैव हि तत् ज्ञेयं त्यक्तः प्रत्यक्षपरं पदम्"॥ इति। "संन्यस्य सर्वकर्माणि सर्वमात्माववोधनः। हत्वा विद्यां धियवेयात्तद्दिष्णोः परमं पद्मः ॥ इति। च ३० तैत्तिरीयके श्रूयते (नारायणोपनिष्यद्धि)
- "न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यांगेंनेके अमृतत्वमानजुः हति । आधानादिकर्मणा प्रजया धनेन च अमृतत्वमपवर्ग नानजुर्नाश्चवते किंतु त्यांगेनेच एक इति अधिकारिदोर्लभ्यं दर्शयति । पूर्वमधीतवेदा अधिगतसांगवेदार्था अनुष्ठितयथोदितसक्लधर्माणो विद्युद्धांतःकरणा जितेंद्रिया

अनंतरं संत्यक्तकर्माणो वेदांतवाक्यश्रवणादिजनितब्रह्मात्मैकत्वविज्ञानाः केचिदेवामृतत्वमश्नवंत इत्यर्थः । तथा च तत्रैव श्रूयते—

" वेदांतविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगायतयः शुद्धसत्वाः । ते ब्रह्मलोके तु परांतकाले पराष्ट्रतात्परिमुच्यन्तिसर्वे " ॥ इति ।

ब्रह्मणो लोके दर्शने सित परांतकाले पश्चिमजन्मसमाप्तिकाले परामृतात्परमुत्कृष्टं तदेवामृतममरणधर्मं ब्रह्म तस्मादनुभवगो चराद्ब्रह्मणो हेतोः परिमुच्यंत इत्यर्थः ।
बृहद्गरण्यकेऽपि— " एतमेव प्रवाजिनो लोकिमिच्छंतः प्रवजंति "। इति । प्रकृतमात्मानमेव
लोकिमिच्छंतः प्रवजेयुरित्यर्थः ।

जाबालञ्जतौ–

१० " अथ परिवाङ्गिवर्णवासो मुंडोऽपरिग्रहः शुचिरद्रोही भैश्रमाणो ब्रह्मभूयाय भवति " इति ।
 " शतं कुलानां पुरतो वभ्व तथा पराणां च शतं समग्रम्।
 एते भवंति सुकृतस्य लोके येषां कुले संन्यसतीह विप्राः॥

"संन्यासाङ्क्षणः स्थानं वैराग्यात्प्रकृतो छयः। ज्ञानात्कैवल्यमामोति तिस्रस्ता गतयः स्मृताः"॥इति। अस्मिश्राश्रमे बाह्मणस्यैवाधिकारः ।

- ५५ 'आत्मन्यझीन्समारोप्य ब्राह्मणः प्रवजेहुहात् '। 'एष वोऽभिहितो धर्मो ब्राह्मणस्य चतुर्विधः' ॥ इति उपक्रमोपसंहाराभ्यां मनुना ब्रह्मणस्यवाधिकारप्रतिपादनात्। "ब्राह्मणाः प्रवजन्ति" ॥ इति श्रुतेश्चायजन्मन एवाधिकारो न द्विजातिमात्रस्येति विज्ञानेश्वरः (पृ. १९९ पं. २४–२६) अत्रिरिण—
- " न तावन्मुच्यते दुःखाज्जन्ममृत्योश्च बंधनात् । यावन्न धारयेद्विप्रो विष्णवं ितंगमाद्रतत् ॥
 " मुखजानामयं धर्मो वैष्णवं ितंगधारिणम् । बाहुजातोरुजातानां नायं धर्मो विधीयते"॥ इति । वैष्णवितंगधारणं संन्यासः । द्यासः—
- " चत्वार आश्रमाश्चेते ब्राह्मणस्य प्रकीर्तिताः । गार्हस्थं ब्रह्मचर्यं च वानप्रस्थत्रयसमृताः ॥ " क्षत्रियस्यापि कथिता य आचारा द्विजस्य हि । ब्रह्मचर्यं च गार्हस्थ्यमाश्रमद्वितयं विशः ॥ "गार्हस्थ्यमुदितं चैकं शूद्रस्य परिकीर्तितव्"॥इति । अन्ये तु "त्रयाणां वर्णानां चत्वार आश्रमा २५ इति " सूत्रकाराद्विचनाद्विजातिमात्रस्याधिकारमाहुः । द्यासोऽपि—
 - ंक्रणत्रयमपाकृत्य निर्ममो निरहंकृतिः। बाङ्गणः क्षत्रियो वाऽथ वैरुयो वाऽथ बजेद्गृहात्'शाइति। द्विजातिमाबस्याधिकारमाहुः । क्षत्रिययेद्ययोः प्रवज्यानिषेधवचनानि काषायदंडनिषेधपराणीति स्मृतिरत्वेऽण्यभिहितम् । दशासः
- " अद्रयाधेर्यं मवालंभं संन्यासं पलपेट्कस्। देवरेण सुतोत्पत्तिं कली पंच विवर्जयेत्"॥ इति । ३० तस्यापवादसाह स्व एव
 - "यावद्वर्णविभागोऽस्ति यावद्वदः प्रवर्तते । तावक्वयासोऽग्निहोत्रं च कर्त्तव्यं तु कलौ युगे"॥ इति । कात्यायकः—
- " कुच्छ्रांस्तु चतुरः कृत्वा पावनार्थमनाश्रमी । आश्रमी चेत्तप्तकृच्छ्रं तेनासौ योग्यतां बजेत्"॥ बह्वचपरिशिष्टेऽपि " मुमुक्षुरात्मविशुद्धये एकं तप्तकृच्छ्रं कृत्वा अनाश्रमी चतुरः ३५ प्राजापत्यान्" इति ।

वोधायन:--" अनाश्रमी चतुरः कृच्छ्रानात्मशुध्यर्थं विद्ध्यादाश्रमी तप्तकृच्छ्रमेकम्" इति । स्मृतिसारे--

"कुर्याच्चत्वारि कुच्छ्राणि संन्यासेप्सुरनाश्रमी। आश्रमी कुच्छ्रमेकं तु कृत्वा संन्यासमर्हति"॥इति। जीवश्राद्धादिनिक्रणणम्। व्यासः—

- " देयं पितृभ्यो वेदेभ्यः स्वपितृभ्योऽपि यत्नतः । दत्वा श्राद्धमृषिभ्यश्च मनुजेभ्यस्तथाश्रमे ॥ भ " इष्टिं वैश्वानशें कृत्वा प्राजापत्यमथापि वा । अग्नीन् स्वात्मिनि संरोप्य मंत्रवत्प्रवजेत्पुनः "॥ बोधायनः—
- ''दैंवं चैवार्षकं दिव्यं पित्र्यं मातृकमानुषम् । भौक्तिकं चात्मनश्चांते अष्टौ श्राद्धानि निर्वपेत्''॥ अत्रिः—
- " देवमार्षे ततो दिव्यं मानुषं भौतिकं तथा। पितॄणां दिव्यमातॄणामात्मनो द्वाद्धितत्परः "॥ १० शौनकः—
 - " दैवं च वार्षिकं चैव दिव्यं मानुषमेव च । भूतश्राद्धं पितृश्राद्धं मातृणामात्मनस्तथा॥
 - " एकैकस्मिन्दिने कुर्याद्कैकं श्राद्धमर्थवत् । नांदीमुखविधानेन विधिरेषां प्रकीर्तितः ॥
 - " वसवोऽहो स्पृतास्तत्र रुद्रा एकादशापि च । तथैव दादशादित्या देवश्राद्धे तु देवताः॥
 - " मरीचिरञ्यंगिरसो पुलस्त्यः पुलहः ऋतुः । प्रचेताश्च वसिष्टश्च आर्षे सभृगुनारदः ॥ 💍 १५
 - " दिञ्चे हिरण्यगर्भोऽपि विराट् प्रजापतिरेव च । सनकश्च सनंदश्च तृतीयश्च सनातनः॥
 - " कपिलव्यासुरिश्चेव वोदुः पंचिशिसस्तथा। एते मानुष्यके श्राद्धे मनुष्याः सप्त देवताः॥
 - " पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च । एतानि पंच भूतानि भूतश्राद्धे तु देवताः॥
 - " पितृश्राद्धे कृष्यवाहनलः सोमोऽर्यमातथा । अग्निष्वात्ता वर्हिषदः सोमपाश्चेव देवताः॥
- " गौरी पद्मा शची मेघा सावित्री विजया जया । देवसेना स्वधा स्वाहा मातृश्राद्धे तु देवता: ॥ २०
 - " आत्मश्राद्धे देवता तु परमात्मा प्रकीर्तितः " ॥ इति ॥ अज्ञिः—
 - " पार्वणं च यथा वृद्धिश्राद्धं कुर्याद्यथाविधि । एकैको मंत्रवात्पंडो देयस्तूष्णीमथापरः ॥
 - " सर्वमंत्रेषु कर्त्तव्यं नांदीमुखिवेशेषणम् । उत्थायं च ततो विद्दान्त्रष्टपुष्टेन चेतसा ॥
- " प्रदक्षिणं ततः कृत्वा नमस्कृत्य द्विजोत्तमान् । क्षंतव्यमिति तान्वयात्रणम्य शिरसा नतः ॥ "संन्यासार्थं मया श्राद्धं कृतमेतद्विजे।त्तमाः । अनुज्ञां प्राप्य युष्माकं सिद्धं यास्यामि शाश्वतीम्"॥ २५ ततः परेशुः पुण्याहवाचनपूर्वकं वपनं कुर्यात् । संन्यासक्रशः । तदाह शौनकः—
- " पूर्वेद्युनीद्रीमुलं कृत्वा ब्राह्मणान्भोजयित्वा पुण्याहं वाचयित्वा केशश्मश्रुलोम-नस्वानि वापयित्वा यथाविधि स्नात्वा होमादिद्रव्यव्यतिरिक्तद्रव्यनातं पुत्रादिभ्यो दत्वा दंडादिनि संनिधाय देवायतने ग्रामे वा पुलिने वाऽरण्ये वा स्थित्वा बह्मणे नमः इंद्राय नमः आत्मने नमः अंतरात्मने नमः परमात्मने नम इति ब्रह्मांजलिं कृत्वा मानसं जिपत्वाऽप ३० उपस्पृश्य दर्भीजलिं कृत्वा वेदादिश्चिपित्वा सकुमुष्टिं प्राश्याप आचम्य ' ओं भूः सावित्रीं प्रविशामि तत्सवितुर्वरेण्यम् । ॐ भुवः सावित्रीं प्रविशामि भर्गो देवस्य धीमिह । ॐ सुवः सावित्रीं प्रविशामि धियो यो नः प्रचोद्यात् । ॐ भूर्भुवः सुवः सावित्रीं प्रविशामि तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमिह धियो यो नः प्रचोद्यात् । ॐ मूर्भुवः सुवः सावित्रीं प्रविशामि तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमिह धियो यो नः प्रचोद्यात् । इति जिपत्वा किंचनाप्राश्य पुरस्तादादित्यस्या-

१ क-प्य। २ क-थ्ये। ३ खग्-प्रवेशयामि।

स्तमयादाज्यं विलाप्योत्पूय स्नुचि चतुर्गृहीतं गृहीत्वा सिमद्धेऽग्नौ ॐ भूर्भुवः सुवः स्वाहेति पूर्णोहृतिं हुत्वा सायमग्निकार्थं कृत्वाऽग्न्युत्तरदेशेषु पात्राणि सादयित्वा दक्षिणदेशे दर्भान्संस्तीर्य कृष्णाजिनं चांतर्धाय तस्यां राज्यां जागरणं कृत्वेति " आपो हि ष्ठा मयो भुवः" इति द्वाभ्यां इमश्रुरोमनसानि च गौदानिकविधानेन सर्वमंत्रान्नियोजयेत्॥

- ५ " शेषस्य कर्मणः सिध्ये केशान्सप्ताष्ट वा पुनः । संरक्ष्य वापयेत्सर्वं केशश्मश्रुनलानि च" ॥ इति कात्यायनस्मरणात् । सप्ताष्ट वा केशान्य स्थापयित्वा वापयेत् । दक्षिणजानुनि उत्तानं वामहस्तं कृत्वा तद्वपिर सपिवित्रानुत्तानदक्षिणहस्तिनिधानं ब्रह्मांजितः " संहत्य हस्तावध्येयः स हि ब्रह्मांजितः स्मृतः " इति मनुस्मरणात् (२।७१)। तथा कृत्वा 'ब्रह्मणे नम ' इत्यादि मनसा जपेदित्यर्थः । सकुमुष्टिप्राशनं प्रणवेन कृत्वाऽऽचम्य नाभिमभिमंत्रयेत् । "आत्मने स्वाहा अंतरात्मने स्वाहा प्रजापतये स्वाहा " इति । ततः पयोद्धिवृतानि त्रिवृत्कृतानि 'त्रिवृद्सि ' इति मंत्रेण प्रथमं प्राश्नीयात् । 'प्रवृद्धि ' इति द्वितीयं 'संवृद्धि ' इति तृतीयं ' आपः पुनंतु ' इत्युद्धकं प्राश्नीयात्दलाम इति ।
- अत्र बोधायनः (२।१०।१४-२१)-" पुण्याहं स्वस्त्यृद्धिमिति " वाचित्वा केश्रमश्रुलोम१५ नसानि वापित्वा उपकल्पयते यक्ष्यः शिक्यं जलपवित्रं क्षंडलुं पात्रमित्येतत्समादाय ग्रामांते
 ग्रामसीमांतेऽग्न्यगारे वाऽऽज्यं पयोद्धीति त्रिवृत्प्राह्योपवसेद्गो । वा ओं भूः सावित्रीं प्रविशामि
 तत्सित्रुर्वरेण्यमां भुवः सावित्रीं प्रविशामि भर्गा देवस्य धीमिह ॐसुवः सावित्रीं प्रविशामि
 धियो यो नः प्रचोद्यादिति पच्छोर्धर्चशस्ततः समस्ताव्यस्ताश्र्वाश्रममुपनीय ब्रह्मभूयो
 ब्रह्मभूतो भवतीति विज्ञायते पुरादित्यस्यास्तमयाद्वार्हपत्यमुपसमाधायान्वाहार्यपचनमाहृत्य
 २० ज्वलंतमाहवनीयमुद्धृत्य गार्हपत्ये आज्यं विलाप्योत्पूय सुचि चतुर्गृहीतं गृहीत्वा समिद्दत्याहवनीये
 पूर्णाहुतिं हृत्वा ओं स्वाहेत्येत्तद्भान्वाधानमितिविज्ञायतेऽथ सायं हुतेऽग्निहोत्रे उत्तरेण
 गार्हपत्यं तृणानि संस्तीर्यं तेषु दृद्दं न्यंचि पात्राणि साद्यित्वा दक्षिणेनाहवनीयं ब्रह्मायतने
 द्भीन्संस्तीर्यं तेषु कृष्णाजिनं चान्तर्धायतां रात्रिं जागर्ति य एवं विद्यान्ब्रह्मरात्रमुपोष्य ब्राह्मणोऽनग्नीन्समारोप्य वा प्रमीयते सर्व पाष्मानं तरित तरित ब्रह्महत्यामिति " । अयमर्थः । पूर्वाह्णे
 २५ वपनं कृत्वा अपराह्ण उपकल्पयते आर्जयित यष्ट्यादीन्यष्टयः दंडाः शिक्यं रज्जुनिर्मितं
 भिक्षापात्रधारणम् ।
 - `` ङुशकार्पासस्त्रेर्वा क्षोमसूत्रेरथापि वा । कुश्लेर्ग्रथितं शिक्यं पद्माकारसमन्वितम् ॥
 - ं षट्रपादं पंचपादं वा वंथद्वयिक्शोभितम् [?] ॥ इति **स्मरणात्** ।

जलपवित्रमुद्कशोधनार्थं वस्त्रं विकेशं सितमस्पृष्टं सर्वतो द्वादशांगुलम् ।

э॰ "द्विगुणं िगुणं वाऽपि सर्वतोऽष्टांगुलं तु वा । प्रादेशमात्रं वा सूक्ष्मकापिसैः क्रुतमवणम्"॥

" चंडालायकृतं चेतत्स्मृतं जलपवित्रकम् "॥ इति स्**मरणात्** ।

पात्रं भैक्षाचरणार्थं अलाबुमृन्मयादि । आदिशब्द आसनाबुपलक्षणार्थम् ॥

" चतुरस्रं वर्तुलं वाऽऽप्यासनं दारवं शुभम्। कोपीनाच्छाद्नं वासः कन्थां शीतिनवारणाम् " इति स्मरणात् । त्रिवृत्प्राशनमंत्रः ॥ "ॐ भूः सावित्रीम् " इति "आश्रमादाश्रमम् " ३५ इति वचनात्रिवृत्प्राशनादूर्ध्वं प्रत्यापात्तिर्नास्तीति दर्शयति । ब्रह्म सावित्री । तया पूतः ब्रह्मभूयो

भवति । त्रिवृत्प्राश्चनेनैव संन्यास इत्यर्थः । ब्रह्मान्वाधानमिति यथा दर्शपूर्णनासयोरन्वाधानं तद्वदेतद्पि ब्रह्मप्रवेशस्येति ।

दिनांतरकृत्यमाह शौनकः—" बाह्मे मुहूर्ते उत्थाय यथाविधि स्नात्वा प्रातरिप्रकार्य कृत्वा व्याहृतीः जिपत्वा 'तरत्समन्दीधाविति ' इति सूक्तमप्सु जिपेत् " इति । दत्तात्रेयः—

"ब्रह्मरात्रीं ततो नीत्वा पौर्णमास्यां द्विजोत्तमः। प्रातर्द्वत्वा स्वकल्पेन कृत्वा स्नानादिकाः क्रियाः॥ "प्राजापत्यां प्रतिपदि त्विष्टिं कुर्याद्यथाविधि । ततो विप्राय द्यानु सर्ववेदसद्क्षिणाम् "॥ स्गोनकः—"प्राजापत्ययेष्ट्वा पुनराहवनीयमुद्धृत्य प्राणापानौ समो कृत्वा सर्व निद्धाति । यच्च पूर्तौ यच्च प्रजापतौ तन्मनिस जुहोमि विमुक्तोऽहं देविकित्विषात्स्वाहा । अयं ते योनिर्झ-त्विय इत्यात्मन्याग्रीन् समारोपयित प्राणेन गार्हपत्यमपानेन दक्षिणाग्निं व्यानेनाहवनीयमुद्गनेना- १० वसथ्यं समाने सभ्यं पुनराहवनीयं गत्वा 'अभ्यः संभूत श्रह्मादित्यमुपस्थायोत्तरेण गृहा-निष्कमेत् " इति ।

आन्नेयः-- " मृन्मयान्यइममयानि चाप्सु जुहुयादुरवे तैजसानि द्वात् " । इति ।

बोधायनः—" अथ ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय काल एव प्रातरग्निहोत्रं जुहेत्यथ पृष्ठचां-स्तीत्वांऽपः प्रणीय वैश्वानरं द्वाद्शकपालं निर्वपति सा प्रसिद्धिः संपद्यतेथाऽऽहवनीयेऽ १५ ग्निहोत्रद्रव्याणि प्रक्षिपत्यमृन्मयान्यश्ममयानि गाईपत्येरणीभवतो न तन्मनसावित्यथात्मन्यग्नी-न्समारोपयते " या ते अग्ने यज्ञिया तनः " इति त्रिस्त्रिरेकैकं समाजिव्यतीति शोनकः । अथ पुत्रं हृष्ट्वा जपति 'त्वं ब्रह्म त्वं यज्ञस्त्वं लोक ' इति । स पुत्रः प्रत्याह " अहम् ब्रह्माहं यज्ञोऽहं लोक " इति ।

बव्हचपरिशिष्टे— अथ पुत्रानसुद्दो वधून्प्रत्याह न मे कश्चिन्नाहं कस्यचित् इति २० जठाश्यं गत्वा "एतस्मादाश्रमात्संन्यासाश्रमं गच्छामि" इति संकल्पयेत्ततः अप्सु चोदकाहुति द्वयमाह किप्लाः— " अद्भः स्वाहा पुत्रेषणाया वित्तेषणाया ठोकेषणायाश्च व्युत्थितोहं स्वाहेत्यभ्य एवापः पाणिना हुत्वा " इति ।

बोधायनः – " अथ यज्ञोपत्रीतं विसृज्याद्भिः संस्पृश्याप्सु जुहोति । वेदांतविज्ञान " इति । आरण्यकोपानिषदि च ' उपत्रीतं भूमावप्तु वा विसृजेत् ' इति ।

काउकश्चितिः " सिशालान्केशानिष्कृत्य विसुज्य यज्ञोपवीतं भूः स्वाहा " इति । अत्राथर्वणी श्चितिः " ब्रह्मसूत्रमहमेवेति विद्वानिबिवृत्सूत्रं त्यजेत् । विद्वान्यं एवं वेदसंन्यस्तं मयेति त्रिः कृत्वा ' अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्तः सर्व प्रवर्तते " इति ।

बटहचपरिशिष्टे तु "प्राङ्मुसस्तिष्ठन्नूर्ध्ववाहुर्बूयात् । ॐ भूः संन्यस्तं मया। ॐ भुवः संन्यस्तं मया। ॐ सुवः संन्यस्तं मया। ॐ भूर्भुवःसुवः संन्यस्तं मया " इति । " त्रिरुपांद्यत्रिर्मध्यमं त्रिरुच्चैः" इति ।

प्रकारांतरमाह शोनकः—" ॐ भूभुवः सुवः संन्यस्तं मया "। इति ' मंद्रमध्यमोत्तमस्वरेणोक्त्वा-अभयं सर्वभूतेभ्यो मत्त ' इति प्राङ्मुख उदङ्मुखः पूर्णाजिलिं निनयनं कृत्वा यथाधिकारं यथाविधि दंडादि गृहीत्वा स्वधर्मनिष्ठो भवेत् " इति ।

१ कखग-उत्तर नारायणे।

बोधायनस्त्वाह " अथांतर्वेदितिष्ठन्नों भूर्भुवः सुवः संन्यस्तं मया संन्यस्तं मयेति त्रिरुपांशूका-निर्मध्यमं त्रिरुच्चेः 'त्रिषत्या हि देवाः' इति विज्ञायते 'अभयं सर्वे भूतेभ्यो मत्त ' इति चापां पूर्णमंजिलं निनयति "॥ इति । अत्र यमः—

"दत्वा तोयांजिं विप्रो भक्त्या संप्रार्थयेद्धरिम्। सर्ववेदात्मके तोये तोयाहुतिमहं हरे॥ ५ "दत्वा सर्वेषणां त्यक्त्वा युष्मचरणमागतम्। त्राहि मां सर्वलोकेश गतिरन्या न विद्यते॥ "संन्यस्तं मे जगन्नाथ पाहि मां मधुसूद्दन। पाहि मां सर्वसर्वेश वासुदेव सनातन॥ "संन्यस्तं मे जगन्नोने पुंडरीकाक्ष मोक्षद्। अहं सर्वाभयं दत्वा भूतानां परमेश्वर॥ "युष्मच्चरणमापन्नस्नाहि मां पुरुषोत्तम "॥ इति।

"ततो दिगंबरो भृत्वा गच्छेत्किचिद्वदङ्मुसः। जिज्ञासुश्चेत्परावृत्या तिष्ठेदाचार्यदर्शने" ॥ १० ततो दारकपात्रं कोपीनं बहिर्वासः कंथां दंडं च कमेणेकैकं प्रणवेनैव द्यात्। ततः इंद्रस्य वज्रोऽसि वार्चघः शर्म यच्छ यत्पापं तिश्ववारय, इति दंडं संप्रार्थ्य, सस्ता मा गोपाय। इति दंडं धारयेत्॥ आथर्वणी श्वातिः— "सस्ता मा गोपाय नः सस्तायोऽसींद्रस्य वज्रोऽसि " इत्यन्येन मंत्रेण कृत्वोध्वे वैणवं दंडं कौषीनं प्रतिग्रहेत् " इति।

मैत्रायणी श्रुतिरिप "इंद्रस्य वज्रोऽसीति त्रीन्वैणवान्दंडान्दक्षिणे पाणौ धारयेदेकं वा" इति। १५ आफणिश्रुतिरिप "काममेकं वैणवं दंडं धारयेत् "॥ इति।

बोधायनः (३।२।६)- " सखा मा गोपायेतिदंडमाद्त्ते, '' यदस्य परिरजस " इति शिक्यं गृह्णाति, 'येन देवाः पवित्रेण " इति जलपवित्रं गृह्णाति, 'येन देवा ज्योतिषोर्ध्वा उदायन् ' इति कमंडलुं गृह्णाति, सप्तव्याहितिभिः पात्रे गृह्णाति इति "।

अन्ये तु प्रकारांतरं वर्णयंति । नांदीश्राद्धं कृत्वा परेचुरुपोष्य सप्ताष्ट वा केशान्परि-२० हृत्य कण्ठादुपरि वापयित्वा नखनिक्कंतनं च कारयित्वा स्नात्वाऽऽचम्य पुण्याहं वाचयित्वा पुत्रादिदायातिरिक्तं स्वद्रव्यं होमार्थं दक्षिणार्थं च स्थापयित्वा ब्राह्मणेभ्यः सर्वस्वं दत्वा ततो दोरकोपीनाच्छादनानि प्रक्षाल्य सलक्षणं मुद्रासहितं वैणवं दंडं जलपात्रं च सिक्षघाप्य देवा-यतनादौ स्थित्वा ब्रह्मांजिलं कृत्वा ॐ नमो ब्रह्मणे० बृहते करोमि इति त्रिजीपित्वा ब्रह्मयज्ञवत वेदादि जिपत्वा "ॐुनमो ब्रह्मणे नमः ॐ इंदाय० ॐ सोमायः० ॐ प्रजापतये० ॐ २५ आत्मने ० ॐ अंतरात्मने ० ॐ परमात्मने नमः " इति सक्तुमुष्टित्रयं प्रणवेन प्रारुयाचम्य "ॐ आत्मने स्वाहा ॐ अंतरात्मने स्वाहा ॐ ज्ञानात्मने स्वाहा ॐ परमात्मने स्वाहा ॐ प्रजापतये स्वाहो " इति नाभिं स्पृष्ट्या जपेत् । ततः पयो द्धि सर्पिः प्रत्येकं त्रिवारं प्रणवेन प्रार्याचम्य प्राङ्मुल उपविश्य प्राणायामत्रयं कृत्वा यथाशक्ति जपं कुर्यात्तत आदित्यास्त-मयात्पूर्वमेव वश्यमाणं 'पुरुषसूक्तहोमार्थमिश्रं प्रतिष्ठापयेत् । पुरुषसूक्तहोमविरजाहोमो तंत्रेण ३० करिष्य[े] इति संकल्प्य स्वे स्वेऽमावाज्यभागांतं कृत्वा "भू: स्वाहा " इति । पूर्णाहुतिं जुहुयात्ततः सायंसंध्यामुपास्य सायमिशकार्यं कृत्वा अग्नेर्दक्षिणतो दर्भान्संस्तीर्य कृष्णा-जुन जिनं च वस्रेणाच्छाय तत्रासीनो गायत्रीं जपन्जागरणं कुर्यात् । ततो बाह्मे मुहूर्ते उत्थाय स्नात्वाऽचम्य स्वामौ चर्रं अपयित्वाऽऽभिघार्य बन्हिर्व्यासाय व्याहृतिं पुरुषसूकं च जपेत्। प्रजापतये स्वाहा इंद्राय स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा ब्रह्मणे स्वाहा इति जपित्वा पुण्याहं

१ ख-शासने।

वाचियत्वा सुवेणाज्यं गृहीत्वा अग्रये स्वाहा सोमाय स्वाहा अग्रये स्वाहा इति हुत्वा प्रयासाय स्वाहा इति द्वाद्शाज्याद्वतीः प्राणाय स्वाहा इति पंचाज्याद्वतीर्द्वत्वा स्वशाखापुरुषसक्तेन प्रत्युचं सभिद्ञाज्याहुतिं क्रमेण जुहुयात्ततो विरजाहोममाज्येन चरुणा च कुर्यात्। स्विष्टक्कतं हत्वा उपरिष्टात्तंत्रं कृत्वा ॐ स्वाहा इति पूर्णाहुतिं हुत्वा सिप्मित्रं चरुं प्राज्ञ्याचम्य ब्रह्मोद्वासनं कृत्वा आचार्याय दक्षिणां दत्वा प्रातः संध्यामुपास्य प्रातहोंमं हुत्वा समासिंचंतु मरुतः समिंद्रः सं वृह- ५ स्पतिः । समाऽयमाग्निः सिंचत्वायुषा च बलेन चायुष्मंतं वर्चस्वंतं करोतु मा इत्युपस्थाय आयंते योनिकीत्विय इति त्रिरमिमाजिघेत्ततो दोरकौपीनकाषायवस्रदंडादिकं गृहीत्वा जलाश्यं गत्वा स्नात्वा 'अस्मदाश्रमात्परमहंसाश्रमं प्रविज्ञामि' इति संकल्प्य नाभिमात्रोदके प्राइन्खस्तिष्टन्-सावित्रीं व्याहतौ प्रवेशयामि इति संकल्प्य सावित्रीप्रवेशनं कुर्यात्। "ॐ भू: सावित्रीं प्रवेश-यामि तत्सवितुर्वरेणेयं । ॐ भुवः सावित्रीं प्रवेशयामि भर्गों देवस्य धीमहि । ॐ सुवः सावित्रीं १० प्रवेशयामि धियो यो नः प्रचोद्यात् । ॐ भूः सावित्रीं प्रवेशयामि तत्सविर्तुरेण्यं भर्गां देवस्य धीमहि। ॐ सुवः सावित्रीं प्रवेयशामि धियो यो नः प्रचीद्यात्। ॐ सुवः सावित्री० मि तत्सवितु-वरेण्यं भर्गी देवस्य धीमहि थियो यो नः प्रचीद्यात् " इति व्याहतौ सावित्रीं प्रवेशयेत् । ततः व्याह्तीः प्रणवे प्रवेशयामि इति संकल्प्य "ॐ भूः प्रणवे प्रवेशयामि ॐ भुवः प्रणवे प्रवेशयामि ॐ सुवः प्रणवे प्रवेशयामि ॐ भूर्भुवःसुवः प्रणवे प्रवेशयामि" इति व्याहतीः प्रणवे समारोपयेत्। ततः १५ अहं वृक्षस्य रेरिवा ॰ 'इति त्रिशंकोर्वेदानुवचनं । 'यश्छंदसामृषभो विश्वरूपः ॰ ' श्रुतं मे गोपाय हित जिपत्वा पुत्रेषणायाश्च वित्तेषणायाश्च लोकेषणायाश्च व्युत्थितोऽहमित्युऋवा ऊर्ध्ववाहुः सूर्याभि-मुस्तिष्ठन् । ' ॐ भूः संन्यस्तं मया । ॐ भुवः संन्यस्तं मया । ॐ सुवः संन्यस्तं मया । ॐ भूर्भुवः सुवः संन्यस्तं मया " इति मंद्रमध्यमोत्तमस्वरेण त्रिवारं प्रेवमंत्रमुच्चार्य ' अभयं सर्व-भूतेभ्यो मत्तः स्वाहा ' इति प्राच्यां दिश्युदकां जिलं प्रक्षिप्य शिक्षां छित्वा यज्ञोपवीतं निकृत्य २० उद्कांजिलना गृहीत्वा 'ॐ भूः स्वाहा ' इत्यप्स हुत्वा प्रैषमंत्रेण विवारमभिमंत्रितमुद्कं प्राह्य तीरं गत्वा वासः कटिसूत्रादिकं भूमौ विसृज्य जातरूपधरः सप्तपदं प्राचीमुदीचीं वा दिशं वजेत । आचार्योऽन्यो वा भो भगवन तिष्ठ तिष्ठ लोकान्यहार्थ दंडादि गृहाण इति निवार्य कौपीनं काषायवस्त्रं च द्यात्। प्रणवेन स्वीकृत्य परिधायाचम्य मस्तकप्रमाणं परशुशंख-मुद्रान्वितामं सुरभिपद्मजमुद्रान्वितं मध्यं नागमुद्रान्वितं मूलमुक्तलक्षणयुक्तमेकं वैणवं दंडं २५ "इंद्रस्य वज्रोऽसि वार्बद्यः० रय" इति मंत्रेण तं प्रार्थयन् ' सला मां गोपाय ' इति दक्षिणहस्तेन गृह्णीयात्। 'ॐ मिति ' कमंडलुं च गृह्णीयात् इति।

" एवं संन्यासकल्पस्य नानात्वमृषिभिः स्मृतम् । तत्र व्यवस्था द्रष्टव्या संप्रदायानुसारतः"॥ अथ संन्यासोपदेशकम उक्तविधिना संन्यासं विवायात्मज्ञानाय गुरुसमीपं गच्छेत्॥ तथा च सुंडके श्रूयते " तिद्विज्ञानार्थं स गुरुमेशिभगछेत्सिमित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्टम् "इति । ३० ततो विनीतो गुरुमुपगम्य दक्षिणं जानुं भूमिं नीत्वा पाद्यहणं च कृत्वा

" यो ब्रह्माणं विद्धाति पूर्व यो वे वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।

" तः हि देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुश्चर्वे शरणमहं प्रपये " ॥

इति मंत्रेण गुरुमीश्वरबुध्योपस्थायाधीमहि भगवो ब्रह्मेति ब्रूयात् । तस्मै साधनचतुष्टय-संपन्नायाधिकारिणे गुरुर्बह्मोपिद्शेत् । तथा च श्रूयते—'' तस्मै स विद्वानुप- ३५ संपन्नाय सम्यक्प्रशांतिचित्ताय शमान्विताय थेनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्यां। तद्देतत्सत्यामिति। ततो गुरुरात्मानमनुसंधाय जलपूर्णशंखं पुष्पादिभिरभ्यच्यं द्वाद्शप्रणवैरभिमंत्र्य प्रणवेन शिष्यशिरोऽभिषिंचेत्। ततः शं नो मित्र इति शांतिं पिठित्वा शिष्यशिरसि हस्तं दत्वा पुरुषसूक्तं जपेत्।

- ५ तथा च बहुचपरिशिष्टे— " अथास्य शिरसि पुरुषसूक्तेन पाणिमुपद्धाति मम हृद्ये हृद्यं ते द्दामि मम चित्तमनुचितं तेऽस्तु मम वाचमेकवते जुषस्व वृहस्पतिस्त्वा नियुनकु महामिति हृद्यदेश" इति । ततः प्रणवमुपदिश्य तद्र्थं बोधयेत् ॥ महावाक्योपदेशपूर्वकं धर्मं बोधयित्वा नाम द्यात् । यतिनामानि—
 - " तत्त्वं पदार्थयोरैक्यं यत्पदं प्रतिपाद्येत् । तन्नाम यतये कुर्याद्दाक्यनाम तद्बियते ॥
- १९ " यतीनां रूयातयशसामाचार्यः पूर्वभाविनाम् । नाम कुर्यान्न शिष्यस्य बुद्धिपूर्वं कदाचन " ॥ इति संप्रदायविदः ॥
 - वह्वचपरिशिष्टेऽपि " अथास्मै नाम द्याद्वैष्णवं नामाथवा यद्रोचत इति संप्रदायविद्वद्वचनम्
 - " योगपट्टं च दातव्यं वेदांताभ्यासतः परम् । ततो नाम प्रकर्तव्यं गुरुणा सर्वसंमतम्।
 - " तीर्थाश्रमवनारण्यगिरिपर्वतसागराः । सरस्वती भारती च पुरी नाम यतेर्द्श ॥
- १५ "श्रीपादमंज्ञया वाक्यं नाम तस्य यथातथम्" इति।

अथातुरसंन्यासक्रमः।

- " यद्यातुरः स्यानमनसा वाचा वा संनयसेत्तदा । आतुराणां च संन्यासं न विधिनैंव च किया ॥ " प्रैषमात्रं समुचार्य संन्यासं तत्र पूरयेत् " इत्यादिश्चितिस्मृतिस्यः स्वशक्त्यनुसारेण मनसा वाचा वा प्रेषोचारणादि कुर्वत आतुरस्य कृच्छ्रनांदीश्चाद्धादि निसिलांगलोपेऽपि स संन्यास-
- २० पूर्तिः। विलंबातुरस्य तु प्रैषमात्रमिति मात्रचोदनसंभवादंगक्रलापव्यावर्त्तकत्वेनाप्युपपत्तो शक्तचां-ऽगक्रलापव्यावर्त्तकत्त्वानुपपत्तेनादिशाद्धेष्टिविरजाहे। माद्यशक्तस्य इष्टदेवताये पूर्णाहुतिरशि-समारोपणगायत्रीप्रवेशनप्रैषोच्चारणाभयदानानीत्याहुः। अत्र याज्ञवल्कयः—
 - ''अशक्ताविष्टदैवतायै पूर्णाहुतिं हुत्वा असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहेति आहवनीये दाहमयाणि पात्राणि प्रज्वालय मृन्मयान्यप्सु प्रक्षिप्य 'संमासिंचंतु भरुत' इत्याम्यपस्थाय 'या ते अगन्य'
- २५ इत्यनेन हस्तं प्रताप्यात्मन्यमीन्त्रमारोप्य सर्वप्रायाश्चितपूर्वकं सत पंच वा केशान्त्रिमुज्य वाप-यित्वः यथाविधि स्नात्वाऽऽचन्य पात्रेण तोयमाद्याप उपसृज्य दक्षिणेन पाणिनाऽप्सु जुहोति एष वा अग्नेर्योनिर्यः प्राणः प्राणं गच्छ स्वां योनिमभिगच्छ स्वाहा इति प्रथमाहुतिः । आपो वै सर्वा देवताः सर्वाभ्य एवेनं देवताभ्यो जुहोतीति इति द्वितीयाहुतिः। ततो हुतशेषं ' आग्नुः शिशान'इत्यनुवाकेनाभिमंच्य पुत्रेषणा वित्तेषणा ठोकषणा मयात्यका स्वाहा इति प्रथमं पित्रेत्।
- अं 'ओं भूर्भुवः सुवः ब्रह्मा ओं भूर्भुवः सुवरों मया संन्यस्तं स्वाहा' इति द्वितीयं पिबेत्। 'अभयं सर्व- भूतेभ्यो मत्तः स्वाहा' इति तृतीयं पिबेत्। ततोऽन्यतोयमं नालिपूर्णमानीय प्रागादिदिश्च प्रत्येकं निनयेत्। 'ॐ भूः सावित्रीं प्रवेशयामिॐ भुवः सावित्रीं प्रवेशयामि ॐ सुवः सावित्रीं प्रवेशयामि ॐ सुवः सावित्रीं प्रवेशयामि ' इति सावित्रीप्रवेशनं कृत्वा अथोर्ध्वबाहुः सूर्याभिमुखो भूत्वा "ॐ भूः संन्यस्तं मया ॐ सुवः संन्यस्तं मया ॐ सुवः संन्यस्तं मया ॐ सुवः संन्यस्तं मया

ॐ भूर्भुवः सुवः संन्यस्तं " मया इति प्रैषमुचारयेत् । तूष्णीं शिखां निकृत्य स्नात्वाऽचम्य यज्ञोपवीतमुत्थृत्योद्कांजालेना गृहीत्वा 'ॐ भूः स्वाहा' इत्यप्सु हुत्वा दिगंवरो भूत्वा पुत्रेषणातो मुक्तो वित्तेषणातो मुक्तोऽहम् लोकैषणातो मुक्तोहं इति बुवन्मंत्रतो दंडाद्यादाय गच्छेत् । अत ऊर्ध्व न पुत्रगृहं गच्छेत् मृते पुरुषसूक्तेन विष्णुबुध्याभिषिच्य यतिसंस्कारमेव कुर्यात् । इति आतुरस्य प्रेषमात्रेग संन्यासपूर्तिश्रवणात्तदुत्तरकालमेव मृतस्योपद्रश्विकलस्यापि खननमेव ५ संस्कारः । जीवतश्चेच्छिखां यज्ञोपवीतं च निकृत्य दंडकाषायवस्त्रादीनि चादाय सद्गुरुमन्विष्य तस्मादुपदेशं गृहीत्वा यतिधर्माननुतिष्ठेत् ॥

अथ संन्यासभेदाः । तत्र संवर्तः--

" चतुर्विघा भिक्षवस्तु कुटीचकबहूदका । हंसः परमहंसश्च यो यः पश्चात्स उत्तमः "

दक्षः— " वृत्तिभेदेन भिन्नाश्च नैव हिंगेन ते द्विजाः।हिंगं तु वैष्णवं तेषां त्रिदंडं सपवित्रकम्'॥

एतित्वदंडधारणं कुटीचकविषयम् । **ट्यासः**— ''विरक्तिश्च द्विधा प्रोक्ता तीवा तीवतरेति च । सत्यामेव तु तीवायां न्यकेद्योगी कुटीचके ॥

" शक्तो बहूद्के तीवतरायां हंसै जिते । मुमुश्चः परमे हंसे साक्षादितानसःधने ॥

"कुटीचकः परिवर्द्यः ज्येष्ठवेश्मिनि नित्यशः। भिक्षां वंधुभ्य आदाय भुंजीरन् शक्तिसंक्षये"॥ १५ श्रुतिः—" कुटीचको ब्रह्मचारी कुटुंबं विस्त्रजेत् " इति । बोधायनः

"कुटीचकस्तु संन्यस्य स्वीयवेश्मिन नित्यशः । भिक्षामिदाय भुंजीत स्ववंन्यूनां गृहेऽथ वा ॥ "शिखायज्ञोपवीती स्यात्त्रिदंडी सक्मंडलुः । सावित्रीं सहस्रकृत्व आवर्त्तयेच्छतक्कृत्वोऽपरि-मितकृत्वो वा " इति । हारीतः—

" त्रिदंडं वैणवं सौम्यं सततं समपर्वेष्टम् । विष्टितं कृष्णगेवालरज्जुवच्चतुरंगुलम् ॥ २०
" ग्रंथिकारिश्तमिर्युकं सुशुभं शिक्यलक्षणस् । गृह्णीयात्सततं विद्वःन्पात्रं चैव कनंडलुम् ॥
" आसनं दारवं प्रोक्तं स्वहस्तचतुरंगुलम् । कौपीनाच्छाद्दनं वासः कन्यां शीतिनिवारिणीम् ॥
"जलपात्रं पवित्रं च सनित्रं च कृपाणिकाम् । पादुके चापि गृह्णीयात् कृपीकान्यस्य संग्रहम् ॥
" शिखायज्ञोपवीती स्याद्देवताराधनं चरेत् । तपीयित्वा तु देवांश्च मंत्रवद्धः स्करं नमेत् ॥
"आसीनः प्राङ्मुखो मौनी प्राणायामत्रयं चरेत्। गायत्री च यथाशक्ति जप्वा ध्यायेत्परं पदम्॥ २५
" स्थित्यर्थमात्मनो नित्यं मिक्षाटनमथाचरेत् । जपध्यानेतिहासश्च दिनशेषं नयेद् बुवः ॥

" कृतसंध्यस्ततो रात्रिं नयेद्देवगृहादिषु । हृत्दुंडरीकनिलयं ध्यायेदात्मानमन्ययम् ॥

" यतिधर्मरतः शान्तः सर्वभूतसमो वशी । प्राप्नोति परमं स्थानं यत्प्राप्य न निवर्तते ॥

" त्रिदंडधूग्यो हि पृथक्सदाचरेच्छनः शनेस्त्यक्तवहिर्मुखाक्षः ।

संमुच्य संसारसमस्तवंधनं स याति विष्णोरसृतात्मनः पद्म "॥ इति ।—

व्यासोपि-

" स्वाध्यायं चान्वहं कुर्यात् सावित्रीं सन्ध्ययोर्जपेत्।
" यज्ञोपवीती सततं कुरायाणिः समाहितः । घोतकाषायवसनश्मश्रुङकाननूरुहः ॥
" आध्यात्मिकं च सततं वेदांताभिहितं चरेत्। पुत्रेषु वाऽथ निवसेद्रह्मचारी यतिर्मुनिः ॥

१ खग-तीवसंज्ञके।

"वे द्मेवाभ्यसेन्नित्यं स याति परमां गतिम्। स्वाध्यायं चान्वहं कुर्यात्सावित्रीं संध्ययोजर्पन्॥ "ध्यायीत सततं देवमेकांते परमेश्वरम्। एकान्नं वर्जयेन्नित्यं कामकोधं परिग्रहम्॥ "एकवासा दिवासा वा शिसायज्ञोपवीतवान्। कमंडलुधरो विद्वान्याति तत्परमं पद्म्"॥ इति। मेधातिथिः—" यावन्न स्युस्त्रयो दंडास्तावदेकेन पर्यटेत्"। हारीतः—

" नष्टे जलपवित्रे वा त्रिदंडे वा प्रमादतः । एकं तु वैणवं दंढं पालाशं वैल्वमेव वा ॥ " गृहीत्वाऽपि चरेत्तावयावसम्येत् त्रिदंडकं" इति । यतु

''शिखिनस्तु श्रुतः केचित्केचिन्मुंढाश्च भिक्षुकाः । चतुर्धा भिक्षवो विप्राः सर्वे चैव त्रिदंडिनः' '॥ इत्यन्निवचनं तद्वाग्दंडायभिप्रायम् । तथा च मनुः (१२।१०)—

" वाग्दंडश्च मनोदंडो कर्मदंडस्तथैव च । यस्यैते नियता बुद्धौ स त्रिदंडीति चोच्यते "॥

१० दक्षः---

- " वाग्दंडो मोनमेव स्यात्कर्मदंडस्त्वनीहता । मानसस्य तु दंडस्य स्वरूपं प्राणसंयमः ॥ " त्रिदंडिव्यपदेशेन जीवंति बहवो नराः । यो हि ब्रह्म न जानाति न त्रिदंड्यर्भको हि सः" ॥ ट्यासः—
- "वैणवा ये स्मृता दंडा लिंगमात्रप्रवोधकाः। लिंगाभिव्यक्तये धार्या न पुनर्धमहितवे॥

 भ " जितेद्वियैजिंतकोधैर्धार्यास्ते तत्त्वदर्शिभिः। त्रिदंडस्य परित्यागे एकदंडस्य धारणम्"॥ इति ।

 कृटीचकवहूद्वयोईसपरमहंत्रसंन्यासं विद्धाति श्रुतिः । त्रिदंडं कमंडलुं शिक्यं पात्रं
 जलपवित्रं शिखां यज्ञोपवीतं चेत्येतत्सर्व भूः स्वाहेत्यप्सु परित्यज्यात्मानमन्विछेत् " इति ।

 बोधायनः—" मुंडः इषायवासा वाङ्मनकर्मदंडैभूतानामद्रोही यज्ञोपवीतं त्रिदंढं कमंडलुं
 पात्रं परित्यज्य विमृज्य सर्वकर्माणि सर्वसहः सर्वसंगनिवृत्त" इति । स्मृतिरपि—
- २० "त्रिदंडं कुंडिकां चैव सूत्रं वाऽथ कपालिकस् । जंतूनां वारणं वस्त्रं सर्वे भिश्चः परित्यजेत्"॥इति । बहुदकधर्मानाह पितामहः—
 - " बहूदकः स विज्ञेयः सर्वसंगविवर्जितः। वंधुवर्गे न भिक्षेत स्वभूमौ नैव संविशेत्॥
 " निश्वतः स्थाणुभृतश्च सदा मोक्षपरायणः। न कुङ्यां नोदके संगं कुर्यात् वस्त्रे च चेतसा॥
 " नागारे नासने नान्नेनास्तरे न विदंडके॥" माध्ययिये पराशरे च---
- २५ " बहुद्कश्च संन्यस्य बंधुपुत्रादिवर्जितः । सप्तागारश्चरेद्धैक्षमेकानं च परित्यजेत् ॥
 - " गोबाहरज्जुसंबंधं त्रिद्दं शिक्यमुद्धृतम्। जहपात्रं पवित्रं च सनित्रं च कृपाणिकम्॥
 - " शिखां यज्ञीपदीतं च देवताराधानं चरेत् " ॥ इति ।

अथ हंसधर्वानाह पितामहः—

- " हंसस्तृतीयो विज्ञेयो भिश्चमीक्षपरायणः । नित्यं त्रिषवणस्नायी त्वार्द्वासा भवेत्सदा॥
- " चांद्रायणेन वर्तेत यतिधर्मानुशासनात् । वृक्षमूरु वसेन्नित्यं गुहायां वा सारित्तटे ॥ " हंसः कमंडलुं शिक्यं भिक्षापात्रं तथैव च । कंथां कौपीनमाच्छाद्यमंसवस्त्रं बहिःपटम् ॥
 - " एकं तु वैणवं दंडं धारयेजित्यमाद्रात् । देवतानामभेदेन कुर्यात् ध्यानं समर्चयेत्"॥ बोधायनः—
 - " हंसः कमंडलुं शिक्यं दंडपात्राणि विभ्रतः।ग्रामतीर्थेकरात्रश्च नगरे पंचरात्रकाः॥

- " त्रिषड्रात्रोपवासाश्च पक्षमासोपवासिनः । कुच्छ्रसांतपनावैश्व यमैः क्वरावपुर्धराः भ त विष्णः—
- " यज्ञोपवीतं दंडं च वस्रं जंतुनिवारणम् । तावान्त्रतिग्रहः प्रोक्तो नान्यो हंसपरिग्रहः ॥ व्यासः—
- " कोपीनाच्छादनं वासः कंथां शीतानिवारणीम् । अक्षमाठां च गृह्णीयाद्वेणवं दंडमवणम् " ॥ ५ स्मृतिरन्ने—
- " कौपीनयुगुलं वासः कंथां शीतिनवारिणीम्।पाइके च प्रगृह्णीयात् कुर्यान्नान्यस्य संग्रहम् ॥ " आसनोपानहच्छत्रं भाजनाजिनमोषधम् । यतिश्च प्रतिगृह्णीयादंडवस्त्रकमंडलून् " ॥ अथ परमहंसधर्माः । अत्रिः—
- "कौपीनयुगुलं कंथा दंड एक परिग्रहः । यतेः परमहंसस्य नाःधिकं तु विधीयते ॥ १० "यदि वा कुरुते रागाद्धिकस्य परिग्रहम् । रौरवं नरकं गत्वा तिर्यग्योनिषु जायते ॥ "विशीर्णान्यमलान्येव चेलानि मधितानि च । कृत्वा कंथां वहिर्वासो धारयेद्धातुरंजितम् ॥ "काषायं बाह्मणस्योक्तं नान्यवर्णस्य कस्यचित्।मोक्षाश्रमे सद्दा प्रोक्तं धातुरकं तु योगिनाम् ॥
 - " परः परमहंसस्तु तुर्याख्यः श्रुतिशासनात्। शांतो दांतः सत्वसमः प्रणवाभ्यासतत्परः॥ " श्रवणादिरतः शुद्धो निदिध्यासनतत्परः। ब्रह्मभावेन संपूज्य ब्रह्मांडमखिलं स्थितः॥ १५
 - "आत्मवृत्तश्चात्मरतिः समलोष्ठाश्मकांचनः । तस्वंपदौर्थवोधाच विष्णुरूपः स्वयं सदा ॥ " निवसेत्परमो हंसो यत्र कापि कथंचन " ॥

ट्यासः---

" परमहंसाम्चिदंडं च रज्जुं गोवालिनिर्मितम् । शिखां यज्ञोपवीतं च नित्यं कर्म परित्यजेत् ॥ "यथायं मेखलादीनि गृहस्थाश्रमवांछया । पत्नी योक्त्रं यथेष्टचं ते सोमांते च यथा गृहान् ॥ २० " तद्वयज्ञोपवीतस्य त्यागमिच्छंति योगिनः " ॥

माधवीये---

- "यदा तु विदितं तत्स्यात् परं ब्रह्म सनातनम् । तदैकदं इं संगृद्ध उपवीतं शिखां त्य जेत् " ॥ यरेकदें इी त्रिदं हो वेति बोधायनादिभिदं इविकल्पः समर्यते । यद्पि ' मुंडः शिखी वेति ' गौतमादिभिः(शरश)"शिखाविकल्पः समर्यते तत्सर्व व्यवस्थितविषयं द्रष्टव्यम्। कुटीचकबहू- २५ दक्योस्चिदं हथारणं शिखाधारणं च । इतरयोस्तु एकदं हथारणं मुंडनं चेति उपवीतिविकल्पोऽपि व्यवस्थितविषय एव । त्रयाणामुपत्रीतधारणं परमहं सस्य नेति । विष्णुः— "कौपीनाच्छादनार्थं तुवासोऽर्धस्य परिग्रहः । कुर्यात्परमहं सस्तु दं हमेकं तथैव च " ॥ पराहारः— "तत्र परमहं सा एकदं हथरा मुंडाः अममा अपरिग्रहा अपयत्रोपनीतिनो ज्ञाना-ग्रिरवा ज्ञानयज्ञोपनीतिनः ब्रह्मनिष्ठा आत्मरता आत्मरृप्ता आत्मानं सर्व पर्यंत " इति । ३० पिष्पलाद्शाखायाम्—
 - " सिशालं वपनं कृत्वा बिहः सूत्रं त्यजेद्बुधः । यद्श्ररं परं ब्रह्म तत्सूत्रमिति धारयेत् ॥
 - " सूचनात्सूत्रमित्याहुः सूत्रं नाम परं पद्म । तत्सूत्रं विदितं येन स विप्रो वेदपारगः॥
 - " येन सर्विमदं प्रोतं सूत्रे मिणगणा इव । तत्सूत्रं धारयेखोगी योगवित्तत्वद्रिःवान् ॥

९ क्टानस_ेंग्सर ।

"बहिःसूत्रं त्यजेद्विद्वान्योगमुत्तममास्थितः । ब्रह्मभाविमिदं सूत्रं क्रियांगं ताद्धे वै स्मृतस्॥ "शिखाज्ञानमयी यस्य ह्यपवीतंः तु तन्मयम् । ब्राह्मण्यं सक्छं तस्य चेति ब्रह्मविदो विदुः"॥ आरण्युपनिषदि — "अरिण प्राजापत्यः प्रजापतिलोंकं जगाम तं गत्वोवाच । केन भगवान्कर्माण्यशेषतो विमुजानीत । तं होवाच प्रजापतिस्तव पुत्रान् श्रातॄन्बंध्वादीन्शिखां यज्ञो- पवीतं यागं सूत्रं स्वाध्यायं च भूळींक भुवलोंक सुवलोंक महलोंक जनलोकतपोलोकसत्यलोंकं च अतलपातालवितलसुतलरासातलतलातलमहातलब्रह्मांडं च विमुजेत् दंडमाच्छादनकौपीनं परिग्रहेच्छेषं विमुजेत् " इति । विसर्गस्य चाशायाः दंडादिग्रहे च ग्रहणमात्रं कायिकं तत्र चाशाया विसर्गस्तुल्य एवेत्यभियुक्ताः । काठके—"यज्ञोपवीतं वेदांश्च सर्वं तद्वर्जयेत् " इति । परमहंसोपनिषदि — " असौ स्वपुत्रमित्रकलत्रवंध्वादीन् शिखायज्ञोपवीतं च स्वाध्यायं २० च सर्वकर्माणि च संन्यस्यायं ब्रह्मांडं च हित्वा कौपीनं दंडमाच्छादनं च स्वश्रिरोपभोगार्थाय लोकस्योपकारार्थाय च परिग्रहेत् " । इति ।

" ज्ञानदंडो धृतो येन एकदंडी स उच्यते । काष्टदंडो धृतो येन सर्वोशी ज्ञानवर्जितः ॥ " स याति नरकान्घोरान्महारोरवसंज्ञितान् ॥

" एकदंडं समाश्रित्य जीवंति बहवो नराः । नरके रौरवे घोरे कर्मत्यागात्पतांति ते " ॥ १५ मनु:---

" नियतो विचरेन्द्रमें यत्र तत्राश्चने वसन् । सभः सर्वेषु भूतेषु न लिंगं धर्मकारणम् ॥

" फलं कतकवृक्षस्य यथेवांबुप्रसादकम् । न नामग्रहणादेव तस्य वारि प्रसीदिति" ॥ यथा कतकफलनामग्रहणादेव न वारि प्रसीदिति तथाऽऽत्मज्ञानमंतरेण दंडादिलिंगग्रहणादेव न प्रसीदितित्यर्थः । स एव (४।२००)

२॰ "अिंहिंगी लिङ्किवेषेण यो बृत्तिमुक्जीवति । स लिंगीनां हरत्येनः तिर्थग्योज्यां च जायते"॥ इति । कात्यायनः—" एकदंडधरा मुंडाः " इति । जमद्शिः—

" दंडात्मनोस्तु संयोगः सर्वदैव विधीयते । न दंडेन विना गच्छेदिषुक्षेपत्रयं बुधः ॥

" जलांबरादिषु क्षिप्ते न किंचिद्दोषभाग्भवेत् ॥

"शिष्यादिभिर्विनीतोऽपिनीत एव स आत्मना। हस्तपाद। दिवच्छिष्य इति शिष्टानुशासनम्"॥इति। २५ इण्डादिलक्षणम् । दंडलक्षणं भविष्यतपुराणे दर्शितम्—

" दंडं तु वैणवं दंडं सत्वचं समपर्वकम् । पुण्यस्थानसमुत्पन्नं नानाकल्माषशोभितम्॥

" अद्राधमहतं कीटैं: पर्वग्रंथिविराजितम् । स्वयंभूतं तु मे**दिन्यां शासावर्जमृजुं शुभम् ॥** " नासादघ्नं शिरोधघ्नं भ्रुवोर्वा विभुयाद्यतिः " ॥

देवलः—"आददीत प्रवृत्तेभ्यः साधुभ्यो धर्मसाधनम् । नाददीत निवृत्तेभ्यः प्रमादेनापि किंचन॥
3 • "रध्यायां बहु वस्राणि भिक्षा सर्वत्र लभ्यते । भूमिशय्याऽस्ति विस्तीर्णा यतयः केन दुःखिताः"॥
यतिधर्मसमुच्चये—

"क्षौमं शाणमयं वाऽपि वासः कांक्षेत कौशिकम् । अजिनं वाऽपि धर्मज्ञः साधुभ्यस्तानपीडयन् ॥ " सचेलः स्यादचेलो वा कंथाप्रावरणोऽपि वा । एई वस्त्रेण वा विद्वान्वतं भिक्षुश्चरेषया ॥ " नात्यर्थं सुखदुःसाभ्यां शरीरमुपतापयेत् । स्तूयमानो न हृष्येत निंदितो न शपेत्परम् " ॥

```
"अध्यातमपुस्तकं विभैद्तं गृह्णीत भिक्ष्कः । न तावहृव्यमादाय लेखयेहोषद्र्शनात् "॥
                             अथ यत्याह्निकधर्माः। बोधायनः—
'' उषःकाले समुत्थाय शौचं कृत्वा यथाविधि । दुन्तान्विशोध्य चाचम्य पर्ववर्ज यथाविधि ॥
" स्नात्वा चाचम्य विधिवत्तिष्ठन्नासीन एव वा । उद्ये विधिवत्संध्याम् गस्य प्रणवं जपन् ॥
       "अनिमरिनिकेतः स्याद्ग्राममन्नार्थमाश्रयेत् । उपेक्षको संचयको मुनिर्भावसमन्त्रितः" ॥ ५
अथेमानि वतानि भवंति।
      " अहिंसा सत्यमस्तेयं मैथुनस्य च वर्जनमः । त्याग इत्यैव पंचैवीपव्रतानि भवंति ॥
       " अक्रोधो गुरुशुश्रूषा अप्रमादः शौचमाहारशुद्धिश्र " इति । पराश्ररः-
"कामं क्रोधं तथा दर्प छोभमोहादयश्च थे। तांस्तु दोषान्परित्यज्य परित्राण्णिर्ममो भवेत् "॥
व्यास:-
       "रागद्वेषविमुक्तातमा समलोष्ठाइमकांचनः । प्राणिहिंसानिवृत्तश्च मुनिः स्यातसर्वनिसपृहः।
       " मोक्षशास्त्रेषु निरतो ब्रह्मसूत्री जितेंद्रियः । दंभाहंकारानिर्मुको निंदापैशुन्यवर्जितः ॥
       " आत्मज्ञानगुणोपेतो यतिमौक्षमवाष्तुयात् । अभ्यसेत्सततं वेदं प्रणवारुयं सनातनम् ॥
" स्नात्वाऽऽचम्य विधानेन शुद्धिर्देवालयादिषु । प्रामात्रेऽपररात्रेच मध्यरात्रे तथैव च ॥
" संध्यास्विद्वविशेषेण चिंतयेन्नित्यमीश्वरम् ॥
                                                                                         14
" क्वत्वा हृत्पद्मनिलये विष्णवारूयं विश्वसंभवम् । आत्मानं सर्वभूतानां परस्तात्रमैपस्थितम् ।
" सर्वस्याधारमञ्यक्तमानंदं ज्योतिरव्ययम् । प्रधानपुरुषातीतमा काशमजरं शिवम् ॥
"तस्मात् ध्यानरतो नित्यमात्मविद्यापरायणः । ज्ञानं समभ्यसेद् ब्रह्म येन मुच्येत बंधनात् " ॥
मनुः (२।१००)
       " वशे क्रत्वेंद्रियमामं संयम्य च मनस्तथा । सर्वान्संसाघयेदर्थानक्षिण्वन्योगतस्तन्म्"॥ २०
अर्थान्श्रवणादीन् ।
''इंद्रियाणां प्रसंगेन दोषमृच्छत्यसंशयम्। संनियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिं निगच्छति॥(२।९३)
" न जातु कामः कामानामुगभोगेन शाम्यति । हविषा कुष्णवत्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥ ( ९४ )
"यच्चैनान्प्राप्नुयात्सर्वान्यच्चैनान्केवळांस्त्यजेत्।प्राप्रगात्सर्वकामानां परित्पागो विशिष्यते ॥ ९५
" न तथैतानि शक्यंते संनियंतुमसेवया । विषयेषु प्रदुष्टानि यथा ज्ञानेन नित्यशः ॥ (९६) २५
"श्रुत्वा स्पष्टा च हृष्टा च भुक्ता घात्वा च यो नरः।न हृष्यति ग्ठायति वा स विज्ञेयो जितेंद्रियः॥(९८)
"यस्य वाङ्मनसे गुद्धे सम्यग्गुते च सर्वदा । स वै सर्वमवाप्रेःति वेदांतोपगतं फलम् ॥(२।१६०)
"नारंतुदः स्यादार्चोऽपि न परद्रोहकर्मधीः। यथा चोद्विजते वाचा नालोक्यं तामुदीरयेत्"॥(१६१)
अरुंतुदः परमर्मप्रकाशनः।
" संमानाद्वह्मणो नित्यमुद्धिजेत विषादिव । अमृतस्येव चाकांक्षेद्रवमानस्य सर्वदा ॥ (१६२) ३०
" सुखं ह्यवमतः होते सुखं च प्रतिबुध्यते । सुखं चरति लोकेऽस्मिन्नवमंता विनहयति॥ (१६३)
```

" अतिवादांस्तितिक्षेत नावमन्येत कंचन। न चेमं देहमाश्चित्य वैरं कुर्वीत केनिचत् ॥ (६।४७) "कुध्यंतं न प्रतिकुध्येदाकुष्टः कुशलं वदेत्। सप्तद्वारावकीणं च न वाचमनृतां वदेत्"॥ (४८) धर्मीऽर्थः कामः धर्मकामौ अर्थकामौ धर्माथौ धर्मार्थकामश्चेति सप्तद्वाराणि । तदवकीणी

तत्संबंधां मोक्षाश्रितामेव वाचं वदेत् । न त्रिवर्गाश्रितामित्यर्थः । मनुरेव (६४९)—

"अध्यात्मरतिरासीनो निरपेक्षो निरामिषः। आत्मनैव सहायेन सुखार्थी विचरेदिह" ॥ निरामिषः रसवद्भोज्यरहितः । सुखार्थी मोक्षार्थी

" इंद्रियाणां निरोधेन रागद्वेषक्षयेण च । अहिंसया च भूतानाममृतत्वाय कल्पते ॥ (६।६०)-

" उपेक्षेत गतिं नृणां कर्मदोषसमुद्भवाः । निरये चैव पतनं यातनाश्च यमक्षये ॥ (६१)

3 " विषयोगं प्रियेश्वें व संप्रयोगं तथा प्रियैः। जरसा च त्रिभवनं व्याधिभिश्चोपपीहितम् ॥ (६२) "देहादुत्क्रमणं चास्मात्पुनर्गर्भे च संभवम्। योनिकोटिसहस्रेषु स्नुतिश्वास्यांतरात्मनः"॥ (६२) देहेष चैवोपस्रतिः । संस्रतिः अंतरात्मनो जीवस्य ।

" अधर्मप्रभवं चैव दुःखयोगं शरीरिणाम् । धर्मार्थप्रभवं चैव सुखसंयोगमक्षयम् ॥ (६४)

" सूक्ष्मतां चान्ववेक्षेत योगेन परमात्मनः । देहेषु चैवोपपत्तिमृत्तमेष्वधमेषु च ॥ (६५)

。 " अस्थिस्थूणास्नायुयुतं मांसशोणितलेपितम् । चर्मावनुद्धं दुर्गधिपूर्णं मूत्रपुरीषयोः ॥ (७६) " जराशोकसमाविष्टं रोगायतनमातुरम् । रजस्वलमनित्यं भूतवासमिमं त्यजेत् ॥ (७७)

भूतावासं शरीरयहं तस्मिन्नहंतां न कुर्यात् । यथा गृहे तिष्ठनगृही गृहंमन्यो न भवति एवं देहे तिष्ठनदेही देहंमन्यो न स्यादित्यभिप्रायः । उक्तमेवार्थं दृष्टांताभ्यां प्रपंचयति ।

" नदीकूलं यथा वृक्षो वृक्षं वा शकुनिर्यथा । तथात्यज्ञिमं देहं कुच्छ्र्यामाद्दिमुच्यते ॥ (৩८)

् " प्रियेषु सेषु सुकृतमप्रियेषु च डु॰कृतम । विसुज्य ध्यानयोगेन ब्रह्माप्येति सनातनम्॥ (৩९)

"अनेन विधिन। सर्वीन त्यक्त्वा संगान् हानैः शनैः। सर्वदंदैर्विप्रमुक्तो ब्रह्मण्येव।वितिष्ठते॥ (८१)

" सम्यग्दर्शनसंपन्नः कर्मभिने निबध्यते । द्र्शनेन विहीनस्तु संसारं प्रतिपद्यते ॥ (७४) "एक एव चरेन्नित्यं सिध्यर्थमसहायकः । सिद्धिमकस्य पर्यन्ति न जहाति न हीयते ॥ (६।४२) एकस्य सिद्धिं पर्यन्नसहायस्य सिद्धिर्भवतीति जानन् सिद्धिं न जहाति । स्त एव-(६।४५)

ः "कपाठं वृक्षमूलानि कुचेलमसहायता । समता चेति सर्वस्थिन्नेतन्मुक्तस्य लक्षणम्" ॥ कपाठं भिक्षार्थमलाबुपात्रं वृक्षमूले निवास इति यावत् । कुचेलं शीर्णवस्त्रधारित्वं मुक्तस्य संन्यासिनः ॥ याज्ञयत्क्यः (प्रा. ५८)

" सर्वभूतहितः शांतिश्चिदंडी सकमंडलुः । एकारामः परिवज्य भिक्षार्थं गृहमाविशेत्''॥ एकारामः परिवाजकांतरेणासहायः संन्यासिनीभिश्चिभिश्च 'श्वीणां चैकः' इति बोधायनेन स्त्रीणा-.५ मपि प्रवज्यास्मरणादिति विज्ञानेश्वरः । दृक्षः—

"नगरं हि न कर्त्तव्यं यामोऽपि मिथुनं तथा। एतत्त्रयं प्रकुर्वाणः स्वधर्माच्यवते यतिः॥ "एको भिश्चर्यथोक्तस्तु द्वावेव मिथुनं स्मृतम्। त्रयो यामः समाख्यातं ऊर्ध्वे तु नगरायते॥ "राजवार्तादि तेषां च भिक्षावार्ता परस्परम्। स्नेहपैशून्यमात्सर्यसंनिकर्षात्र संशयः "॥ इति।

" एकाकी निस्पृहस्तिष्ठेन्न केनापि सहावसेत् । द्यान्नारायणेत्येव प्रतिवाक्यं सदा यतिः " ॥ • मेघातिथिः---

" भिक्षाटनं जपो ध्यानं स्नानं शोचं सुरार्चनम् । कर्तव्यानि षडेतानि यती<mark>नां चपदंडवत् ॥</mark> "ध्यानं शौचं तथा भिक्षा नित्यमेकांतशीलता । भिक्षोः कर्माणि चत्वारि पंचमं नोपलभ्यते"॥ व्यासः—

१ क्ष-भोगा। २ ख-सम्यक्।

```
"कन्थाकौषीनवासा यो दंडघूमध्यानतत्परः। एकाकी रमते नित्यं तं देवा बाह्मणं विदुः"॥
भगवद्गीतायाम् (१३।१०-११)
       " विविक्तदेशसेवित्वपरितर्जनसंसिद् । अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानःर्थदर्शनम् ॥
       " एतत् ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यद्तोऽन्यथा ॥
"असक्तबुद्धिः सर्वेत्र जितात्मा विगतस्पृहः ।नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां संन्यासेनाधिगच्छति ॥ ( १८।४६ ) 👊
" बुध्या विशुद्धया युक्तो धृत्याऽऽत्मानं नियम्य च । शब्दादीन् विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ
व्युद्स्य च॥ (५१)
" विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः । ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्चितः ॥ ( ५२ )
"अहंकारं बळं दर्पं कामं कोधं परिग्रहम् । विमुच्य निर्मनः शांतो ब्रह्मभ्याय कल्पते "॥ (५३)
संवर्त्तः--
       " एकाकी चिंतयेद्रह्म मनोवाकायकर्मभिः। मृत्यं च नाभिनंदेत जीवितं वा ऋदाचन॥
       "कालमेव प्रतीक्षेत यावद्युः समाप्यते "॥
       मनुः (६।४४)—
       " नाभिनंदेत मरणं नाभिनंदेत जीवनम् । कालमेव प्रतीक्षेत निवेशं भूतको यथा "॥
निर्वेशं भृतिः।
                                                                                         94
"ह्रिष्ठपूतं न्यसेत्पादं वस्रपूतं जलं पिबेत्। सत्यपृतां वदेद्वाचं मनःपूतं समाचरेत् " ॥
संवर्तः---
" अजिह्नः पंडकः पंगुरंधो बधिर एव च । मुग्धश्च मुच्यते भिश्चः षड्मिरेतैर्न संज्ञयः ॥
" इदमिष्टमिदं नेति योऽश्वचिष न सज्जाति । इदं सत्यमिदं भिथ्या तमजिव्हं प्रचक्षते ॥
" अद्य जातां तथा नारीं तथा षोडशवार्षिकीम् । शतवर्षा च यो दृष्टुा निर्विकारः स पंडकः ॥ २.o
" भिक्षार्थमटनं यस्य विष्मत्रकरणाय च । योजनान्न परं गच्छेत् सर्वथा पंगुरेव च ॥
" तिष्ठतो बजतो वाऽपि मनश्चशुश्च न त्यजेत्। चतुर्युगात्परं सम्यक् परिवाद सोंऽध उच्यते ॥
       " श्रुत्वा यो न शृणोतीह बिधरः स प्रकीर्तितः ॥
" सांनिध्ये विषयाणां यः समर्थो विकलेन्द्रियः । सुप्तवद्वर्तते नित्यं स भिश्चर्मुक उच्यते " ॥
दक:---
                                                                                         २५
" बुधो ह्याभरणं भारं मलमालेपनं तथा । मानयन्तं च निदन्तं सममेद तु मन्यते ॥
" परमश्रेयसोपेतः परमात्मपरायणः । स्थूलसूक्ष्मशरीराभ्यां मुच्यते दशघट्कवित् ॥
" त्रिदंढं कुंडिकाकन्थां भैक्षमाजनमासन्य । कौपीनाच्छाद्नं वासः षडेतानि परिग्रहेत्॥
" स्थावरं जंगमं बीजं तैजसं विषमायुषम् । षडेतानि न गृह्णीयाद्यतिर्मूत्रपुरीषवत् ॥
" रसायनिक्रयावादं ज्योतिषं क्रयविक्रयम् । विविधानि च शिल्पानि वर्जयेत्परदारवत् ॥
" भिक्षाशनं जपस्नानं ध्यानं शौचं सुरार्चनम्।कर्त्तव्यानि षडेतानि सर्वथा चपदंडवत् ॥
" नटादिप्रेक्षणं वृतं प्रमदां सुह्दं तथा। भक्ष्यं भोज्यमुद्दक्यां च षण्ण पर्येत्कदाचन ॥
" स्कंधावारे खले सार्थे पुरे ग्रामे असद्गृहे । न वसेतु यतिः षट्सु स्थानेष्वेतेषु कहिर्चित् ॥
" रागं द्वेषं मदं मायां द्रोहं मोहं परात्मसु । बहेतानि यतिर्नित्यं मनसाऽपि न चिंतयेत्॥
```

९ श्रा-मर्बच।

- " आसनं पात्रलोपश्च संचयः शिष्यसंग्रहः। दिवास्त्रापो वृथाजल्पो यतेर्बधकराणि षट्"॥ आसनादीनां लक्षणमाह । स एव—
- " एकाहात्परतो गामे पंचाहात्परतः पुरे । वर्षेभ्योऽन्यत्र संस्थानमासनं तदुदाहृतम् ॥
- " उक्तानां यतिपात्राणामेकस्यापि न संग्रहः। भिश्लोभेंश्वभुजश्वापि पात्रठोपः स उच्यते ॥
- ५ " गृहीतस्य त्रिदंडादेदिंतीयस्य परिग्रहः । कालांतरोपभोगार्थः संचयः परिकीर्तितः ॥
 - " शुश्रुषा लाभपूजार्थ यशोर्थ वा परिग्रहः। शिष्याणां न तु कारुण्यात् स ज्ञेयः शिष्यसंग्रहः॥
 - " विद्यादीनां प्रकाशत्वाद्विद्या रात्रिरुच्यते । विद्याभ्यासे प्रमादो यः स द्वा स्वाप उच्यते ॥
 - " अध्यात्मिकीं कथामुक्ता भैक्षचर्या पुरस्कृतिः । अनुग्रहः परप्रश्नो वृथाजल्पः स उच्यते ॥
 - "नाध्येतव्यं न वक्तव्यं न श्रोतव्यं कथंचन । एतैः सर्वैः सुनिष्पन्नो यतिर्भवति नेतरः"।
- १० नाध्येतव्यमित्यादि कर्मकांडविषयम् ॥ 'उपनिषदमावर्त्तयेत् ' इति श्रुतेः ।

बृहस्पतिः--

"न तीर्थवासी नित्यं स्यान्नोपवासपरो यतिः। न चाध्यायनज्ञीतः स्यान्न व्याख्यानपरो भवेत्"॥ अज्ञिः—

- " अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्या परियर्ः। भावशुद्धिर्हरेर्भक्तिः संतोषः शौचमार्जवम् ॥
- १५ " अस्तिक्यं ब्रह्मसंस्पर्शे स्वाध्यायः समद्शीनम्। अनौद्धत्यमदीनत्वं प्रसादः स्थैर्यमार्द्वे ॥
 - " अस्नेहो गुरुशुष्रुषा श्रद्धा क्षांतिर्दमः शमः । उपेक्षा धैर्यमाधुर्य तितिक्षा करुणा तथा ॥
 - " ह्रीस्तथा ज्ञानविज्ञाने योगो लब्बाहानं घृतिः॥
 - " स्नानं सुरार्चनं ध्यानं प्राणायामो हरिस्तुतिः । भिक्षाटनं जपः संध्या त्यागः कर्मफलस्य च ॥ " एव स्वधमो विख्यातो यतीनां नियतात्मनाम् ॥
 - " निर्देदो नित्यसत्वस्थः सर्वत्र समद्र्शनः । तुरीयः परमो हंसः साक्षान्नारायणो यतिः॥
 - " प्रपंचमिखलं यस्तु ज्ञानामौ जुहुयाचितः । आत्मन्यमीनसभारोप्य सोऽमिहोत्री न चेतरः॥
 - " आश्रमत्रयमुत्सृज्य प्राप्येव परमाश्रमस् । ततः संवत्सरस्यांते प्राप्य ज्ञानमनुत्तमस् ॥
 - " अनुज्ञाप्य गुरुं चेव चरेद्धि पृथिवीमिमाम् । संरक्षणार्थं जंतूनां रात्रावहनि संध्ययोः॥
 - " शरीरत्याज्ययं चैव समीक्ष्य वसुधां चरेत " ॥

१५ कण्यः-

- " एकरात्रं वसेद्वामे नगरे पंचरात्रकम् । वर्षाम्योऽन्यत्र वर्षासु मासाश्च चतुरो वसेत्"॥ चात्रमोस्यविधिः । मधातिथिः—
- ''संरक्षणार्थं जंतूनां वसुधातलचारिशाम् । आषा<mark>ढादींश्च चतुरो मासानां कार्तिकाद्यतिः॥</mark> '' धर्माढ्ये जलसंपन्ने बामांते निवसेच्छाचिः"॥
- 30 व्यासः—"अविमुक्तेऽप्रविष्टानां विहारस्तु न विद्यते। न देहो भविता तत्र दृष्टं शास्त्रं पुरातनम्"॥ शंखः— " ऊर्ध्व वार्षिकाभ्यां मासाभ्यां नैकस्थानवासी" इति । अज्ञक्तौ पुनर्मासचतुष्टयमपि स्थातव्यम् । "न चिरमेकत्र वसेद्न्यत्र वर्षाकालाच्छ्रावणाद्यश्चत्वारो मासा वार्षिकाः" ॥ इति स्मरणात् इति विज्ञानेश्वरः
 - विष्णु:-" ग्रामांते निर्जने देशे नित्यकालनिकेतनः । पर्यटेत्कीटवद्भिमें वर्षास्वेकत्र संवसेत ॥

''वृद्धानामातुगणां च भिश्लणां संगवार्जिनामः। मामे वाऽथ पुरे वाऽपि वासो नैकत्र दुष्यति''॥ आश्वलायनः—

" एकरात्रं वसेद्वामे नगरे पंचरात्रकम् । नदीतीर्थेषु पुण्येषु संवसेद्वावहं यतिः " ॥ यमः—

" एकवासा अवासा वा एकदृष्टिरलोलुपः । आदूषयन्सतां मार्ग ध्यानसक्तो महीं चरेत् ॥ ् " जलेजीवा स्थलेजीवा आकाशेजीवमालिनि । जीवमालाकुले लोके वर्षा त्वेकत्र संवसेत् " ॥ अत्रिः—

" शुचौ देशे तथा भिश्चः स्वधर्ममनुपालयन् । पर्यटेत सदा योगी वीक्षयन्वसुधातलम् ॥ " न रात्रौ न च मध्यान्हे संध्ययोर्नेव पर्यटेत् । न शून्ये न च दुर्गे वा प्राणबाधाकरे न च ॥ " यत्र प्रभुजीगन्नाथस्तत्र योगी वसेत्सदा । भिक्षार्थं प्रविशेद्धामं वासार्थं वा दिनत्रयम् ॥

" एकरात्रं वसेद्वामे पत्तने तु दिनत्रयम् । पुरे दिनद्दयं भिक्षुनंगरे पंचरात्रकम् ॥

" वर्षास्वेकत्र तिष्ठेत स्थाने पुण्ये जलावृते । आत्मवत्सर्वभूतानि पश्यन्भिश्चश्रदेनमहीम्॥

" अंधवत्कुब्जवच्चैव बिधरोन्मत्तमूकवत् ॥

" नामगोत्रादि चरणं देशं वासं श्रुतं कुरुम् । वयोवृत्तं वहं शीहं ख्यापयन्न वसे बितः"॥ अरुणी श्रुति:— "वर्षासु ध्रुवशीहोऽष्टसु मासेषु एकाकी यतिश्चरेह्वावेवाचरेत्" इति ॥ ५५ गौतमः (२१०-१२; २०)—

" अनिचयो भिक्षुरूर्ध्वरेता धुवशीलो वर्षासु" इति "नद्दितीयामपर्तौ रात्रिं मामे वसेत्" इति । वर्षासु वर्षतोध्रवशीलः स्यान देशांतरं गच्छेत् पर्नी तद्वर्जियत्वा ऋत्वंतरेषु यत्र मामे एकरात्रि-मुषितं न तत्र द्वितीयां रात्रिं वसेत्प्रतिद्विनं ग्रामाद्वामं गच्छेदित्यर्थः । स एव- (२१९७-२४) " कौपिनाच्छादनार्थं वासो बिभुयात् । प्रहिणमेके निर्णिज्य नाविष्रयुक्तमौषधि । नस्पर्तानामङ्ग- २० मुपाददीत वर्जयेत् बीजवधं समा भूतेषु हिंसानुग्रहयोरनारंभी " इति । प्रहिणं जीर्णतया अन्यै-स्त्यक्तम् निर्णिज्य प्रक्षाल्य बिभृयात् । कुतश्चित् न कौपीनाच्छादनार्थं प्रतिगृह्येति एके मन्यंते। औषाधिवनस्पतीनामंगफलपत्रायप्रवृत्तं ततः अप्रच्युतं न गृह्णीयात् । स्वयं जीर्णं त गृह्णीया-द्वीजानि वीह्यादीनि तेषां वयं मुसलादिना अवधातं वर्जयन ङुर्यान कारयेच हिंसायामनुमहे च भूतेषु समः यो हिनस्ति योऽनुगृह्णाति तत्र समो निर्विकारः अनारंभी विंचिद्यारंभं २५ कुर्यात् ऐहल्लोकिकं पारलोकिकम् चेत्यर्थः । आपस्तंबोऽपि (२।२१।१०-१७)-" अनिम-रनिकेतस्याज्ञर्मा अज्ञरणो मुनिः स्वाध्याय एवोतसूजमानोवाचं यापे प्राणवृत्तिं शतिलभ्यानीहो-नामुत्रश्चरेत्तस्य मुक्तमाच्छाद्नं विहितं सर्वतः परिमोक्षमंके सत्यानृते सुखदुःखे वेदानिमं लोकममुं च परित्यज्यात्मनात्मानमन्बिछेद्बु द्वेश्लेमप्रापणम् तच्छास्त्रैविंप्रतिषिद्धम् बुद्धे चेत्क्षेमप्रापणमिहैव न दुः समुपलभेत एतेन परं व्याख्यातम् " इति ॥ अनिशः अग्निकार्यारहित ३० इत्यर्थः । अनिकेतः स्म भूतवासस्थानरहितः । शर्मजनयसुसं तदस्य नःस्तीत्यशर्मा । कंचिद्पि शरणत्वेन न प्रपन्नः न वा कस्यचिच्छरणभूत इत्यशरणः। स्वाध्यायः प्रणबोपनिषज्जपः तत्रैव वार्च विस् जेदन्यत्र मौनवतः । स्यायावता प्राणा धियंते सा प्राणवृत्तिः । अनीहो ना मुत्रः ऐहिकामुध्मिककर्भरहितः मुक्त अयोग्यतया परैरपि त्यक्तकामाच्छाद्नं कौर्पाना-

संत्यावृते इति । सत्यं वक्तव्यमिति यो नियमः तं परित्यज्य तथा तत्र वक्तव्यमवृतं तद्धि सत्यात् विशिष्यते इत्यादिके विषये अवृतं वक्तव्यमिति यो नियमः तं च परित्यज्य इमं लोकं ऐहलौकिकं कर्म अमुं च पारलौकिकं च परित्यज्यात्मानमन्विच्छेत्। ज्ञानबलाबलं बलोनानाहत्य विधिनिषेधानां स्वैरचारिणामेषां कित्राण तत्र हि बुद्धेक्षेमप्रापणम् " इति आत्मि प् बुद्धे अवगते सित तदेव ज्ञानं सर्वमशुमं प्रक्षाल्य क्षेमं प्रापयित तदेतत् निराकरोति तच्छान्ने विपतिषद्धं " क्रुध्यन्त न प्रतिकुध्येदाकृष्टः कुशलं वदेत् " इत्यादिभिर्यतेरेव कर्तव्यकर्मप्रतिपादनपर्रमन्वादिवचनैविकद्भम् । बुद्धे क्षेमप्रापणम् इत्येतच्च प्रत्यक्षविकद्धिमत्याह । बुद्धे वेदिति इहैव शरीरे दुःसं नोपालभेत ज्ञानी तच्चैतद्स्ति निह ज्ञानिनां मूर्घाभिषिकं मन्योक्षद्धः समेव सोद्धं प्रभवित । तस्माच्छ्वणमनननिदिध्यानासनैः साक्षात्कृतात्मास्वरूपः स्वाश्रमं प्रकृत्यः विहितानि कर्माणि कुर्वन् प्रतिषिद्धेषु कटाक्षमप्यनिक्षिपन्यतिर्मुच्येत इति हरदन्तेन व्याख्यातम् । याज्ञवल्कयः (प्रा. ६५–६६)—

"नाश्रमः कारणं धर्मे कियमाणो भवेद्धि सः। अतो यदातमनोऽपथ्यं परेषां न तदाचरेत्॥
"सत्यमस्तेयमकोधो हीः शौचं धीर्धृतिर्दमः। संयतेद्दियता विद्या धर्मः सर्व उदाहृतः॥
"अवेक्ष्या गर्भवासाश्र्व कर्मजा गतयस्तथा। आधयो व्याधयः क्केशा जरा रूपविपर्ययः॥ (६३)
"भवो जातिसहस्रेषु प्रियाप्रियविपर्ययः।ध्यानयोगेन संपश्येत्सूक्ष्म आत्मात्मनि स्थितः॥ (६४)
"संनिरुध्येद्रियग्रामं रागद्वेषौ प्रहाय च। भयं हित्वा च भूतानाममृती भवती द्विजः"॥(६१) इति।
आरुण्युपनिषदि—" ब्रह्मचर्यमहिंसा चापरिग्रहं च सत्यं च यत्नेन हि रक्षेत " इति।
कामकोधलोभमोहदंभदर्पासुयाममताहंकारानृतादीनिष त्यजदिति च। जाबालिः—
"न भाषेत स्त्रियं कांचित्पूर्वदृष्टां न च स्मरेत्। कथां च वर्जयेत्तासां न पश्य लिखितामषि"॥
२० विष्णुपुराणे (२।९।२५-२८)

" पुत्रद्रव्यकलत्रेषु त्यक्तस्तेहो नराधिष । चतुर्थमाश्रमं स्थानं गच्छेन्निर्धूतमत्सरः ॥
" त्रैवर्गिकांस्त्यजेत्सर्वानारम्भानवनीषते । मित्रादिषु समो मैत्रः समस्तेष्वेव जंतुषु ॥
"जरायुजांडजादीनां वाङ्मनःकायकर्माभिः । युक्तः कुर्वीत न द्रोहं सर्वसंगं च वर्जयेत् ॥
"एकरात्रस्थितिर्ग्रामे पंचरात्रस्थितिः पुरे । तथा तिष्ठेयथा प्रीतिर्द्वेषो वा नास्य जायते ॥
" कामं क्रोधं तथा दर्ष लोभमोहाद्यथ्य ये । तांस्तु द्रोषान्पार्त्यिज्य परिवाण्णिर्ममो भवेत् ॥
"मांसासुक्पूयविण्मूत्रस्नायुमज्जास्थिसंहतौ । देहे चेत्प्रीतिमान्मूढो नरके भविता हि सः"॥
व्यासः—

"रागांधों हि जनः सर्वो न पश्यति हिताहितम्। रागं तस्मान्न कुर्वीत यदिच्छेदात्मनो हितम्॥ "अपकारिणि कोपश्चेत्कोपे कोपः कथं न ते। धर्मार्थकाममोक्षाणां प्रसद्ध परिपंथिनीम् । "क्षमार्तीर्थं तपस्तीर्थं तीर्थामिंदियनिग्रहः। सर्वभूतद्यातीर्थं ध्यानं तीर्थमनुत्तम्। "एतानि पंच तीर्थानि सप्तषष्ठानि सर्वदा। देहे तिष्ठंति सर्वत्र तेषु स्नानं समाचरेत्। भगवद्गीतास्त (६।२४–२६)

" संकल्पप्रभवान्कामांस्त्यवत्या सर्वानशेषतः। मनसैवेंद्रियमामं विनियम्य समं ततः। " शनैः शनैरुपरमेद्रबुध्या धृतिगृहीतया। आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिद्पि चिंतयेत्॥

"वृत्तिहीनं मनः कृत्वा क्षेत्रज्ञं परमात्मिन । एकीकृत्य विमुच्येत योगोऽयं मुख्य उच्यते" अत्रिः—

"स्नानं त्रिषवणं पात्रनियमाः स्युस्त्रिदंिडनाम्। नेतत्परमहंसानां युक्तानामात्मदर्शिनाम् ॥ "मौनं योगासनं योगस्तितिक्षैकांतशीळता। निस्पृहत्त्वं समत्वं च सप्तेतान्येकदंिडनाम्"॥

व्यासः---

"गुरुमूलाः कियाः सर्वा भुक्तिमुक्तिफलपदाः। तस्मात् सेव्यो गुरुनित्यं मुक्तवर्थं सुसमाहितैः। "न कुर्यान्नियमारंभमाने मनिवेद्यवंकं गुरुम्। छायाभूतोऽपरित्यागी नित्यमेव वसेत् गुरौ॥ "श्रद्धया परया युक्तः सदा द्दिशसंध्ययोः। दंडप्रणामान्कुर्वीत देवतागुरुसंनिधौ''॥ मन्वाद्यका ब्रह्मचारीधर्मा गुरुशुश्रुषादयो यतिभिः कर्तव्याः।

"ब्रह्मचारिणो ये धर्मा गुरुशुश्रूषणाद्यः । तेऽपि सर्वे यतीनां स्युः " इति ॥ बह्वचपरिशिष्ट अतिदेशात् । ते च धर्माः ब्रह्मचर्यप्रकरणेऽभिहिताः । शंखः— "पर्यटनशीलः स्यादात्मज्ञानार्थे तद्वाप्योर्धमेकस्थानरतिस्तद्भ्यासपरो नैकत्र देशे मूत्रपुरीपाविति "॥ विष्णुः—

" वृद्धानाम।तुरणां च भिक्षूणां संगवार्जिनाम् । यामे वाऽथ पुरे वाऽपि वासो नेकत्र दुष्यित " ॥ परमहंसोपनिषदि—" सौवणीदीनां न परिग्रहेयस्माद्भिश्चहिर्णयं रसेन दृष्टं चेत् स बह्महा १५ भवेत् । यस्माद्भिश्चहिरण्यं रसेन स्पृष्टं चेत्स पौल्कसो भवेत् । यस्माद्भिश्चहिरण्यं रसेन याद्यं चेत्स आत्महा भवेतस्माद्भिश्चहिरण्यं रसेन दृष्टं च त याद्यं च सर्वे कामा मनोगता व्यावर्तते । दुःखेनोद्भिगः सुखे निस्पृहस्त्यागो रागे सर्वत्र शुभाशुभयोरनिमस्नेहो न देष्टि न मोदं च सर्वे षामिद्भियाणां गतिरुपरमते य आत्मन्येव वा स्थीयते यत्पूर्णानंदैक्वोधस्तद्भक्षाहमस्तीति कृत-कृत्यो भवित इति । अमृत्विंदूपनिषदि— २०

" मनो हि द्विविधं प्रोक्तं शुद्धं चाशुद्धमेव च । अशुद्धं कामसंकल्पं शुद्धं कामविवार्जितम् ॥ मन एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः । बंधाय विषयासक्तं मुक्त्ये निर्विषयं स्पृतम् " ॥ इति । व्यासः—

" ग्रामांते वृक्षमूळे वा वने देवाळयेऽपि वा । नद्यास्तीरे पुण्यदेशे अग्निहोत्रगृहेऽपि वा ॥ "सुशुभे वि नने देशे वसेज्जंतुविवर्जिते " ॥ अथ दिगम्बरळक्षणम् । आचार्यमाह स एव—

"न तस्य विद्यते कार्य न लिंगं वा विपश्चितः । निर्ममो निर्भयः शांतो निर्द्धदः पर्णभोजनः ॥ "नीविकौपीनवासाः स्यान्नग्नो वा ध्यानतत्परः । एवं ज्ञानपरो योगी ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ "लिंगे सत्यिप सल्वास्मिन्ज्ञानमेव हि कारणम् । न मोक्षायेह भूतानां लिंगग्रामो निरर्थकः ॥ "तस्माद्षिंगो धर्मज्ञो ब्रह्मव्यतमनुव्रतः । गूटधर्माश्रितो विद्वानज्ञातचरितं चरेत् ॥ "संदिग्धः सर्वभूतानां वर्णाश्रमविवर्जितः । अध्वज्जडवच्चापि मूकवच्च महीं चरेत् ॥ "तं दृष्ट्वा शांतमनसं स्पृह्वयंति दिवौकसः । लिंगाभावानु कैवल्यमिति ब्रह्मानुशासनम् "॥ कात्यायनः— "अव्यक्तलिंगा अव्यक्ताचारा अनुन्मत्ता उन्मत्तवदाचरंतः शिखायज्ञोपवीत- व्रिदंडकमंडलुक्यालानां च त्यागिनः शून्यागारा देवगृहवासिनो न तेषां धर्मो नाधर्मी न

सत्यं नापि चानृतम् । सर्वेसहाः सर्वसमाः समलोष्ठाश्मकांचनाः । उपपत्रमात्राहाराश्चातर्वणर्यः अप

```
ट्यासः —
```

- " अयाचितं यथालामं भोजनाच्छादनं भवेत् । परेच्छया च दिग्वासाः स्नानं कुर्यात्परेच्छया ॥ "स्वमेऽपि योगयुक्तः स्याज्जामतीव विशेषतः। ईदृक्चेष्टः स्मृतः श्रेष्ठो वरिष्ठो ब्रह्मवादिनाम्॥
- "येनकेनिवदाच्छन्नो येनकेनिवदाशितः। यत्रकचनशायी स्यातं देवा बाह्मणं विदुः "॥
- ५ याज्ञवल्क्यः (आचारे ८)— " अयं तु परमो धर्मो यद्योगेनात्मद्र्शनम् " इति । भागवते—
 - " स लिंगानाश्रमांस्त्यक्त्वा चरेद्विधिगोचरः । बुधो बालक्वत्कीडेत् कुशलो जडवच्चरेत् ॥
 - '' वदेदुन्मत्तविद्धान् गोचर्या नैगमश्चरेत् । यद्यच्छये।पपन्नान्नमद्याच्छ्रेष्ठमुतापरम् ॥
 - " तथासनस्तथाशय्यां यथा प्राप्तं भजेन्मुनिः । शौचमाचमनं स्नानं न तु चोदनया चरेत् ॥
 - " अन्यांश्च नियमान्ज्ञात्वा यथाह् लीलयेश्वरः " ॥ वासिष्ठे—
 - " धर्माधर्मी सुखं दुःखं तथा मरणजन्मनी । धिया येनेति संत्यक्तं महात्यागी स उच्यते ॥
 - " सर्वेच्छाः सकलां शंकाः सर्वेहाः सर्वेनिश्चयाः । धिया येन परित्यका महात्यागी स उच्यते॥
 - " यावती हृइयक्लना सक्लेयं विलोक्यते । सा येन सुष्ठु संत्यक्ता महात्यागी स उच्यते ॥
 - "देहेऽहमिति या बुद्धिः सा संसारनिबंधिनी । न कदाचिदियं बुद्धिरादेयाऽत्र मुमुश्चणा ॥
- १५ " पदार्थमात्रतानिष्ठा सा संसारनिबंधिनी । न किंचिन्मात्रचिन्म त्रक्षपे।ऽस्मि गगनादणुः ॥
 - " इति या शाश्वती बुद्धिः सा संसारविमोचिनी "॥ मनुः---
 - " शास्त्रसज्जनसंपंकैः प्रज्ञामादौ प्रवर्द्धयेत् । प्रथमा भूमिकैवोक्ता योगस्य न च योगिनः ॥
 - " विचारणा दितीया स्यान्तीया संगनामिका । विठासिनी चतुर्थी स्यादासना विठयात्मिका ॥
 - " विशुद्धचिनमय।नंदरूपा भवति पंचमी । अर्धसुप्तप्रचुद्धाभो जीवनमुक्तोऽत्र तिष्ठति ॥
- 🖚 " असंवेदनरूपा च षष्ठी भवति भूमिका । आनंदैकघनाकारा सुषुतिसहरी। स्थितिः ॥
 - " तुर्यावस्थोपशांता च मुक्तिरेव हि केवलम् । समता स्वस्थता सौम्या सप्तमी भूमिका भवेत् ॥
 - " तुर्यातीता तु याऽवस्था परा निर्वाणरूपिणी । सप्तमी सा परिव्रोक्ता विषयत्यागजीविता ॥
 - " अंत:प्रत्याहृतिवशाच्चैत्यं चेति विभावितम् । मुक्त एव न संदेहो महासमतया तया ॥
 - " यद्भोगसुखदु:खांशैरपरामृष्टपूर्णधी: । आत्मारामो नरस्तिष्ठेत्तनमुक्तत्वमिहोदितम् ॥
- २५ " भावनां सर्वभावेभ्यः समुत्सुज्य समुत्थितः । शशांकशीतलः पूर्णो भाति भासेव भास्करः ॥
 - " कियमाणं कृतं कर्म कुलश्रीदेहशल्म ैः। ज्ञानानिल समुद्भूता प्रोड्डीय कापि गच्छिति॥
 - " सर्वेंव हि कला जंतोरनभ्यासेन नश्यित । इयं ज्ञानकला त्वतः सक्रजाता विवर्धते ॥
 - '' वृद्धिमेति बलादेव सुक्षेत्रव्युप्तशालिवत् । यावद्दिषयभोगाशा जीवाख्या तावदात्मनः ॥
 - " अविवेकेन संपन्ना साऽप्याशाऽत्र न तु स्यतः । विवेकवशतो याता क्षयमाशा यदा तदा ॥
- 🦫 " आत्मा जीवत्वमुत्सृज्य ब्रह्मतामेत्य नाम यः । चिन्मात्रत्वं प्रयातस्य तीर्णमृत्योरचेतसः ॥
 - " यो भवेत्परमानंदः केनासावुपमीयते ॥
 - " प्रशांतशास्त्रार्थविचारचापठों निवृत्तनानारसकाव्यकौतुकः ॥
 - " निरस्तनिःशेषविकल्पविष्ठवः समः सुखं तिष्ठति शाश्वतात्मकः ॥
- " वर्णधर्माश्रमाचारशास्त्रयंत्रेण बोधितः । निर्गच्छाति जगज्जालात्पंजरादिव केसरी ॥ ३५ " वाचामतीतविषयो विषय(शामयोज्झिताः । कामभ्युपगतः शोभां शरदीव नभस्थलाम् ॥

- " गंभीरश्च प्रसन्नश्च गिराविव महाहृदः। परानंद्रसात् स्तब्घो रमते स्वात्मनात्मानि॥
- " सर्वकर्मफलत्यागी नित्यतृप्ती निराश्रयः। न पुण्येन न पापेन नेतरेण विलिप्यते॥
- " स्फटिकं प्रतिविवेन यथा नायाति रंजनम् । तज्ज्ञः कर्मफलेनांतस्तथा नायाति रंजनम् ॥
 - " विहरन् जनतावृदे देहकर्ता न पूजनैः। खेदाल्हादौ न जानाति प्रतिविंबगतैरिव"॥ इति।

अथ ज्ञानस्य मोक्षहेतुत्वम्--

- " तत्वमस्यादिवाक्यार्थं यज्जीवपरमात्मनोः । तदात्मविषयज्ञानं तादिदं मुक्तिसाधनम्" ॥ ज्ञानानमोक्ष इत्यत्र तैत्तिर्यक्श्रुतिः (आरण्यके ब्रह्मवल्याम्) । " ब्रह्मविदाप्नोति परम् । तदेषाभ्यका । ब्रह्मणा विपश्चितेति " । कठवळ्याम्
 - " अहारीरं हारीरेष्ट्रवनवस्थेष्ट्रवस्थितम्। महांतं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न होचिति ॥
 - " नाविरतो दुश्चरितान्नाशांतो नासमाहितः । नाशांतमानसो वापि प्रज्ञानेनैवमाप्नुयात् ॥ १०
 - " एके बहूनां यो विद्धाति कामन् तमात्मस्यं येनुपश्यंति धीराः॥
 - " तेषां शांतिः शाश्वती नेतरेषाम्" ।

मुडकोपनिषदि-

- " तमेवै इं जानथात्मानमन्या वाचो विमुंचथ । अमृतस्यैषसेतुरिति" ॥
- " भिद्यते हृद्यग्रंथि। १ च्छियन्ते सर्वसंश्याः । क्षीयंते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ॥ १५
- " यथा नद्यः स्यंदमानाः समुद्रे संगच्छते नामरूपे विहाय।
- " तया विद्वानामरूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपौति द्विव्यम् ॥
- " स यो ह बै तत् परं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति" इति ।

अमृतविंदूपनिषदि—

- " तदेव निष्फुछं ब्रह्म निर्विकारं निरंजनम् । तद्वझाहमिति ज्ञात्वा ब्रह्म संपद्यते ध्रुवम्" २• कैवल्यश्रुतौ—–
 - " उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं त्रिलोचनं नीलकंठं प्रशांतम् ॥
 - " ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भूतयोनिं समस्तसाक्षी तमसः परस्तात् ॥
- " सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि । संपर्यन्ब्रह्म परमं याति नान्येन हेतुना "॥ स्वास्त्रोपनिषदि—
- " शांतो दांत उपरतास्तितिश्चः समाहितो भूत्वा आत्मन्येवात्मानं पश्यति स सर्वस्यात्मा भवति"॥ श्वत्यंतरेऽपि—–
 - " आत्मानं चेद्विजानीयादयमस्मीति पूरुषः। किमिच्छन्कस्य कामाय शरीरमनुसंज्वरेत् ॥ .
- " अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम् तथाऽरसं नित्यमगंधवच यत् ॥ "अनाचनंतं महतः परं ध्रुवं निचाय्य तं मृत्यमुखात्प्रमुच्यते । ज्ञानाग्निः शुभाशुभे दहति" इति च । ३० मनुरिप (६।७४)—
 - " सम्यग्दर्शनसंपन्नः कर्मभिर्न निबध्यते । दर्शनेन विहीनस्तु संसारं प्रतिपद्यते ॥
- "बीजान्यग्न्युपद्ग्धानि न रोहंति यथा पुनः । ज्ञानद्ग्धैस्तथा क्रुशैर्नात्मा संबध्यते तथा"॥

"यथैघांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन । ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा"॥ अथ शौचविधिः । बह्वचपरिशिष्टे—

" अंतर्धाय तृणेर्भूमिं शिरः प्रावृत्य वाससा। वाचं नियम्य यत्नेन निष्ठीवोच्छ्वासवर्जितः॥ " कुर्यान्मूत्रपुरीषे तु शुचौ देशे समाहितः॥

५ " उमे मूत्रपुरीषे तु दिवा कुर्यादुदङ्मुखः । रात्रौ तु दक्षिणे कुर्यादुमे संध्येऽथ वा दिवा ॥ " शतहस्तं परित्यज्य मूत्रं कुर्याज्जलाशयात् । शतद्वयं पुरीषे तु तीर्थे चैव चतुर्गुणम् " ॥ यमः—" उमे मूत्रपुरीषे तु पूर्वं गृह्णीत मृत्तिकाम् । पश्चाहृह्णाति यो विष्रः सचैलो जलमाविशेत् ॥ " तीर्थे शौचं न कुर्वीत कुर्वीतो दृतवारिणाम् "॥

पैठीनसिः—" अनुदकमूत्रपुरीषकरणे सचैलस्नानम् " इति ।

१० शातातपः—" शुचिदेशातु संग्राह्या मृत्तिकाऽश्मादिवर्जिता"॥ इति

" अपकृष्य च विष्मूत्रं काष्टलोष्ठतृणादिना । उद्स्तवासा उत्तिष्ठेत् दृढविधृतमेहनः " ॥ **याज्ञवल्क्यः** (आचारे—९)——

" गृहीतिशिश्वश्चोत्थाय मृद्भिरभ्युद्धृतैर्जेहैः । गंधलेपक्षयकरं शौचं कुर्यादतंद्भितः "॥ जलपात्राभावे द्यासः—

१५ " अरातिमात्रं जलं त्यक्ता कुर्याच्छाँचमनुद्धृतैः । पश्चात्तु शोचयेत्तीरमन्यथा त्वशुचिभेवेत्" ॥ रातिः अरातिः । शातातपः—

'' एका हिंगे करे तिस्रः सब्ये द्वे हस्तयो**र्द्योः । मूत्रशौचं समाख्यातं शुक्के मूत्रवदिष्यते ॥**

" पंचापाने दशैकस्मिन्नुभयोः सप्त मृत्तिकाः। पुरीषशौचनिर्दिष्टा देयास्तिस्रः पदद्वये ॥

" दातव्यमुद्दक्षं तावन्मृद्भावो यथा भवेत् । एतच्छौचं गृहस्थस्य द्विगुणं ब्रह्मचारिणः ॥

२० " वानप्रस्थस्य त्रिगुणं यतीनां च चतुर्गुणं । मूत्रशाचं पुरस्कृत्य बृहच्छीचं समाचरेत्॥

" पश्चाच्च पाइशोंचं तु शोचविद्धिरुदाहृतम् । न्यूनाधिकं न कर्तव्यं शोचं शुद्धिमभीप्सिता"॥ ' अधिकं नेव दुष्यतीति ' न्यायानन्यूनं नकर्तव्यमित्यभिप्रायः॥

दक्षः---" यद्वि विहितं शौचं तद्धं निशि कीर्तितम् । तद्धंमातुरे प्रोक्तमातुरस्यार्धमध्विन "॥ देवलः--

२५ " धर्म्य वै दक्षिणं हस्तमधःशौचेन योजयेत् । तथैव वामहस्तेन नाभेक्षध्वैन शोधयेत्" ॥ इति । " किश्मोंचं ततः कुर्यान्मूत्रादिस्पर्शशंकया । धृत्वा च धौतं कौपीनं गंढूषान्द्वाद्शाचरेत् ॥ " आचम्य प्रयतो भूत्वा प्राणायामान्षडाचरेत् "॥

अथ द्न्तधावनम् । वृद्धशातातपः--

" मुखे पर्युषिते नित्यं भवत्यप्रयतो नरः । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कुर्याद्वै दंतधावनम् " ॥ ३० विष्णुः-—

" कंटकीक्षीरवृक्षोत्थं द्वादशांगुलमवणम् । कानिष्ठिकायवत् स्थूलं कूर्चीयं समपर्वकम् ॥ " सत्वचं दंतकाष्ठं स्यात्तदयेण प्रधावयेत् । प्राङ्मुखश्चोपविष्टस्तु भक्षयेद्वाग्यतो नरः ॥

" प्रक्षाल्य च शुचौ देशे दंतधावनमुत्सृजेत् ॥

" अलाभे दंतकाष्ठस्य प्रतिषिद्धदिने तथा । अपां द्वादशगंदूषैर्मुससुद्धिर्भविष्यति"॥

```
" प्रातमिध्यान्हयोः स्नानं वानप्रस्थगृहस्थयोः । यतीनां त्रिषवणस्नानमेकं तु ब्रह्मचारिणः "॥ स्कांदे—
```

" अयमेव परो धर्मस्त्विद्मेव परं तपः । इद्मेव परं तीर्थं विष्णुपादां बु यः पिबेत् ॥

'' स चैवावभृथस्नातः स च गंगाजलाष्ट्रतः । विष्णुपादोद्कं कृत्वा रांसे यः स्नाति मानवः ॥

" यतिपादोदकं राजन्हिन्ति पापं पुराक्कतम् । सप्तजन्मार्जितं सम्यक् श्रद्धया शिरसा धृतम् ॥ ५ " गुरूपदिष्टमार्गेण स्नानं कुर्योद्यथाविधि "॥

अत्र संप्रदायविदः दंडं दक्षिणकरे गृहीत्वा वामांसे वस्त्रं कृत्वा गुरोर्दक्षिणभागे स्थित्वा गुरुमभिवंद्य जलाशयं गत्वा शुचिदेशे कमंडलुमुपसंस्थाप्य विष्णुं जले स्मरेत्

''ततो दंडस्य मूलेन तथाऽग्रेण स्पृशेज्जलम्। कुर्याज्जलस्य च दिशां देवानां वंदनं कमात्॥

" ततो गुरूणां ज्येष्ठानां यतीनां वंदनं तथा। ततः संस्थापयेद्दंडमूर्ध्वाग्रं ज्रहमध्यतः॥ १०

" अथवा शुचिवस्त्रादौ स्थापयेत्रागुद्ङ्मुसम् । ततो मृदं समादाय प्रक्षाल्य विभजेत् त्रिधा ॥

" तत एकेन भागेन पाद्शौचं समाचरेत्। आचम्यान्येन भागेन कटिशौचं समाचरेत्॥

" जलांतस्तिमृभिर्मृद्धिः कटिं प्रक्षालयेत्ततः । कौपीनं तिमृभिर्मृद्धिः पुटं प्रत्येकमेव तु ॥

" आचम्य विधिना पश्चात्प्राणायामत्रयं चरेत् । ततस्तु क्षालयेत्सम्यक् मृज्जलाभ्यां कमंडलुम् ॥

" वामहस्तस्य पृष्ठे तु संस्थाप्य स्नानमृत्तिकाम् । दंडं कंमडळुं चैव स्पृष्ट्याऽऽचामेद्यथाविधि ॥ 🤏

" दक्षिणोरौ स्नानमृदं संस्थाप्य विभजेत्त्रिधा । चुलुक्रे जलमादाय तद्वामेन पिधाय च॥ " प्रणवेन द्विषड्वारमभिमंज्य च तेन ताम् । संप्रोक्ष्य प्रणवेनैव द्विषट्केनाभिमंत्रयेत्॥

'' ततः प्रथमभागात् गृहीत्वा स्वल्पिका मृद्म । करावालिप्य सूर्याय प्रदर्श्य क्षालयेत्करो ॥

" पुनः किंचित्समादाय हस्तयोरुपलिप्य च । सूर्याय च प्रदश्योधर्व मुखं कक्षं विलेपयेत् ॥

" जलेनाधोमुखं कक्षे समालिप्य जलं स्पृशेत्। एवं वारत्रयं कुर्यात् कक्षयोरुपलेपनम् ॥ २ ०

" द्वितीयां किंचिदादाय हस्तयोरुपिळिप्य च । सूर्याय तु दर्शियत्वा िळपंत्काळभुजो हृदि॥

'' जलं स्पृशेत्ततश्चैव किंचिदादाय मृतिकाम्। ह्रदमारभ्य चा नाभेरालिप्य सलिलं स्पृशेत्॥

" पुनश्चैवं समादाय पृष्ठमारभ्य लेपयेत् । आ पादात्तु जलं स्पृष्ट्वा दक्षिणेन करेण तु ॥

" तृतीयं भागमादाय वामेनोरं विशोधयेत् । 'यस्य प्रसादात् ' इत्यादिमंञ्येण त्रिर्गुरं नमेत् ॥

" प्रवाहाभिमुखो नद्यामन्यत्र रविसंमुखः। त्रिर्निमज्ज मृदं स्कंधे संस्थाप्य प्रागुदङ्मुखः॥ २५

" तथैव द्विस्त्रिराचम्य प्राणान प्रोक्ष्याभिमंत्र्य च । मृत्तिकां पूर्वदत्तां च स्कंधादादाय हस्तयोः॥

" उपिकष्य ललाटं च बाहुं हृद्यमेव च । एवं वारत्रयः कृत्वा गृहीत्वा शेषप्रतिकाम् ॥

" प्रणवेनाप आलोडच कुर्यात्षड्वारमञ्जनम् । द्विराचम्य त्रिराचम्य प्राणानष्टोत्तरं शतम् ॥

" जिपत्वा प्रणवं ब्रह्म चिंतयत् स्नानमाचरेत् । नाम्नां तु केशवादीनामेकैकं नाम संस्मरन् ॥

" मंङ्क्त्वा दादशवारं तु शिरोवदनबाहुषु । हृद्येषु निर्षिचेतु तिस्रः शंखाख्यमुद्र्या ॥ ३०

" गुरुपादोदकं सिंचेच्छिर आदौ तु पूर्ववत् । ततस्तु त्रिः पिबेदेवं विष्णोः पादोदकेन च ॥

" ततः प्रक्षाल्य कौपीनं निपीड्य परिधाय च । ऊरू प्रक्षाल्य मृत्तोयहैंस्तौ प्रक्षाल्येन्मृद्ा ॥

" एकपादं स्थले कृत्वा द्विराचम्य यथाविधि । प्राणायामत्रयं कृत्वा द्विषड्वाराभिमंत्रितैः ॥

२५

" जलै: संप्रोक्ष्य वस्त्रादिनांगवस्त्रेण मार्जयत् । कौपीनसहितं दोरमादौ बध्नीत वाग्यतः ॥ " कौपीनमंगवस्त्रं च जहैरासिच्य निक्षिपेत् । कौपीने मुज्जले क्षिप्त्वा पादौ प्रक्षालयेन्मृदा ॥ " तत आचम्य विधिवत्प्राणायामान्षडाचरेत् । अज्ञानकृतिहसादिप्रत्यवायनिवृत्तये ॥ " पुंड्रं धृत्वा ततः प्राणानायम्य न्यासपूर्वकम् । प्रणवार्थानुसंधानं पंचीकरणपूर्वकम् ॥ " प्रणवं तु जपेदष्टशतमष्टोत्तरं तु वा । सहस्रं वा लिखेदप्सु पद्ममष्टदलं तथा ॥ " संचिंत्य सगुणं विष्णुं तत्र पंचोपचारतः । संपूज्य तर्पयेत्तत्र नीरेणाष्टोत्तरं शतम् ॥ " ततो दक्षिणहस्तस्थं तोयं द्वादशवारतः। अभिमंत्र्य शिरः प्रोक्ष्य तथाऽन्यद्भिमंत्रितम्॥ " जलं पिबेदथाचम्य दोरं प्रक्षालयेन्मृदा । कर्णयोस्तच्च संस्थाप्य कौपीनं क्षालयेन्मृदा ॥ " आचम्य दंडमूले तु प्रणवेनाथ तर्पयेत् । द्विषड्वारं तथाऽगे तु तर्पयित्वा समुत्थितः ॥ " मूलाग्राभ्यां तु दंडस्य जलं स्पृष्टा गुरुं नमेत् । कुत्वाऽभिषेकं देवस्य ततो यायान्मठं प्रति ॥ " गुर्वादिवन्दनं कृत्वा दंडं नभिस धारयेत् । प्रक्षाल्य पादावाचम्य देवपूजां प्रकल्पयेत्॥ " गुरूपदिष्टमार्गेण न्यासध्यानादिपूर्वकम् " ॥ " स्वयं पतिततुलसीपत्रायेः स्वयमाहृतैः । पूजयेन्मोक्षदं विष्णुं ज्ञानदं च महेश्वरम् " ॥ विष्णुपूजाकमः। तथा च शौनकः--" ज्ञानं महेश्वरादि्च्छेन्मोक्षमिच्छेज्जनार्दनात् । प्रणम्य दंडवद्भूमौ नमस्कारेण चार्चयेत्"॥ 14 कात्यायनः—" त्रिकालमेककालं वा पूजयेत्पुरुषोत्तमम् " ॥ व्यासः---" अन्यानीतैश्च कुसुमैरर्चयेज्जगदीश्वरम् ॥ " पकं च तुरुसीपत्रं पुष्पं पर्युषितं च यत् । आनीय तत्प्रयत्नेन पूजयेज्जगदीश्वरम् ॥ "भावपुष्पैर्यजेद्योगी ब्राह्मैर्वा श्रद्धया शिवम् । विष्णोः पादोदकं जुष्टं नैवेद्यस्य च भक्षणम्॥ " निर्माल्यधारणं चैव महापातकनाशनम् ॥ २० " यः पूजयेद्धरिं चक्रे सालगामसमुद्भवे । राजसूयसहस्रेण तेनेष्टं प्रतिवासरम् ॥ "विना तीर्थेविंना दानैविंना यज्ञैविंना मतिम् । मुक्तिं याति नरोऽवर्यं सालग्रामारीलार्चनात्॥ " यजेदामरणं हिंगं विरक्तः परमेश्वरम् । अग्नौ कियावतामप्सु व्योम्नि सूर्ये मनीषिणम् ॥

" काष्टादिष्वेव मूर्खाणां हृदि लिंगेषु योगिनाम्। जपमालां गृहीत्वा तु प्रणवार्थमनुस्मरन्॥

" जपेद्वाद्शसाहस्रं प्रणवस्य प्रयत्नतः । सहस्रं श्रवणार्थी तु योगाभ्यासी शतं जपेत् ॥ " निर्विकल्पसमाधिस्थो न जपेत्किचिद्द्वयात् " ॥

वोधायनः -- " वृक्षमूलिको भवेत्संन्यासी " इति । वृक्षो वेदः । तस्य मूलं प्रणवः । प्रणवात्मको वेदः प्रणवं ध्यायन्ब्रह्मभूयाय कल्पते " इति । **व्यासः**—

''वेदो वृक्षस्तथा मूलं प्रणवो यस्य सोऽस्ति सः। वृक्षमूलो यतिः प्रोक्तस्त्यक्तवेदोऽपरिग्रहः॥ " अभ्यसेंत्सततं वेदं प्रणवास्यं सनातनम् । आध्यात्मिकं च सततं वेदांताभिहितं च यत्॥ 3 0 " यद्यनुत्पन्नविज्ञानो विरक्तः प्रीतिसंयुतः । यावज्जीवं जपेयुक्तः प्रणवं ब्रह्मणो वपुः "॥ मनुः (१२।९२)—" आत्मज्ञाने रामे च स्याद्वेदाभ्यासे च यत्नवान्"।

अत्र वेदाभ्यासः प्रणवाभ्यासः श्रूयते—

" आत्मानमराणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तराराणिम् । ध्याननिर्मननाभ्यासात्पाशं द्हति पंडितः ॥

ओमितिब्रह्म ओमितीद्र सर्वे । एतद्क्षरं परं ब्रह्म अस्य पादाश्चत्वारो वेदाः । चतुष्पादिद्मक्षरं परं ब्रह्म ।

- " सर्वे वेदा यत्पद्मामनंति तपांसि सर्वाणि च यद्वदंति ।
- " यदिच्छंतो ब्रह्मचर्यं चरंति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीमि "।
- " ओमित्येतदालंबनं श्रेष्ठमेतदालंबनं परम् । एतदालंबनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते॥
- " यस्तु द्वादशसाहस्रं नित्यं प्रणवमभ्यसेत् । तस्य द्वादशभिर्मासैः परं ब्रह्म प्रकाशते ॥
- " श्रवणान्मननाच्चैव निदिध्यासनतस्तथा । आराध्यं सर्वथा ब्रह्म पुरुषेण हितैषिणा ॥
- " ब्रह्मचर्यममानित्वमहिंसा सत्यमार्जवम् । वेदांतश्रवणं ध्यानं भिक्षोः कर्माणि नित्यशः॥
- " त्वंपदार्थविवेकाय संन्यासः सर्वकर्मणाम् । श्रुत्या विधीयते यस्मात्तत्त्यागी पतितो भवेत् "॥ संवर्तः—
- "योगाभ्यासपरो नित्यमात्मविद्यापरायणः। स ह्याश्रमैर्विजिज्ञास्यः समस्तैरेवमेव तु ॥ " द्रष्टव्यस्त्वथ मंतव्यः श्रोतव्यश्च द्विजातिभिः। श्रवणादिक्रिया तावत्कर्तःयेह प्रयत्नतः॥
- " यावद्यथोक्तविज्ञानमाविर्भवति भास्वरम् " इति । पुराणे—
- " दिने दिने तु वेदांतश्रवणाद्धिकसंयुतात् । गुरुशुश्रूषया लब्धात्क्वछ्राशीति फलं लभेत् ॥
- " वेदांतश्रवणादेव नश्यत्येवोपपातकम् । तथा पातकसंघाश्च नित्यं वेदांतसेवनात्" ॥ इति । १० व्यासः "काम एव मनुष्याणां विरोधो ब्रह्मबोधने ॥
- "तस्मात्कामं त्यजन् धीरो ज्ञानमाप्नोति मोक्षद्व। ज्ञानमुत्पचते पुंसां क्षयात्यापस्य कर्मणः"॥ इति। अथ भिक्षाचर्या । तत्र मनुः (६।५५-५७)—
 - " एककालं चरेद्भैक्षं न प्रसज्येत विस्तरे। भैभ्रप्रसक्तो भिभुर्हि विषयेऽतीव सञ्जति॥
- " विधूमें सन्नमुस्त व्यंगारे भुक्तवज्जने । वृते शरावसंपाते भिक्षां नित्यं यतिश्चरेत् ॥ २ " अलाभे न विषादी स्यात् लाभे चैव नहर्षयेत् । प्राणयात्रिक्रमात्रः स्यानमात्रासंगाद्दिनिर्गतः" ॥ उद्रपूरणावधिः मात्रा । तत्र संगो मात्रासंगः ततो निवृत्त इत्यर्थः । स एव (६।५८–६०)–
- " अभिपूजितलाभांश्च जुगुप्सेतैव सर्वशः । अभिपूजितलाभैस्तु यतिर्मुक्तोऽपि बध्यते " ॥ मुक्तः असक्तः । अभिपूजितलाभः आत्मने परैरति बहुमानपूर्वकं यद्दीयते तद्दभिपूजितं तस्य लाभः प्राप्तिः । तद्दभोज्यम् । तस्मिन्मुके किचद्दनिभ्यूजितग्रहणे वैमनस्यं स्यात् । अथवा अभि- २५ पूजिताः धनादिना प्रतीताः । तैर्द्तमिप् न भोकव्यम्—
 - " अल्पान्नाभ्यवहारेण रहस्थानासनेन च । ह्वीयमाणानि विषयैरिद्रयाणि निवर्तयेत् ॥
- "इंद्रियाणां निरोधेन रागद्देषक्षयेण च । अहिंसया च भूतानाममृतत्वाय कल्पते ॥ "न चोत्पातनिमित्ताभ्यां न नक्षत्रांगविद्यया। नानुशासनवादाभ्यां भिक्षां छिप्सेत किंचित्"॥(५०)

 उत्पातो भूकंपादिः । निमित्तं अधरस्पन्दादिः । नक्षत्राविद्या ज्योतिःशास्त्रम् । अंगविद्या ३०
 चिकित्सा । अनुशासनं शिष्यपरिग्रहः । वादस्तर्कः । स एव (६।५१)
 "न तापस्यैर्बाह्मणैर्वा वयोभिरपि वा श्वभिः। आकीर्ण भिश्चकैर्वाऽन्येरगारमुपसंत्रजेत्" ॥ इति ।
- " न तापस्यैर्ज्ञोह्मणैर्वा वयोभिरिप वा श्वभिः। आर्कीणै भिश्चकैर्वोऽन्यैरगारमुपसंत्रजेत्" ॥ इति । याज्ञवल्क्यः (प्रा. ५९)—

- " अप्रमत्तश्चरेद्धेक्षं सायान्हेऽनिभल्लक्षितः । रहितैर्भिश्चकैर्पामे यात्रामात्रमलोलुपः " ॥ अनिभलक्षितः ज्योतिःशास्त्रादिज्ञानेनाचिन्हितः । टयासः—
- " प्राणयात्रानिमित्तं च व्यंगारे भुक्तवर्जिते । काले प्रशस्तवर्णानां भिक्षार्थं पर्यटेद्गृहान् ॥ "भैक्षेण वर्तयेन्नित्यं नैकान्नादी वै कचित् ।
- ५ "यस्तु मोहेन वाऽऽलस्यादेकाञादी भवेद्यतिः। न तस्य निष्कृतिः काचित् धर्मशास्त्रेषु कुत्रचित्। " एकानं वर्जयेन्नित्यं कामं कोधं प्रतिग्रहम्॥
 - " सप्तागारं चरेद्धैक्षमलाभे तु पुनश्चरेत् । गोदोहमात्रं तिष्ठेतु कालं भिश्चरघोषुसः " ॥ हारीतः —
- "सायंकाले तु विप्राणां गृहाण्यभ्यवप्य तु । स्थित्यर्थमात्मनो नित्यं भिक्षाटनमथाचरेत् ''॥ १० **बोधायनः**—(ध. सू. २।१०।४२,४४,५०) " ब्राह्मणागां शालीनयायावराणामपवृत्ते वैश्वदेवे भिक्षां लिप्तेत । गोदोहमात्रमाकांक्षेदद्धिः संस्पृरयोषधवत्प्राश्रीयात् ।
 - " अयाचितमसंक्रतमुपपन्नं यदृ छया। आहारमात्रं भुंजीत केवळं प्राणयात्रिकम्"॥ (५२) इति । अथाप्युदाहरंति ।
- "अष्टौ ग्रासा मुनेर्भक्ष्याः षोडशारण्यवासिनः। द्वात्रिंशतं गृहस्थास्यापरिमितं ब्रह्मचारिणः ॥ १५ "मैक्षं वा सर्ववर्णेभ्य एकान्नं वा द्विजातिषु। अपि वा सर्ववर्णेभ्यो न चैकान्नं द्विजातिषु"॥ इति। स एव (५४)
 - " ऊर्ध्व नामेरघोनामेः परिधायैक्षमंत्रस् । द्वितीयमुत्तरं वासः पात्री दंडे च वाग्यतः ॥ " सन्येनादाय पात्रं तु त्रिदंडं दक्षिणे करे । योऽसो विष्णवाख्य आदित्यः पुरुषोत्तरवस्थितः ॥
- " सोयं नारायणो देव इति ध्यात्वा प्रणम्य तम् । ततो ग्रामं वजेन्मंदं युगामात्रीवलोककः॥ २० " ध्यायन्हरिं च तच्चित्त इमं मंत्रमुद्रीग्येत्॥
 - " विष्णुस्तिर्यगधोधी मे वैकुंठो विदिशं दिशब् । पातु मां सर्वतो रामो धन्वी चक्री च केशवः ॥ " प्राणयात्रिकमञं तु भिक्षेत विगतस्यृहः।गोदोहमात्रं तिष्ठेच्च वाग्यतोऽधोमुखस्तथा"॥ स्मृतिरने—
- "स्नात्वा ज्ञाचिः ज्ञाचौ देशे कृतज्यः समाहितः। भिक्षार्थं प्रविशेद्गामे यतिम्ळैंच्छकुळान्यपि॥ २५ " एकान्नं तु न भुंजीत वृहस्पतिसमोऽपि सन्। मेध्यं भैक्षं चरेन्नित्यं सायान्हे वाग्यतः ज्ञाचिः"॥ माधुकरभेदाः। उञ्चाः—
 - " माधृकरमसंक्रतं प्राक्षणीतमयाचितम् । तात्कालिकोपपन्नं च भैक्षं पंचविधं स्मृतम् ॥
 - " मनः संकल्परहितान्गृहान्त्रिः सप्त पंच वा । मधुवदाहरणं यतु माधुकरमिति स्मृतम् ॥
 - " शयनोत्थापनात्प्राग्यत् प्रार्थितं भक्तिसंयुतैः। तत्प्राक्ष्प्रणीतमित्याह भगवानुशना मुनिः॥
- ः "भिक्षाटनसमुधोगात्प्रक्तिनापि निमंत्रितम्। अयाचितं तु तद्भैक्ष्यं भोक्तव्यं मनुरब्रवीत्॥ " उपस्थाने च यत्प्रोक्तं भिक्षार्थं ब्राह्मणेन हि । तात्कालिकमिति ख्यातं तद्क्तव्यं मुमुक्षुणा॥
 - " सिद्धमन्नं भक्तजनैरानीतं यन्मठं प्रति । उपपन्नं तदित्याहुर्मुनयो मोक्षकाङ्क्षिणः " ॥
 - " भिक्षाः पत्रविधा ह्येताः सोमपानसमाः स्मृताः " । **पितामहः**—
 - " अयाचितमसंक्टतमुपपन्नं यद्दच्छयः। जोषयीत सदाभिज्यं ग्रासमागतमस्पृहः "॥

३५ ऋतुः-

"संप्रार्थितमुपस्थानाद्संक्लप्तमयाचितम् । तत्सदैकान्नमापद्याद्धैक्षान्माधूकराद्द्रम् ॥ " अयाचितं यथालामं भोजनाच्छाद्नं भवेत् । निमंत्रितोऽथवाऽश्रीयात्स्वगुणं न प्रकाशयेत्"॥ पराशरः—

"यश्चरेत्सर्ववर्णेषु भेक्ष्यमभ्यवहारकः।न स किंचिद्धपाश्नीयात् यावद्भेक्ष्यमिति स्थितिः"॥ काठकबाह्मणे—" चतुर्वर्णेषु भेक्ष्यचर्यं चरेत् पाणिपात्रेणाशनं कुर्यादौषधवतप्राश्नीयात्प्राणधार-णार्थं यथा मेदोवृद्धिनं जायते" इति ॥ मेत्रावरुणिश्चितिः—"मिक्षार्थं मामंप्रविशेदा सायं प्रद्-क्षिणेनाविकित्सन्सार्ववर्ण्यं भेक्षाचरणमिभशस्तपतितवर्जम् " इति । आरुणीश्चितिः—" यतयो १५ भिक्षार्थं मामं प्रविशांति पाणिपात्रमुद्ररपात्रं वा ओं हि ॐ हि ॐ हि एतदुपनिषदं विन्यसे-दिद्वान्य एवं वेद औषधवदशनमाचरेत्" इति ॥ पराशरः—

" ग्रामैकरात्रवासिनो नगरतीर्थावसयेयुः पंचरात्रवासिनं उद्रादिपात्रिण अभिशस्तपतित-वर्जं चातुर्वर्ण्यं भैक्ष्यं चरंतः आत्मत्वेनावतिष्ठंत " इति ॥ सर्ववर्णेषु भैक्षचरणमापद्विषयम् । यदाह बोधायनः—

" ब्राह्मणक्षत्रियविशां मेध्यानामन्नमाहरेत् । असंभवे तु पूर्वस्या आददीतोत्तरोत्तरम् ॥

" सर्वेषामप्यभावे तु भक्तद्वयमनइनता । भैक्षं शूद्राद्पि ग्राह्यं रक्ष्याः प्राणा विजानता ॥ विसिष्ठोऽपि (१०।२४) " ब्राह्मणकुले यहाभते तत् भुंजीत " इति । मैत्रावरुणीश्चितिः— " त्रिषु वर्णेष्वेकागारं भैक्ष्यमश्चीयान्माधूकरी वो " इति कलौ सर्ववर्णभैक्षाचरणिकेषः । आपदि सर्ववर्णेषु भैक्ष्यचरणमपि कलौ निषद्धम् । २५

"यतेस्तु सर्ववर्णेषु न भिक्षाचरणं कलौ " इति स्मरणात् ॥ गौतमः— " हिविः प्राज्ञ्य यथाऽऽचम्य निराहारो भवेद्गृही । प्राज्ञ्याचम्य तथा भिश्चर्निराहारो गृहे गृहे ॥ "पात्रमस्य भवेत्पाणिस्तेन नित्यं गृहानटेत् " ॥ मुंडकोपनिषदि—" पाणिपात्रमुद्रपात्र वा गेहे गेहे विशेत् कवलमात्रेण नापरं गृह्णीयात्पदे पदे मुंजन् गच्छेत्कुलान्कुलेषु सर्वाशी " इति । उद्रपात्रस्वरूपं दर्शितं यतिधर्मसमुच्चये

"आस्येन तु यदाहारं गोवन्मृगयते मुनिः" इति ॥ शौनकः— "पाणिपात्रं चरन्योगी नासकुद्भैक्षमाचरेत् । तिष्ठन् भुंजन् चरन्भुंजन्मध्ये नाचमनं तथा " ॥ गोमुखप्रतिकरपात्रवृत्येत्थं समाकान्तमनुपानहो । सर्वदोपानहो भिश्चर्न त्यजेरशको पात्रांतरेण भिक्षाचरणमाह विष्णुः—

- " संस्कृत्य प्रणवेनाथ भिक्षापात्रं यथाविधि । भास्कराभिमुखो भूत्वा संस्मरन्मनसा हरिम् ॥ " सब्येनादाय पात्रं तु दण्डं वै दक्षिणेन तु " ॥ कण्यः—
 - " नमस्कृत्य तथाऽऽदित्यं समाकामन्तुपानहौ । सर्वदौपानहौ भिश्चर्न त्यजेतु कदाचन॥ " उदपात्रं च भिक्षा च दुष्येद्दत उपानहौ "॥
- ५ बोधायनः—"भिक्षापात्रविशुध्यर्थमुपमुच्याप्युपानहों । ततो प्रामं वजेन्मंदं युगमात्रावलोककः"॥
 अत्रिः—" अनित्यं वै वृजेद्गेहं नित्यं गेहं विवर्जयेत् । अनावृते विशेद्वारि गेहे नैवावृते वजेत् ॥
 " न वीक्षेद्वाररंधेण भिक्षां लिप्सेत्कचियतिः । न कुर्याद्वे कचिद् घोषं न द्वारं ताडयेत्कचित् ॥
 " नैव सब्यापसन्येन भिक्षाकाले वजेद्रहान् । अनियातिक्रमे योगी प्राणायामशतं जपेत् ॥

" अदृष्टापतितं साधुं यतिर्यः परिवर्जयेत् । स तस्य बुक्कतं दत्वा दुष्कृतं प्रतिपद्यते ॥

- "तथैव च गृहस्थस्य निराशो भिक्षुको गतः । हुतं दत्तं तपोधीतं सर्वमादाय गच्छाति ॥ "असंस्कृता तु या कन्या उद्क्या चोदितातु या । तया दत्तं न गृह्णीयात्प्राण्यंगेनायसेन वा''॥ शौनकः—
 - "पीडियत्वा य आत्मानं भिक्षां चेत्संप्रयच्छिति । सा भिक्षा हिंसिता ज्ञेया नाद्वात्तादशीं यतिः"॥ अत्रिः—
- १५ " हितं मितं सदाऽश्रीयाबत्सुसेनैव जीर्यति । यातुः ब्रकुप्यते येन तद्वं वर्जयेदातिः ॥
 - " उद्दया चोदितं चात्रं दिजानां शूद्रचोदितस् । प्राण्यंगे वायसे कूपं तद्त्रं वर्जयेवातिः ॥
 - " पित्रर्थं कल्पितं पूर्वमन्नं देवादिकारणात् । वर्जयेत्तादृशीं भिक्षां परबाधाकरीं तथा " ॥

बोधायनः—

- " भिक्षां न द्युः पंचाहं सप्ताहं वा कदाचन । यस्मिन्गृहे जना मौस्यात्त्यजेचांडाळवेइमवत् ॥ २० " एकत्र लोभायो भिक्षुः पात्रपूरणाभिच्छति । दाता स्वर्गमवाप्नोति भोका भुंजीत किल्मिषम् ॥ " या तु पर्युषिता भिक्षा निवेधे किल्पिता तु या । तामभोज्यां विजानीयाद्दाता तु नरकं वजेत् ॥ " आयसेन तु पात्रण यदत्रमुपदीयते । भोका विष्ठासमं भुंके दाता तु नरकं वजेत् ॥ " स्वयमाहतपर्णेषु स्वयं शीर्णेषु वा पुनः । भुंजीत न वटाश्वत्थकरंजानां च पर्णके ॥
- " कुंभितिन्दुकयोर्वाऽपि कोविदारार्कयोस्तथा । आपचपि न कांस्ये तु मलाज्ञी कांस्यभोजनः ॥ १५ " सौवर्णे राजते ताम्रमये वा त्रपुसीसयोः "॥

भिक्षापात्राण्याह मनुः (६।५४–५३)--

- '' अलाबुं दारुपात्रं वा मृण्मयं वैणवं तथा। एतानि यतिपात्राणि मनुः स्वायंभुवोऽबवीत्॥ ''अतैजसानि पात्राणि तस्य स्युर्निवणानि च । तेषामद्भिः समृतं शौचं चमसानामिवाध्वरे"॥ याझवरुक्यः (प्रा. ६०)—
- भ० "यतिपात्राणि मृद्देणुदार्वठाबुमयानि च । सिठठं शुद्धिरतेषां गोवालैश्चापि घर्षणम्"॥ शुद्धिः तत्र भोजने कृते मृज्जलगोवालघर्षणैः शुद्धिरित्यर्थः। यदाह देवलः—" तद्भैशं गृहीत्वा एकांते तेन पात्रेण वा अन्येन वा तूष्णीं मात्रया भुंजीत"॥ इति

कलौ भिक्षापात्रभोजनं निषेधति पितामहः--

"द्वापारादियुगेष्वेव पात्रभोजी भवेद्यतिः। कठौ नैव तु भुंजीत स्वपात्रे योगवित्तमः" इति। कण्वः—" ताम्रपर्ण च पाषाणम् " इति । आत्रिः—

" क्षमं पात्रं च पाषाणं ताम्रपर्णं पुटं तथा । उक्तानि यतिपात्राणि ब्रह्मणा विश्वयोनिना"॥ व्यासः—

" प्रक्षाल्य पात्रे भुंजीयाद्द्धिः प्रक्षालयेतु तत् । अथवाऽन्यदुपाद्दाय पात्रे भुंजीत नित्यशः ॥ ५ " भुक्त्वा तु संत्यजेत्पात्रं यात्रामात्रमलोलुपः । प्रक्षाल्य पाणिपादौच समाचम्य यथाविधि ॥

" आदित्यं द्शीयत्वाऽनं भुंजीत प्राङ्मुसोत्तरः। भुक्ता प्राणाहुतीः पंच ग्रासानधौ समाहितः॥

" आचम्य देवं ब्रह्माणं ध्यायीत परमेश्वरम् " ॥

बोधायनः (२।१०।४६-५०)—" तस्य प्राणो गाईपत्योऽपानोऽन्दाहार्यपचनो व्यात आहवनीय उदानापानौ सभ्यावसथ्यो पंच वा एते अग्नय आत्मस्थाः आत्मन्येव जुहोति स एव १० आत्मयज्ञ आत्मनिष्ठ आत्मप्रतिष्ठ आत्मानं क्षेमं नयतीति विज्ञायते भूतेभ्यो द्यापूर्वं संविभज्य शेषमद्भिः संस्पृङ्यौषधवत्प्राश्चीयात्"॥

आश्वलायनः---

" उपावृतस्ततो भैक्ष्यं गत्वा तीर्थमकर्दमम् । प्रक्षाल्यांतर्हिते देशे भिक्षापात्रं विधाय तु ॥ " मृत्तोयेन पृथक् पादौ हस्तौ प्रक्षालयेत्तथा । आचम्याथ त्रिराचम्य प्राणास्तु पुनराचरेत् ॥ १५

" आपोशनं विधिं कृत्वा पंचप्राणाहुर्तीश्चरेत् " ॥ **महाभारते**—

" उक्तान्यकालपक्वानि काषायकटुकानि च । नास्वादयेत भुञ्जानो रसांश्च मधुरांस्तथा'' ॥

आश्वलायनः—" लाक्षां लशुनं हिंगुं ताबूलं पुष्पभंजनम् । मधुमांसमपूपादि तेलं चापि विवर्जयेत्"॥ यमः—" प्रोक्षितं प्रणवेनैव हुतमध्यात्मकादिषु । शरीरं प्राणवत्पश्येद्त्रं तु प्राणलेपवत् ॥

" गंगातोयाभिषिक्तां तु भिक्षामश्वाति योगवित् । तत्र ऋतुशतौरिष्टा फलं प्राप्नोति मानवः ॥ २०

" सांतपनं सहस्रं तु चांद्रायणशतानि च । अश्वमेधाष्टकं चैव तद्विष्णोः शेषमुत्तमम् " ॥

छांदोग्यश्रतिः---

" आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः । स्मृतिढंभे सर्वत्रप्रंथीनां विष्रमोक्षः" इति ॥ विष्णुः—

" भैक्षं यवागुं तक्रं वा पयो यावक्रमेव वा । फुठं मूठं विपक्षं वा कणपिण्याकसक्तपः ॥ २५ " इत्येते वै शुभाहारा योगिनां सिद्धिकारकाः "॥

यम:---

" आहारस्य चतुर्भागमर्धं वाऽप्याहरेखतिः । युवा चैवारुजः शक्तः प्रसंगं तत्र वर्जयेत् ॥ " अन्नसंगाद्धलं द्र्पो विषयासिकरेव च । कामकोधस्तथा लोभः पतनं नरके तथा ॥ "अष्टौ प्रासा मुनेः प्रोक्ताः षोडशारण्यवासिनः। द्वात्रिंशत्तु गृहस्थस्य यथेष्टं ब्रह्मचारिणः"॥ तत्र ग्रासप्रमाणं व्याघ्र आह—

" चतुरंगुरुमुत्सेघं चतुरंगुरुमायतम्। एतद्वासप्रमाणं तु व्याघेण परिभाषितम् ''॥ जानालिः—

- "निमंत्रितस्तु संन्यासी यिद् भैक्षं समाचरेत् । लोभात्तत्र प्रवर्तेत प्रतते च न संशयः॥ " यिद्धंचिद्दीयमानं तु गृहिणीकरसंस्थितम् । भिक्षां भिक्षुर्न गृह्णीयात् कङ्क्रयोनिषु जायते "॥ भिक्षां प्रशंसित यमः—
- " अब्बिन्दुर्यः कुशांग्रेण मासि मासि समश्चते । न्यायतो यस्तु भिक्षाशी पूर्वोक्ता तु विाशिष्यते ॥ ५ " तप्तकांचनवर्णेन गवां मूत्रेण यावकम् । पिबेद्वादशवर्षाणि न तद्भैक्षसमं भवेत्॥
 - " शाकमक्षश्च यो भक्षेत् योऽन्यो यावकमक्षकः। सर्वे भिक्षाभुजस्तस्य कलां नाईति षोडशीम् ॥
 - " न भैक्षं परपाकान्नं न च भैक्षं प्रतिग्रहः । सोमपानसमं भैक्ष्यं तस्माद्भैक्षेण वर्तयेत् " ॥

शातातप:---

- " मिक्षा माधूकरी नाम सर्वपापप्रणाशिनी । भिक्षाहारो निराहारो भिक्षा नैव प्रतिग्रहः ॥
- 🤋 "श्रोत्रियान्नं च भैक्ष्यं च हुतशेषं च यद्भविः । आ नसाच्छोधयेत्पापं तुषाभिरिव कांचनम् ॥
 - " गंगायाः सिललं पुण्यं शालग्रामिशला तथा। भिक्षान्नं पंचगव्यं च पवित्राणि युगे युगे ॥
 - " भक्तात्परे चोपवास उपवासादयाचितम् । अयाचितात्परं भैक्षं तस्माद्भैक्षेण वर्तयेत्" ॥

मेधातिथि:--

'' बब्हन्नं पच्यते यत्र मन्यंते यतिमानवाः। अनुद्विमाः प्रयच्छंति तं मामं यत्नतो व्रजेत्''॥

१५ ऋतुः—

R 0

34

- " पंचसप्तगृहाणां तु भिक्षामिच्छेत्कियावताम् । गोदोहमात्रमाकांक्षेत्रिष्कांतो न पुनर्वजेत् ॥
- " विना दंडोदपात्रं तु न गच्छेधितसत्तमः । भिक्षाकाले दंडमेव नोदपात्रं कदाचन "॥ कत्तात्रेयः—
 - '' भैक्षादन्यं न याचेत न चैवोपविशेत्कचित् । उद्यतां नावमन्येत न चैनां श्रावयेत्पुन: ॥
 - '' आत्मसंमितमाहारमाहरेदात्मवान्यतिः । अत्यंतक्ष्वधितस्यापि समाधिर्नैव जायते ॥
 - " मिताशनो भवेन्नित्यं भिश्चर्मोक्षपरायणः । कामद्रपद्यो दोषा न भवंति मिताशिनः"॥

विष्णु:---

- " यदि भैक्षं समादाय पर्युषेद्योगवित्तमः । स पर्युषितद्येषेण भिक्ष्भिवति वै क्रिमिः॥
- " मुवृत्तस्य गृहे भिक्षेत्र दुष्टेष्वेव नित्यशः । अभावे बहुगेहानां तेषु भिक्षेद्लोलुपः॥
- " अन्यपात्रे हर्विर्भुक्ते हृब्यकव्येष्वनुज्ञया। राजते ताम्रसौवर्णे तत्रायं नास्ति वै विधि:॥
- " सौवर्णेषु च पात्रेषु ताम्ररीप्यमयेषु च । अंजन्भिश्चर्न हृष्यते दृष्यते तत्परिग्रहात्॥
- "भुंजीत पर्णपुटके पात्रे वा वाग्यतो मुनिः। भुकत्वा पात्रं यतिर्नित्यं क्षालयेनमन्त्रपूर्वकम्॥
- "न दुष्येत्तस्य तत्पात्रं यज्ञेषु चमसा इव । अथाचम्य निरुद्धासुरुपतिष्ठेत भास्करम् ॥
- " जपध्यानविशेषेषु दिनशेषं नयेद् बुधः । कृतसंध्यस्ततो रात्रिं नयेद्देवगृहादिषु " ॥
- दक्ष:-" इतिहासपुराणाभ्यां षष्ठसप्तमकौ नयेत् "॥

अंगिराः—

- " पुराणश्रवणाद्भक्तिर्मूर्खस्यापि प्रवर्तते । भक्त्या विनिश्चिता मुक्तिस्तस्मात्पौराणमभ्यसेत् " ॥
- '' तद्भ्यासात्परं ब्रह्मभावमापद्यते मुनिः "॥

बृहस्पति:--

- " बंधान्मोक्षविभागज्ञो बंधाश्चेन्मोक्षणेच्छया । उपायान्वेषणे युक्तः को न मुच्येत बंधनात् ॥
- " यथा चित्तं समासक्तं जंतोर्विषयगोचरे । यदि नारायणेऽप्येवं को न मुच्येत बंधनात्॥
- " तत्कर्म यन्न बंधाय सा विद्या या विमुक्तये । आयासाय परं कर्म विद्यान्या शिल्पनेपुणम् ॥
- " लोहितार्कमुपासीत संध्यामा तारकोद्यात् । हृत्पन्नकोटरावासं चिन्मात्रं ज्योतिषं हरिम् ॥
- " ध्यायेन्नारायणं ह्यादौ त्रीन्कृत्वा प्राणसंयमान् । तावत् ध्यायेत्पुनर्यावन्निद्रावशमुपागतः॥
- " सुप्तोत्थितः पुनर्ध्यायेत् तिष्ठन ध्यायेज्जपन बुधः । प्राग्रात्रेऽपररात्रे च मध्यरात्रे समाहितः ।
- " संध्यास्वन्हिविशेषेण चिंतयेन्नित्यमीश्वरम् । कुत्वा हृत्पग्नानिलये विष्णवाख्यं विश्वसंभवम् ॥
- "आत्मानं सर्वभूतानां परस्तात्तमसि स्थितम् । सर्वस्याधारमव्यक्तमानंदं ज्योतिरव्ययम् ॥
- " पुराणं पुरुषं शंभुं ध्यायेनमुच्येत बंधनात् । मत्वा पृथक् स्वमात्मानं सर्वस्मादेव केवलम् ॥
- " आनन्दमक्षरं ज्ञानं ध्यायीत च पुनः पुनः । तस्मात् ध्यानरतो नित्यमात्मविद्यापरायणः ॥
- " ज्ञानं समभ्यसेद्रह्म येन मुच्येत बन्धनात्"।

अथ चातुर्मास्यविधिः । तत्र श्रूयते- ''वर्षांसु ध्रुवशीलः'' इति ॥

अत्रि:---

- '' चतुरोऽयं वसेन्मासान्वार्षिकान् द्वावथापि वा। वृद्धाननुक्रमेणेव नमस्कृत्य विधानतः॥ १५
 - " अनेन विधिना भिश्चराषाड्यां सुसमाहितः । स्थानाभावं वजेत्तावद्यावद्भवति पंचमी ॥
 - " प्रायश्चित्ते नियुज्येत पंचमोध्वं वजेद्यदि । कक्षोपस्थशिखावर्जमृतुसंधिषु वापयेत् ॥
 - " चातुर्मास्यस्य मध्ये तु वर्जयद्वपनं यतिः। आषाद्व्यां पूर्णमास्यां तु कारयेद्वपनं यतिः॥
 - " तेषु मासेषु केशादीन् ऋतुसंधो न वापयेत् । नदीं च न तरेत्तेषु क्रोशादूर्ध्व न च वजेत् ॥
 - '' वापयेद्यदि केशादीनुत्तरेद्यदि वा नदीम्। प्राणायामान् त्रिंशत्कृत्वा जपेत्त्रिकशतत्रयम्॥ २०
 - " वर्षाभेदे यतिः कुर्याद्यदि कश्चिद्नापदि । प्राजापत्येन कुच्छ्रेण मुच्यते नात्र संशयः 🖫

अत्र संप्रदायविद्वद्वचनम्--

- " गुरुन्नत्वा शिरस्यंतःक्षालनं तद्नंतरम् । आचम्य वाग्यतो यत्नात् सवासा श्लौरमाचरेत् ॥
- " अंतर्धाय तृणं किंचित् तत्र निक्षेपयेद्यतिः । श्चरं संदंशनं चेत्र तथा नखनिकृंतनम् ॥
- " अभिमंज्य द्विषड्वारं प्रणवैः प्रोक्षयेज्नलम् । क्षुरमादाय तारेण रमश्रुकेशान्निकृत्य च ॥
- " नासा स्थितांस्तथा लोमान् यत्नेन प्रयतो यतिः । कारयेत् करपादस्य नसानां च निक्वंतनम्॥
- " द्विषड्वारं निमज्ज्याप्सु तीरं गत्वोपविश्य च । प्रतिस्थानं द्विषड्वारं करावारभ्य पादयोः ॥
- " मृदं द्यान्मुखे चैव प्रतिवारं जलं तथा।ततो जलं प्रविश्याथ शिर आलिप्य सन्मृदा॥
- **" द्विषड्वारं निम**ज्याथ प्रतिवा<mark>रं मृदं</mark> तथा । पुनरुत्प्कुत्य तत्तीरं गत्वा गंडूषमाचरेत् ॥
- " पंचैकादशवारांश्च सम्यगाचम्य यत्नतः। प्राणायामांस्तथा कुर्यात्पंचैकादशसंख्यया॥
- " क्षौरस्नानं यतीनां तु व्यासाद्यश्च प्रकीर्तितम् " ॥ इति
- अत्रि:--" वपनानंतरं स्नात्वा पूजयेत्पुरुषोत्तम्" इति ।

यातिधर्मसमुच्चये---

- "देवं कृष्णं मुनिं व्यासं भाष्यकारं गुरोर्गुरुस्। गुरुं देवं गणाध्यक्षौ दुर्गी देवीं सरस्वतीम् "॥
 गणो गणेशः। अध्यक्षः क्षेत्रपाठः। तत्र मध्ये कृष्णसनत्कुमारसनकसनंदनसनत्सुजातान्।
 तद्दक्षिणतो व्याससुमंतुजैमिनिवैशंपायनपैठान्। वामतो भाष्यकारपद्मपादविश्वरूपतोटकहस्तामठकाचार्याश्च पूजयत्। भगवतः पुरतः गुरुपरमगुरुपरमेष्ठिगुरूनन्यांश्चाचार्यान्पूजयेत्। यथापदशं ठोकपाठानभगवत्पार्श्वयोर्बह्मशंकरौ च प्रणवादिनमोन्तैस्तत्तन्नामिः पूजयेत्। ततो गोपीचंदनमृत्तिकादंतकाष्ठदोरकादि द्यात्। मासचतुष्टयपर्यातं मृत्तिकादंतकाष्ठादि संगृह्णीयात्।
 *अत्रिः—
 - " असतिप्रतिवन्धे तु मासान्वे वार्षिकानिह । निवत्स्यामीति सङ्कल्प्य मनसा बुद्धिपूर्वकम् ॥ " प्रायेण प्रावृषि प्राणिसङ्कुलं वर्त्म दृश्यते । आषाढ्यादिचतुर्मासं कार्तिकान्तं तु संवसेत् ॥
- " माधवइचतुरो मासान् सर्वभ्तहिताय वै । स्वापं यास्यिति शेषाङ्के ठक्ष्म्या सह जगत्पितः ॥
 " सुप्तइचेवोत्थितो यावन्न भवेत्स सनातनः । अहं ताविश्ववत्स्यामि सर्वभूतिहताय वै" ॥ इति ।
 शातातपः—
 - " निगृहीतेन्द्रियमामा यत्र यत्र भवेद्यतिः । तत्र तत्र कुरुक्षेत्रं नैमिषं पुष्करं तथा " ॥ इति । अत्रिः—
- 🤒 " पिता भ्राता स्वसा माता स्नुषा ज्याया सुतस्तथा । ज्ञातिबन्धुसुहृद्दगीं दुहितातत्सुतादयः ॥
 - " यस्मिन् देशे वसन्त्येते न तत्र दिवसं वसेत् । मुहुर्तमिप नासीत देशे सोपद्रवे यतिः ॥
 - " उपद्रवे तु मनसि समाधिनींपजायते । चातुर्मास्ये च कार्तिक्यां श्लीरं कृयित चान्तरा ॥
 - " देशकालविरोधे तु भाद्रपद्यामपि कचित्।
 - " चतुःक्रोशान्तरा यत्र नदी भवति कुत्रचित् । पक्षान्ते तत्रु गन्तव्यमापस्तंस्बवचो यथा ॥
- २० " सर्वदा वन्दनं कुर्याद्वरोज्येंष्ठयतेस्तथा । आ पश्चमी नमस्कुर्यादतिकान्ते च पर्वणि ॥
 - '' त्रिमुहूर्ताधिकं ग्राह्यं पर्वक्षौरप्रमाणयोः । प्रणतं न यतिर्बूयादाशिषं व्यासशासनात् ॥
 - " नारायणोति च ब्रूयात्प्रणताय विवृद्धये " ॥ इति

व्या अप्यागताचारादिकं संप्रदायमूलं यथासंप्रदायं वेदितव्यम्।

हारीतः--

- ^{२५} '' सर्वेषामाश्रमाणां तु संन्यासी ह्युत्तमाऽश्रमी । स एवात्र नमस्यः स्याद्भक्त्या सन्मार्गवर्तिभिः॥
 - " ब्रह्मिष्टः परमो हंसः साक्षान्नारायणः स्मृतः । यतिं यः पूजयेन्नित्यं विष्णुस्तेन प्रपूजितः ॥
 - " अष्टाक्षरेण मन्त्रेण यतिर्यत्र नमस्कृतः । स्मृतं नारायणो हन्ति प्राणिनां पापपञ्जरम् ॥
 - " अष्टाक्षरेण मन्त्रेण नमो नारायणात्मना । नमस्यो भक्तिभावेन विष्णुरूपी यतिर्यतः ॥
 - " स्वधर्मस्थान् यतीन्वृद्धान् देवांश्च प्रणमेयतिः । नान्यशाश्रमिणं किश्वित्प्रशस्तमपि तन्नमेत् ॥
- ' " अपि शास्त्रसमायुक्तं सदाचारसमान्वतम्। साधुवृत्तं गृहस्थायं न नमस्येत् कचियातिः"॥ इति । प्राणायामाविधिः । मनुः (६।७२)
 - ''प्राणायामैर्दहेद्दोषान् वारणाभिश्च किल्बिषम् । प्रत्याहारेण संसर्गात् ध्यानेनानीश्वरान् गुणान्'' ॥ इति ॥ वसिष्ठः—

^{*}एतत्पर: म्दरम्या पात: ।

" प्रणवेनैव कुर्याच्च प्राणायामान्यतिर्मुहुः । रेचकं नाममार्गेण पूरकं दक्षिणे तथा ॥ " कुंभकं तु तयोहींनं मध्यमं हृदि तिष्ठति । चतुर्विशातिमावृत्तिं षट्त्रिंशत्द्वादशाथ वा ॥ " प्रणवस्य स्मरेत्स स्यात् प्राणायमोऽतिनिर्मलः" ॥ इति । वैवस्वतः---"द्वादशावर्तितं युत्त प्रणवस्य मनो हृदि। प्राणायामा यतेः प्रोक्तः प्राणानायम्य चोमिति"॥इति । 🐣 कूर्मपुराणे--" प्राणस्तु देहजो वायुरायामस्तन्निरोधनम् । मात्रात् द्वादशको मन्दश्चतुर्विशतिमात्रकः ॥ " मध्यमः प्राणसंरोधः षट्त्रिंशन्मात्रको मतः । सगर्भमाहुः सजपमगर्भमजपं बुधाः ॥ " रेचकः पूरकश्चैव प्राणायामोऽथ कुंभकः । रेचकोऽजस्रनिङ्वासात्पूरकस्तन्निरोधकः ॥ " साम्येन संस्थितियां सा कुंभकः परिगीयते " इति ॥ 90 **शौनकपरिशिष्टे—सूत्रम्** " यावत्यो रेचकमात्रास्तावत् द्विगुणान् पूरके विद्यात्कुंभके चातु-गुण्यमष्टमात्रो रेचकः षोडशमात्रः पूरको द्वात्रिंशन्मात्रः कुंभक इति शिशुप्राणायामः । द्वादश-मात्रको रेचकः चतुर्विंशतिमात्रः पूरक अष्टाचत्वारिंशन्मात्रः कुंभक इति मध्यमः । षोडशमात्रो रेचको द्वात्रिंशन्मात्रः पूरकोऽष्टषष्टिमात्रः कुंभक इति प्राणायामः । अकारकालो मात्राप्रायश्चित्तं चैतत्सर्वेषु दुष्कृतेष्विति "। इलोकः— '' रेचकं दक्षिणे न्यस्येत्पूरकं वामनासिके । अङ्गुष्ठाङ्गुलिभिश्चैवं प्राणायामं समाचरेत्''॥ अथ यतेर्निषिद्धानि । " प्राणायामैकनिष्ठस्य न किञ्चिदपि दुर्लभम् "। इति ॥ तत्र व्यासः " द्वावेतौ समवीर्यौ तौ सुरा तांबूछमेव च । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तांबूछं वर्जयेद्यतिः ॥ ₹ 0 " माद्यति प्रमद्गं हृष्ट्वा सुरां पीत्वाऽपि माद्यति । तस्माद्ष्टमदां नारीं दूरतः परिवर्जयेत् ॥ " शिल्पं व्याख्यानियोगइच कामा रागः परिग्रहः । अहङ्कारो ममत्वं च चिकित्साकर्म साहसम्॥ " एकान्नं मदमात्सर्ये गन्धपुष्पविभूषणम् । तांबूलाभ्यञ्जने कीडा भोगे कांक्षा रसायनम् ॥ " सन्धिश्च विग्रहो यानं मऋकं शुक्कवस्त्रकम् । शुल्कोत्सर्गो दिवास्वापो भिक्षाधारस्तु तैजसः ॥ " एतानि वर्जयेकित्यं यतिर्मूत्रपुरीषवत् । न स्नानमाचरेद्धिक्षः पुत्रादिनिधने श्रुते ॥ 24 " पितृमातृक्षयं श्रुत्वा स्नात्वा शुध्यति साम्बरः । " अन्नदानपरो भिक्षः भिक्षादानपरो गृही । उभौ तौ मन्दबुद्धित्वात्पूतीनरकशायिनौ ॥ " यस्तु प्रविजतो भूत्वा पुनः सेवेत मैथुनम्। षष्ठिर्वर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः॥ " न किञ्चिद्भैक्षजादन्यद्गानादन्तथावनस्।विना भोजनकाले न जातुचिद्भक्षयेद्यतिः"॥इति। अङ्गिराः— 3 0 "संन्यासं चैव यः कृत्वा पुनरुत्तिष्ठते द्विजः।न तस्य निष्कृतिः कार्या स्वधर्मात् प्रच्युतस्य च॥ " आरूढो नैष्ठिकं कर्म पुनरावर्तयेद्यति: । आरूढपतितो ज्ञेयः सर्वधर्मबाहिष्कृतः ॥

"चण्डालाः प्रत्यवसिताः परिवाजकतापसाः। तेषां जातान्यपत्यानि चण्डालेः सह वासयेत"॥इति।

"नैष्ठिकानां वनस्थानां यतींनामवकी।णिंनाम् । शुद्धानामपि लोकेऽस्मिन् प्रत्यासत्तिर्ने विद्यते'गाइति। दक्षः—

५ "यस्तु प्रव्रजिताज्जातः प्रव्रज्यावसितश्च यः।तावुभौ ब्रह्मचण्डालौ प्राह वैवस्वतो यमः "॥ इति। संवर्तः—

''संन्यस्य दुर्मतिः किह्चित् प्रत्यापत्तिं वजेबितः।स कुर्यात् कुच्छ्रमश्रान्तः षण्मासात् प्रत्यनन्तरम्''॥ इति ।

बह्रचपरिशिष्टे--

" पतत्यसौ ध्रुवं भिक्षुर्यस्यं भिक्षोर्द्वयं भवेत् । धीपूर्वरेत उत्सर्गो द्रव्यसङ्ग्रह एव च " ॥ इति
 " अत्रानुक्त आचमनादिसाधारणो धर्मः तत्तद्वसरे वक्ष्यते ।

व्यास:--

94

- " मोक्षाश्रमं यश्वरते यथोक्तं शुचिः सुसङ्कल्पितबुद्धियुक्तः ।
- " अनिन्धनं ज्योतिरिव प्रशान्तं स ब्रह्मभावं व्रजते द्विजातिः ॥ इति ।

॥ इति यतिधर्माः ॥

इति श्रीवैद्यनाथदीक्षिताविरचिते स्मृतिमुक्ताफले वर्णाश्रमधर्मनिह्मपणं नाम प्रथमः परिच्छेदः॥

समाप्तोऽयं वर्णाश्रमधर्मकाण्डः ॥

- 4